

हिन्दी शिक्षण

लेखक

डा० जय नारायण कौशिक

पुनरीक्षण

डा० रघुनाथ सफ़ाया



हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़

© हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़—1987

भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मन्त्रालय की प्रादेशिक भाषाओं के
विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ-निर्माण योजना के अन्तर्गत
हरियाणा साहित्य अकादमी के तत्वावधान में प्रकाशित :

TEACHING OF HINDI

by

Dr. JAI NARAIN KAUSHIK

प्रथम संस्करण : 1987

प्रतियाँ : 1100

मूल्य : साठ रुपये (Rs. 60.00 only)

मुद्रक :

मित्तल प्रिण्टर्स,
दिल्ली-110032

प्रस्तावना

विश्वविद्यालय स्तर पर मानविकी तथा विज्ञान विषयों की पढ़ाई हिन्दी माध्यम से सम्भव हो सके, इसके लिए हिन्दी भाषा में सम्बद्ध विषय के मानक ग्रन्थों का उपलब्ध होना आवश्यक है। ऐसे ग्रन्थों के उपलब्ध करवाने की योजना के अन्तर्गत अन्य हिन्दी ग्रन्थ अकादमियों के साथ हरियाणा साहित्य अकादमी भी कार्यशील है। विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रन्थ-निर्माण में हरियाणा साहित्य अकादमी को हरियाणा के प्रतिष्ठित विद्वानों तथा अध्यापकों के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों के लेखकों का भी सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है। इस अकादमी द्वारा विभिन्न विषयों के अब तक अनेक ऐसे ग्रन्थ प्रकाशित किए गए हैं जिनमें से चालीस के द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ संस्करण भी प्रकाशित किए जा चुके हैं। हिन्दी शिक्षण इस शृंखला की 118वीं कड़ी है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक डा० जय नारायण कौशिक हैं जिन्हें हरियाणवी-हिन्दी कोश तैयार करने का श्रेय प्राप्त है। वे राजकीय शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थान, दिल्ली में प्राध्यापक हैं। पुस्तक का पुनरीक्षण शिक्षा-जगत् के मूर्धन्य विद्वान् डा० रघुनाथ सफ़ाया द्वारा संपन्न किया गया है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अनुसार निर्धारित भाषा शिक्षण के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए हिन्दी शिक्षण में ऐसी पुस्तक की आवश्यकता थी जो नए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की पूर्ति कर सके। वर्तमान पुस्तक में शिक्षा में गुणात्मक विकास, विद्यार्थियों द्वारा व्यावहारिक कार्य एवं नवीन मूल्यांकन पद्धति जैसे विषयों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। पुस्तक में हिन्दी शिक्षण का प्रथम तथा द्वितीय भाषा के रूप का पाठ्यक्रम भी दिया गया है। इस पुस्तक के लेखन में एन० सी० ई० आर० टी० द्वारा विकसित अध्यापक शिक्षक पाठ्यचर्या के निर्देशों का भी विशेष ध्यान रखा गया है।

पुस्तक में आयोग द्वारा तैयार की गई पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया गया है ताकि देश-भर में एक ही प्रकार की शब्दावली प्रयोग में आए। हमें आशा है कि यह पुस्तक बी० एड० और जे० बी० टी० के विद्यार्थियों के अतिरिक्त

(vi)

भाषा शिक्षकों, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों, शिक्षा शास्त्रियों एवं निरीक्षकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी तथा इससे भाषा शिक्षण को एक नई दिशा मिलेगी ।

११२५१ २१०१

शिक्षा मन्त्री, हरियाणा सरकार
एवं अध्यक्ष
हरियाणा साहित्य अकादमी

१५
गिराय (११ २१०१)

निदेशक
हरियाणा साहित्य अकादमी
चण्डीगढ़

भूमिका

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के दस्तावेज 'शिक्षा की चुनौती' में स्कूली शिक्षण में क्रान्तिकारी परिवर्तनों की सम्भावना प्रकट की गई है। इस नीति का सफल कार्यान्वयन अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं की पाठ्यचर्या को अद्यतन बना कर ही सम्भव है।

10 + 2 + 3 शिक्षा प्रणाली के कारण पाठ्यचर्या में हुए परिवर्तनों के कारण भाषा शिक्षण पर अब तक लिखी गई पुस्तकें वर्तमान उद्देश्यों की दृष्टि से काफ़ी पिछड़ गई हैं। एन० सी० ई० आर० टी० द्वारा सन् 1984 में तैयार की गई अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या (Teacher Education Curriculum) को गति देने के लिए भी भाषा शिक्षण पर नई पुस्तक की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी।

वर्तमान पुस्तक अद्यतन दृष्टिकोण से हिन्दी शिक्षण तथा साहित्य शिक्षण में योगदान देने के लिए लेखक का विनम्र प्रयास है। यह पुस्तक कई दृष्टियों से भाषा शिक्षण को नई दिशा प्रदान करेगी।

भाषा शिक्षण के लिए लिखी गई अनेक पुस्तकें प्रशिक्षणार्थियों को मात्र परीक्षा उत्तीर्ण कराने के लिए लिखी जाती हैं। उनमें नई शिक्षा नीति के अनुसार 'करके सीखने' की बजाय 'पढ़ाने और सिखाने' पर अधिक बल है। इन पुस्तकों में व्यावहारिक कार्य नगण्य है। इस पुस्तक में पहली बार हर अध्याय के अन्त में व्यावहारिक कार्य सुझाया गया है तथा मूल्यांकन की दृष्टि से अनुप्रयुक्त प्रश्न दिए गए हैं।

अब तक प्रकाशित किसी भी पुस्तक में हिन्दी के विद्यालयी पाठ्यक्रम को स्थान नहीं दिया गया। इस पुस्तक में हिन्दी के प्रथम भाषा और द्वितीय भाषा के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम को पहली बार स्थान दिया गया है। पाठ्यक्रम सन्दर्भ को अधिक उपयोगी बनाने के लिए उसे एक स्थान पर न देकर हर सम्बन्धित अध्याय में उस अंश को दिया गया है।

वर्तमान शिक्षा का उद्देश्य विश्वविद्यालय में प्रवेश मात्र की तैयारी न होकर भावी कार्यक्षेत्र के लिए तैयारी भी है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सामाजिक और कार्यालयी कुशलताओं के विकास के लिए टिप्पण, सार लेखन, साक्षात्कार, सभाओं की कार्यवाही लिखना, अनुवाद तथा सम्पादकीय लेखन जैसे विषयों की प्रक्रिया का समावेश किया गया है।

हमारा सामान्य विद्यार्थी शिक्षा और साहित्य का उपभोक्ता ही रहा है। मौलिक, रचनात्मक तथा सृजनात्मक लेखन का अवसर उसे कम मिलता है। वर्तमान पुस्तक में रचना-शिक्षण नामक अध्याय में साहित्य की विभिन्न विधाओं में योगदान देने की प्रक्रिया को समझाया गया है।

पुस्तक में हिन्दी साहित्य की विधाओं के अतिरिक्त शिक्षण के लिए पाठ-योजना के संकेत भी दिए गए हैं। ये पाठ योजनाएँ अलग से न देकर सम्बन्धित विषय के साथ ही दी गई हैं।

प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों, अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र तथा जे० बी० टी० आदि के विद्यार्थियों के लिए पुस्तक को उपयोगी बनाने के लिए लिखना-पढ़ना सिखाने के कौशलों और पठन आरम्भ योग्यता व लेखन आरम्भ योग्यता जैसे महत्त्वपूर्ण किन्तु उपेक्षित विषयों को उचित स्थान दिया गया है। नर्सरी शिक्षकों के लिए बच्चों में भाषा का विकास सम्बन्धी अध्याय बहुत ही उपयोगी है। पुस्तक में शैक्षिक प्रौद्योगिकी तथा जनसंचार माध्यमों के विषय में भी नवीनतम जानकारी दी गई है।

लेखक ने गत तीन दशकों में अपने अध्यापन, प्रशासन तथा अध्यापक प्रशिक्षण में जो अनुमन्धान व्यक्तिगत स्तर पर किए हैं उनका समावेश इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर किया है। पाठक उच्चारण, शुद्ध लेखन, मूल्यांकन, भाषा में शोध कार्य, पाठ योजना जैसे अध्यायों को पढ़ते समय इसका सहज अनुमान लगा सकेंगे।

मैं उन सभी विद्वानों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ जिनकी पुस्तकों का उपयोग मधुमक्षिका वृत्ति अपना कर किया है। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती विमला कौशिक साधुवाद की पात्र हैं जिन्होंने पुस्तक के विभिन्न चरणों में मेरा सहयोग दिया है।

मैं हरियाणा साहित्य अकादमी के प्रति आभारी हूँ जिसने मुझे विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों के प्रकाशन की योजना के अधीन इस पुस्तक के लेखन का सुअवसर दिया। सहृदय पाठकों के सुझावों के अनुसार पुस्तक के अगले संस्करण में आवश्यक सुधार कर लिए जाएँगे।

वसन्त पंचमी,
1987

—डा० जय नारायण कौशिक
सी-605, सरस्वती विहार
दिल्ली-110034

विषय-क्रम

अध्याय : 1 भाषा

1—23

I. भाषा II. भाषा की परिभाषा III. भाषा की प्रकृति
IV. भाषा के अनेक स्वरूप V. भाषा के विविध रूप VI. भाषा
का महत्त्व VII. भाषा शिक्षण के उद्देश्य VIII. मातृभाषा का
महत्त्व ।

अध्याय : 2 हिन्दी के विविध आयाम

24—37

I. हिन्दी भाषा के विकास पर विहंगम दृष्टि II. हिन्दी के
विविध रूप III. हिन्दी के प्रति अग्रगण्य नेताओं के उद्गार
IV. वर्तमान पाठ्यक्रम में हिन्दी की स्थिति V. वर्तमान पाठ्य-
क्रम और त्रिभाषा सूत्र VI. हिन्दी पाठ्यक्रम का आलोचनात्मक
अध्ययन ।

अध्याय : 3 भाषा शिक्षण सिद्धान्त और हिन्दी अध्यापक

38—45

I. भाषा शिक्षण सिद्धान्त और सूत्र II. हिन्दी अध्यापक के
गुण ।

अध्याय : 4 भाषा की पाठ्यपुस्तक

46—60

I. सामान्य परिचय II. पाठ्यपुस्तक—एक विकासात्मक
समीक्षा III. पाठ्यपुस्तक क्या है IV. पाठ्यपुस्तक का महत्त्व
V. पाठ्यपुस्तक के प्रकार VI. पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु के
आधार VII. पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु VIII. पाठ्यपुस्तक
के अंग ।

अध्याय : 5 बच्चों में भाषा का विकास क्रम

61—72

I. सामान्य परिचय II. भाषा विकास क्रम सम्बन्धी कुछ मत
III. बच्चे में भाषा के विकास को प्रभावित करने वाले कारक
IV. बच्चे में भाषायी कौशलों के विकास का काल क्रम ।

अध्याय : 6 श्रवण की योग्यताएँ

73—81

I. श्रवण का अर्थ II. श्रवण का महत्त्व III. श्रवण की शिक्षा का
महत्त्व IV. श्रवण योग्यता को प्रभावित करने वाले कारक

V. श्रवण को उत्तम कोटि का बनाने के सिद्धान्त VI. श्रोता के लक्षण VII. सुनने की योग्यता के स्तरानुसार उद्देश्य VIII. श्रवण शक्ति के विकास के साधन ।

अध्याय : 7 बोलचाल की शिक्षा (मौखिक अभिव्यक्ति) 82—104

I. बोलचाल और मानव समाज II. बोलचाल से अभिप्राय III. बोलचाल की शिक्षा का महत्त्व IV. बोलचाल की शिक्षा की आवश्यकता V. बोलचाल की शिक्षा के उद्देश्य VI. मौखिक अभिव्यक्ति के रूप VII. मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के साधन VIII. बोलचाल के गुण IX. बोलचाल की त्रुटियाँ—कारण तथा निवारण ।

अध्याय : 8 उच्चारण की शिक्षा 105—131

I. उच्चारण की शिक्षा का महत्त्व II. उच्चारण के पक्ष III. उच्चारण दोष के कारण IV. हरियाण की प्रमुख बोलियाँ और हिन्दी उच्चारण V. हरियाणवी की ध्वनियों की मुख्य विशेषताएँ VI. हिन्दी हरियाणवी उच्चारण भेद VII. उच्चारण भेदों का वर्गीकरण VIII. उच्चारण दोष दूर करने के उपाय IX. उच्चारण अभ्यास के नमूने ।

अध्याय : 9 वाचन की शिक्षा 132—163

I. वाचन क्या है II. वाचन के तत्त्व III. वाचन का महत्त्व IV. वाचन की प्रक्रिया V. वाचन मुद्रा VI. वाचन शैली VII. वाचनशिक्षण के उद्देश्य VIII. वाचन शिक्षण की विधियाँ IX. पठन सामग्री के गुण X. वाचन सिखाने के सहायक साधन XI. वाचन को प्रभावित करने वाले कारक XII. वाचन दोष के प्रकार XIII. वाचन दोष निवारण XIV. वाचन की अवस्थाएँ XV. वाचन में रुचि उत्पन्न कराने के उपाय ।

अध्याय : 10 लेखन या लिपि-शिक्षा 164—190

I. लेखन का अर्थ II. लेखन का महत्त्व III. लेखन की शिक्षा के उद्देश्य IV. लेखन शिक्षा का उचित समय V. लेखन शिक्षण की अवस्थाएँ VI. अक्षर रचना सिखाने की विधियाँ VII. श्रुतलेख VIII. सुंदर लेख के गुण IX. सुंदर लेख के उपाय ।

अध्याय : 11 रचना शिक्षण 191—232

I. मौलिक लेखन अथवा लिखित रचना क्या है ? II. मौलिक

लेखन का महत्त्व III. रचना शिक्षण के मुख्य उद्देश्य IV. रचना की शिक्षा के सोपान V. रचना शिक्षा के क्षेत्र—1. अनुच्छेद-रचना 2. निबन्ध लेखन 3. पत्र लेखन 4. कहानी लेखन 5. संवाद लेखन 6. एकांकी रचना 7. नाटक लेखन 8. संस्मरण लेखन 9. आत्मकथा 10. जीवनी 11. पद्य लेखन 12. पदान्वय 13. सार लेखन 14. विचार या भाव विस्तार 15. सभाओं की कार्यवाही या रिपोर्ट लिखना 16. रिपोर्टाज 17. साक्षात्कार 18. सम्पादकीय 19. पुस्तक समीक्षा 20. अनुवाद।

अध्याय : 12 लेखन की अशुद्धियाँ 233—257

I. शुद्ध लेखन का महत्त्व II. लेखन की अशुद्धियों के कारण III. वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ IV. वर्तनी की अशुद्धियों को दूर करने के उपाय V. वर्तनी संशोधन की विधियाँ।

अध्याय : 13 गद्य शिक्षण 258—283

I. सामान्य परिचय II. गद्य क्या है III. गद्य शिक्षण का महत्त्व IV. गद्य शिक्षण के उद्देश्य V. गद्य की विभिन्न विधाएँ VI. गद्य शिक्षण की विधियाँ VII. गद्य शिक्षण के अंग।

अध्याय : 14 कविता शिक्षण 284—304

I. सामान्य परिचय II. कविता क्या है ? III. कविता शिक्षण के उद्देश्य IV. काव्य के भेद V. कविता का वर्गीकरण VI. पाठ्य-पुस्तकों के लिए कविता चयन के आधार VII. कविता शिक्षण के अंग VIII. कविता शिक्षण की प्रणालियाँ IX. कविता शिक्षण के सोपान X. कविता में रुचि उत्पन्न करने के उपाय।

अध्याय : 15 नाटक शिक्षा 305—316

I. सामान्य परिचय II. नाटक शिक्षा का महत्त्व III. नाटक शिक्षण के उद्देश्य IV. नाटक के प्रकार V. नाटक के अंग VI. नाटक शिक्षण की विधियाँ VII. नाटक शिक्षण पाठ योजना।

अध्याय : 16 कहानी शिक्षण 317—328

I. सामान्य परिचय II. कहानी शिक्षण का महत्त्व III. कहानी शिक्षण के उद्देश्य IV. कहानी के प्रकार V. कहानी शिक्षण की प्रणालियाँ VI. कहानी सुनाने वाले के गुण VII. कहानी शिक्षण के समय ध्यान रखने योग्य सुझाव VIII. कहानी शिक्षण के सोपान।

अध्याय : 17 उपन्यास की शिक्षा

329—336

I. उपन्यास क्या है ? II. उपन्यास साहित्य का क्रमिक विकास
III. उपन्यास शिक्षण का महत्त्व IV. उपन्यास शिक्षण के उद्देश्य
V. उपन्यास के प्रमुख तत्व VI. उपन्यास के प्रकार VII. उप-
न्यास शिक्षण की विधियाँ VIII. उपन्यास शिक्षण के सोपान ।

अध्याय : 18 व्याकरण शिक्षण

337—346

I. सामान्य परिचय II. व्याकरण की परिभाषा III. व्याकरण
शिक्षण के लाभ IV. व्याकरण का भाषा शिक्षण में स्थान V.
व्याकरण शिक्षण की प्रणालियाँ VI. व्याकरण शिक्षण की पाठ
योजना ।

अध्याय : 19 भाषा शिक्षण में वार्षिक योजना तथा

347—355

इकाई योजना

I. योजना का महत्त्व II. भाषा शिक्षण की वार्षिक योजना
III. योजना निर्माण के आधार IV. पाठ्यचर्या विभाजन विधि
V. भाषा शिक्षण की इकाई योजना VI. इकाई के प्रकार VII.
दैनिक इकाई या दैनिक पाठ योजना ।

अध्याय : 20 गृह-कार्य

356—373

I. गृह-कार्य—एक सामान्य परिचय II. भाषा शिक्षण में गृह-
कार्य III. गृह कार्य का स्वरूप नियोजन—1. पठन सम्बन्धी गृह-
कार्य 2. लेखन सम्बन्धी गृह कार्य 3. मौखिक अभिव्यक्ति संबंधी
गृह कार्य 4. श्रवण सम्बन्धी गृह कार्य IV. गृह कार्य के संशोधन,
निरीक्षण तथा मूल्यांकन की विधियाँ ।

अध्याय : 21 परीक्षा तथा मूल्यांकन

374—381

I. सामान्य परिचय II. परीक्षा की परिभाषा III. मूल्यांकन की
परिभाषा IV. भाषा के कौशलों का मूल्यांकन ।

अध्याय : 22 शिक्षण अभ्यास, पाठ योजना तथा उसका मूल्यांकन 382—410

I. शिक्षण अभ्यास क्या है ? II. शिक्षण अभ्यास के उद्देश्य
III. भाषा शिक्षण की पाठ योजना IV. पाठ योजना के अंग V.
शिक्षण अभ्यास के चरण VI. पाठ योजना के संकेत VII. शिक्षण
पर्यवेक्षण तथा मूल्यांकन—1. सेवाकालीन शिक्षकों के शिक्षण
का पर्यवेक्षण (शैक्षणिक पर्यवेक्षण अनुसूची) 2. पूर्व सेवाकालीन
प्रशिक्षार्थियों के शिक्षण का पर्यवेक्षण (क. निर्देशात्मक पर्यवेक्षण
अनुसूची ख. मानकीकृत पर्यवेक्षण अनुसूची) ।

अध्याय : 23 पुस्तकालय**411—426**

I. पुस्तकालय—एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य II. पुस्तकालय का महत्त्व और आवश्यकता III. पुस्तकालय संगठन IV. पुस्तक चयन के आधार V. बच्चों की पठन अभिरुचि VI. वाचनालय VII. भाषा कक्ष VIII. भाषा अध्यापक और उसकी पुस्तकालय सम्बन्धी भूमिका ।

अध्याय : 24 जन संचार माध्यम तथा श्रव्य-दृश्य सामग्री**427—451**

I. जन संचार माध्यम—1. आवश्यकता तथा महत्त्व 2. शिक्षा में जन संचार साधनों की व्यवस्था 3. दूर संचार साधन और भाषा शिक्षण 4. दूर संचार साधन और अध्यापक प्रशिक्षण II. श्रव्य दृश्य साधन—1. सामान्य परिचय 2. आवश्यकता तथा महत्त्व III. श्रव्य-दृश्य साधनों के प्रकार ।

अध्याय : 25 भाषा शिक्षण में शोध कार्य**452—475**

I. सामान्य परिचय II. शिक्षा में शोध, अनुसंधान या गवेषणा III. क्रियात्मक अनुसंधान IV. क्रियात्मक अनुसंधान के क्षेत्र V. निदानात्मक परीक्षण तथा क्रियात्मक शोध VI. उपचारात्मक शिक्षण VII. क्रियात्मक अनुसंधान आख्या का स्वरूप ।

अध्याय : 23 पुस्तकालय**411—426**

I. पुस्तकालय—एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य II. पुस्तकालय का महत्त्व और आवश्यकता III. पुस्तकालय संगठन IV. पुस्तक चयन के आधार V. बच्चों की पठन अभिरुचि VI. वाचनालय VII. भाषा कक्ष VIII. भाषा अध्यापक और उसकी पुस्तकालय सम्बन्धी भूमिका ।

अध्याय : 24 जन संचार माध्यम तथा श्रव्य-दृश्य सामग्री**427—451**

I. जन संचार माध्यम—1. आवश्यकता तथा महत्त्व 2. शिक्षा में जन संचार साधनों की व्यवस्था 3. दूर संचार साधन और भाषा शिक्षण 4. दूर संचार साधन और अध्यापक प्रशिक्षण II. श्रव्य दृश्य साधन—1. सामान्य परिचय 2. आवश्यकता तथा महत्त्व III. श्रव्य-दृश्य साधनों के प्रकार ।

अध्याय : 25 भाषा शिक्षण में शोध कार्य**452—475**

I. सामान्य परिचय II. शिक्षा में शोध, अनुसंधान या गवेषणा III. क्रियात्मक अनुसंधान IV. क्रियात्मक अनुसंधान के क्षेत्र V. निदानात्मक परीक्षण तथा क्रियात्मक शोध VI. उपचारात्मक शिक्षण VII. क्रियात्मक अनुसंधान आख्या का स्वरूप ।

अध्याय : 17 उपन्यास की शिक्षा

329—336

I. उपन्यास क्या है ? II. उपन्यास साहित्य का क्रमिक विकास
III. उपन्यास शिक्षण का महत्त्व IV. उपन्यास शिक्षण के उद्देश्य
V. उपन्यास के प्रमुख तत्व VI. उपन्यास के प्रकार VII. उप-
न्यास शिक्षण की विधियाँ VIII. उपन्यास शिक्षण के सोपान ।

अध्याय : 18 व्याकरण शिक्षण

337—346

I. सामान्य परिचय II. व्याकरण की परिभाषा III. व्याकरण
शिक्षण के लाभ IV. व्याकरण का भाषा शिक्षण में स्थान V.
व्याकरण शिक्षण की प्रणालियाँ VI. व्याकरण शिक्षण की पाठ
योजना ।

अध्याय : 19 भाषा शिक्षण में वार्षिक योजना तथा

347—355

इकाई योजना

I. योजना का महत्त्व II. भाषा शिक्षण की वार्षिक योजना
III. योजना निर्माण के आधार IV. पाठ्यचर्या विभाजन विधि
V. भाषा शिक्षण की इकाई योजना VI. इकाई के प्रकार VII.
दैनिक इकाई या दैनिक पाठ योजना ।

अध्याय : 20 गृह-कार्य

356—373

I. गृह-कार्य—एक सामान्य परिचय II. भाषा शिक्षण में गृह-
कार्य III. गृह कार्य का स्वरूप नियोजन—1. पठन सम्बन्धी गृह-
कार्य 2. लेखन सम्बन्धी गृह कार्य 3. मौखिक अभिव्यक्ति संबंधी
गृह कार्य 4. श्रवण सम्बन्धी गृह कार्य IV. गृह कार्य के संशोधन,
निरीक्षण तथा मूल्यांकन की विधियाँ ।

अध्याय : 21 परीक्षा तथा मूल्यांकन

374—381

I. सामान्य परिचय II. परीक्षा की परिभाषा III. मूल्यांकन की
परिभाषा IV. भाषा के कौशलों का मूल्यांकन ।

अध्याय : 22 शिक्षण अभ्यास, पाठ योजना तथा उसका मूल्यांकन 382—410

I. शिक्षण अभ्यास क्या है ? II. शिक्षण अभ्यास के उद्देश्य
III. भाषा शिक्षण की पाठ योजना IV. पाठ योजना के अंग V.
शिक्षण अभ्यास के चरण VI. पाठ योजना के संकेत VII. शिक्षण
पर्यवेक्षण तथा मूल्यांकन—1. सेवाकालीन शिक्षकों के शिक्षण
का पर्यवेक्षण (शैक्षणिक पर्यवेक्षण अनुसूची) 2. पूर्व सेवाकालीन
प्रशिक्षणार्थियों के शिक्षण का पर्यवेक्षण (क. निर्देशात्मक पर्यवेक्षण
अनुसूची ख. मानकीकृत पर्यवेक्षण अनुसूची) ।

हरियाणा के वयोवृद्ध संस्कृत विद्वान
पण्डित स्थाणुदत्त शर्मा शास्त्री
(भारत सरकार द्वारा सम्मानित)
को
सादर भेंट

अध्याय 1

भाषा

I. भाषा

संस्कृत वाङ्मय में भाषा का पर्यायवाची शब्द सरस्वती है। सरस्वती ब्रह्मा की एक महत्त्वपूर्ण शक्ति है। उसी शक्ति का प्रयोग मानव समाज 'वैखरी वाक्' के रूप में करता है। इसी का मानवीकरण वाणी की अधिष्ठातृ देवी के रूप में किया जाता है। इसी शक्ति की स्तुति¹ विभिन्न रूपों में की गई है। यही शक्ति स्मृति, ज्ञान तथा बुद्धि में श्रीवृद्धि करने वाली है। यही शक्ति प्रतिभा और कल्पना शक्ति का विकास करती है। यही शक्ति हमारे भ्रमों का निवारण करती है।

ब्रह्मा की प्रेमपात्रा यह शक्ति ब्राह्मी² रूप में समस्त वर्णों की अधिष्ठातृ शक्ति के रूप में प्रकट होती है। यही शक्ति विसर्ग, बिन्दु एवं मात्रा के माध्यम से शब्दों का आश्रय लेकर सुशोभित होती है।

भाषा के उच्चरित तथा लिखित रूप अनादि माने गए हैं। सृष्टि के आरम्भ में भासमान प्रथम ध्वन्यात्मक शब्द 'ॐ' चार वर्णों से निर्मित माना गया है। 'अ'

1. ज्ञानं देहि स्मृतिं विद्यां शक्तिं शिष्यप्रबोधिनीम् ।

ग्रन्थकर्तृत्वशक्तिञ्च सुशिष्यं सुप्रतिष्ठितम् ॥

सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमोनमः ।

विसर्गं बिन्दुमात्रासु-यदधिष्ठानमेव च ॥

तदधिष्ठात्री या देवी तस्यै नित्यै नमोनमः ।

व्याख्यास्वरूपा या देवी व्याख्याधिष्ठातृरूपिणी ॥

भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यै देव्यै नमोनमः ।

स्मृतिशक्तिं ज्ञानशक्तिं बुद्धिशक्तिं स्वरूपिणी ॥

प्रतिभाकल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमोनमः ।

श्रीमद्देवीभागवतं महापुराणम् ॥ 9-5-6-14

2. भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणः प्रिया ।

वाण्याधिष्ठातृदेवी सा तेन वाणी प्रकीर्तिता ॥

श्रीमद्देवीभागवतं महापुराणम् ॥ 9-8-2

ब्रह्म, “उ” विष्णु और “म्” शिव का स्वरूप है। अर्ध मात्रा (चन्द्र बिंदु) साक्षात् भगवती शिवा हैं। संक्षेप में यही भाषा का दार्शनिक पक्ष है।

शरीर में भाषा का मूल निवास हमारा नाभिकुंड है। वाणी पर आने से पूर्व यह परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी आदि प्रक्रियाओं से गुजरती है। वागिन्द्रियों द्वारा उच्चरित यही भाषा मानव भाषा कहलाती है। यहाँ हमारी लक्ष्य भाषा यही मानव भाषा है।

पशु-पक्षी भी अपनी वागिन्द्रियों से ध्वनियों का उच्चारण करते हैं। किन्तु हमारे लिए वे ध्वनियाँ निरर्थक हैं। हमारे अध्ययन का विषय सार्थक ध्वनियों से निर्मित शब्द ही हैं। कुछ लोग सड़कों पर अंकित संकेत चिह्नों, झंडी, टार्च के प्रकाश से दिए गए संकेतों को भी भाषा के अन्तर्गत सम्मिलित करते हैं। इसी प्रकार गुँगी-बहुरों द्वारा प्रयुक्त संकेत भी हमारी सामान्य स्कूलों की भाषा के विषय नहीं हैं।

II. भाषा की परिभाषा

भाषा के उपर्युक्त विवेचन के आधार पर इसे कुछ शब्दों के माध्यम से परिभाषित कर सकना एक कठिन कार्य है। अपने व्यावहारिक कार्य के लिए इसकी कुछ परिभाषाएँ दी जा सकती हैं।

हम कह सकते हैं कि जिस वार्तालाप या लेख के माध्यम से हम अपने विचारों को प्रकट करते हैं, वही भाषा है। अर्थात् भाषा के दो रूप हैं उच्चरित और लिखित। प्रयोक्ता अपने विचारों को प्रकट करने के लिए शब्दों का आश्रय लेता है। ये शब्द भी किन्हीं ध्वनि प्रतीकों से निर्मित हैं। वे ध्वनि प्रतीक सार्थक हैं।

इसी प्रकार लेखन के समय भी हम ध्वनि के प्रतीक चिह्नों का आश्रय लेते हैं। ये ध्वनि प्रतीक भी सार्थक हैं।

संक्षेप में भाषा सार्थक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा इसके प्रयोक्ता या श्रोता आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। विचारों का यह आदान-प्रदान मौखिक या लिखित दोनों ही रूपों में हो सकता है।

III. भाषा की प्रकृति

मानव समाज में जिस भाषा का प्रयोग होता है वह लौकिक भाषा कही जा सकती है। जन मानस द्वारा प्रयुक्त इस भाषा की अपनी प्रकृति, स्वभाव या गुण हैं। इनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं :—

1. भाषा अर्जित सम्पत्ति है

हमारे मन के भावों को प्रकट करने वाली भाषा हमारी जन्मजात बपौती

नहीं है। परम्परावादी कुछ लोग मानते हैं कि पूर्व जन्म की भाषा अगले जन्म में भी काम आती है। आज के वैज्ञानिक युग में यही स्वीकार करना होगा कि भाषा एक सामाजिक निधि है। यह समाज में रहकर स्वाभाविक रूप से सीखी जाती है।

2. भाषा का अर्जन अनुकरण से होता है

यह अनुकरण परिवार, समाज या विद्यालय आदि अभिकरणों के माध्यम से सहजभाव से चलता रहता है। हिन्दी भाषा-भाषी समाज में रहकर कोई अन्य भाषा बिना विशेष प्रयास के नहीं सीखी जा सकती। यदि किसी मनुष्य को सुनने का अवसर नहीं दिया जाए तो वह गूँगा ही रह जाएगा भले ही उसके पास वागिन्द्रियाँ आदि अवयव हों।

3. भाषा परिवर्तनशील है

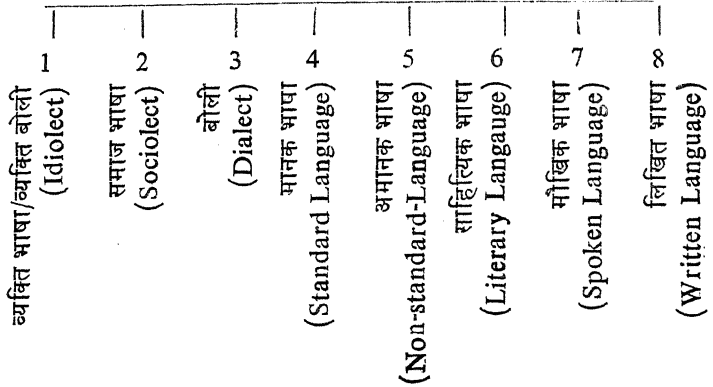
भाषा परिवर्तनशील है। जिस प्रकार वृक्ष पर नए पत्ते आते हैं और पुराने पत्ते गिर जाते हैं उसी प्रकार भाषा के शब्दों का विकास तथा ह्रास होता रहता है। समय की आवश्यकता के अनुसार यह परिवर्तन स्वाभाविक ही है। गत वर्षों में प्रशीतक* (रेफ्रिजरेटर), वातानुकूलक, (एयर कंडीशनर), नलकूप, दूरदर्शन आदि शब्दों का प्रयोग इसके कुछ उदाहरण हैं। इसी प्रकार पुराने समय के अपूप (पूड़ा), स्थाणु (यज्ञ कीलक) आदि शब्द लुप्त प्रायः हैं क्योंकि आज हमारे रहन-सहन तथा खान-पान के ढंग बदल गए हैं। मानव जैसे-जैसे अन्य ग्रहों पर पहुँच रहा है वैसे-वैसे उसे नए शब्दों के निर्माण की आवश्यकता अनुभव हो रही है।

IV. भाषा के अनेक स्वरूप

भाषा के अनेक स्वरूप हैं। भाषा व्यक्तिगत सम्पदा भी है और सामाजिक भी। इसका प्रयोग मौखिक रूप में भी होता है और लिखित रूप में भी। प्रयोग के आधार पर इसके कई स्वरूप हैं। इनकी संक्षिप्त चर्चा नीचे की जा रही है।

*Basic Hindi Vocabulary—Dr. Kaushik. J. N.—pp. 24-26
Lipi Prakashan, I, Darya Ganj; N. Delhi-110002 (1979).

भाषा के अनेक स्वरूप



1. व्यक्ति-भाषा या व्यक्ति बोली (Idiolect)

व्यक्ति-भाषा या व्यक्ति बोली किसी व्यक्ति की निजी बोली होती है जिसके उच्चारण की अपनी विशिष्टता, अनोखापन या विलक्षणता होती है। हर व्यक्ति की बोली किसी न किसी रूप में उसके शारीरिक गठन तथा मानसिक सम्पन्नता से प्रभावित होती है। इस सूक्ष्म भेद के आधार पर किन्हीं दो व्यक्तियों की बोली पूर्णतः समान नहीं होती।

सामान्यतः एक व्यक्ति की एक ही व्यक्ति भाषा होती है किन्तु परिस्थितिवश वह दो व्यक्ति-भाषा भी अपना लेता है। उदाहरण के लिए किसी बालक का जन्म बाँगरू क्षेत्र में हुआ। उसका आरम्भिक लालन-पालन भी बाँगरू क्षेत्र में हुआ। कुछ समय बाद वह किसी शहरी क्षेत्र में चला गया। वहाँ उसने उस शहर की भाषा भी सीख ली। इस शहरी भाषा को बोलने का उसका अपना लहजा रहेगा जो उसकी पहली बोली से प्रभावित रहेगा।

व्यक्ति-भाषा के अध्ययन की ओर अभी हमारा ध्यान कम गया है क्योंकि भाषा अध्ययन का क्षेत्र व्यक्ति न होकर समाज मान लिया जाता है।

2. समाज-भाषा (Sociolect)

व्यक्ति भाषा से समाज भाषा का विकास होता है। व्यक्तियों के समूह से निर्मित भाषा समाज-भाषा का रूप धारण करती है।

उदाहरण के लिए एक समाज या समुदाय के लोग एक गली, मोहल्ले या गाँव में रहकर समान व्यवसाय से जीवन यापन करते हैं। उनका खान-पान, रहन-सहन, सामाजिक स्तर और आर्थिक स्थिति में भी बहुत अन्तर नहीं है। ऐसी परिस्थिति

में एक समाज-भाषा का विकास होता है। इस भाषा की शब्दावली, उच्चारण का लहजा और वाक्य संरचना अलग रूप से पहचानी जा सकती है।

यह समाज-भाषा व्यक्ति-भाषा से बहुत दूर की नहीं होती। यह सभी के लिए बोधगम्य होती है। समाज-भाषा का अध्ययन भी अभी सीमित अर्थों में ही हुआ है। शिक्षा के सार्वजनिकरण होने के बाद इस भाषा के अध्ययन की अधिक आवश्यकता है। आज इस समाज या समुदायों से पहली बार विद्यार्थी विद्यालय की चारदीवारी में आया है। आज इस भाषा का उपहास न उड़ा कर इसे मानक भाषा से जोड़ना अध्यापक का दायित्व है।

3. बोली (Dialect)

जिस प्रकार व्यक्ति-भाषा से समाज-भाषा का निर्माण होता है उसी प्रकार अनेक समाज-भाषाओं के मेल से कुछ विस्तृत भू-भाग की बोली का निर्माण होता है।

अनेक समाज-भाषाएँ जिस समय बोली का रूप धारण करती हैं तो उनकी पारस्परिक बोधगम्यता बनी रहती है। उदाहरण के लिए एक ही गाँव में बसने वाले चर्मकार, बुनकर, लोहार आदि समाजों की बोली में कुछ विशिष्टता होते हुए भी अनेक समानताएँ होती हैं।

बोली सामान्यतः समाज के अभावग्रस्त तथा अशिक्षित परिवारों तक सीमित रहती है क्योंकि आर्थिक स्थिति के कारण इनकी यात्राएँ सीमित होती हैं और शिष्ट समाज से घुलने-मिलने की सम्भावनाएँ कम होती हैं। बोली के सम्बन्ध में विशिष्ट जानकारी भाषा के विभिन्न रूपों की चर्चा करते समय दी गई है।

4. मानक भाषा (Standard Language)

शिष्ट समाज के लोग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न माने जाते हैं। वे अपनी स्कूली शिक्षा के प्रति सचेष्ट रहते हैं। इनकी सामाजिक गतिशीलता भी अधिक होती है। राजकाज से भी इनका सम्पर्क सक्रिय होता है। यह शिष्ट समाज जिस भाषा का प्रयोग करता है वह मानक मानी जाती है।

इस भाषा में एकरूपता होती है। यह व्याकरण-सम्मत होती है। अन्य समाज इसी का अनुगमन करने का प्रयत्न करता है। इसका सीखना और बोलना प्रतिष्ठा का विषय माना जाता है।

5. अमानक भाषा (Non-Standard Language)

अमानक भाषा में मानकता या प्रामाणिकता का अभाव होता है। यह अनेक बोलियों का एक ऐसा सम्मिश्रण होता है जो विचारों के आदान-प्रदान के लिए

बोधगम्य तो है लेकिन व्याकरण सम्मत रूप धारण नहीं कर पाती।

उदाहरण के लिए किसी उद्योग नगर में पहाड़ी, राजस्थानी, बिहारी तथा मध्यप्रदेश का श्रमिक समुदाय झुग्गी-झोंपड़ी बना कर रहता है। दैनिक जीवन-यापन के लिए यहाँ के छोटे-बड़े निवासी आपस में बातचीत करते हैं। अपनी भाषा के प्रति लगाव तथा मानक हिन्दी न बोल सकने की क्षमता के कारण ये जिस भाषा का प्रयोग करेंगे वह मानक भाषा न होकर अमानक भाषा होगी। कालान्तर में विद्वानों के सद्प्रयास द्वारा यही भाषा मानक भाषा का स्वरूप धारण कर सकती है।

6. साहित्यिक भाषा (Literary Language)

एक ओर अनेक समाज-भाषाएँ तथा बोलियाँ मिल कर एक आधारभूत शब्दावली का निर्माण करती हैं तो दूसरी ओर समाज के साहित्यकार, कवि तथा लेखक उसमें उचित मार्जन द्वारा साहित्यिक कृतियों के सर्जन के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं।

साहित्यकारों की कल्पना और उनकी मौली पाठकों को प्रभावित करती है। विद्यालय और विश्वविद्यालयों में साहित्यकारों की कृतियाँ पाठ्यपुस्तक के रूप में स्वीकृत होती हैं। इन पाठ्यपुस्तकों की भाषा-सामग्री को भाषा-सौष्ठव के आधार पर सराहा जाता है। पाठकों पर इसका प्रभाव पड़ता है और वे भी अपने लेखन में उनका अनुगमन करते हैं।

आज गद्य, पद्य, नाटक, जीवनी, संस्मरण, यात्रा-वर्णन आदि के माध्यम से हमें एक सशक्त साहित्य उपलब्ध है। भाषा के विकास और परिमार्जन में साहित्य और साहित्यकारों का असाधारण योगदान रहता है। छन्द-अलंकारों का प्रयोग साहित्यिक भाषा की विशेषता है।

जिस लेखन में अशिष्टता तथा अश्लीलता हो वह साहित्यिक कोटि में नहीं गिना जा सकता। ऐसे लेखन की भाषा भले ही मानक हो वह असाहित्यिक संज्ञा को ही प्राप्त होगा। जिसमें समाज के हित-चिन्तन की कामना हो वही कृति साहित्यिक कोटि में सम्मिलित हो सकती है।

7. मौखिक भाषा (Spoken Language)

भाषा का वास्तविक रूप मौखिक ही है। लिखित भाषा तो प्रतीकों के माध्यम से उन्हीं विचारों को प्रकट करने का एक खोजा हुआ माध्यम है। मौखिक भाषा में वाक्यों की संरचना में उतना खिंचाव नहीं होता जितना लिखित भाषा में होता है। वाक्य में शब्दों का क्रम यदृच्छा पर आश्रित होता है। मौखिक भाषा के विषय में विस्तृत जानकारी मौखिक अभिव्यक्ति के विकास अध्याय में दी गई है।

8. लिखित भाषा (Written Language)

मनुष्य ने अपनी कठिनाई सरल करने के लिए लिपि का आविष्कार किया। लिपिचिह्न सार्थक ध्वनियों के प्रतीक हैं। इन्हीं ध्वनि प्रतीकों के माध्यम से हम अपने विचार लिखित रूप से प्रकट करते हैं। लिखित भाषा मौखिक भाषा का प्रतीकों के माध्यम से प्रकट लिपिबद्ध रूप है।

लिखित भाषा के वाक्य की कसावट चुस्त होती है। शब्दों का चुनाव सजग भाव से किया जाता है। सामान्यतः लिखित भाषा में जटिलता आ जाती है। मौखिक अभिव्यक्ति की सी सरलता नहीं रह पाती। इस विषय में अतिरिक्त जानकारी लेखन के विकास पर चर्चा करते समय दी गई है।

V. भाषा के विविध रूप

आज मनुष्य अपने परिवार तक सीमित नहीं है और न ही उसकी चर्चा हर दिन समान रहती है। उसका सम्पर्क समाज के विभिन्न स्तरों से होता है। उसे पास-दूर की यात्राएँ भी करनी पड़ती हैं। ऐसे ही कुछ कारणों से भाषा में विविधता पाई जाती है। नीचे भाषा के कुछ इन्हीं विविध रूपों की चर्चा की गई है।

भाषा के विविध रूप

1	2	3	4	5	6	7
मूल भाषा—	मातृ भाषा—	बोली—	प्रादेशिक भाषा—	राज भाषा—	सांस्कृतिक भाषा—	अन्तर्राष्ट्रीय भाषा—
मूल	मातृ		प्रादेशिक	राज	सांस्कृतिक	अन्तर्राष्ट्रीय

1. मूल भाषा

कुछ भाषा शास्त्रियों का विश्वास है कि सारा विश्व एक ही कुटुम्ब या कुल का विस्तार है। आदि मानव किसी एक ही स्थान पर रहता होगा। भौगोलिक परिवर्तनों के कारण जीवनयापन के लिए उसी परिवार के सदस्य विश्व के विभिन्न भागों में जा बसे। पहले मूल परिवार की भाषा वे अपने साथ ले गए। किन्तु स्थान और काल भेद से उसी मूल भाषा में अनेक प्रकार के परिवर्तन आ गए।

इस आशय को स्पष्ट करते हुए इन भाषा-विशारदों का कहना है कि परिवार के सदस्यों का नाम, गिनती, शरीर के अवयवों के नाम आदि से सम्बन्धित शब्दावली सामान्य ध्वनिभेद के साथ अनेक भाषाओं में प्रयुक्त होती हैं। यथा—

मातृ—मदर, मातेर—माँ।

भ्रातृ—बरेदर—बिरादर—भाई।

पितृ—फ़ादर—पिदर—पिता।

एक—एस (Ace)।

द्वि—दू—दो।

सप्तम्—सेवन—हफ़ता—सात।

पद—फ़ुट—पैर।

हस्त—हैंड—दस्त—हाथ आदि।

किसी एक ही मूल भाषा को विश्व की भाषाओं की जननी मानने वाले विद्वानों के तर्कों में काफ़ी सार है। इस दिशा में अभी बहुत काम करने की संभावनाएँ हैं।

2. मातृभाषा

माँ की गोद में रहकर जिस भाषा को हम स्वाभाविक रूप से सीखते हैं वह हमारी मातृभाषा कहलाती है। मनुष्य को जिस प्रकार वायु और जल सहज रूप में सुलभ हैं उसी प्रकार अपने समाज के वातावरण में मातृभाषा भी सहज रूप से सुलभ होती है। इसके सहज रूप को सीखने के लिए शिक्षक की आवश्यकता नहीं है। आरम्भिक अवस्था में घरेलू शिक्षा बालक की इसी भाषा में होती है। ज्ञान प्राप्ति का यह सरलतम माध्यम है। किसी व्यक्ति की मातृभाषा प्रादेशिक भाषा या राष्ट्र भाषा भी हो सकती है।

3. बोली

बोली किसी सीमित क्षेत्र या सीमित जन समुदाय की भाषा को कहते हैं। यह किसी भाषा की उप-भाषा या उप-भाषा का भी एक अंग-उपांग होती है। इसकी शब्दावली सीमित और व्याकरणिक रूप, उच्चारण, लिंग, वचन और वाक्य गठन आदि मानकभाषा के समान सुस्थिर नहीं होते। इसका अपना लिखित साहित्य नहीं होता और न ही अपनी लिपि। इसे राज्य का आशीर्वाद प्राप्त नहीं होता। केवल जनमानस तक वांछित प्रचार संदेश पहुँचाने के लिए यदाकदा इसका आश्रय लिया जाता है। बोली को साहित्यिक भाषा के समान मंच पर सम्मानित स्थान प्राप्त नहीं होता। आज हिन्दी की अनेक बोलियाँ तेज़ गति से विलुप्त हो रही हैं। भारत में इस समय लगभग 1650 बोलियाँ हैं। यदि इन बोलियों की शब्दावली

का प्रयोग उस क्षेत्र की मानक भाषा या हिन्दी-संस्कृत शिक्षण के लिए किया जाए तो लक्ष्य भाषा को सीखने में सुगमता रहती है। जैसे हरियाणवी में तिस, पिस, खुध्या आदि शब्द तृषा, पिपासा, क्षुध्या के विकृत रूप हैं। यदि अध्यापक जागरूक होकर पढ़ाए तो बोली की उपेक्षित शब्दावली सोने में सुहागे का काम कर सकती है।

4. प्रादेशिक भाषा

प्रादेशिक भाषा किसी प्रदेश या प्रान्त के विस्तृत भू-भाग के बहुसंख्यक लोगों की भाषा होती है। यह उस प्रदेश विशेष की उप-बोलियों का प्रतिनिधित्व करती है। इस भाषा को उस प्रान्त के अधिकांश लोग समझते हैं। इसकी सामान्यतः अपनी लिपि और साहित्य भी होता है। इस भाषा को उस राज्य का आशीर्वाद भी प्राप्त होता है। इसके साहित्य की विभिन्न विधाओं को समृद्ध करने के लिए सरकार की ओर से योजनाबद्ध प्रयास भी होते हैं। आजकल तो विभिन्न राज्यों में प्रादेशिक भाषा विशेष के विकास के लिए साहित्य अकादमियों की स्थापना हो गई है।

1956 में राज्य पुनर्गठन आयोग द्वारा गठित भाषावार राज्यों की स्थापना से प्रादेशिक भाषाओं का बहुत विकास हुआ है। विश्वविद्यालय तक की शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषाएँ हो गई हैं। इन प्रादेशिक भाषाओं को संघ लोकसेवा आयोग ने अपनी परीक्षाओं के लिए अनुमति दे दी है। राज्यों में योजनाबद्ध विधि से मानकीकृत शब्दावली का निर्माण कराया जा रहा है। तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था प्रादेशिक भाषा के माध्यम से हो चुकी है।

भारतीय संविधान में प्रादेशिक भाषाओं को सम्मानजनक स्थान प्राप्त है। संविधान की अष्टम अनुसूची में निम्नलिखित भाषाएँ अंकित हैं। 1. असमिया 2. उड़िया 3. उर्दू 4. कन्नड़ 5. कश्मीरी 6. गुजराती 7. तमिल 8. तेलुगु 9. पंजाबी 10. बंगला 11. मराठी 12. मलयालम 13. संस्कृत 14. सिन्धी 15. हिन्दी।

प्रत्येक राज्य अपने राजकीय प्रयोजनों में किसी एक या अनेक या हिन्दी को अंगीकार कर सकता है। राजस्थान, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश तथा बिहार हिन्दी का प्रयोग प्रादेशिक भाषा के रूप में करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ प्रदेशों में उर्दू को द्वितीय प्रादेशिक भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है।

भाषायी अल्प संख्यकों के बच्चों की शिक्षा के लिए प्रत्येक प्रदेश में विशेष संरक्षण प्राप्त है। उनके लिए प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा देने के लिए पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था है।

आगे दी गई तालिका में भारतीय साहित्यिक भाषाएँ दी गई हैं।

तालिका-I

एन० सी० ई० आर० टी० द्वारा सम्पन्न तृतीय अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण (1973)* के अनुसार आधुनिक भारतीय साहित्यिक भाषाएँ ।

क्रम	भाषा	स्थान	बोलने वालों की संख्या	विवरण/टिप्पणी
1.	अंगमी	नागालैंड	42,361	नवोदित साहित्यिक भाषा
2.	असमिया	आसाम, मेघालय, अंदमान तथा निकोबार- द्वीप समूह	8,958,977	आसाम की राज भाषा
3.	बंगाली	पश्चिमी बंगाल तथा उड़ीसा, मणिपुर, त्रिपुरा आदि के कुछ क्षेत्र	44,792,712	पश्चिमी बंगाल की राज भाषा
4.	भोजपुरी	बिहार, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्र	26,518,572	नवोदित साहित्यिक भाषा तथा हिन्दी की एक बोली
5.	डोगरी	जम्मू-कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश, पंजाब आदि के कुछ क्षेत्र	1,129,503	नवोदित साहित्यिक भाषा
6.	अंग्रेजी			नागालैंड की राजकीय तथा भारत की सह राज भाषा
7.	गारो	आसाम, नागालैंड, मेघालय, त्रिपुरा	452,407	नवोदित साहित्यिक भाषा
8.	गुजराती	गुजरात, महाराष्ट्र आदि के कुछ क्षेत्र	25,875,252	गुजरात की राज भाषा

9.	हिन्दी	सभी राज्य तथा केन्द्र शासित प्रदेश	162,577,612	बिहार, चंडीगढ़, दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा केन्द्र की राज भाषा
10.	हिन्दुस्तानी	—	—	हिन्दी-उर्दू मिश्रित शैली
11.	हमर	आसाम, मणिपुर	40,129	नवोदित साहित्यिक भाषा
12.	काबुइ	मणिपुर	11,434	नवोदित साहित्यिक भाषा
13.	कन्नड़	तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश	21,707,918	कर्नाटक की राज भाषा
		आदि के क्षेत्र		
14.	कश्मीरी	जम्मू-कश्मीर	2,438,360	साहित्यिक भाषा
15.	खासी	आसाम, मणिपुर, मेघालय, त्रिपुरा	519,194	नवोदित भाषा (साहित्यिक)
16.	कोंकणी	दादरा व नागर हवेली, गुजरात, केरल, गोवा आदि के क्षेत्र	544,760	साहित्यिक भाषा
17.	कुकी	आसाम, मणिपुर, नागालैंड, त्रिपुरा	64,627	नवोदित साहित्यिक भाषा
18.	लुशाई/मिजो	अरुणाचल, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा	255,060	नवोदित साहित्यिक भाषा
19.	मगही	बिहार	8,683,146	नवोदित साहित्यिक भाषा
20.	मैथिली	बिहार	5,663,188	साहित्यिक भाषा

*Third All India Educational Survey
NCERT., New Delhi; 1981, PP. 23-24.

क्रम	भाषा	स्थान	बोलने वालों की संख्या	विवरण/टिप्पणी
21.	मलयालम	कर्नाटक, केरल, लक्षद्वीप, पांडिचेरी तमिलनाडु आदि	21,938,231	केरल की राज भाषा
22.	मणिपुरी	आसाम, मणिपुर, त्रिपुरा	774,135	साहित्यिक भाषा
23.	मराठी	महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात, तमिलनाडु चंडीगढ़ आदि के कुछ क्षेत्र	42,251,207	महाराष्ट्र की राज भाषा
24.	उड़िया	उड़ीसा, त्रिपुरा, पश्चिमी बंगाल, आसाम, बिहार आदि के कुछ क्षेत्र	19,855,450	उड़ीसा की राज भाषा
25.	पैते	मणिपुर	21,770	नवोदित साहित्यिक भाषा
26.	पंजाबी	पंजाब, चंडीगढ़, हरियाणा, हिमालच प्रदेश, राजस्थान, जम्मू-कश्मीर आदि के क्षेत्र	16,449,573	पंजाब की राज भाषा
27.	राजस्थानी	राजस्थान, मध्य प्रदेश	1,706,680	साहित्यिक भाषा
28.	संथाली	आसाम, बिहार, त्रिपुरा	3,308,018	नवोदित साहित्यिक भाषा
29.	सिन्धी	राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र के कुछ क्षेत्र	1,676,728	साहित्यिक भाषा

30.	तमिल	तमिलनाडु, मणिपुर, पाडिचेरी, केरल, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश आदि के कुछ क्षेत्र	37,690,620	तमिलनाडु की राज भाषा
31.	तांगरबुल	मणिपुर	60,796	नवोदित साहित्यिक भाषा
32.	तेलुगु	आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, उड़ीसा, चंडीगढ़ आदि के कुछ क्षेत्र	44,752,926	आंध्र प्रदेश की राज भाषा
33.	उर्दू	जम्मू-कश्मीर, बिहार, उत्तर प्रदेश आदि	28,607,854	जम्मू-कश्मीर की राज भाषा
34.	जोड़	मणिपुर	7,936	नवोदित साहित्यिक भाषा

5. राज भाषा

राज भाषा वह भाषा है जिसका प्रयोग केन्द्रीय सरकार अपने कार्य व्यापार तथा अन्य प्रदेशों के साथ सरकारी कामकाज या पत्र व्यवहार के लिए करती है। यह भाषा देश के बहुसंख्यकों की भाषा होती है। देश के अन्य प्रान्तों के लोग इसे सामान्य रूप से समझते हैं।

संविधान के अनुसार भारतीय संघ-राज्य की राज भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी है। स्वतन्त्रता के बाद राज भाषा परिवर्तन की दृष्टि से यह निश्चय किया गया था कि संविधान लागू होने के 15 वर्ष तक अंग्रेजी का प्रयोग भी हिन्दी के साथ-साथ होता रहेगा। कुछ राजनीतिक कारणों से दुश्ने से भी अधिक समय बीत जाने के बाद भी अंग्रेजी का प्रयोग हिन्दी के साथ-साथ चल रहा है।

केन्द्रीय सरकार का यह संवैधानिक दायित्व¹ है कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार करे, उसका समुचित विकास करे ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

6. सांस्कृतिक भाषा

हर सभ्य और शिष्ट जाति या देश की अपनी संस्कृति होती है। संस्कृति में उस समुदाय की आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत, प्रकृति, जीवन-मरण आदि के विषय में धारणाएँ निहित होती हैं। आचार-व्यवहार, लोकाचार आदि के विषय में सर्वसामान्य रूप से निश्चित मत संस्कृति का ही अंग माना जाता है।

इस संस्कृति के संरक्षण, परिवर्धन, परिशोधन आदि के लिए कोई न कोई भाषा होती है। यह भाषा सामान्यतया जन साधारण की भाषा से अधिक उदात्त होती है। जन-समुदाय इसको श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। यह भाषा कुछ लोगों की समझ से परे होते हुए भी साधारण व्यक्ति इससे लगाव रखता है क्योंकि यह उनके पूर्वजों की भाषा है। सरकार भी इस भाषा के संरक्षण और पठन-पाठन का विशेष प्रबन्ध करती है। इस भाषा के बिना जाति, समाज या देश के खंडित होने की संभावना बनी रहती है। यह भाषा जन संस्कारों को सूत्रबद्ध करती है और उन्हें सातत्य प्रदान करती है।

उदाहरण के लिए संस्कृत भारत की सांस्कृतिक भाषा है। हिन्दू जाति के

1. भारत का संविधान (हिन्दी संस्करण) अध्याय 4—351 पृ० 190.

सभी संस्कार इसी भाषा के माध्यम से सम्पन्न होते हैं। यही भाषा अन्य भारतीय भाषाओं की जननी मानी जाती है। इसे हर भारतीय सम्मान की दृष्टि से देखता है।

7. अन्तर्राष्ट्रीय भाषा

विश्व के विभिन्न देश आपसी काम-काज, व्यापारिक आवश्यकताओं तथा सरकारी पत्र व्यवहार के लिए जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वह अन्तर्राष्ट्रीय भाषा कहलाती है। यही भाषा राष्ट्रों को एक दूसरे के निकट लाने में कड़ी का काम देती है। विश्व के विभिन्न देशों का आपसी सम्बन्ध बहुत पुराना है। ग्रीक, लैटिन, हिब्रू, अंग्रेजी, अरबी, फ़ारसी आदि भाषाओं में संस्कृत शब्दावली की विद्यमानता इस बात का द्योतक है कि जिस समय भारत राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध था उस समय संस्कृत भाषा ही अन्तर्राष्ट्रीय भाषा रही होगी।

आज कल अंग्रेजी एक देश विशेष की भाषा होते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में मानी जाती है। विदेशों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए इस भाषा की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। आजकल हिन्दी को भी संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्यता प्राप्त भाषा बनाने के प्रयत्न हो रहे हैं। विदेशों में हिन्दी का प्रचार हो रहा है। वह भी दिन आएगा जब हिन्दी को भी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का सम्मान प्राप्त होगा।

VI. भाषा का महत्त्व

भाषा व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास के लिए संजीवनी है। इस प्रकाश-स्रोत के अभाव में सर्वत्र अज्ञान और अंधकार है। सद्-असद्, करणीय-अकरणीय, गमनीय-अगमनीय का बोध भाषा ही कराती है। यदि भाषा न होती तो इसके निर्माता, निर्माता की प्रकृति, समाज का संवर्धन करने वाली संस्कृति का क्या होता? भाषा के महत्त्व को समझने के लिए नीचे इन्हीं बिन्दुओं पर विचार किया जा रहा है।

1. भाषा और व्यक्ति

भाषा व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व के विकास का महत्त्वपूर्ण कारण है। व्यक्ति अपने अन्तस् को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करना चाहता है। इसी अभिव्यक्ति के साथ उसके अन्दर छिपी अनंत शक्ति अभिव्यक्त होती है। जिसकी अभिव्यक्ति जितनी स्पष्ट होगी उसके व्यक्तित्व का विकास भी उतना प्रभावशाली ढंग से होगा। जिसके मन में कुढ़न होगी, कुंठाएँ होंगी उसका विकास अवरुद्ध हो

जाएगा। यही कारण है कि मुखर व्यक्तित्व का व्यक्ति अधिक आदर का पात्र बनता है।

भाषा के माध्यम से व्यक्ति बाह्य जगत का ज्ञान प्राप्त करता है। मूक और बधिर व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास इस लिए संभव नहीं है कि वह भाषा-सी अलौकिक देन से वंचित रह जाता है।

2. भाषा और समाज

समाज एक ऐसी अजस्रधारा है जो भाषा रूपी जल का आश्रय पाकर अपने लाखों वर्षों के अनुभवों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी अग्रसर करती रहती है। भाषा के माध्यम से समाज के दैनिक व्यापार ही सम्पन्न नहीं होते अपितु संस्कृति भी अमर रहती है। जीव-जगत, आत्मा-परमात्मा, लोक-परलोक, प्रकृति-पुरुष आदि के विषय में निर्धारित धारणाएँ आज भी भाषा के माध्यम से हमारे पास संचित हैं।

यदि भाषा न होती तो हमें एकता के सूत्र में कौन पिरोता? यह भाषा का ही प्रताप है कि विभिन्न जातियों, धर्मों, क्षेत्रों के लोग आपस में मिल-जुल कर रहते हैं।

3. भाषा और राष्ट्र

आज राष्ट्र और राष्ट्र की विभेदक रेखा भाषा ही है। राष्ट्र के विस्तृत भू-भाग के शासन का संचालन भाषा के माध्यम से होता है। हमारा संस्कृत और हिन्दी के प्रति लगाव देश को एकसूत्रता में बाँधे रखने का महत्त्वपूर्ण कारण है।

राष्ट्र और राष्ट्र के बीच विचार-विनिमय, व्यापार, सांस्कृतिक आदान-प्रदान का साधन भी कोई न कोई भाषा ही बनती है। यदि ऐसी भाषाएँ न होतीं तो विभिन्न राष्ट्रों के महापुरुषों की विचारधारा राष्ट्र विशेष तक सीमित होकर रह जाती। विश्व राष्ट्र, विश्व-सेना, विश्व-शान्ति स्थापना की कल्पना कौन करता?

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भाषा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को प्राप्त एक अमोघ वरदान है जिसका हमें सद उपयोग करना चाहिए।

VII. भाषा शिक्षण के उद्देश्य

कुछ एक स्वाभाविक प्रश्न हैं—भाषा शिक्षण का उद्देश्य क्या है? जब भाषा हमें हवा-पानी की तरह स्वाभाविक रूप से प्राप्त है तो क्या इसे प्रयत्नपूर्वक सीखने और सिखाने की आवश्यकता है? सुनियोजित ढंग से भाषा सीखने और सिखाने का हम पर क्या प्रभाव पड़ेगा? इन सभी स्वाभाविक प्रश्नों का आपस में गहरा सम्बन्ध है। भाषा शिक्षक के लिए इनका उत्तर पाना आवश्यक है।

1. वर्तमान और भविष्य को सुखद बनाने के लिए

वर्तमान और भविष्य को सुखद बनाने के लिए भाषा का नियोजित ज्ञान देना आवश्यक है। भाषा का उद्देश्य जहाँ वर्तमान से सामंजस्य करना सिखाना है वहाँ दूसरी ओर भावी जीवन के लिए तैयार भी करना है। मानव जीवन में सामंजस्य लाने के लिए विविध परिस्थितियों से परिचित होने की आवश्यकता है। इसके लिए बोलने, सुनने, लिखने तथा पढ़ने जैसे महत्वपूर्ण भाषायी कौशलों का ज्ञान आवश्यक है।

स्वयं को अभिव्यक्त करने के प्रमुख साधन बोलना और लिखना हैं। परिणामतः भाषा शिक्षण के ये दोनों ही प्रमुख उद्देश्य बन जाते हैं। बोलना और लिखना ये दोनों ही कौशल अभ्यास से सीखे जा सकते हैं। भाषा शिक्षण में इन दोनों के अभ्यास पर विशेष बल रहता है। बातचीत, भाषण, वाद-विवाद प्रतियोगिता, अभिनय आदि के माध्यम से बच्चे में बोलने की शक्ति का विकास कराया जाता है। लिपि का ज्ञान, लेखन, क्रियात्मक लेखन उसे लेखन संबंधी कौशल के विकास के अवसर प्रदान करते हैं। मौखिक अभिव्यक्ति में प्रभावोत्पादकता तथा लेखन की सशक्तता भाषा शिक्षण द्वारा ही सम्भव है। यही कारण है कि इन्हें भाषा शिक्षण के उद्देश्यों में सम्मिलित किया जाता है।

इसी प्रकार सुनना और पढ़ना ज्ञान प्राप्ति के महत्वपूर्ण साधन हैं। धैर्यपूर्वक सुनकर भाव ग्रहण करना तथा पढ़कर ज्ञान प्राप्त करना वर्तमान और भविष्य के लिए आवश्यक सीढ़ियाँ हैं। भाषा शिक्षण के माध्यम से इन कौशलों के विकास के अनेक अवसर दिए जाते हैं। ध्यानपूर्वक सुनना, धैर्य के साथ सुनना, सुनकर भाव ग्रहण करना, उसके सार को समझ लेना आदि ऐसी प्रक्रियाएँ हैं जिनके सतत अभ्यास की आवश्यकता है। विद्यालय ऐसे माध्यम हैं जो इन कौशलों का अभ्यास नियोजित विधि से कराकर बालक के वर्तमान और भविष्य को सँवारते हैं।

2. भाषा का मानक रूप सिखाने के लिए

स्थानीय बोलियों और विभिन्न भाषाओं में विविधता होती है। भाषा शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य किसी मानक भाषा के मानक रूप को सिखाना है। मानक रूप में भाषा का उच्चारण, शब्दावली, वाक्य विन्यास तथा रूप, लिंग, वचन, काल आदि विभिन्न अवयव सम्मिलित हैं। भाषा शिक्षण के माध्यम से इन्हीं लक्ष्यों की पूर्ति की ओर भाषा सीखने वाले को ले जाया जाता है। विभिन्न माध्यमों से इन तत्त्वों का अभ्यास कराया जाता है।

3. साहित्य और कला से परिचित कराने के लिए

प्रत्येक भाषा में साहित्यिक और कलागत विविधताएँ होती हैं। साहित्य तथा

पद्य साहित्य के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इसी प्रकार कहानी, निबन्ध, जीवनी, आत्म-कथा, संस्मरण, पत्र लेखन, नाटक, उपन्यास आदि साहित्य की कुछ महत्त्वपूर्ण विधाएँ हैं। भाषा शिक्षण के माध्यम से इन विधाओं का परिचय विद्यार्थियों को दिया जाता है।

इसी प्रकार छन्द और अलंकार भाषा के कलापक्ष को निखारते हैं। ये भाषा में एक नए रक्त का संचार करते हैं। भाषा शिक्षण इन महत्त्वपूर्ण अवयवों की ओर विद्यार्थी का ध्यान आकर्षित करता है। सुनने और पढ़ने के विविध अवसरों से इस पक्ष की सराहना करने तथा बोलने और लिखने के माध्यम से इनका प्रयोग करने के अवसर मिलते हैं।

4. जीविका उपार्जन के लिए

जीविका उपार्जन मानव की आधारभूत आवश्यकताओं में से है। साधारण श्रमिक से लेकर उच्च पदों तक की सफलता के लिए भाषा कौशल की आवश्यकता है। तकनीकी युग में साधारण श्रमिक को देश-विदेश के कितने शब्द दैनिक व्यवहार में लाने पड़ते हैं। भाषा की कुशलता उसे अपने व्यवसाय की आधारभूत शब्दावली को सञ्ज्ञने में सहायक होती है। कार्यालयों में काम-काज करने वाले बाबुओं को टाइप, आशुलिपि, टिप्पण आदि में भाषा का कुशल प्रयोग ही सहायक होता है। अध्यापन व्यवसाय में भाषा की निपुणता ही विद्यार्थियों के व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। जीवन का कोई भी ऐसा कार्यक्षेत्र नहीं जहाँ भाषा जीविका-उपार्जन में सहायक न होती हो।

VIII. मातृभाषा का महत्त्व

मातृ-भाषा बालक की लोरी की भाषा है। यह सहज ज्ञानार्जन की भाषा है। यह उसके स्वप्न की भाषा है। यह सुख-दुख को अनुभव करने और उसे प्रकट करने की सहज प्रक्रिया है। बालक इसकी ध्वनियों को गोद में दूध पीते-पीते सहज भाव से आत्मसात् करता है। यही ध्वनियाँ अस्पष्ट से स्पष्ट होती जाती हैं और शब्द के रूप में बोधगम्य होकर संकल्पनाओं को ग्रहण करने का सशक्त माध्यम बनती जाती हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में मातृभाषा का महत्त्व अद्वितीय है। विश्व के सभी प्रबुद्ध शिक्षाशास्त्री इस बात पर सहमत हैं कि बालक की शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से होनी चाहिए। इस महत्त्व की स्थापना निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट की जा सकती है।

1. शारीरिक विकासक्रम और मातृभाषा

छोटी आयु में बालक का शारीरिक विकास महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसके

स्वाभाविक विकास में बाधा होने से जीवन की नींव डगमगा जाएगी। यदि बालक मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करेगा तो उसके शारीरिक अवयवों पर अतिरिक्त बोझ नहीं पड़ेगा। सुनने, बोलने, लिखने, पढ़ने आदि से सम्बन्धित सभी इंद्रियों का विकास ठीक होगा। मातृभाषा से न मस्तिष्क पर अधिक तनाव पड़ेगा और न ही हृदय में भय।

इसके अतिरिक्त यदि शिक्षा अन्य भाषा के माध्यम से दी जाएगी तो मानसिक तनाव बढ़ेगा। बच्चा सभी अनुभवों को आसपास के वातावरण से ग्रहण करता है। ये अनुभव यदि अन्य भाषा के माध्यम से दिए जाएँगे तो उसमें सुस्पष्टता और स्थिरता नहीं आएगी। मन और हृदय पर सदा एक बोझ सा बना रहेगा। परिणामस्वरूप बच्चे के स्वाभाविक शारीरिक विकास पर इसका दुष्प्रभाव पड़ेगा।

2. मानसिक विकास और मातृभाषा

ध्वनि ग्रहण, अर्थ या भाव ग्रहण, चिंतन-मनन, विश्लेषण, संश्लेषण, प्रतिक्रिया अभिव्यक्ति, निर्णय लेने की शक्ति आदि ऐसी मानसिक क्रियाएँ हैं जो स्वस्थ मस्तिष्क द्वारा ही सम्भव हैं। ये मानसिक क्रियाएँ आरम्भिक अवस्था में अपना कार्य शुरू कर देती हैं। परन्तु यह तभी सम्भव है जब इन पर अतिरिक्त दबाव न पड़े। मातृभाषा बालक के आरम्भिक चिन्तन, मनन, भावग्रहण आदि की भाषा है। यदि मातृभाषा के माध्यम से बच्चे को शिक्षा दी जाएगी तो मस्तिष्क की इन क्रियाओं को तीव्र होने का अवसर मिलेगा।

दूसरी ओर अन्य भाषा के प्रभाव से ये क्रियाएँ कंठित होने लगेंगी। बालक की स्मरण शक्ति पर अतिरिक्त बोझ पड़ेगा और भावी जीवन में स्वतन्त्र निर्णय लेने जैसी शक्ति का उसमें अभाव रहेगा। उसकी बुद्धि मन्द पड़ जाएगी जिसका जीवन के हर पहलू पर दुष्प्रभाव पड़ेगा।

3. सहज ज्ञानार्जन और मातृभाषा

भाषा ज्ञानार्जन का महत्वपूर्ण साधन है। मातृभाषा के माध्यम से प्राप्त ज्ञान सहज, स्वाभाविक और स्पष्ट होता है। बालक परिवार के सदस्यों की गोद में अनेक शब्द विभिन्न सन्दर्भों में सुनता है। उन शब्दों की संकल्पना उसके मस्तिष्क में स्वाभाविक रूप से स्पष्ट होती रहती है। उसे इन शब्दों को रटना नहीं पड़ता। शब्द के अर्थ से जुड़ी विविध आयामी संकल्पना अपनी गहराइयों तक पहुँचती रहती है।

उदाहरण के लिए बालक “संकल्प” शब्द को अपने वातावरण में सुनता है। अनेक अवसरों पर माता-पिता को अंजलि में जल धारण किए देखता है। उसके

मस्तिष्क में यह धारणा बन जाती है कि संकल्प एक पवित्र सौगन्ध है। इस सौगन्ध का सम्बन्ध व्यक्तिगत भी है और सामाजिक भी। संकल्प को तोड़ना पाप है। इसके अतिरिक्त यदि बालक इसी शब्द को 'रिजोल्व' आदि के रूप में सुनेगा तो वह एक कित्ताबी शब्द बनकर रह जाएगा, उसके सहज ज्ञान का अंग नहीं बनेगा।

हम सामान्यतः देखते हैं कि अन्य भाषा के माध्यम से प्राप्त ज्ञान बार-बार रटना पड़ता है, उसका उद्देश्य परीक्षा देने तक सीमित रहता है। उसकी संकल्पना स्पष्ट नहीं हो पाती। इसी आधार पर महात्मा गांधी, रवीन्द्र नाथ टैगोर आदि शिक्षा शास्त्रियों ने मातृभाषा के माध्यम से ज्ञानार्जन पर बल दिया है।

4. सामाजिक-सांस्कृतिक विकास और मातृभाषा

माँ की गोद में आते ही बालक को एक सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश प्राप्त होता है। माता-पिता भाई-बहन, चाचा-चाची, दादा-दादी, नाना-नानी उसके सामाजिक परिवेश के अंग बनते हैं। यह परिवेश बढ़कर पास-पड़ोस और फिर क्रमशः विस्तृत होता जाता है। इसी प्रकार बालक के नामकरण, अन्न प्राशन, आदि संस्कार सांस्कृतिक परिवेश के अंग बनते हैं। बालक इन संस्कारों का भागीदार बनता है। इस परिवेश से सम्बन्धित शब्दावली और भावना को सुनता और समझता है। वह धीरे-धीरे इस परिवेश में समरस हो जाता है।

यदि उसको इस स्वाभाविक परिवेश से काट दिया जाए और एक बनावटी परिवेश में रखा जाए तो उसका उचित सामाजिक और सांस्कृतिक विकास नहीं हो पाएगा। वह न अपने मूल परिवेश का रहेगा और न ही दूसरे परिवेश से उसकी समरसता बन पाएगी। उसके मन में ऐसे उद्वेग उत्पन्न होंगे कि उसका व्यक्तित्व ही कुंठित होने लगेगा।

अतः बालक में उचित सामाजिक विकास के लिए मातृभाषा का वातावरण अनिवार्य है। मम्मी, डैडी, अंकिल, आंटी, गॉड आदि शब्दों में वह पवित्रता नहीं उभरेगी जो माता-पिता, चाचा-चाची, ईश्वर आदि शब्दों में है। "रथ" का अनुवाद जिस समय 'कार' किया जाता है तो दोनों की संकल्पनाओं में रात-दिन का अन्तर है। श्री रामचन्द्र रथ में बैठकर गए और कार में बैठ कर गए दोनों भावों में कितना भेद है, दूसरे भाव में कितनी विकृति है। स्पष्ट है अन्य भाषा अन्य समाज है और स्वभाषा स्वसमाज।

5. जनतन्त्र और मातृभाषा

स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय देश के नेताओं ने अनुभव कर लिया था कि शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा होने के कारण भारतीय चिंतन कुंठित हो गया है। राष्ट्र का व्यक्तित्व बौना हो गया है और जनमानस में दासता को ग्रहण करने की

अनुकूलता बढ़ी है। एनीबेसंट जैसी विदुषी महिलाओं ने अपनी आवाज़ से इस बात को उभारा। देश के नेताओं ने निर्णय किया कि भारत के स्वतन्त्र होते ही शिक्षा का माध्यम मातृभाषा किया जाएगा। आज़ादी के बाद 1956 ई० में देश के प्रांतों का भाषा के आधार पर पुनर्गठन इसी भावना का परिणाम था। इस पुनर्गठन का हम कितना लाभ उठा पाए हैं यह एक अलग प्रश्न है।

प्रजातांत्रिक प्रणाली को सफल बनाने के लिए आवश्यक है कि उसका हर नागरिक साक्षर हो। साक्षरता का लक्ष्य मातृभाषा की शिक्षा द्वारा सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है। इक्कीसवीं सदी में यदि देश का कोई व्यक्ति निरक्षर होगा तो यह देश के लिए अपमानजनक स्थिति होगी।

6. चरित्र निर्माण, नैतिकता और मातृभाषा

किसी भी भाषा की शब्दावली मात्र शब्द नहीं होते। उन शब्दों के माध्यम से उस समाज का दर्शन भासित होता है। यह प्रभाव किसी भाषा की वर्णमाला सीखते समय ही पड़ने लगता है। अंग्रेज़ी भाषा की वर्णमाला पढ़ते समय बच्चों को अण्डा, मुर्गी, सूअर, कुत्ता, गीदड़ आदि शब्द सुनने पड़ते हैं। अपनी रक्षा के लिए दूसरे का विनाश कहानियों के विषय रहते हैं। वहाँ दुष्ट को मारने, अपनी आत्मा का विस्तार करके प्राणियों को देखने, सभी के कल्याण की कामना करने आदि के भाव साहित्य में विरले ही मिलेंगे। नारी के प्रति पवित्र भावना, उसका उदात्त व्यक्तित्व आदि न मिलकर तलाक़ आदि की बातें अधिक मिलेंगी। ऐसे साहित्य के बाल्यावस्था से ही पठन-पाठन से भारतीय नैतिक और जीवन मूल्यों का विकास बालक में होना कठिन है। ऐसे साहित्य से बालक के व्यक्तित्व में विभाजन की संभावना बढ़ती है और चरित्र निर्माण में बाधा उत्पन्न होती है।

7. सृजनात्मक प्रतिभा और मातृभाषा

हम अपना चिन्तन मनन मूलतः अपनी मातृभाषा में ही करते हैं। जिस व्यक्ति में चिन्तन मनन की शक्ति जाग्रत हो जाती है वही कल्पना की सृष्टि का निर्माण कर सकता है। मौलिक कल्पना को मूर्त रूप देना ही सृजनात्मकता की पहली सीढ़ी है। जो बच्चे विदेशी भाषा में अपने विचार अभिव्यक्त करते हैं उनमें कोई न कोई भाषा सम्बन्धी कठिनाई अवश्य आड़े आती है। वह उसके उड़ान भरने वाले परों को काटती है और वह फड़फड़ाकर पुनः हताश अवस्था में भूमि पर लुढ़क जाता है। मातृभाषा का ज्ञान उसके स्वच्छ आकाश में उड़ने में साधक बनता है। यही कारण है कि स्वाभिमानी देश बालक की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध उसकी मातृभाषा में करता है।

8. सौन्दर्य अनुभूति और मातृभाषा

अपनी भाषा सभी को मीठी लगती है। उसका छन्द विधान, अलंकार योजना, उपमा, रूपक, आदि भोगे हुए जीवन के अत्यन्त समीप होते हैं। अतः इस साहित्य के अध्ययन से जो सौन्दर्य अनुभूति और रसानुभूति होती है वह बहुत ही स्वाभाविक होती है। व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए इन अनुभूतियों का विकास करना आवश्यक है अन्यथा मनुष्य के व्यक्तित्व के किसी कोने में कर्कशता, कुटिलता या विद्वेष के भाव घर कर लेते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मातृभाषा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की प्राण-शक्ति है। इसे चेतन तथा प्राणवान् बनाए रखने के लिए विभिन्न साधनों से सिंचित करते रहना हमारे अस्तित्व के लिए आवश्यक है।

व्यावहारिक कार्य

1. विभिन्न विद्वानों के भाषा की परिभाषा सम्बन्धी कथनों को एकत्रित करना।
2. अपनी मातृबोली और मानक हिन्दी का भाषावैज्ञानिक तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. अपने सीमावर्ती किन्हीं दो राज्यों की भाषा का शब्दावली और वाक्य-गठन की दृष्टि से अध्ययन करना।
4. हिन्दी दिवस का आयोजन करना।
5. सांस्कृतिक भाषा, अन्तर्राष्ट्रीय भाषा, प्रादेशिक भाषा आदि के पारस्परिक महत्त्व और शिक्षाक्रम में उनके महत्त्व पर वादविवाद प्रतियोगिताओं का आयोजन करना।
6. भाषा शिक्षण के उद्देश्य और उनकी वास्तविक व्यावहारिक स्थिति का अध्ययन करना।
7. सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की पुस्तकों और उनके लेखकों की सूचियाँ तैयार करना।
8. अपनी बोली की कहानियाँ, पहेलियाँ, लोकगीत एकत्रित करना।
9. लेखकों की जयंती मनाना।
10. भारतीय संविधान के भाषा सम्बन्धी अध्याय का अध्ययन करना।

संदर्भ

1. भाषा और संस्कृति—डॉ० भोलानाथ तिवारी (1984).
2. Basic Hindi Vocabulary, Dr. J. N. Kaushik, (1979).

3. Consolidated Basic Hindi Vocabulary, Prof. Uday Shanker and Dr. J. N. Kaushik, (1982).
4. A Course in Modern Linguistic, Charles F. Hockett.
5. The Constitution of India, N. Delhi.
6. The Language and Mental Development of Children, Watt, A. F. (1946).
7. National curriculum For Primary and Secondary Education—A Frame work N C E R T., N. Delhi (1985).
8. Third All India Educational Survey—N C E R T., N. Delhi (1981).

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. क्या भाषा को परिभाषित किया जा सकता है ? अपने तर्क देते हुए भाषा की विभिन्न परिभाषाओं का विवेचन कीजिए ।
2. “भाषा के अनेक स्वरूप हैं ।” इस कथन की समीक्षा करते हुए उदाहरण सहित स्पष्ट करें कि भाषा विविध स्वरूपा क्यों है ?
3. भाषा और बोली में क्या अन्तर है ? बोलियों से भाषा का विकास होता है या भाषा से बोलियों का ? तर्क संगत उत्तर दें ।
4. ‘लिखित भाषा’ मौखिक भाषण का ही प्रतीक है, इस कथन के पक्ष और विपक्ष में अपने विचार प्रकट करें ।
5. मातृबोली, मातृभाषा और प्रादेशिक भाषा में क्या अंतर है ? क्या किसी व्यक्ति की मातृबोली प्रादेशिक भाषा हो सकती है ? तर्क सहित उत्तर दें ।
6. भाषा का व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के जीवन में क्या महत्त्व है ? संक्षेप में उत्तर दें ।
7. ‘संतुलित व्यक्तित्व के विकास के लिए शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होना चाहिए,’ इस कथन की पुष्टि कीजिए ।
8. टिप्पणी लिखें—
 1. सांस्कृतिक भाषा 2. आधुनिक भारतीय साहित्यिक भाषाएँ 3. भाषा की प्रकृति 4. राजभाषा 5. सृजनात्मक लेखन और मातृभाषा का सह-सम्बन्ध ।

अध्याय 2

हिन्दी के विविध आयाम

I. हिन्दी भाषा के विकास पर विहंगम दृष्टि

भारतीय संविधान की धारा 343 (1) के अनुसार भारतीय राज्य की राज-भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी है। संविधान की वर्तमान परिस्थिति तक पहुँचने से पहले हिन्दी ने सैकड़ों वर्षों की संघर्षमय यात्रा की है। यहाँ इसी यात्रा पर एक विहंगम दृष्टिपात किया जाएगा ताकि हिन्दी शिक्षक इस विषय का उपयोग संदर्भ सामग्री के रूप में कर सकें। किसी भी काल की कृति की व्याख्या, कवि या लेखक के दर्शन का विवेचन या कृति का भाषायी विश्लेषण उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर ही न्याय और तर्क संगत हो सकता है।

1. हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति तथा विकास

हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति और इसके वर्तमान अर्थ तक इसका विकास विद्वानों के अनुसंधान का विषय रहा है। स्वयं हिन्दी शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है।

हिन्दी, हिन्दवी, हिन्दुई शब्द का प्रयोग भारत या हिन्द से सम्बन्धित किसी भी व्यक्ति, वस्तु या भारतीय भाषाओं के लिए प्रयुक्त होता रहा है। ऋग्वेद में 'सिन्ध' 'सप्त सिन्धवः' शब्द नदी और प्रदेश विशेष के अर्थ में मिलता है। याजकों के साथ यह शब्द ईरान गया तो वहाँ इसके आरम्भ का "स" वर्ण वहाँ की उच्चारण प्रकृति के अनुसार "ह" में परिवर्तित हो गया। ईरान की पुस्तकों में यह शब्द 'हैन्दु', 'हिन्दु', 'हिन्दुवो' रूप में मिलता है। प्राचीन पहलवी में "हिन्दुक" और "हिन्दुश" रूप भी मिलते हैं। हिन्द शब्द में विशेषण प्रत्यय "ईक्" जोड़कर 'हिन्दीक', 'हिन्दीग' रूप बनें। कालान्तर में अन्तिम व्यंजन का लोप होकर हिन्दी शब्द हिन्द के विशेषण के रूप में प्रचलित होने लगा।

ग्रीक भाषा में "हिन्द", "हिन्दिया" शब्दों में आरम्भ का "ह" व्यंजन लुप्त होने से "इंड" या "इंडिया" शब्द बने जो देश सूचक अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि किसी भी प्राचीन भारतीय ग्रंथ में हिन्दी शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। गुण या स्वभाव के आधार पर अहिंसक वृत्ति के लोगों को हिन्दू कहते हैं और इनकी भाषा हिन्दी कहलाई।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों को जिस समय भारतीय प्रतिनिधि भाषा सिखाने की बात आई तो गिलक्राइस्ट ने इस भाषा के लिए हिन्दुस्तानी नाम का समर्थन किया। उनके लिए हिन्दुस्तानी का अर्थ था हिन्दवी + अरबी + फ़ारसी। बाद में महात्मा गांधी ने कुछ इसी अर्थ में हिन्दुस्तानी नाम को अपनाने का समर्थन किया।

आज हिन्दी शब्द का अर्थ भारत की सभी भाषाएँ न होकर सीमित अर्थ में होने लगा है। इस भाषा में पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी की बोलियाँ सम्मिलित हैं।

2. हिन्दी साहित्य का काल विभाजन

मोटे रूप से वर्तमान हिन्दी का भाषायी स्वरूप अपभ्रंश से अलग हट कर 1000 ई० में स्पष्ट भेद के साथ प्रकट होने लगा था। साहित्यकारों ने हर काल की मुख्य प्रवृत्तियों के आधार पर उनका विभाजन करने का प्रयास किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास को मुख्यतः चार कालों में विभक्त किया जाता है।

1. वीरगाथा काल (लगभग 1000 ई०—1300 ई०)—इस काल में मुख्य रूप से वीरगाथाएँ लिखी गईं। इनके अतिरिक्त अन्य फुटकर रचनाएँ भी उपलब्ध हैं।

2. भक्तिकाल (लगभग 1300 ई०—1650 ई०)—इस काल में भक्ति की निर्गुण धारा, सगुण धारा प्रमुख थीं। निर्गुण धारा में प्रेममार्गी, सूफ़ी मत तथा सगुण धारा में राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा प्रमुख थीं।

3. रीतिकाल (लगभग 1650 ई०—1850 ई०)—इस काल में शृंगार-परक रचनाएँ अधिक थीं।

4. आधुनिक काल (लगभग 1850 ई०—अब तक)—यह काल राष्ट्रीय चेतना का युग था। इस काल में पद्य के अतिरिक्त गद्य की नाटक, कहानी, उपन्यास आदि अनेक धाराएँ विकसित हुईं।

II. हिन्दी के विविध रूप

आज जिसे हम हिन्दी भाषा का नाम देते हैं वह पूर्वी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी बोलियों के अतिरिक्त उर्दू, फ़ारसी और यूरोपीय देशों के कुछ शब्दों से मिश्रित भाषा है। नीचे हिन्दी की सहभाषाओं या बोलियों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

1. पश्चिमी हिन्दी

पश्चिमी हिन्दी में हरियाणवी वर्तमान खड़ी बोली या हिन्दी की रीढ़ है।

वर्तमान हिन्दी की शब्दावली, वाक्य विन्यास तथा अन्य व्याकरणिक बिन्दु हरियाणवी की आधार शिला पर ही टिके हैं (दे० हरियाणवी-हिन्दी कोश की भूमिका)। बाँगरू, अहीरी, मेवाती, अम्बालवी, कौरवी आदि इसकी प्रमुख उप-बोलियाँ हैं। हरियाणवी के अतिरिक्त ब्रज, बुन्देली, कन्नौजी बोलियाँ हिन्दी को विस्तृत आधार प्रदान करती हैं। पश्चिमी हिन्दी का उद्भव शोरसेनी अपभ्रंश से हुआ माना जाता है।

राजस्थानी कई बोलियों के लिए प्रयुक्त सामूहिक नाम है। इसमें पश्चिमी राजस्थानी या मारवाड़ी, पूर्वी राजस्थानी या मेवाती तथा दक्षिणी राजस्थानी या मालवी आती है। डिंगल को भी राजस्थानी में ही रखते हैं। इन बोलियों में साहित्य केवल मारवाड़ी में ही उपलब्ध है। इसका उद्भव भी शोरसेनी अपभ्रंश से है।

2. पूर्वी हिन्दी

पूर्वी हिन्दी में मुख्यतः अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी बोलियाँ सम्मिलित हैं। भोजपुरी या मगही मैथिली के लिए भी पूर्वी हिन्दी शब्द का प्रयोग होता है। इन बोलियों के उद्भव का स्रोत विवादास्पद है।

पाठकों की जानकारी के लिए तृतीय अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण (1973) के आँकड़ों पर आधारित बोलियों से सम्बन्धित एक तालिका यहाँ दी जा रही है।

तालिका-2

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में मातृ बोलियों की संख्या

राज्य/केन्द्र शासित क्षेत्र		1961 की जनगणना एन०सी०ई०आर०टी० के अनुसार	के तृतीय शैक्षिक-सर्वेक्षण (1973) के अनुसार
1	2	3	4
1. आंध्र प्रदेश		136	37
2. असम		162	38
3. बिहार		121	21
4. गुजरात		106	27
5. हरियाणा		अप्राप्य	27

1	2	3	4
6.	हिमाचल प्रदेश	203	34
7.	जम्मू तथा कश्मीर	90	22
8.	कर्नाटक	128	15
9.	केरल	69	12
10.	मध्य प्रदेश	233	45
11.	महाराष्ट्र	401	56
12.	मणिपुर	82	36
13.	नागालैंड	89	28
14.	उड़ीसा	50	7
15.	पंजाब	135 (हरियाणा सहित)	3
16.	राजस्थान	79	11
17.	तमिलनाडु	100	10
18.	त्रिपुरा	107	29
19.	उत्तर प्रदेश	117	15
20.	पश्चिमी बंगाल	236	9
21.	अंदमान तथा निकोबार द्वीप समूह	65	18
22.	अरुणाचल प्रदेश	162	37
23.	चण्डीगढ़	अप्राप्य	13
24.	दादरा तथा नगर हवेली	23	4
25.	दिल्ली	92	अप्राप्य
26.	गोवा, दमण तथा दीव	52	अप्राप्य
27.	लक्षदीप	15	1
28.	मेघालय	अप्राप्य	10
29.	मीज़ोरम	अप्राप्य	5
30.	पांडीचेरी	36	7

उपर्युक्त विभाजन के अतिरिक्त हिन्दी की 300 से भी अधिक बोलियाँ हैं।

3. राजभाषा हिन्दी

14 सितम्बर 1949 में भारतीय संविधान सभा ने हिन्दी को भारतीय संघ की राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने की घोषणा की। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने लोगों से आग्रह किया कि इस दिन को हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाए। तभी से विभिन्न संस्थाएँ 14 सितम्बर का दिन हिन्दी दिवस के रूप में मनाती आ रही हैं।

भारतीय संविधान 26 जनवरी 1950 ई० को लागू हुआ। उस समय यह निर्णय किया गया था कि हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी भी 15 वर्ष तक देश की सह-राजभाषा के रूप में काम में लाई जाती रहेगी किन्तु कई कारणों से अभी तक यह सम्भव नहीं हो पाया। वर्तमान स्थिति यह है कि हिन्दी के साथ अंग्रेजी उस समय तक सह राजभाषा बनी रहेगी जब तक कोई भी राज्य इसकी आवश्यकता अनुभव करता रहेगा। किसी स्वाभिमानी राष्ट्र के लिए यह स्थिति बहुत अच्छी नहीं है।

4. संपर्क भाषा हिन्दी

देश में हिन्दी को छोड़ कर कोई भी अन्य भाषा ऐसी नहीं है जिसे भारत के हर भाग में समझा जाता हो। हिन्दी साधु-संतों की वाणी रही है। वे भारत भर में अटन करके धर्म और संस्कृति का प्रचार करते रहे हैं। दक्षिण का भक्तिवाद आज भी उत्तर भारत में फूल-फल रहा है। यह संपर्क भाषा हिन्दी का ही परिणाम है।

उद्योग, वाणिज्य एवं व्यवसाय के लिए भी एक सम्पर्क भाषा की आवश्यकता होती है। इस अभाव की पूर्ति हिन्दी ही कर रही है। देश के छोटे-बड़े किसी शहर या कस्बे में जाकर व्यापारी और सामान्य ग्राहक आज भी यह अनुभव करता है कि हिन्दी के माध्यम से आपसी बातचीत को समझा और समझाया जा सकता है।

राष्ट्रीय जागरण, राजनीतिक चेतना, भावनात्मक एकता आदि के लिए देश में हिन्दी भाषा ही अपना सर्वोपरि दायित्व निभाती आई है। यवन-शासन तथा ब्रिटिश शासन काल में साधु-सन्तों और राजनीतिक नेताओं ने हिन्दी को ही संपर्क भाषा बनाया।

5. प्रादेशिक भाषा हिन्दी

भारत की संपर्क भाषा हिन्दी होने का एक मूल कारण था कि पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर में बसे अहिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों से सटे हुए थे या इनका व्यापार के माध्यम से नित्य अन्योन्याश्रित सम्बन्ध था। आज राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार सभी हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश हैं। इन सब राज्यों की प्रादेशिक भाषा हिन्दी है। हिमाचल प्रदेश

की भी यही स्थिति है। इन सभी प्रदेशों में अनेक बोलियाँ हैं किन्तु इन्होंने अपनी प्रादेशिक भाषा के रूप में हिन्दी को ही स्वीकार किया है।

हिन्दी के बारे में अतिरिक्त जानकारी भाषा सम्बन्धी प्रथम अध्याय में दी गई है। पाठक सम्बन्धित सामग्री को वहाँ पढ़ें।

III. हिन्दी के प्रति अग्रगण्य नेताओं के उद्गार

हिन्दी के राष्ट्र भाषा या राजभाषा के पदासीन होने का एक प्रमुख कारण था कि देश के कोने-कोने में निवास करने वाले अहिन्दी और हिन्दी भाषी सभी नेताओं ने इसके महत्त्व को पहचाना और देश के आजाद होने पर इसे उचित सम्मान देने का संकल्प किया। यहाँ कुछ अग्रगण्य नेताओं के हिन्दी के प्रति प्रकट उद्गार उद्धृत किए जा रहे हैं :—

राष्ट्रभाषा की जगह एक हिन्दी ही ले सकती है, कोई दूसरी भाषा नहीं—
महात्मा गांधी।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी हमारे देश की एकता में सब से अधिक सहायक सिद्ध होगी—
जवाहर लाल नेहरू।

सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग किया जाता है—
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

राष्ट्र के एकीकरण के लिए हिन्दी ही एकमात्र भाषा है—
लोकमान्य तिलक।

हिन्दी में अखिल भारतीय भाषा बनने की क्षमता है—
राजा राम मोहन राय।

भारत में अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए समान भाषा का दर्जा हिन्दी को ही दिया जा सकता है—
डा० भंडारकर।

हिन्दी विश्व की सरलतम भाषाओं में है—
आचार्य क्षिति मोहन सेन।

हिन्दी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है—
दयानन्द सरस्वती।

भारतीय जनता के बीच काम करने के लिए हिन्दी ही एकमात्र साधन है—
जय प्रकाश नारायण।

हिन्दी हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक व्यवहार में आने वाली भाषा है—
राहुल सांकृत्यायन।

हिन्दी राष्ट्रीयता के मूल को सींचती है और दृढ़ करती है—
महर्षि टंडन।

हिन्दी ही एक भाषा है जो भारत में सर्वत्र बोली जाती है—
डा० ग्रियर्सन।

भारत के विभिन्न प्रदेशों के बीच हिन्दी प्रचार के द्वारा एकता स्थापित करने वाले सच्चे भारत-बन्धु हैं—
अरविन्द।

देश को एकता के सूत्र में आवद्ध करने की शक्ति केवल हिन्दी में है—

इन्दिरा गांधी ।

भारत की एकता के लिए आवश्यक है कि देश की सभी भाषाएँ नागरी लिपि अपनाएँ—

विनोबा भावे ।

प्रांतीय ईर्ष्या-द्वेष दूर करने में जितनी सहायता हिन्दी प्रचार से मिलेगी उतनी दूसरी चीज़ से नहीं—

सुभाष चन्द्र बोस ।

हिन्दी अपने गुणों से देश की राष्ट्रभाषा है—

लाल बहादुर शास्त्री ।

भारत की अखंडता और व्यक्तित्व को बनाए रखने के लिए हिन्दी का प्रचार अत्यंत आवश्यक है—

महाकवि शंकर कुरूप ।

हिन्दी का श्रृंगार राष्ट्र के सभी भागों के लोगों ने किया है, वह हमारी राष्ट्रभाषा है—

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ।

हिन्दी की प्रगति से देश की सभी भाषाओं की प्रगति होगी—

डा० जाकिर हुसैन ।

हिन्दी से किसी भी भारतीय भाषा को भय नहीं है । यह सबकी सहोदर है—

महादेवी वर्मा ।

IV. वर्तमान पाठ्यक्रम में हिन्दी की स्थिति

एन० सी० ई० आर० टी० ने दस वर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम की रूपरेखा में भाषा के प्रति अपने नवीनतम दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित सिफारिशों की हैं—

1. प्राथमिक स्तर पर

इस स्तर पर शिक्षा का प्रथम उद्देश्य साक्षरता रखा गया है । इस समय बच्चों को प्रथम भाषा सिखाई जानी चाहिए । यह भाषा सामान्यतः मातृभाषा होनी चाहिए । प्रथम भाषा का स्तर इतना अवश्य होना चाहिए कि वह औरों से वार्तालाप करके या लिखकर अपनी बात भली-भाँति कह सके ।

बच्चों को इस भाषा स्तर तक पहुँचने के लिए विद्यालय के कुल समय का 25% समय देना चाहिए ।

2. माध्यमिक स्तर पर

यह स्तर छठी से आठवीं कक्षा तक माना गया है । इसमें सामान्यतः 11⁺ से 14⁺ तक के विद्यार्थी आते हैं । इन वर्षों में विद्यार्थी तरुणावस्था की ओर बढ़ता है । उसका सामाजिक उत्तरदायित्व बढ़ता है । बहुत से लड़के तथा लड़कियों की शिक्षा का यह स्तर अन्तिम सिद्ध होता है ।

इस अवस्था में द्वितीय भाषा भी बढ़ाई जानी चाहिए ताकि विद्यार्थी समाज और राष्ट्र के कामों में अधिक भाग ले सकें। विद्यार्थी में द्वितीय भाषा के सामान्य वाक्यों तथा गद्य और पद्य की सुगम रचनाओं की समझने की क्षमता उत्पन्न होनी चाहिए। इस अवस्था में प्रथम भाषा पर उसका अधिकार बढ़ना चाहिए और उसमें साहित्य की समझने की क्षमता उत्पन्न होनी चाहिए।

यदि हम यह मान कर चलें कि एक सप्ताह में विद्यालय 48 घंटे लगता है तो हमें प्रथम भाषा के लिए 8 घंटे तथा द्वितीय भाषा के लिए 5 घंटे का समय देना चाहिए। समय के इस विभाजन में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है।

पाठक गद्य, पद्य आदि के विस्तृत पाठ्यक्रम के लिए गद्य शिक्षण और पद्य शिक्षण अध्याय देखें।

3. उच्च माध्यमिक स्तर पर

इस स्तर पर केवल दो कक्षाएँ नवीं और दसवीं होती हैं। इसमें सामान्य आयु सीमा 14⁺ से 16⁺ की होती है।

दसवीं कक्षा पास करने के बाद कुछ विद्यार्थी श्रमिक-शक्ति का अंग बनते हैं या वे तकनीकी कक्षाओं में प्रवेश लेते हैं या फिर अपना अध्ययन विद्यालय या महाविद्यालयों में जारी रखते हैं।

भाषा की दृष्टि से विद्यार्थी में प्रथम भाषा का इतना ज्ञान होना चाहिए कि उसके साहित्य के सर्वश्रेष्ठ नमूनों को वह समझ सके। इस स्तर पर सर्जनात्मक लेखन का प्रारम्भ भी हो जाना चाहिए।

द्वितीय भाषा का ज्ञान इस स्तर तक अवश्य मिलना चाहिए ताकि वह स्वयं को इसमें भली-भाँति अभिव्यक्त कर सके।

तृतीय भाषा उस स्तर तक सिखाई जानी चाहिए कि विद्यार्थी सुगम पाठ को पढ़ कर समझ सके और उसके अर्थ को व्यक्त कर सके।

समय विभाजन की दृष्टि से प्रथम भाषा के लिए सप्ताह में 6 घंटे, द्वितीय भाषा के लिए 5 घंटे तथा तृतीय भाषा के लिए 2 घंटे का समय दिया जाना चाहिए। इस समय में आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किया जा सकता है।

पाठक इस स्तर पर विस्तृत पाठ्यक्रम की जानकारी के लिए गद्य शिक्षण, पद्य शिक्षण, लेखन, कहानी शिक्षण आदि के अध्याय देखें।

4. +2 स्तर पर

केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड नई दिल्ली ने सीनियर स्कूल सर्टीफिकेट परीक्षा के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में हिन्दी शिक्षण के उद्देश्य निश्चित करते

हुए लिखा है कि—विद्यार्थी को व्यावहारिक हिन्दी की ऐसी क्षमता एवं कुशलता प्रदान करना अभीष्ट है जिससे वह जीवन के विविध क्षेत्रों, व्यवसायों एवं दैनिक क्रियाकलापों में भाषा का उपयुक्त, प्रभावशाली एवं सफल प्रयोग कर सके तथा साथ ही उसकी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना का भी उत्तरोत्तर विकास हो सके।

इस स्तर पर केवल एक अनिवार्य भाषा का प्रावधान है। यह भाषा वैकल्पिक अथवा ऐच्छिक किसी भी रूप में पढ़ी जा सकती है।

इस भाषा के अध्यापन के लिए सामान्यतः समय विभाग में 20% समय नियत किया गया है। पाठक इस पाठ्यक्रम की विस्तृत जानकारी के लिए गद्य-शिक्षण, पद्य शिक्षण, लेखन की शिक्षा, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि से संबंधित अध्याय देखें।

उपर्युक्त विवेचन से भारतीय विद्यालयों में कक्षा 12वीं तक के हिन्दी पाठ्यक्रम की रूपरेखा स्पष्ट रूप से उभर कर आती है। यह रूपरेखा मुख्यतया हिन्दी पठन-पाठन के प्रथम भाषा के रूप में है। भाषा के विभिन्न अवयवों से सम्बन्धित अध्यायों में हिन्दी शिक्षण द्वितीय भाषा के रूप में अध्ययन के उद्देश्य दिए गए हैं। पाठक इन्हें भी अवश्य पढ़ें।

5. वर्तमान पाठ्यक्रम और त्रिभाषा सूत्र

भारत विविध भाषाओं का देश है। यहाँ अनेक बोलियाँ और उप भाषाएँ बोली जाती हैं। भारतीय संविधान के अनुसार (अष्टम अनुसूची) निम्नलिखित 15 भाषाओं को मान्यता दी गई है—

- | | | |
|-------------|------------|------------|
| 1. असमिया | 2. उड़िया | 3. उर्दू |
| 4. कन्नड़ | 5. कश्मीरी | 6. गुजराती |
| 7. तमिल | 8. तेलुगु | 9. पंजाबी |
| 10. बंगला | 11. मराठी | 12. मलयालम |
| 13. संस्कृत | 14. सिंधी | 15. हिंदी। |

बालक पर न तो अधिक भाषाओं के सीखने का बोझ पड़े और न ही वह देश की मुख्य धारा से कट जाए इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक त्रिभाषा सूत्र राष्ट्रीय नीति के रूप में स्वीकार किया जा चुका है। स्कूल में दस वर्ष व्यतीत करने के पश्चात् बच्चे को प्रथम भाषा में प्रवीण, द्वितीय भाषा समझने और उसमें स्वयं को अभिव्यक्त करने में समर्थ तथा तृतीय भाषा के सामान्य छपे हुए रूप को समझने योग्य हो जाना चाहिए। प्रथम भाषा सामान्यतः मातृभाषा होनी चाहिए। जहाँ मातृभाषा हिन्दी नहीं है वहाँ पर द्वितीय भाषा हिन्दी होनी चाहिए। तृतीय भाषा सामान्यतः अंग्रेजी होनी चाहिए। किन्तु उसके स्थान पर कोई अन्य विदेशी

भाषा भी हो सकती है। संस्कृत या फ़ारसी प्रथम या द्वितीय भाषा के अंग के रूप में अथवा अलग से चौथे विषय के रूप में सम्मिलित की जा सकती है।

प्राथमिक स्तर के अंत तक विद्यार्थी को मातृभाषा के मानक रूप के माध्यम से सामान्य रूप में अपेक्षित गठन और शब्दावली का प्रयोग करके मौखिक और लिखित रूप में आत्माभिव्यक्ति में समर्थ हो जाना चाहिए। विद्यार्थी को शुद्ध उच्चारण, ध्वनि के उतार-चढ़ाव, मुद्रा, आवश्यक गति और अर्थ ग्रहण के साथ बोल-बोल कर पढ़ना आना चाहिए। विद्यार्थी को अर्थ ग्रहण करते हुए मौन पाठ का सही तरीका आना चाहिए। उसमें अपने स्तर के अनुकूल सरल वाक्यों को सुनकर अर्थ-ग्रहण की क्षमता भी होनी चाहिए। मिडिल और माध्यमिक स्तरों तक गहनतर भाषावैज्ञानिक और विचारात्मक विषय वस्तु के माध्यम से उपर्युक्त सभी विशेषताओं में बृहत्तर प्रवीणता अपेक्षित है।

द्वितीय और तृतीय भाषा के शिक्षण के लक्ष्य भी वही हैं, सिवाय इस तथ्य के कि उनके शिक्षण की योजना इस तथ्य को ध्यान में रखकर बनाई गई है कि विद्यार्थी इन भाषाओं का थोड़ा ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है और वह पढ़ कर ही इन पर अपने अधिकार में वृद्धि कर सकता है। यदि विद्यार्थी सीमित शब्द भंडार और स्तरीकृत गठनों का संतोषप्रद प्रयोग सीख लेता है तो अध्यापक को संतुष्ट हो जाना चाहिए।

द्वितीय भाषा प्राथमिक स्तर अथवा मिडिल स्तर पर प्रारम्भ की जा सकती है। तृतीय भाषा छठी कक्षा से आरम्भ की जा सकती है। परन्तु तीनों भाषाएँ दसवीं कक्षा के अन्त तक पढ़ा दी जानी चाहिए।

संक्षेप में त्रिभाषा सूत्र का संशोधित रूप निम्नलिखित है—

1. मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा।
2. संघ की राजभाषा या सहचारी राजभाषा (जब तक वह रहे तब तक)।
3. एक आधुनिक भारतीय या विदेशी भाषा जो ऊपर एक और दो क्रमांक पर न आई हो और शिक्षण माध्यम के रूप में प्रयुक्त भाषा से भिन्न हो। पाठकों के सामान्य संदर्भ के लिए यहाँ एन० सी० ई० आर० टी० द्वारा सम्पन्न तृतीय अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण (1973) के आधार पर हिन्दी माध्यम के विद्यालयों की राज्यानुसार संख्या की तालिका दी जा रही है।

तालिका-3

एन० सी० ई० आर० टी० द्वारा सम्पन्न तृतीय अखिल भारतीय
शैक्षिक सर्वेक्षण (1973) के आधार पर हिन्दी माध्यम
के विद्यालयों की राज्यानुसार संख्या

राज्य/क्षेत्र	प्राथमिक वि०	माध्यमिक वि०	उच्च माध्यमिक वि०	उच्चतर माध्यमिक वि०
1. अंदमान निकोबार	97	98	—	13
2. आंध्र प्रदेश	76	99	42	2
3. असम	175	49	15	—
4. बिहार	56,987	9,818	2,628	—
5. चंडीगढ़	35	13	2	1
6. दिल्ली	1,578	850	—	497
7. गोवा, दमण, दीव	1	—	—	—
8. गुजरात	67	—	25	—
9. हरियाणा	6,952	1,890	1,024	105
10. हिमाचल प्रदेश	5,222	1,084	510	103
11. कर्नाटक	13	21	12	1
12. केरल	3	1	1	2
13. मध्य प्रदेश	5,180	9,033	—	1,993
14. महाराष्ट्र	366	155	197	16
15. मणिपुर	1	1	4	1
16. मेघालय	2	1	5	—
17. मिज़ोरम	—	2	—	—
18. नागालैंड	4	1	3	—
19. उड़ीसा	29	28	7	6
20. पंजाब	318	179	160	64
21. राजस्थान	24,623	6,050	1,369	532
22. तमिलनाडु	6	21	15	3
23. त्रिपुरा	1	—	—	—
24. उत्तर प्रदेश	64,511	14,651	4,138	2,294
25. पश्चिमी बंगाल	448	59	54	69

VI. हिन्दी पाठ्यक्रम का आलोचनात्मक अध्ययन

1. पाठ्यक्रम क्या है ?

पाठ्यक्रम पाठ्यचर्या का अविभाज्य अंग है। पाठ्यचर्या विद्यार्थी को विद्यालय के अंदर और बाहर दिए जाने वाले अनुभवों का समुच्चय है। पाठ्यक्रम विद्यालय में विद्यार्थियों के लिए नियोजित अनुभवों की क्रमबद्ध योजना है। कोश-कारों के अनुसार किसी अध्ययन में पढ़ाई जाने वाली सामग्री की योजना या रूप-रेखा जिसमें विषय से सम्बन्धित पुस्तकों और सन्दर्भ ग्रन्थों का भी उल्लेख हो पाठ्यक्रम कहलाता है। इसमें प्रायः कक्षा में अध्ययन करने के लिए विषय का विस्तार क्षेत्र, क्रम, उपलब्धियाँ और निर्देश दिए रहते हैं। सरकार का शिक्षा विभाग इसे विषय के विशेषज्ञों की सहायता से निर्धारित करता है। इसमें छात्रों के मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक आदि विकास का ध्यान रखा जाता है।

पाठ्यक्रम का मूल स्रोत राष्ट्र की नीतियाँ हैं। हर राष्ट्र अपनी नीति के अनुसार नागरिक तैयार करता है। पाठ्यक्रम में ऐसी विषय वस्तु का नियोजन होता है जिससे छात्रों में उन्हीं वांछित गुणों का विकास हो सके। पाठ्यक्रम बनाते समय समाज की आवश्यकताओं और अभिभावकों की इच्छाओं का भी ध्यान रखा जाता है।

2. पाठ्य पुस्तकें ही पाठ्यक्रम नहीं हैं

सामान्यतः अध्यापक कक्षा में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों को ही पाठ्यक्रम समझ लेते हैं। वास्तव में पाठ्यपुस्तकें तो निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए साधन मात्र हैं। एक जागरूक अध्यापक को विषय के उद्देश्यों की जानकारी होनी चाहिए। यदि उसे उद्देश्यों की जानकारी है तो बिना पाठ्यपुस्तक के अन्य पठन सामग्री के आधार पर उन उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकती है। विदेशों में इसीलिए पाठ्य पुस्तकों से बचा जाता है कि वे बच्चों की स्थानीय आवश्यकताओं और वातावरण के अनुकूल नहीं होंगी तो उनका वांछित लाभ नहीं हो सकेगा। ऐसी पुस्तकों में बच्चे की रुचि भी नहीं होगी।

संक्षेप में पाठ्यक्रम बच्चे को दिए जाने वाले समग्र अनुभवों का मार्गदर्शक है। हर अध्यापक को पाठ्य पुस्तक पढ़ाने से पूर्व पाठ्यक्रम का अध्ययन करना चाहिए।

3. हिन्दी के वर्तमान पाठ्यक्रम के आलोच्य बिन्दु

हर राज्य का अपना निश्चित पाठ्यक्रम होता है। अनेकवार राज्य किसी

अन्य पाठ्यक्रम को अपने लिए स्वीकार भी कर लेता है। उस पाठ्यक्रम को निम्न-लिखित बिन्दुओं पर जाँचना चाहिए—

1. क्या पाठ्यक्रम राष्ट्रीय नीतियों के अनुकूल है ?
2. क्या पाठ्यक्रम सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहायक है ?
3. क्या पाठ्यक्रम छात्रों के सामाजिक वातावरण के अनुकूल है ?
4. क्या पाठ्यक्रम समग्ररूप से तैयार किया गया है अर्थात् पहली कक्षा से उत्तरोत्तर उसका आपसी सहसम्बन्ध है ?
5. क्या पाठ्यक्रम छात्रों की रुचि और बौद्धिक विकास के अनुकूल है ?
6. क्या पाठ्यक्रम कुशाग्र और सामान्य बुद्धि के छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है ?
7. क्या पाठ्यक्रम पूरे शिक्षा स्तर के अनुकूल है ?
8. क्या पाठ्यक्रम के उद्देश्य सविस्तार और स्पष्टता के साथ अंकित किए गए हैं ?
9. क्या पाठ्यक्रम के उद्देश्यों को छात्रों तक पहुँचाया जा सकता है ?
10. क्या पाठ्यक्रम के उद्देश्यों का मूल्यांकन किया जा सकता है ?

वर्तमान पुस्तक में हिन्दी भाषा का पाठ्यक्रम एक स्थान पर न देकर गद्य, पद्य, लेखन, नाटक, उपन्यास आदि शिक्षण के अध्यायों में वितरित किया गया है। उपर्युक्त बिन्दुओं पर उसकी समीक्षा की जा सकती है।

व्यावहारिक कार्य

1. पुस्तकालय से हिन्दी भाषा तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित पुस्तकों और उनके लेखकों की सूची तैयार करना।
2. भारतीय संविधान से राजभाषा सम्बन्धी अनुच्छेद को पढ़ना।
3. हिन्दी भाषा के कालक्रम विभाजन के आधार पर उस काल के लेखकों और प्रसिद्ध कृतियों का चार्ट बनाना।
4. पूर्वी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी, प्रादेशिक भाषाओं सम्बन्धी चार्ट तैयार करना।
5. अपने प्रदेश के विद्यालय स्तर तक निर्धारित पाठ्यक्रम का गहन अध्ययन करना।
6. त्रिभाषा सूत्र से सम्बन्धित वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन करना।
7. अपने प्रदेश की हिन्दी पाठ्य पुस्तकों का समीक्षात्मक अध्ययन करना।
8. हिन्दी के प्रति अग्रगण्य व्यक्तियों की उक्तियों की वाक्य फीतियाँ बनाना।

9. हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति पर अनुच्छेद लिखना ।
10. हिन्दी दिवस का आयोजन करना ।

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० नगेन्द्र (1976) ।
2. हिन्दी भाषा—डा० भोलानाथ तिवारी (1979) ।
3. विश्व हिन्दी (तृतीय विश्व सम्मेलन स्मारिका) (1983) ।
4. शिक्षा की चुनौती—नीति सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य;
शिक्षा मन्त्रालय—भारत सरकार (1985) ।
5. दस वर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम—एक रूप रेखा, एन० सी० ई० आर० टी० (1976) ।
6. शिक्षा में नए प्रयोग—डा० जयनारायण कौशिक, दिल्ली शिक्षा (1980) ।
7. व्यापक शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम—1986 (नई शिक्षा नीति के संदर्भ में); एन० सी० ई० आर० टी० (1986) ।
8. National Curriculum For Primary and Secondary Education—A Frame work, NCERT, New Delhi (1985).

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. 'हिन्दी' शब्द की व्युत्पत्ति की विवेचना करें ।
2. हिन्दी के प्रति प्रकट किए गए कुछ अग्रगण्य नेताओं के उद्गारों की समीक्षा करें तथा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए 8-10 उद्घोष सुझाएँ ।
3. हिन्दी का कालक्रमानुसार विकास बताते हुए इस कथन की समीक्षा करें कि हिन्दी से किसी भी भारतीय भाषा को भय नहीं है। यह सबकी सहोदर है ।
4. 'त्रिभाषा सूत्र देश की एकता की धुरी की केन्द्रीय कील है', इस कथन की समीक्षा करें ।
5. पाठ्यक्रम क्या है? अपने राज्य के माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर के हिन्दी पाठ्यक्रम की समीक्षा करें ।
6. टिप्पणी लिखें—
1. हिन्दी दिवस 2. भारतीय संविधान की अष्टम अनुसूची में मान्यता प्राप्त भाषाएँ । 3. 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।'
4. पश्चिमी हिन्दी ।

अध्याय 3

भाषा शिक्षण सिद्धान्त और हिन्दी अध्यापक

1. भाषा शिक्षण सिद्धान्त और सूत्र

सामान्य परिचय

शिक्षण एक कला है। इस कला का विकास सतत अभ्यास से सम्भव है। अभ्यास करते-करते स्वतः ऐसे सूत्रों का आभास होने लगता है जो शिक्षण कार्य में सहायक होते हैं। इन्हीं प्राप्त अनुभवों को संक्षेप में कहते समय सूत्र या सिद्धान्त की संज्ञा दी जाती है।

भाषा शिक्षण के क्षेत्र में कार्यरत विद्वानों ने मनोवैज्ञानिक विधि अपनाकर भाषा शिक्षण के कुछ सूत्र सुझाए हैं। नीचे उन्हीं की संक्षेप में चर्चा की गई है।

1. पूर्वज्ञान की जाँच

अध्यापन आरम्भ करने से पूर्व अध्यापक को बच्चों के पूर्वज्ञान का पता होना चाहिए। ऐसा न होने से अध्यापक तथा बच्चों के बीच की दूरी बनी रहती है। पटरी के आपसी तालमेल से शिक्षण की गाड़ी समतल धरातल पर अबाध गति से चल सकती है।

2. पूर्वज्ञान से सह सम्बन्ध

बच्चों के पूर्वज्ञान का पता लगने पर पाठ का आरम्भ उसी से सम्बन्धित करके होना चाहिए। इससे बच्चों को यह अनुभूति होती है कि जो ज्ञान वे प्राप्त करेंगे उसका सम्बन्ध पिछले ज्ञान से है। वे अनुभव करें कि शिक्षण की गाड़ी कुछ स्टेशन पार कर चुकी है अब अगली मंजिल की ओर बढ़ना है। इससे अगली मंजिल को खोज निकालने की उत्सुकता बढ़ेगी।

3. सुनियोजित पाठ योजना

अध्यापक को जो पाठ पढ़ाना है उसकी सुनियोजित पद्धति या योजना पहले से मस्तिष्क में होनी चाहिए। यदि अध्यापक अपने विषय को पढ़ाने के क्रम में स्पष्ट होगा तो बच्चे उस विषय को स्वाभाविक रूप से ग्रहण कर पाएँगे। एक सुनियोजित सरणी पर चलने से गाड़ी दुर्घटनाग्रस्त नहीं होती।

4. बाल केन्द्रित अध्यापन

बच्चों को पाठ का सहभागी बनाने के लिए आवश्यक है कि पाठ को बाल-केन्द्रित बनाया जाए। पाठ बच्चों के पूर्व अनुभव तथा उनके वातावरण और रुचि के अनुसार होना चाहिए। पढ़ते समय बच्चा यह अनुभव करे कि पाठ उसके जीवन से सम्बन्धित है। इस पाठ को पढ़कर वह जीवन की आगामी जटिलताओं को सुलझा सकेगा। यदि पाठ कठिन है तो उसको इकाइयों में इस प्रकार विभाजित करें कि बच्चों पर अतिरिक्त भार न पड़े।

5. बच्चों का प्रतिभागित्व या साझेदारी

शिक्षण एक मार्ग पर चलने वाला यातायात नहीं है। बालक इसमें सहयात्री है। शिक्षण के समय बालकों का भी प्रतिभागी या साझेदार होना आवश्यक है। बच्चों के पाठ से सम्बन्धित पूर्व अनुभव पूछकर, बीच-बीच में प्रश्न पूछकर या उनकी प्रतिक्रिया जानकर पाठ पढ़ाना चाहिए। इससे कक्षा में जागरूकता, चेतनता और अपनत्व की भावना बनी रहती है और साथ ही कक्षा में क्रियाशीलता बनी रहती है।

6. प्रयोग या व्यवहार की व्यवस्था

‘करके सीखने की क्रिया’ का जीवन में बहुत महत्व है। स्वयं किए हुए काम में हृदय, हाथ और मस्तिष्क का प्रयोग साथ-साथ होता है। इस क्रिया में बालक अध्यापक का अनुकरण करके कुछ प्रयोग कर सकता है। उच्चारण, लेखन, मौखिक अभिव्यक्ति आदि ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें प्रयोग या व्यवहार के अभ्यास की निरन्तर आवश्यकता होती है। अध्यापक बच्चों के लिए कक्षा में जितने अधिक प्रयोग और व्यवहार के अवसर जुटाएगा बालक का भाषा पर उत्तना ही अधिकार बढ़ेगा। व्याकरण शिक्षण में इस सिद्धान्त का प्रयोग उत्तरोत्तर होना चाहिए।

7. वैयक्तिक भिन्नता का सम्मान

बालकों में वैयक्तिक भिन्नता प्रकृति प्रदत्त है। कोई बच्चा भावुक और सहृदय होता है तो कोई कम संवेदनशील। किसी का हृदय पक्ष प्रबल है तो किसी का ज्ञान या बुद्धि पक्ष। साहित्य के विभिन्न अंगों के शिक्षण का सभी पर अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार प्रभाव पड़ता है। ज्ञान की ग्रहणशील शक्ति सभी में समान नहीं है। अध्यापक को सभी की प्रकृति को उदारता से स्वीकार करना चाहिए और सभी को सम्मान देना चाहिए। सहनशीलता और व्यक्तिगत प्रोत्साहन से बालक का भाषा-ज्ञान अधिक बढ़ेगा। बच्चों की वैयक्तिक भिन्नता का कारण उनकी सामाजिक और आर्थिक भिन्नता भी है। यदि अध्यापक का व्यवहार प्रजा-

तान्त्रिक होगा तो वैयक्तिक भिन्नता की दूरियों को वह पाट न सके तो कम अवश्य कर सकता है।

8. बहुकोणीय प्रयास

भाषा शिक्षण केवल भाषा अध्यापक, भाषा की पाठ्यपुस्तक या मात्र कक्षा के क्रियाकलापों तक सीमित नहीं है। सारा जीवन ही भाषामय है। स्पष्टतः भाषा के समुचित विकास के लिए समग्र दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। इसके लिए विद्यालय के सभी अध्यापकों के सहयोग की आवश्यकता है। पाठ्यक्रम के अतिरिक्त पाठ्यक्रमेतर अथवा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का भी आयोजन करना होगा। इनके अतिरिक्त वाचन, लेखन, भाषण, कविता, नाटक आदि प्रति-योगिताओं का आयोजन करना होगा।

बड़ी कक्षाओं में पुस्तकालय के अधिक से अधिक प्रयोग की आदत डालनी होगी। सन्दर्भ सामग्री को खोज निकालने के लिए कोश, ज्ञान-कोश, साहित्य-कोश, चरित-कोश, पौराणिक कोश तथा अन्य सन्दर्भ सामग्री का प्रयोग करने का अभ्यास कराना होगा।

विद्यालयों में 10 + 2 शिक्षा प्रणाली के बाद साहित्य शिक्षण भी पाठ्यक्रम का महत्वपूर्ण अंग बन गया है। अतः पाठ्येतर क्रियाओं को उत्तरोत्तर प्रोत्साहन देकर भाषा के स्तर को उठाया जा सकता है। आज का विद्यालय, अध्यापक और छात्र गत दस वर्ष के वातावरण से काफ़ी भिन्न वातावरण में रह रहा है। शैक्षिक प्रौद्योगिकी की महत्ता को समझकर उसका प्रयोग भाषा शिक्षण के लिए करना होगा।

9. भाषायी दृष्टिकोण

भाषा शिक्षण के लिए अध्यापक की स्वयं की भाषायी अभिवृत्ति होनी आवश्यक है। उसे भाषा को सिखाने के क्रम का ज्ञान होना अनिवार्य है। भाषा सिखाने का क्रम है:—

- क. श्रवण का अभ्यास।
- ख. बोलचाल की शिक्षा।
- ग. वाचन की शिक्षा।
- घ. लेखन की शिक्षा।

इन सभी कौशलों के विकास की जानकारी आगे अलग-अलग अध्यायों में दी गई है, यहाँ तो इनका सन्दर्भ मात्र ही प्रयोजन है।

भाषा के सभी अवयवों को समझने के लिए व्याकरण के नियमों का सहारा लेना चाहिए। शब्द, उपसर्ग, प्रत्यय, सन्धि, समास, मुहावरे, लोकोक्ति आदि को

भी स्पष्ट करने की आवश्यकता है। इन सभी विषयों पर गद्य शिक्षण के अध्याय में प्रकाश डाला गया है।

10. मनोवैज्ञानिक आधार

भाषा शिक्षण सम्बन्धी कुछ सिद्धान्तों और सूत्रों की चर्चा पहले भी की जा चुकी है। उन सभी प्रयोगों का आधार मनोवैज्ञानिक ही है। नीचे दिए गए कुछ अन्य सूत्र विशिष्ट रूप से मनोविज्ञान पर आधारित हैं। अध्यापकों को इनका अनुशीलन व अनुगमन करना चाहिए।

क. ज्ञात से अज्ञात की ओर

बच्चे के सामने उसका ज्ञात है और उसके पीछे के कुछ अनुभव। दूर अतीत और भविष्य की जानकारी के लिए ज्ञात का सन्दर्भ देकर अज्ञात की ओर ले जाने में बालक को सुविधा रहती है।

शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने तथा व्याकरण के नियमों का स्पष्टीकरण करने आदि में यह सूत्र बहुत ही उपयोगी रहता है।

ख. सरल से कठिन की ओर

यदि किसी विषय की पहले सरल बातें समझा दी जाएँ तो बच्चे की उसमें रुचि पैदा हो जाती है। ऐसा करने से बालक कठिन बातें समझने के लिए तैयार हो जाता है।

उदाहरण के लिए लिखना सिखाने के लिए पहले सरलता से बनने वाले स्वर या व्यंजन सिखाए जा सकते हैं। इसी प्रकार पहले वर्णनात्मक निबन्ध और बाद में विचारात्मक या भावनात्मक निबन्ध लिखवाए जाएँ तो बालक का मनोबल बना रहेगा।

ग. मूर्त से अमूर्त की ओर

बच्चे के सामने बहुत सी वस्तुएँ मूर्त या स्थूल रूप में होती हैं। उनकी संकल्पनाओं को वह उन्हें देखकर समझ सकता है। किन्तु गुणात्मक संकल्पनाओं को समझने में बालक को कठिनाई होती है। अतः मूर्त से अमूर्त का सिद्धांत वस्तु की आधारभूत संकल्पनाओं को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है।

उदाहरण के लिए अच्छा-बुरा, लम्बा-छोटा, लोभी-उदार आदि शब्दों की संकल्पनाएँ अमूर्त हैं। छोटे-बड़े का अर्थ स्पष्ट करने के लिए दो बच्चों को सामने खड़ा करके तथा अन्य संकल्पनाओं को कहानी सुनाकर कहानी के पात्रों के व्यवहार द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

घ. विशेष से सामान्य की ओर

बच्चा गाय, भैंस, भेड़-बकरी आदि देखता है। इनका नाम भी जानता है। किन्तु पशु का अर्थ नहीं समझ पाता। अतः इन जानवरों की सहायता से 'पशु' का अर्थ भी स्पष्ट किया जा सकता है। इसी प्रकार फल, सब्जी आदि का अर्थ भी स्पष्ट करना चाहिए। व्याकरण के नियम भी इस विधि से समझाए जा सकते हैं।

ङ. आगमन से निगमन की ओर

उदाहरण द्वारा नियम निकालने की विधि को आगमन विधि कहते हैं। इसकी सहायता से बालक के सामने नियम उपस्थित होता है। नियम निकालने के बाद इसकी पड़ताल सम्भव है। इन परिणामों को अन्य उदाहरणों में प्रयुक्त कर सकते हैं। इस विधि को निगमन विधि कहते हैं। व्याकरण के नियम समझने में यह विधि अत्यन्त उपयोगी है।

II. हिन्दी अध्यापक के गुण

भारतीय समाज में आचार्य का पद अति सम्मान का पद रहा है। आचार्य का पद समाज को आचार की शिक्षा देने का पद था। उसके आदर्श के सामने समाज नतमस्तक था।

ब्रिटिश शासनकाल में जो सम्मान अंग्रेजी अध्यापक को था आजादी के बाद यह स्थान हिन्दी शिक्षक को मिला है। अब उसे अपनी पात्रता को सिद्ध करना होगा। आज वह केवल सामान्य शिक्षक ही नहीं अपितु राजभाषा के प्रचार-प्रसार का दायित्व भी उस पर है। नीचे हम उसके कुछ गुणों का विवेचन करेंगे :—

1. सामान्य गुण

हिन्दी शिक्षक में वे सभी सामान्य गुण होने चाहिए जिनकी समाज हर शिक्षक से आशा रखता है। आकर्षक व्यक्तित्व, मधुर भाषी, प्रखर बुद्धि, सहनशील, उदार हृदयी, सच्चरित्र, विद्यार्थियों के प्रति सहृदयता, सात्विक आहार आदि गुणों की आशा समाज हर अध्यापक से करता है।

2. विशिष्ट गुण

इन सामान्य गुणों के अतिरिक्त भाषा अध्यापक में कुछ विशिष्ट गुण भी होने चाहिए, यथा—

1. शुद्ध उच्चारण

भाषा अध्यापक का सर्वश्रेष्ठ गुण उसका शुद्ध उच्चारण है। यदि उसका

उच्चारण शुद्ध होगा तो उसके सम्पर्क में आने वाले विद्यार्थी का उच्चारण स्वतः शुद्ध होगा। प्राचीन काल में इस बात की परख की जाती थी कि क्या अध्यापक के उच्चारण सम्बन्धी अवयव — नाक, कान, जिह्वा, ओष्ठ, कंठ, दाँत आदि ठीक हैं।

2. प्रभावशाली वक्ता

हिन्दी अध्यापक यदि भाषण कला में निष्णात होगा तो अपने विद्यार्थियों को भी वह अच्छा वक्ता बना सकता है। प्रजातन्त्र के युग में वक्तृत्वकला का बहुत महत्त्व है।

3. सुन्दर लेख

भाषाध्यापक का स्वयं का लेख बहुत सुन्दर होना चाहिए। अच्छे लेख वाला अध्यापक ही अपने सम्पर्क में आने वाले विद्यार्थियों का लेख सुधार सकता है।

4. स्वाध्याय में रुचि

अध्यापक स्वाध्याय से कभी प्रमाद न करे। अच्छा पाठक ही अच्छा वक्ता बन सकता है। आज ज्ञान का विस्फोट इस तीव्र गति से हो रहा है कि बिना स्वाध्याय की वृत्ति के वह पिछड़ जाएगा। पत्र-पत्रिकाओं में उसकी प्रगाढ़ रुचि होनी चाहिए।

5. शोध वृत्ति

अध्यापक में शोध वृत्ति का होना बहुत आवश्यक है। उसके शिक्षण अनुभव का लाभ तभी है जब वह अनुसन्धान की वृत्ति बनाए रखे। यदि अनेक वर्ष पढ़ाने के बाद भी शिक्षक समाज को कोई नया दृष्टिकोण नहीं दे पाया तो उसका क्या लाभ ?

6. भाषा में रुचि

हिन्दी अध्यापक की हिन्दी भाषा में रुचि होनी चाहिए। हिन्दी शब्दावली, शब्दावली निर्माण की विधियाँ, भाषा में अशुद्ध लेखन और उच्चारण के कारण, उन्हें दूर करने के उपाय आदि में उसकी रुचि होनी चाहिए।

7. साहित्य में रुचि

साहित्य में नित्य नूतन विधाओं का जन्म हो रहा है। हिन्दी अध्यापक को अधुनातन साहित्यधारा का परिचय होना चाहिए।

8. व्याकरण का ज्ञान

बिना व्याकरण ज्ञान के हिन्दी शिक्षण करना छिद्र वाली नाव में बैठकर यात्रा करने के समान है। हिन्दी अध्यापक को व्याकरण शास्त्र का ज्ञाता होना चाहिए।

9. सन्दर्भ सामग्री का ज्ञान

विभिन्न प्रकार के कोश—शब्दार्थ कोश, मुहावरा कोश, पर्यायवाची कोश, सन्दर्भ कोश, ज्ञानकोश, पौराणिक कोश, चरित कोश आदि की सहायता से सन्दर्भ सामग्री खोज निकालने का ज्ञान अध्यापक के लिए अनिवार्य है। पाठ में आने वाली अन्तर्कथाओं का बोध तभी कराया जा सकता है जब उनके स्रोत का ज्ञान हो।

इसी प्रकार पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या, अध्यापक दर्शिका, पाठ्य पुस्तक पर आधारित अभ्यास पुस्तिका तथा अन्य पठन सामग्री के बारे में उसे पूरी जानकारी होनी चाहिए।

10. शिक्षण विधियों का ज्ञान

हिन्दी अध्यापक को भाषा शिक्षण में प्रशिक्षित होना चाहिए। बिना प्रशिक्षण के आत्मविश्वास में कमी रह जाती है।

11. विषय और विषय-मूल्यांकन विधियों का ज्ञान

हिन्दी अध्यापक को अपने विषय पर पूरा अधिकार होना चाहिए। आजकल विषय के मूल्यांकन की अनेक नवीन पद्धतियों का विकास हो रहा है। उसे इन विधियों की पूरी जानकारी होनी चाहिए।

व्यावहारिक कार्य

1. पास-पड़ोस या कक्षा के पाँच बच्चों पर भाषा-शिक्षण के सूत्रों का प्रयोग करके देखना तथा अपने अनुभवों को लेखनीबद्ध करना।
2. भाषा-शिक्षण के किसी भी आयाम को लेकर उसका अध्ययन करना और अपने अनुभवों को शोध लेख के रूप में प्रस्तुत करना।
3. आपको अपने अध्ययन काल में कौन अध्यापक श्रेष्ठ लगा और क्यों? तर्क संगत उत्तर लिखना।
4. हिन्दी अध्यापक की वर्तमान स्थिति पर विचार गोष्ठी का आयोजन करना।

5. भाषा अध्यापक संघ या क्लब का गठन करना तथा कार्यक्रमों की रूप-रेखा तैयार करना ।
6. गुरु-महिमा सम्बन्धी श्लोक तथा पद एकत्रित करना ।

सन्दर्भ

Palmes, Harold E. : (1) Oral Method of Teaching Language.

(2) Principles of Language Story.

Ballard : Language and Thought.

डॉ० रघुनाथ सक्राया : हिन्दी शिक्षण विधि ।

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. भाषा-शिक्षण में शिक्षण-सूत्रों के प्रयोग की क्या उपादेयता है? सभी शिक्षण-सूत्रों की उपादेयता पर उदाहरण सहित समीक्षात्मक टिप्पणी लिखें ।
2. भाषायी शिक्षण-सूत्रों का मनोवैज्ञानिक आधार क्या है? आगमन और निगमन शिक्षण-सूत्रों की उदाहरण सहित व्याख्या करें ।
3. 'स्वतन्त्रता से पूर्व विद्यालय में जो स्थान अंग्रेजी अध्यापक का था अब उस पद पर हिन्दी अध्यापक आसीन है।' इस कथन की समीक्षा करें ।
4. सफल हिन्दी अध्यापक से आप किन-किन गुणों की अपेक्षा रखते हैं? किन्हीं पाँच गुणों पर प्रकाश डालें ।
5. टिप्पणी लिखें—
 1. स्वाध्याय 2. सन्दर्भ सामग्री 3. 'मूर्त से अमूर्त की ओर' सूत्र
 4. वैयक्तिक भिन्नता का सिद्धान्त 5. बाल केन्द्रित अध्यापन ।

पस्थिति की स्थिति में पाठ्य पुस्तक घर पर ही अध्यापक का काम करती है। विद्यार्थी इसकी सहायता से गृह कार्य कर सकते हैं।

3. अध्यापक पाठ्य पुस्तक को अपने शिक्षण का आधार बनाता है और अपने लक्ष्यों की ओर प्रेरित रहता है।
4. अभिभावक भी विश्वस्त रहते हैं कि उनके बच्चों के पास अध्ययन का मुख्य आधार है।
5. निरीक्षक और परीक्षक छात्र तथा अध्यापक की कार्यकुशलता का मूल्यांकन पाठ्य पुस्तक के आधार पर कर सकता है।
6. छात्रों को रोजगार देने वाला व्यक्ति या संस्था विश्वस्त हो सकते हैं कि अमुक पाठ्यक्रम या पुस्तक पढ़ने वाला व्यक्ति रोजगार की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकेगा।

V. पाठ्य पुस्तक के प्रकार

प्रदत्त ज्ञान को सुनियोजित विधि से प्रस्तुत करने, उसे पुनर्बलन देने, ज्ञान के अतिरिक्त स्रोत उपलब्ध कराने तथा उसे जीवन का उपयोगी अंग बनाने के लिए पाठ्य पुस्तकों को मोटे रूप से निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जाता है :—

क. गहन अध्ययन (Intensive Reading) के लिए।

ख. द्रुत वाचन (Rapid Reading), अतिरिक्त पठन (Extra Reading) तथा विस्तृत अध्ययन (Extensive Reading) के लिए।

1. गहन अध्ययन सम्बन्धी

गहन अध्ययन या सूक्ष्म अध्ययन के लिए निर्धारित पाठ्य पुस्तकें गम्भीर अध्ययन के लिए होती हैं। इन पुस्तकों में निहित विशिष्ट उद्देश्य, सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव, विचार, मुहावरा, लोकोक्ति, नवीन शब्द, वाक्य संरचना तथा अन्य व्याकरणिक पक्षों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। भाषा के कला तथा शैली पक्ष आदि की ओर विशेष बल दिया जाता है।

2. द्रुत वाचन के लिए पाठ्य पुस्तकें

द्रुत वाचन, अतिरिक्त पठन या विस्तृत अध्ययन के लिए निर्धारित पाठ्य-पुस्तकों में उपर्युक्त प्रकार की पठित सामग्री का पुनर्बलन किया जाता है। इस प्रकार की पुस्तकों में स्वभावतः नवीन शब्द न्यूनतम होते हैं। भाषा, भाव, शैली आदि की पुनरावृत्ति मात्र की जाती है ताकि विद्यार्थी स्वतः अतिरिक्त पठन में रुचि लेने लगे। अतिरिक्त वाचन की अभिरुचि का विकास लगभग तीसरी कक्षा

से आरम्भ किया जा सकता है ताकि विद्यार्थी आगे जाकर साहित्य प्रेमी बन सके।

VI. पाठ्य पुस्तक की विषय वस्तु के आधार

पाठ्य पुस्तकों की विषय वस्तु या पठन सामग्री के मुख्यतः निम्नलिखित आधार हैं :—

1. बालक का वातावरण या परिवेश।
2. बालक का मानसिक विकास।
3. बालक की रुचियाँ।
4. बालक की वर्तमान तथा भावी आवश्यकताएँ।
5. पठन सन्दर्भों की विविधता।
6. साहित्यिक विधाओं का प्रतिपादन।
7. सन्तुलित व्यक्तित्व का विकास।
8. उपयोगी नागरिक बनाना आदि।

प्राथमिक स्तर की पाठ्य पुस्तकों में बालक के परिवार, भोजन, वस्त्र, पास-पड़ोस, कहानी, वर्णन आदि पर बल दिया जाता है तथा माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर साहित्यिक विधाओं, शैलियों तथा भाषा के कला पक्ष पर आधारित पठन सामग्री पर उत्तरोत्तर बल दिया जाता है।

VII. पाठ्य पुस्तक की विषयवस्तु

पाठ्य पुस्तक की विषयवस्तु विविध प्रकार की होती है। डा० के० जी० रस्तोगी तथा अन्य द्वारा किए गए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के सर्वेक्षण के अनुसार प्राथमिक स्तर पर निर्धारित पाठ्य पुस्तकों में विषयों की आवृत्ति के आधार पर निम्नलिखित आँकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। इन आँकड़ों का आधार दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश की पाठ्य पुस्तकें हैं।

तालिका-4

पाठ्य पुस्तकों की विषय वस्तु का आवृत्ति के आधार पर विश्लेषण

क्र०सं० विषय वस्तु	दिल्ली	उत्तर प्रदेश
1. घर, विद्यालय तथा पास पड़ोस	34	20
2. पशु-पक्षी	21	20
3. खेल-कूद	×	7

क्र०सं० विषय वस्तु	दिल्ली	उत्तर प्रदेश
4. प्रकृति तथा प्राकृतिक वातावरण	22	29
5. हास्य, विनोद, मनोरंजन	31	24
6. साहस, वीरता, साहसिक कार्य	22	13
7. देव कथाएँ तथा धर्म	12	20
8. उत्सव, मेले तथा प्रदर्शनी	8	7
9. कहानियाँ	35	15
10. जीवनी	16	6
11. स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य विज्ञान	4	×
12. इतिहास	10	16
13. भूगोल	5	13
14. नागरिकता	×	4
15. प्राकृतिक विज्ञान	8	5
16. सामाजिक-आर्थिक सन्दर्भ	11	7
17. नीति शास्त्र	8	×
18. भाषा के तत्त्व	×	×
19. टेक्नोलोजी या उद्योग विद्या	11	×
20. देश प्रेम	×	×
21. विज्ञान	×	×

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि पाठ्य पुस्तकों की विषय-वस्तु में प्राथमिक स्तर पर ही कितनी विविधता होती है। माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर की पुस्तकों में क्रमशः साहित्यिक जीवनी, कहानियाँ, यात्रा वृत्त, नाटक, लघु उपन्यास आदि का समावेश किया जाता है।

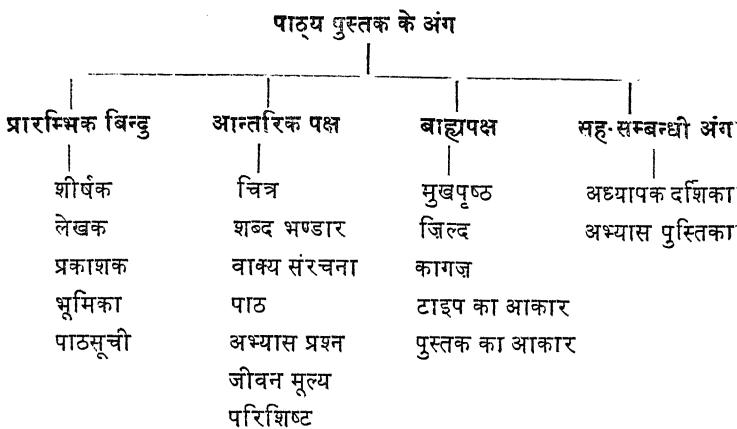
हमारी वर्तमान पाठ्य पुस्तकों में यह दोष है कि स्थानीय परिवेश को कम महत्व दिया जाता है। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा तैयार की गई पुस्तकें कई बार बिना स्थानीय परिवर्तन के भारत के विभिन्न प्रदेशों में निर्धारित कर दी जाती हैं। परिणामस्वरूप स्थानीय छात्रों को कहीं-कहीं विषय वस्तु में अपनत्व का अभाव खटकता है।

भारत की नवीनतम शिक्षा नीति के अनुसार सारे भारत के विद्यालयों में भोटे रूप में 60% पाठ्यक्रम समान होगा। शेष 40% पाठ्यक्रम स्थानीय परिस्थिति के अनुसार चुना जाएगा। पाठ्यक्रम पुस्तकों के लिए यह सुखद स्थिति होगी।

VIII. पाठ्य पुस्तक के अंग

भाषा के अध्यापक को पाठ्य पुस्तकों के विभिन्न अंगों के विषय से अवगत होना चाहिए। इन अंगों से परिचित होकर ही वह पाठ्य पुस्तक के मूल उद्देश्यों का सम्प्रेषण विद्यार्थी तक कर सकता है।

पाठ्य पुस्तक के अंगों को हम प्रारम्भिक बिन्दु, आन्तरिक, बाह्य तथा सह-सम्बन्धी अंगों में बाँट सकते हैं। इन सभी पक्षों को नीचे दिए गए चित्र से स्पष्ट किया गया है।



1. प्रारम्भिक बिन्दु

पाठ्य पुस्तक के प्रारम्भिक बिन्दुओं को भी आगे विभाजित किया जा सकता है। यथा—

क. शीर्षक—पुस्तक का शीर्षक सार गंभीत होता है। शीर्षक के अर्थ के बारे में अध्यापक को जानकारी होनी चाहिए तथा विद्यार्थियों को भी इसके बारे में अवगत कराना चाहिए।

ख. लेखक—भाषा अध्यापक को पुस्तक के लेखक के विषय में जानकारी होनी चाहिए। हर अध्यापक के अपने जीवन अनुभव होते हैं। लेखक या लेखक-मंडल के बारे में जानकारी होने पर हम अपनी प्रतिक्रिया अगले संस्करण में परिष्कार हेतु प्रेषित कर सकते हैं। लेखक या लेखक मण्डल इस प्रकार के सुझाव सदा आमन्त्रित करते हैं। उच्चतर कक्षाओं में नाटककार, उपन्यासकार आदि के जीवन-दर्शन से विद्यार्थियों को अवगत कराना चाहिए।

ग. प्रकाशक—प्रकाशक के बारे में जानकारी होने से अध्यापक तथा बड़ी

कक्षाओं के विद्यार्थी पुस्तक के बारे में अपनी प्रतिक्रिया उचित पते पर भेज सकते हैं।

घ. भूमिका—पाठ्य पुस्तकों की भूमिका में पुस्तक रचना की आवश्यकता, पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय, पुस्तक का दर्शन, पाठन प्रणाली आदि पर प्रकाश डाला जाता है। इसमें अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के प्रति कुछ शब्द कहे जाते हैं। भूमिका में अभिभावकों से भी निवेदन किया जा सकता है।

ङ. पाठ सूची—पाठ सूची पुस्तक का अभिन्न अंग है। अध्यापक को चाहिए कि वह छोटी कक्षाओं से ही विद्यार्थियों में पाठ सूची को पढ़ने तथा उसकी सहायता से पाठों की पृष्ठ संख्या देखकर पुस्तक खोलने की आदत डालें।

पाठ सूची कई बार खण्डों में भी विभाजित की जाती है यथा—कहानियाँ, जीवनी, यात्रा वर्णन आदि। अध्यापक को चाहिए कि प्रत्येक खण्ड के दर्शन या उद्देश्यों को समझें और सम्पूर्ण इकाई को उसी के अनुसार पढ़ाएँ।

2. आन्तरिक पक्ष

भाषा की पाठ्य पुस्तक के आन्तरिक पक्ष को कई उप विभागों में विभाजित किया जा सकता है। यथा—

क. चित्र—चित्रों के माध्यम से निकट-दूर की वस्तुओं, स्थूल-सूक्ष्म भावों, संकल्पनाओं, स्थितियों, वर्तमान तथा प्राचीन काल के दृश्यों, प्रसिद्ध व्यक्तियों के चित्र आदि को प्रस्तुत करके पठन सामग्री आकर्षक, रोचक तथा बोधगम्य बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

ये चित्र विभिन्न आकार-प्रकार, रंग आदि के होते हैं तथा सन्दर्भ के अनुसार उचित स्थान पर इन्हें रखा जाता है। अध्यापक को चाहिए कि उचित समय पर इन चित्रों के बारे में विद्यार्थियों से बातचीत करे और भली प्रकार इनका निरीक्षण कराए।

डा० के० जी० रस्तोगी तथा अन्य द्वारा किए गए सर्वेक्षण द्वारा विभिन्न प्रदेशों की प्राथमिक स्तर की पाठ्य पुस्तकों के चित्रों के आकार, संख्या, प्रतिशत-स्थान आदि के कुछ अंश यहाँ उद्धृत किए जाते हैं।

अगले पृष्ठ पर दी गई तालिका से स्पष्ट है कि आरम्भिक कक्षाओं में अधिक चित्रों की आवश्यकता अनुभव की जाती है तथा बड़ी कक्षाओं में ये उत्तरोत्तर कम होते जाते हैं।

ख. शब्द भण्डार—पाठ्य पुस्तक के माध्यम से शब्द भण्डार में वृद्धि भाषा शिक्षण का महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है। आरम्भिक कक्षाओं में बच्चे के वातावरण से सम्बन्धित नियन्त्रित शब्दावली या Controlled vocabulary पाठ्य पुस्तकों

तालिका-5

पाठ्य पुस्तकों में विभिन्न आकार के चित्रों की संख्या तथा प्रतिशत स्थान*

चित्र संख्या/स्थान प्रतिशत			दिल्ली राज्य					उत्तर प्रदेश				
चित्र का आकार	कक्षा—1	2	3	4	5	1	2	3	4	5		
स्टैम्प	94	59	27	—	13	46	—	14	49	8		
	44.34%	38.56%	22.31%	—	24.52%	32.39%	—	17.72%	52.69%	25.81%		
पासपोर्ट	25	75	16	7	21	70	14	19	1	9		
	11.79%	49.02%	13.22%	17.95	39.62%	49.30%	25.93%	24.05%	11.08%	29.03%		
काई	72	18	71	19	12	24	40	46	38	13		
	33.96%	11.76%	58.63%	43.72%	22.64%	16.90%	76.07%	88.30%	40.46%	41.94%		
फुलपेज	21	1	7	13	7	2	—	—	5	1		
	9.91%	.65%	5.79%	33.34%	13.21%	1.41%	—	—	5.38%	5.38%		
<hr/>												
चित्रों का योग	212	153	121	39	53	142	54	79	93	31		

*Comparative Study of Mother tongue Textbooks, N. C. E. R. T. (N. D.) Mimeographed.

में दी जाती है। एक ही शब्द की आवृत्ति एक ही पृष्ठ या पाठ में कई बार की जाती है।

पूर्व सन्दर्भित सर्वेक्षण के अनुसार दिल्ली में निर्धारित भाषा की पाठ्य पुस्तक में पहली से पाचवीं कक्षा तक क्रमशः 175, 215, 699, 928 तथा 875 नवीन शब्दों का समावेश किया गया।

नवीन शब्दों के बारे में कुछ विद्वानों का कथन है कि विद्यार्थी जिस शब्द को पहली बार प्रकाशित रूप में पढ़े उसे नया शब्द माना जाए।

दूसरे विद्वानों की धारणा है कि अर्थ की दृष्टि से कठिन शब्द ही नवीन शब्द माने जाएँ। प्रत्येक कक्षा में वही शब्द दिए जाएँ जिनको उस आयु वर्ग के अधिकांश विद्यार्थी समझ सकें।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से डा० जय नारायण कौशिक, श्रीमती (डा०) लक्ष्मीशंकर प्रभृति शोधकर्ताओं ने पहली कक्षा से आठवीं कक्षा तक आयु वर्ग के विद्यार्थियों के लिए शब्दावली तैयार की हैं जिनमें प्रत्येक शब्द का कठिन्य प्रतिशत (Difficulty value) ज्ञात किया गया है। इन शब्द सूचियों की सहायता से “Graded Lessons” तैयार किए जा सकते हैं। अर्थात् सरल शब्द आरम्भ के पाठों में तथा कठिन शब्द उत्तरोत्तर लिए जा सकते हैं।

माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक कक्षा की पाठ्य पुस्तकों में प्रत्येक पाठ में 20 से 30 तक नए शब्द दिए जा सकते हैं। यथासम्भव सहायक पुस्तकों या द्रुत पाठ की पुस्तकों में नवीन शब्द नहीं दिए जाते। हाँ, यदि नए शब्द हों भी तो सन्दर्भ के आधार पर भाव ग्रहण पर ही बल दिया जाता है।

ग. वाक्य संरचना—प्राथमिक स्तर की पाठ्य पुस्तकों में वाक्य सरल और छोटे होते हैं। उपर्युक्त सर्वेक्षण के अनुसार एन० सी० ई०आर० टी० की प्राथमिक स्तर की भाषा की पाठ्य पुस्तकों में वाक्यों का विश्लेषण निम्न प्रकार से था :—

तालिका-6

शब्द संख्या के आधार पर पाठ्य पुस्तकों का वाक्य विश्लेषण

वाक्यों में शब्द संख्या	कक्षा			
	2	3	4	5
(क) 6 शब्दों से कम के वाक्य	19	34	15	12
(ख) 6 से 10 शब्दों के वाक्य	64	108	170	157
(ग) 11 से 15 शब्दों के वाक्य	25	87	129	120
(घ) 15 से अधिक शब्दों के वाक्य	1	35	63	62

माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक कक्षा की पाठ्य-पुस्तकों में संरचना की

दृष्टि से कठिन वाक्यों का प्रयोग होता है। सरल के स्थान पर मिश्रित तथा संयुक्त वाक्यों का बाहुल्य होता है।

घ. पाठ—पाठ्य पुस्तकों में पाठों की संख्या, पाठ की लम्बाई, पुस्तक की पृष्ठ संख्या आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है क्योंकि सामान्यतः 220 से 240 कार्य दिवसों में इस सामग्री को पढ़ाना होता है। आरम्भिक कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकों में उपर्युक्त आधार पर किए गए विश्लेषण के अंश नीचे दिए जा रहे हैं—

तालिका-7

पठन-सामग्री पर आधारित पाठों की लम्बाई

(एन० सी० ई० आर० टी० की पाठ्य पुस्तकें)					
कक्षा—	1	2	3	4	5
1. पृष्ठों की संख्या	46	55	62	72	95
2. पाठों की संख्या	16	21	29	30	33
3. पाठों की औसत लम्बाई (पृष्ठों के आधार पर)	2.88	2.62	2.14	2.40	2.88

माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों में 200 से 400 तक पृष्ठ दिए जा सकते हैं क्योंकि विद्यार्थियों के भावग्रहण करने की शक्ति तथा वाचन गति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

ड. अभ्यास—भाषा की पाठ्य पुस्तकों के पाठ के अन्त में दिए गए अभ्यास भाषा के विभिन्न कौशलों के विकास के लिए बहुत महत्त्व रखते हैं। अभ्यासों की संख्या, उनके आधार, प्रश्नों के प्रकार आदि सम्बन्धी जानकारी नीचे दी जा रही है :—

(i) अभ्यासों की संख्या—भाषा की पाठ्य पुस्तकों में सामान्यतया प्रति पाठ चार से सात अभ्यास प्रश्न दिए जा सकते हैं। ये अभ्यास पाठ के शिक्षण बिन्दुओं पर आधारित होने चाहिए।

(ii) भाषा-कौशल—भाषा की पाठ्य पुस्तकों के प्रश्नों का सम्बन्ध भाषा-कौशलों से होना चाहिए। भाषा कौशलों की गहनता तथा संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। सामान्यतया निम्नलिखित भाषा कौशलों पर आधारित अभ्यासों का निर्माण किया जाता है :—

(क) पठन सम्बन्धी कौशल

वर्णों की पहचान सम्बन्धी प्रश्न।

मात्राओं की पहचान सम्बन्धी प्रश्न।

शब्दों में वर्ण की पहचान सम्बन्धी प्रश्न ।
 शब्द पुंजों की पहचान सम्बन्धी प्रश्न ।
 वाक्यों के वाचन सम्बन्धी प्रश्न ।

(ख) सुनने की योग्यता सम्बन्धी कौशल

शब्द के आदि, मध्य तथा अन्त में वर्ण का ध्वनि विभेदीकरण ।
 न-ण, श-ष-स की ध्वनियों का विभेदीकरण ।
 छ-क्ष, ल-ल् की ध्वनियों का विभेदीकरण ।
 अल्पप्राण-महाप्राण ध्वनियों का विभेदीकरण ।
 अनुतान के अनुसार भावग्रहण करने की क्षमता ।
 ह्रस्व तथा दीर्घ मात्रा का विभेदीकरण आदि ।

(ग) लिखने की योग्यता सम्बन्धी कौशल

वर्णों का शुद्ध लेखन ।
 संयुक्त अक्षरों का शुद्ध लेखन ।
 ह्रस्व तथा दीर्घ मात्राओं का शुद्ध लेखन ।
 अनुच्छेद लेखन ।
 सार लेखन तथा टिप्पणी लेखन ।
 निबन्ध लेखन तथा पत्र लेखन ।
 समालोचना तथा व्याख्या ।
 सृजनात्मक तथा मौलिक लेखन ।
 आलंकारिक भाषा लेखन ।
 अपठित सन्दर्भ का भाव ग्रहण करके उसे अपने शब्दों में लिखना ।

(घ) मौखिक अभिव्यक्ति की योग्यता सम्बन्धी कौशल

पाठ के अन्त में इस प्रकार के अभ्यासों का भी नियोजन किया जाता है जिनसे विद्यार्थी को पाठ पर आधारित प्रश्न तथा स्वयं की अनुभूति को प्रकट करने का समुचित अवसर मिले । इन अभ्यासों में निम्नलिखित प्रकार के प्रश्न पूछे जा सकते हैं :—

भावग्रहण करने की योग्यता सम्बन्धी प्रश्न ।
 अर्थ ग्रहण करने की योग्यता सम्बन्धी प्रश्न ।
 प्रतिक्रिया जानने सम्बन्धी प्रश्न ।
 स्वयं के अनुभव अभिव्यक्त करने सम्बन्धी प्रश्न ।
 देखी-सुनी तथा पढ़ी घटना की अभिव्यक्ति सम्बन्धी प्रश्न ।

(iii) अभ्यास प्रश्न

(क) प्रश्नों का स्वरूप

अभ्यास प्रश्नों में सामान्यतया निम्नलिखित प्रकार के प्रश्न होते हैं :—

1. निबन्धात्मक ।
2. लघूत्तर ।
3. वस्तुनिष्ठ ।
4. क्रियाशीलता आधारित (Activity based) ।

(ख) प्रश्नों की प्रकृति

अभ्यासों में मुख्यतया निम्नलिखित प्रकृति के प्रश्न दिए जाते हैं :—

1. प्रत्यास्मरणात्मक ।
2. विकासात्मक ।
3. निष्कर्षात्मक ।
4. निदानात्मक ।

च. जीवन मूल्य

पाठ्य पुस्तकें वाचन मात्र की सामग्री नहीं हैं। इनके माध्यम से विद्यार्थियों में देश तथा मानव जाति के मूल्यों का भी विकास किया जाता है। अध्यापक का यह शायित्व है कि जहाँ भी जीवन मूल्य की चर्चा आए वहाँ उस पर चर्चा की जाए। सामान्यतया निम्नलिखित जीवन मूल्य पाठ्य पुस्तकों में सँजोए होते हैं :—

1. स्वच्छता 2. सहयोग तथा सहकारिता 3. प्राणियों पर दया 4. छोटों पर प्रति प्यार 5. बड़ों का सम्मान 6. सावधानी बरतना 7. प्रसन्न चित्त रहना 8. श्रम का महत्व 9. निश्चय की भावना 10. समानता 11. श्रद्धा तथा विश्वास 12. क्षमाशीलता 13. विनम्रता 14. जिज्ञासा या खोज की भावना 15. पहलकदमी की भावना 16. कर्तव्य परायणता 17. दयाभाव 18. अगुआई की भावना 19. धैर्य 20. देशप्रेम 21. कला तथा सौन्दर्य प्रेम 22. आत्मसम्मान 23. एकता 24. विश्वास पात्रता 25. निष्कपटता 26. परोपकार 27. परहित तत्परता 28. आज्ञाकारिता 29. न्याय 30. सद्ब्यवहार आदि ।

: परिशिष्ट

सामान्यतया पाठ्य पुस्तकों में परीक्षण, टिप्पणी, कठिन शब्दार्थ आदि के रूप

में परिशिष्ट दिया जाता है। भाषा अध्यापक को चाहिए कि वह स्वयं इसका उचित उपयोग करे तथा विद्यार्थियों को भी इससे अवगत कराए।

3. बाह्य पक्ष

पुस्तक का आकार, मुख पृष्ठ, जिल्द, कागज, अक्षरों का आकार, प्रकाशन, मूल्य आदि बिन्दुओं की गणना बाह्य पक्ष (Physical aspect) में की जाती है।

सामान्यतया प्राथमिक स्तर पर पुस्तक का आकार 9.5" × 7", माध्यमिक स्तर पर 8" × 6" तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 8" × 5" सुविधाजनक रहता है।

टाइप का आकार पहली कक्षा के लिए 30 प्वाइंट, दूसरी कक्षा के लिए 24 प्वाइंट, तीसरी कक्षा के लिए 18 प्वाइंट, चौथी कक्षा के लिए 14 प्वाइंट ब्लैक तथा पाँचवीं से बारहवीं कक्षा तक 12 प्वाइंट सुविधाजनक रहता है। इसी प्रकार पहली कक्षा की पाठ्य पुस्तकों की पंक्ति की लम्बाई 4" तथा बड़ी कक्षाओं में उत्तरोत्तर यह बढ़ाई जा सकती है।

4. पाठ्य पुस्तक के सह सम्बन्धी अंग

क. अध्यापक दशिका

भाषाविद् पाठ्य पुस्तक को अपने आप में पूर्ण नहीं मानते। जिस समय तक पाठ को लिखने का उद्देश्य, पाठ को पढ़ाने के लिए आवश्यक तैयारी, पाठ पढ़ाने की विधि, सहायक उपकरण आदि का ज्ञान अध्यापक को नहीं हो, वह पाठ की मूल भावना का स्पन्दन विद्यार्थियों में ठीक विधि से नहीं कर सकता। इस कार्य की पूर्ति के लिए पाठ्य पुस्तक पर आधारित अध्यापक दशिका का भी निर्माण किया जाता है।

ख. अभ्यास पुस्तिका

पाठ से सम्बन्धित भाषा कौशलों का विकास, लेखन अभ्यास, परीक्षण आदि के लिए पाठ्य पुस्तक पर आधारित अभ्यास पुस्तिका भी तैयार की जाती है। ये अभ्यास पुस्तिकाएँ प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर और भी आवश्यक होती हैं क्योंकि भाषिक तत्त्वों के विकास का यह उचित समय होता है।

व्यावहारिक कार्य

1. अपने राज्य की प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर की भाषा सम्बन्धी पाठ्य पुस्तकों की सूची बनाना।

2. उपर्युक्त सभी पुस्तकों की भूमिका पढ़ना ।
3. उपर्युक्त सभी पाठ्य पुस्तकों के अभ्यासों के नमूनों का अध्ययन करना ।
4. इन सभी पुस्तकों की बाह्य पक्ष की दृष्टि से समीक्षा करना ।
5. इन पाठ्य पुस्तकों की आन्तरिक पक्ष की दृष्टि से समीक्षा करना ।
6. इन पाठ्य पुस्तकों की धर्म-निरपेक्षता, प्रजातान्त्रिकता, तथा राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से समीक्षा करना ।
7. पाठ्य पुस्तकों की समीक्षा जीवन-मूल्यों की दृष्टि से करना ।
8. विषयों की व्यापकता की दृष्टि से पाठ्य पुस्तकों की समीक्षा करना ।
9. पाठ्य-द्वयों की दृष्टि से पाठ्य पुस्तकों की सम्पूर्णता का विवेचन करना ।
10. पड़ोसी राज्य की पाठ्य पुस्तकों का अपने राज्य की पाठ्य पुस्तकों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करना ।

सन्दर्भ

1. Kaushik, Jai Narain, Basic Hindi Vocabulary, Lipi Prakashan, Darya ganj, New Delhi-110002 (1979).
2. Rastogi, K. G., Comparative Study of Mother Tongue-Textbooks, Department of Textbooks, N. C. E. R. T., New Delhi-110016 (N. D.) Mimeographed.
3. Preparation and Evaluation of Textbooks in Mother Tongue, NCERT, New Delhi-110016 (1970).
4. Syllabus and Courses for Secondary School Examination 10+2 Pattern, Central Board of Secondary Education, New Delhi (1977).
5. National curriculum for Primary and Secondary Education—A Frame work—NCERT (1985).
6. डा० रघुनाथ सफ़ाया : हिन्दी शिक्षण विधि ।

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. पाठ्य पुस्तक क्या है ? हर पुस्तक को पाठ्य पुस्तक की संज्ञा क्यों नहीं दी जा सकती ?
2. पाठ्य पुस्तक का बालक के भाषायी विकास में क्या महत्त्व है ? गहन अध्ययन और द्रुत अध्ययन की पुस्तकों के माध्यम से बच्चों में भाषा का विकास किस प्रकार होता है ?

3. पाठ्य पुस्तकों की विषय वस्तु के चयन का क्या आधार होना चाहिए ?
अपने राज्य की किसी भी कक्षा की पाठ्य पुस्तक की विषय वस्तु चयन की दृष्टि से समीक्षा करें ?
4. पाठ्य पुस्तक के बाह्य पक्ष और आन्तरिक पक्ष से क्या अभिप्राय है ?
आन्तरिक पक्ष के बिन्दुओं के महत्त्व पर प्रकाश डालिए ।
5. टिप्पणी लिखें—
 1. पाठ्य पुस्तक के प्रारम्भिक बिन्दु ।
 2. पाठ्य पुस्तकों में चित्रों का महत्त्व ।
 3. पाठ्य पुस्तक में अभ्यास प्रश्नों की उपादेयता ।
 4. पाठ्य पुस्तक के परिशिष्ट ।
 5. पाठ्य पुस्तक के सह-सम्बन्धी अंग ।

अध्याय 5

बच्चों में भाषा का विकास-क्रम

I. सामान्य परिचय

बच्चों में भाषा के विकास की समस्या पर देश-विदेश के विद्वानों ने गहन चिन्तन किया है। बच्चे की अस्पष्ट वाणी सामाजिक वातावरण में किस प्रकार सशक्त वाणी में परिवर्तित हो जाती है वास्तव में यह गवेषणा का महत्वपूर्ण विषय है। बच्चों में भाषा के विकास पर विचार करते समय दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक आदि कई पहलुओं से विचार किया जा सकता है। शरीर विज्ञानी इस बिन्दु पर बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास के दृष्टिकोण से विचार करते हैं।

II. भाषा विकास-क्रम सम्बन्धी कुछ मत

1. भारतीय विद्वानों का मत

भारतीय विद्वानों का मत है कि बच्चा पूर्व जन्म से ही भाषायी संस्कार अपने साथ लाता है। गत जन्म के योगभ्रष्ट मनुष्य अपनी साधना को आगामी जन्म में पुनः सिद्ध करते हैं। यही कारण है कि शंकराचार्य जैसे कुछ विद्वान अल्प आयु में ही वेद-वेदांतों को कण्ठस्थ करने, उन पर भाष्य लिखने और अनेक विरोधियों को तर्क के माध्यम से परास्त करने में सफल हुए। केवल एक जन्म में और वह भी अल्प आयु में यह संभव नहीं है। ऐसा अलौकिक प्रताप पूर्व संचित पुण्यों का परिणाम है।

मतृहरि ने वाक्य पदीय में इस समस्या पर चर्चा करते समय लिखा है कि जन्म काल के समय बच्चे में 'शब्द भावना' के अंकुर होते हैं। यही शब्द भावना भाषा के विशाल वट वृक्ष के रूप में विकसित होती है।

2. पाश्चात्य विद्वानों का मत

पेस्टोलोजी, फ्रोबेल आदि विद्वानों ने कई शताब्दी पूर्व बच्चे में भाषा के विकास की समस्या पर विचार किया था। किन्तु इस समस्या पर गहन चिन्तन उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में डार्विन, प्रेयर, सली, शिन तथा उनके अनुयाइयों द्वारा किया गया। इन विद्वानों का मत है कि बच्चे की आरम्भिक अस्पष्ट

ध्वनियों, हँकारों तथा किलकारियों का भी कोई न कोई अर्थ होता है।

3. शरीर विज्ञानियों का मत

पिछले पचास वर्षों से शरीर विज्ञान के क्षेत्र में दोलनदर्शी विद्युत मस्तिष्क (Oscilloscope) एक्सरे लेखन (Electro encephalograph) आदि यन्त्रों के आविष्कार से बच्चों में भाषा के विकास के बारे में महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ा है। जीव-विज्ञान, भौतिक रसायन-विज्ञान तथा भ्रूण विज्ञानियों ने संयुक्त रूप से मिलकर बच्चे में भाषा के विकास पर अध्ययन किया है।

नाड़ी क्रिया विज्ञानी (Neurophysiologist) क्षेत्र के गवेषकों ने शरीर में भाषा के मूल अंकुर तक पहुँचने का प्रयत्न किया है। इन गवेषकों का कथन है कि स्त्री-पुरुष के समागम के समय जिस प्रकार की उनकी मानसिक और शारीरिक स्थिति होगी भ्रूण अवस्था में बच्चे के वैसे ही नाड़ी मण्डल तथा स्नायुओं का विकास होगा। भाषा सीखने की क्षमता इस नाड़ी मंडल के निर्माण और विकास पर आश्रित है।

आनुवंशिकी विज्ञानियों (Geneticists) या उत्पत्ति शास्त्रविज्ञों का भी यही कथन है कि जन्म के बाद बालक में कालक्रमानुसार उन्हीं गुणों का विकास होता जाएगा जो भ्रूण अवस्था में प्राप्त हुए हैं। भाषा सीखने की योग्यता बच्चे के नाड़ी मंडल की अवस्था द्वारा प्रभावित होगी। यही कारण है कि भारत में सन्तान उत्पत्ति उद्देश्य पूर्ण मानी जाती थी और स्त्री-पुरुष की सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा के बाद ही सुखद वातावरण में रति समागम की अनुमति थी।

सामाजिक वातावरण बच्चे की बोली के विकास में सहायक मात्र होता है। भाषा सम्बन्धी विकास की भिन्नता जन्मजात योग्यताओं की भिन्नता के कारण है।

III. बच्चे में भाषा के विकास को प्रभावित करने वाले कारक

ऊपर इस बात की चर्चा की गई है कि भाषा सीखने की क्षमता जन्मजात योग्यताओं से प्रतिबन्धित है। सामाजिक वातावरण उन योग्यताओं के विकास का अवसर मात्र देता है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि भाषा सीखने और सिखाने की बात को केवल भाग्य पर छोड़ दिया जाए। सशक्त पारिवारिक, सामाजिक तथा विद्यालयी वातावरण भाषा कौशल के विकास में अत्यन्त सहायक हो सकते हैं। नीचे ऐसे कारकों पर चर्चा की गई है जो भाषा सीखने की क्षमताओं को प्रभावित करते हैं।

बच्चे में भाषा के विकास को प्रभावित करने वाले कारक

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
शारीरिक स्वस्थता	कालिक आयु	प्रज्ञा	भाषायी अभिवृत्ति	द्विभाषिकता	यमजता	लिंग भेद	परिवार का आकार	क्षेत्रीयता	सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थिति	विद्यालयी वातावरण	पाठ्य पुस्तकें

1. शारीरिक स्वस्थता

शारीरिक स्वस्थता भाषा के विकास को प्रभावित करती है। बच्चे की श्रव्य और दृश्य शक्ति शब्दावली के विकास, वाचन की क्षमता और अभिव्यक्ति कौशल को प्रभावित करती है। श्रवणेंद्री दोष के कारण ध्वनि विभेदीकरण में कठिनाई होती है तथा अल्पप्राण-महाप्राण, घोष-अघोष ध्वनियों का अन्तर कर पाना कठिन हो जाता है।

शरीर का अल्प विकास, भार, क्रद, ओलापन, जिह्वा दोष आदि अनेक ऐसे शारीरिक कारण हैं जो भाषा के विकास में बाधक होते हैं।

प्रबुद्ध शिक्षक को इस ओर विशेष सचेत रहने की आवश्यकता है।

2. कालिक आयु

सामान्यतया जन्मकाल के समय बच्चे में बोलने से सम्बन्धित सभी अवयव होते हैं और जन्मजात रूप से ही वह उनका संचालन स्वतः ही करता है। किन्तु जिस प्रकार समाज में कालक्रम के अनुसार भाषा का विकास होता रहता है उसी प्रकार आयु के साथ-साथ समाज के सम्बन्ध में आने से बच्चे में भी भाषा का शनैः-शनैः विकास होता रहता है।

बच्चे में अनुकरण की सहज प्रवृत्ति होने के कारण चारों ओर हाने वाली ध्वनियों को वह जाने-अनजाने में सुनता रहता है और शनैः-शनैः उनका अनुकरण करता है। आयु के साथ बच्चा यह भी अनुभव करता है कि भाषा या शब्दों का प्रयोग उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति का सशक्त माध्यम है।

अल्प आयु के बच्चे में काल तथा दूरी केवल वर्तमान (अब) और सम्मुख (यह) तक सीमित होती है। तीन वर्ष की आयु होते-होते उसकी स्मरण शक्ति में चेतना आने लगती है। उसकी भूत (कब) और दूरी (वह) की परिधि बढ़ने लगती है। उसकी कल्पना शक्ति का विकास होने लगता है और वह अप्रस्तुत वस्तु की संकल्पना करने की स्थिति में आने लगता है।

शैशवकाल भाषा सीखने की दृष्टि से जीवनकाल का महत्वपूर्ण पड़ाव है। आयु के बढ़ने के साथ-साथ मस्तिष्क में स्थित भाषा सीखने के केन्द्र कठोर होने लगते हैं।

शैशवकाल में बच्चे को भाषा का ज्ञान स्थूल अनुभवों के आधार पर होता है। कठोर-कोमल, स्वाद, गन्ध आदि का अनुभव विभिन्न इन्द्रियों द्वारा होता है। लोरी सुनना, कहानी सुनना, बातचीत करना, देखी-सुनी बातों का वर्णन करना आदि अनेक ऐसे अनुभव हैं जो आयु के बढ़ने के साथ-साथ उसकी भाषा के विकास में सहायक होते हैं।

आयु की वृद्धि के साथ-साथ बच्चे की रुचि का भी परिष्कार होता रहता है और परिणामस्वरूप रुचि के क्षेत्र की शब्दावली में भी असाधारण वृद्धि होने लगती है।

3. प्रज्ञा

प्रज्ञा या बुद्धि भाषा के विकास में महत्वपूर्ण साधन है। किसी भी भाषा की शब्दावली किन्हीं वस्तुओं या संकल्पनाओं का सार्थक ध्वनि के माध्यम से लिखित या मौखिक रूप में मूर्तिमान रूप होती है। जिस व्यक्ति को अमूर्त या मूर्त संकल्पनाओं को ग्रहण करने, उन्हें धारण करवाने तथा प्रकट करने की जितनी क्षमता होगी उसकी भाषा उतनी ही अधिक सटीक होगी। भाषा की सटीकता प्रज्ञा पर अवलंबित है। अधिकांशतः यह देखा जाता है कि जिसकी भाषा का विकास अच्छा होगा वह सभी विषयों में भी अच्छे अंक प्राप्त करेगा।

4. भाषायी अभिवृत्ति

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कोई न कोई विशिष्ट अभिवृत्ति या रुझान होता है। इसी रुझान के कारण वह एक क्षेत्र में दूसरे क्षेत्र की तुलना में आगे निकल जाता है। किसी बच्चे की भाषायी अभिवृत्ति उसका विशिष्ट लक्षण हो सकता है। यह अभिवृत्ति जन्मजात भी हो सकती है। भाषायी अभिवृत्ति-परीक्षण द्वारा इस बात का पता लगाया जा सकता है कि बालक में ध्वनि विभेदीकरण करने, ध्वनियों को स्मरण रखने, भाषा विश्लेषण करने आदि की कितनी विशिष्ट योग्यता है।

5. द्विभाषीयता

द्विभाषीयता या बहुभाषीयता कारक भाषा के विकास को प्रभावित करते हैं। जिन परिवारों में माँ की भाषा पिता की भाषा से भिन्न होती है वहाँ बच्चे की भाषा के विकास में बाधा उत्पन्न होती है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि ऐसी स्थिति में बच्चे में तुतलाना, हकलाना जैसे वाणी दोष उत्पन्न हो सकते हैं। बच्चों की इस कठिनाई का ध्यान रखते हुए आरम्भिक अवस्था में बच्चे की शिक्षा मातृ-भाषा में प्राप्त करने की व्यवस्था की जाती है।

6. यमजता

यमजता या यमलता भी बच्चों के भाषा विकास को प्रभावित करती है। कई बार ऐसे जोड़ले बच्चों में भाषा का विकास कम हो जाता है क्योंकि वे अपनी ही भाषा गढ़ लेते हैं और उन्हीं संकेतों में बातचीत करते हैं।

कुछ अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है कि जोड़ले बच्चों में कई बार नाड़ी-मंडल संबंधी दोष उत्पन्न हो जाते हैं जो भाषा के विकास में बाधक होने लगते हैं। ऐसे बच्चे बोलना भी देर से सीखते हैं।

7. लिंग भेद

कुछ स्थितियों में लिंग भेद भी भाषा के विकास को प्रभावित करता है। मोटे तौर पर यह देखने में आता है कि आरम्भिक अवस्था में लड़कियों का उच्चारण, पठनगति, शब्दावली आदि लड़कों की तुलना में अच्छी होती है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि सामाजिक परिस्थिति के अनुसार लड़कियों को घरेलू काम-काज में अधिक हाथ बँटाना पड़ता है अतः उनकी शब्दावली भी अनुपाततः विस्तृत होती जाती है। लड़कियाँ घरेलू वातावरण में बड़ी अवस्था की महिलाओं के अधिक सम्पर्क में आती हैं तथा लड़के समवयस्कों में घर के बाहर अपना समय व्यतीत करते हैं।

8. परिवार का आकार

परिवार की सदस्य संख्या भी बच्चे के विकास को प्रभावित करती है। * पश्चिमी देशों में किए गए अध्ययनों से ज्ञात होता है जिन परिवारों की सदस्य संख्या अधिक होती है वहाँ बच्चों की ओर कम ध्यान दिया जाता है और परिणामतः उनकी भाषा का विकास कम होता है। बड़े परिवारों में बच्चे अधिकतर बच्चों के साथ खेलते हैं। भाषा का विकास इस बात पर भी आश्रित है कि बच्चे बड़ों की भाषा को कितना अधिक सुन पाते हैं। भारतीय समाज में दादा-दादी और नाना-नानी की कहानियों की बात इसलिए भी प्रसिद्ध है

कि बालक उनसे सदा कुछ-न-कुछ सीखते रहते थे। कहानियों के माध्यम से जाने-अनजाने में बच्चों की भाषा का विकास होता रहता था। इकलौती संतान को माता-पिता के सम्पर्क में रहने का अधिक से अधिक अवसर मिलता है। उसके अनुभव भी विस्तृत होते हैं तथा बड़ों के सम्पर्क में रहकर भाषा के अधिकाधिक अवसर प्राप्त होते हैं।

9. क्षेत्रीयता

भौगोलिक स्थिति भी बच्चे के भाषा संबंधी विकास को प्रभावित करती है। पहाड़ी स्थानों, मरुस्थली भू-भागों, बीहड़ जंगलों तथा अलग-थलग पड़ी बस्तियों में रहने वाले बच्चों की भाषा का विकास भली प्रकार से नहीं हो पाता। भाषा सामाजिक व्यवहार और प्रयोग की वस्तु है। जहाँ पर अधिकाधिक लोगों का संबंध जितना ही अधिक होगा वहाँ विभिन्न स्तरों की शब्दावली का उतना ही अधिक प्रयोग होगा। शहरी क्षेत्र के बच्चों की शब्दावली का विकास इसलिए अधिक हो जाता है कि वहाँ विभिन्न आर्थिक, सामाजिक स्तर के लोग व्यापार आदि के माध्यम से अधिकाधिक संख्या में एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं। इसी सम्पर्क से बच्चे की भाषा परोक्ष या अपरोक्ष विधि से प्रभावित होती रहती है।

10. सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ

भाषा का संबंध किसो देश तथा काल की सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थितियों से है। सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से समृद्ध देश की भाषा भी समृद्ध होगी तथा वहाँ के बच्चों की भाषा पर भी इसका सीधा प्रभाव पड़ेगा।

जो बच्चे सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेते हैं। ड्रामा, फ़िल्म, दूरदर्शन आदि के कार्यक्रम देखते हैं, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से समृद्ध परिवारों से संबंधित हैं उनकी शब्दावली अन्य बच्चों की तुलना में कहीं अधिक विकसित होती है।

परिवार के रहन-सहन का ढंग भी बच्चे के शब्द भंडार के विकास को प्रभावित करता है। कुछ परिवारों में बच्चे को पूरा सम्मान दिया जाता है। भोजन, सैर-सपाटा, खेल आदि अवसरों पर बच्चों से उन्मुक्त भाव से बातचीत करने से उनकी शब्दावली में असाधारण वृद्धि होती है। ऐसे अवसरों पर माता-पिता जान बूझ कर ऐसी शब्दावली का प्रयोग कर सकते हैं जिसका बच्चा स्थूल या सूक्ष्म रूप से उस वातावरण में अनुभव कर सके और वह शब्दावली सहज भाव से उसके अनुभव का अंग बन जाए।

राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न माध्यमों से बच्चों के लिए ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है जो बच्चे के भाषा-विकास में सहायक हो। स्वातंत्र्योत्तर बच्चों की शब्दावली तथा भाषायी कौशल स्वतंत्रता पूर्व के बच्चों से कहीं समृद्ध है। इसका कारण इस अवधि में हुए अनेक सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हैं। स्वभावतः इक्कीसवीं शताब्दी में कंप्यूटरी शब्दावली का बाहुल्य होने लगेगा।

11. विद्यालयी वातावरण

विद्यालय के वातावरण का बच्चे के भाषा संबंधी विकास से दूरगामी संबंध है। जिस विद्यालय में जितनी भी अधिक पाठ्यचर्या सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जाएगा वहाँ बच्चे को इन्हें देखने, सुनने तथा इनमें भाग लेने के उतने ही अधिक अवसर प्राप्त होंगे। इन कार्यक्रमों से बच्चे का शब्द भंडार तथा उसके अभिव्यक्ति पक्ष पर असाधारण प्रभाव पड़ेगा।

बाल सभा, वाक्चातुर्य प्रतियोगिता (Declamation Contest), आशु-भाषण प्रतियोगिता (Extempore speech contest), वाद विवाद प्रतियोगिता, पर्यवेक्षित अध्ययन काल (supervised study period), पुस्तकालय डायरी आदि ऐसे कार्य हैं जिनसे बच्चे लाभान्वित हो सकते हैं।

स्वाशासित अनुशासन, शिक्षण विधि, अध्यापक का व्यक्तित्व आदि भी भाषा विकास में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं।

12. पाठ्य पुस्तकें

भली प्रकार से लिखी गई पाठ्य पुस्तकें बच्चे के भाषा संबंधी विकास में योगदान देती हैं। स्तर के अनुसार उचित आधारभूत शब्दावली का चुनाव, शब्दावली का उचित प्रयोग, शुद्ध वाक्य गठन, वाक्य में शब्दावली की उचित सीमा, सामग्री का अनुच्छेदों में विभाजन, चित्रों का यथेष्ट प्रयोग, अभ्यास का उचित अवसर आदि ऐसे कारण हैं जो बच्चे की शब्दावली तथा भाषा की अभिव्यक्ति के अन्य पक्षों को प्रभावित करते हैं। बच्चों के लिए उचित पुस्तक का चुनाव बहुत ही महत्व का प्रश्न है।

बच्चों की भाषा को प्रभावित करने वाले अन्य भी कई कारक हो सकते हैं। अभिभावक, अध्यापक तथा शिक्षाशास्त्रियों के सम्मिलित प्रयास से ही बच्चे में सशक्त वाणी का प्रकाश संभव है।

IV. बच्चे में भाषायी कौशलों के विकास का कालक्रम

भारतीय परिस्थितियों में बच्चे में भाषायी कौशलों के विकास के कालक्रम

पर कोई प्रामाणिक सामग्री अभी तक उपलब्ध नहीं है। इतने विस्तृत देश और भाषा संबंधी विविधताओं में इस दुष्कर कार्य का बीड़ा उठाने का साहस राष्ट्रीय स्तर का कोई अभिकरण ही कर सकता है। मानक आँकड़ों के अभाव में साधिकार रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक वयवर्ष की शब्दावली और उसके प्रयोग का व्याकरणिक स्वरूप क्या है। फिर भी कुछ व्यक्तिगत शोध तथा अनुमान के आधार पर इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला जा सकता है।

I. प्रथम वर्ष से पाँचवें वर्ष तक

प्रथम वर्ष

बच्चा जन्म के समय से ही रोने की ध्वनि उत्पन्न करता है। रुक-रुक कर या निरंतर रोना उसकी भाषा है। इस रोने की भाषा के माध्यम से वह अपनी आंतरिक पीड़ा और भूख की अभिव्यक्ति करता है।

एक महीने का होते-होते वह वातावरण में उत्पन्न ध्वनियों के प्रति सचेत होने लगता है। ताली, चुटकी, ढोलक आदि वाद्ययंत्रों की ध्वनि या अन्य स्पष्ट ध्वनियों को सुनते ही वह सक्रिय हो उठता है।

दूसरे तथा तीसरे महीने में बच्चा अनुनासिक और कंठ की अस्पष्ट ध्वनियाँ उत्पन्न करने लगता है। कभी-कभी इन मिलकारियों से कुछ शब्दों की ध्वनि-साम्यता होने लगती है किन्तु ये शब्द स्पष्ट नहीं होते। हम अपनी मनभरजी का कोई अर्थ इनसे निकाल लेते हैं।

छः महीने का होते-होते बच्चा श्रुत ध्वनियों की आवृत्ति का अनुकरण करने का प्रयत्न करता है। बच्चे की इस भाषा को 'हुँकारे भरना' कहा जाता है।

एँ-एँ, आँ-आँ, ओ-ओ, दा, ना, बा आदि अक्षरों की अस्पष्ट ध्वनियाँ उत्पन्न करने की क्षमता आठवें महीने में उत्पन्न होने लगती है।

दस महीने का सामान्य बालक परिचित वस्तुओं को देखकर उन्हें नाम से बोलने का प्रयत्न करता है। दूध, पानी, गेंद आदि शब्दों का उच्चारण करने का प्रयत्न करता है। इस अवस्था में उसकी श्रुत शब्दावली में 8-10 शब्द होते हैं। आओ, जाओ, खाओ, पीओ, बैठो, उठो, हँसो आदि शब्दों का भाव वह समझता है और आदेश मिलने पर इनका पालन करने का प्रयत्न करता है। यह शब्दावली उसकी उच्चरित शब्दावली या प्रयोग की शब्दावली नहीं होती केवल भावग्रहण तक सीमित होती है।

एक वर्ष की आयु प्राप्त करने पर बच्चा एक शब्द के वाक्य बोलने लगता

है। वह पानी, दूध, रोटी, गेंद आदि शब्दों का कभी अस्पष्ट और कभी स्पष्ट उच्चारण करने लगता है। उसकी शब्दावली 10-15 शब्दों की होती है। श्रुत शब्दावली में शब्दों की संख्या 30-40 तक पहुँच जाती है। वह अपने शरीर के कुछ अंगों के नाम संकेत से बता सकता है।

दूसरा वर्ष

दूसरे वर्ष के आरम्भ में बच्चा वाक्यखंड का अर्थ समझने लगता है। छोटे-छोटे वाक्यों का अर्थ भी समझने लगता है। उसकी श्रुत शब्दावली दो वर्ष के अंत तक 60-70 शब्दों की हो जाती है। इस काल में उच्चरित शब्दावली का विकास होने लगता है। उसके उच्चरित शब्दों का उच्चारण स्पष्ट होने लगता है। वह शब्द, वाक्य खंड या छोटे वाक्य के रूप में 30-40 शब्दों का प्रयोग कर सकता है।

इस उच्चरित शब्दावली में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि शब्द होते हैं।

तीसरा वर्ष

तीसरे वर्ष के अंत तक बच्चे की शब्दावली लगभग 400 शब्दों की हो जाती है। इस शब्दावली में 300 के आस-पास ऐसे शब्द होते हैं जिनका प्रयोग वह सक्रिय रूप से करता है। शेष शब्द ऐसे हैं जो श्रुत शब्दावली के हैं अर्थात् इन शब्दों को सुनकर वह इनका अर्थ किसी-न-किसी संदर्भ में ग्रहण कर लेता है लेकिन इनका प्रयोग नहीं करता।

इस शब्दावली में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण, अव्यय आदि शब्द सम्मिलित हैं। बच्चे की अधिकतर भाषा 'स्व' प्रधान होती है। वह खाने-पीने, खेलने-कूदने में 'स्व' को ही प्राथमिकता देता है।

वाक्य संरचना की दृष्टि से बच्चा मुख से चार-पाँच शब्दों के वाक्यों को बोलने लगता है। उसकी वाक्य संरचना, समाज में प्रचलित वाक्य संरचना के निकट होने लगती है।

इस अवस्था में बच्चे की श्रवण शक्ति बढ़ जाती है। वह किसी कहानी को तीन-चार मिनट तक ध्यान से सुन सकता है।

बच्चा परिचित वस्तुओं के चित्रों को पहचान कर उन्हें बता सकता है जैसे—कुत्ता, बिल्ली, फूल, कुर्सी आदि।

चौथा वर्ष

चार वर्ष की आयु का बच्चा लगभग 600 शब्दों का ज्ञान रखता है।

इसमें 100-125 शब्द श्रुत शब्दावली के और शेष सक्रिय आधारभूत शब्दावली के होते हैं।

इस आयु में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण, अव्यय आदि सभी प्रकार के शब्द होते हैं किन्तु बाहुल्य संज्ञा और क्रियाओं का होता है। इस समय भी बच्चे की भाषा 'स्व' प्रधान ही रहती है।

वाक्यों की संरचना सामाजिक वातावरण के अनुरूप अधिक स्थिर होने लगती है। बच्चा देखी-सुनी घटना के विषय में स्वतंत्र रूप से कुछ वाक्यों का निर्माण कर सकता है। बच्चा कुछ संयुक्त वाक्य भी बोल सकता है।

बच्चे की स्मरण शक्ति बढ़ने लगती है। वह कहानी, कविता, बालगीत आदि सुना सकता है। बालगीत सुनाते समय वह सुर, लय, गति का भी कुछ ध्यान रख सकता है। वह व्यक्तिगत गान के अतिरिक्त साप्ताहिक गान भी गा सकता है।

इस अवस्था में उसकी चित्र देखने में रुचि बढ़ती है। उसे रंग-विरंगे चित्र बहुत पसंद आते हैं। वह चित्रों को देखकर अपनी प्रतिक्रिया भी अभिव्यक्त करने लगता है।

इस अवस्था में बच्चा 'क्यों', 'कैसे', 'कहाँ', 'कब' आदि शब्दों का भी प्रयोग करने लगता है।

संख्यावाचक शब्द भी बच्चे की शब्दावली में आने लगते हैं। आधा-साबुत आदि शब्दों को वह समझने लगता है। समय और गति बोधक शब्दों का सामान्य ज्ञान होने लगता है किन्तु निश्चितता नहीं आ पाती।

पाँचवाँ वर्ष

पाँचवें वर्ष के अंत तक बच्चे की आधारभूत शब्दावली एक हजार शब्द के आस-पास हो जाती है। लगभग 150-200 शब्द केवल श्रुत शब्दावली के होते हैं। यदि काल, वचन, क्रिया, क्रिया के रूपान्तरित रूपों को लें तो शब्दों की संख्या दो हजार के आस-पास बनेगी।

इस अवस्था में बच्चा सरल वाक्यों के अतिरिक्त कुछ संयुक्त वाक्यों का भी प्रयोग करता है। सकारात्मक, नकारात्मक, प्रश्नवाचक, विस्मयादि बोधक वाक्यों का प्रयोग भी वह करने लगता है। वाक्य में शब्दों की संख्या 5 से 8 तक भी हो सकती है।

काल, समय, दूरी, गुण, संख्या संबंधी प्रत्यय पहले से कुछ अधिक स्पष्ट होने लगते हैं किन्तु वह भ्रमित भी हो जाता है।

वह चित्रित प्रतीकों को पूर्वज्ञान के आधार पर पहचान सकता है। कहीं-कहीं अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर वह अपना मत प्रकट कर सकता है।

बच्चे का उच्चारण बहुत स्पष्ट नहीं हो पाता। कुछ वर्षों के उच्चारण में अटकाव या अस्पष्टता रहती है किन्तु उसकी भाषा बोधगम्य होती है।

2. आगामी वर्षों में भाषा का विकास

भाषा का विकास निरंतर होने वाली प्रक्रिया है। बच्चे का वातावरण जितना व्यापक होता जाता है उसी के अनुसार उसकी भाषा में भी विकास होता रहता है। विकास कभी रुकता नहीं, उसकी गति भले ही धीमी पड़ जाए।

व्यावहारिक कार्य

1. एक से पाँच वर्ष के बच्चों की आर्थिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर शब्दावली एकत्रित करना।
2. पाँच वर्ष तक के बच्चे की वाक्य संरचना का विश्लेषण करना।
3. पाँच वर्ष के बच्चे की भाषा का व्याकरणपरक अध्ययन करना।
4. विकलांग तथा सामान्य बच्चों की भाषा का तुलनात्मक अध्ययन करना।
5. मानक हिन्दी सीखते समय ग्रामीण बोली से संबद्ध कठिनाइयों का अध्ययन करना।
6. लिंग भेद के आधार पर पाँच वर्ष के दो बच्चों की भाषा के विकास का तुलनात्मक अध्ययन करना।
7. पाठ्य पुस्तकों के लिए ऐसी शब्दावली एकत्रित करना जो 5 वर्ष वय-वर्ग के बच्चों के लिए स्थानीय रूप से उपयुक्त हो।
8. तीन, चार तथा पाँच वर्ष के बच्चे की आधारभूत शब्दावली की तालिका बनाना।
9. पुस्तकालय की सहायता से ऐसे संदर्भों की सूची बनाना जिनमें बालक की भाषा के विकास पर कार्य किया गया हो।
10. भाषा के विकास से संबंधित जनधारणाओं को एकत्रित करना।

संदर्भ

1. Basic Hindi Vocabulary, Dr. J.N. Kaushik.
2. Consolidated Basic Hindi Vocabulary,
Prof. Uday Shanker and Dr. J.N. Kaushik.
3. The Language and Mental Development of Children,
Watts, A.F.
4. Bhartrihari, Iyer, K.A.

5. Language Disorders of Children,

Berry, M.E.

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. भाषा मनुष्य की जन्मजात सम्पत्ति है अथवा अर्जित ? बालक की शिशु अवस्था से किशोरावस्था तक के भाषा संबंधी विकास पर प्रकाश डालिए ।
2. बच्चे में भाषा के विकास को प्रभावित करने वाले कौन-कौन से कारक हैं ? हम किन-किन कारकों को नियंत्रित कर सकते हैं और कैसे ?
3. 'सुनियोजित विद्यालयी वातावरण भाषा विकास में सहायक है', कैसे ?
4. 'भाषा का विकास जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है', तर्क सहित विवेचना करें ।
5. टिप्पणी लिखें—
 - (1) कालिक आयु और भाषा विकास (2) यमजता (3) द्विभाषीयता
 - (4) पाँच वर्ष के बालक की भाषायी विशेषताएँ (5) शारीरिक स्वास्थ्य और भाषायी विकास ।

अध्याय 6

श्रवण की योग्यताएँ

I. श्रवण का अर्थ

‘श्रवण’ शब्द ‘श्रु’ धातु से बना है जिसका संबंध सुनने की क्रिया, ध्यानपूर्वक सुनना, अध्ययन करना, अधिगमन करना, मौखिक संवाद आदि से है। स्पष्टतः ‘श्रवण’ केवल ध्वनियों को सुनना मात्र नहीं है। श्रवण में किसी कथन को ध्यानपूर्वक सुनने, सुनी गई बात पर चिन्तन मनन करने, चिन्तन के बाद उस पर अपना मंतव्य स्थिर करने और तदनुसार आचरण या व्यवहार करना आदि प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं।

‘श्रवण’ अंग्रेज़ी के Listening शब्द का पर्याय है। अंग्रेज़ी शब्द Hearing का अर्थ किसी ध्वनि का कान तक पहुँचना मात्र है जबकि Listening को a process of interpretation अर्थात् अर्थ निर्णय या अर्थनिष्पादन की प्रक्रिया कहा गया है।

II. श्रवण का महत्त्व

बालक अपने जन्मकाल से ही सार्थक और निरर्थक अनेक ध्वनियाँ सुनना आरम्भ कर देता है। जन्म के समय बजने वाली काँसे की थाली, ढोलक, स्त्रियों के गाने आदि पहले दिन से उसके कर्ण के यंत्रों को तरंगित करने लगते हैं। माता और संबंधियों के मुख से निकले प्यार के शब्द कुछ ही महीनों में उसके लिए सार्थक होने लगते हैं। यदि ये सार्थक ध्वनियाँ उसके कान में बारम्बार न पड़ें तो वह बधिर और मूक ही रह जाए।

बालक की अधिकांश भावी शिक्षा उसकी श्रवण शक्ति पर ही अवलम्बित होती है। जनधारणा तो यहाँ तक है कि वीर अभिमन्यु ने चक्रव्यूह भंग करने की शिक्षा अपनी माता के गर्भ में उस समय सीख ली थी जब अर्जुन सुभद्रा को व्यूह-भंग करने की विधि सुना रहे थे।

III. श्रवण की शिक्षा का महत्त्व

वैदिककालीन और उत्तर वैदिककालीन जितना भी साहित्य था वह सुन

कर ही याद किया जाता था। यही कारण है कि वेद को श्रुति भी कहा जाता है। ऋषि-आश्रमों में विभिन्न वैदिक शाखाएँ अपने ज्ञान को वंश परम्परा में सुनकर ही स्मरण रखती थीं। यही शाखाएँ तत्कालीन पुस्तकों और उन शाखाओं के बहुसंख्यक शिष्य ही उन पुस्तकों के बोलते पृष्ठ थे।

आज भी बालक अधिकांश ज्ञान सुनकर ही प्राप्त करता है। श्रवण शक्ति की योग्यता पर हुए गत तीस-चालीस वर्षों के शोधकार्य इसके प्रमाण हैं। शैक्षणिक अनुसंधान विश्वकोश (Encyclopedia of Educational Research) में श्रवण शक्ति के शोध कार्यों पर चर्चा करते हुए सामझूकर ने कई तथ्य प्रस्तुत किए हैं। इनके अनुसार प्राथमिक कक्षाओं में बालक 58% समय सुनने में व्यतीत करता है और इस काल में लगभग आधा समय अध्यापक की बातें सुनता है। आरंभिक कक्षा में बालक 84% तक समय सुनने में व्यतीत करता है। एक अन्य शोध कार्य के अनुसार बालक विद्यालय के बाहर का अपना आधा समय दूरदर्शन, रेडियो, मित्र मंडली अथवा अन्य स्थानों पर सुनने में ही व्यतीत करता है।

शिक्षा में हुए शोधकार्य से यह भी पता चला है कि कुछ बालक पढ़ने की बजाय सुनकर अधिक ज्ञान प्राप्त करते हैं। वास्तव में कर्णेंद्रिय ज्ञान प्राप्ति का महत्वपूर्ण साधन है।

शोध कार्यों से यह भी ज्ञात हुआ है कि श्रेष्ठ श्रोता श्रेष्ठ बुद्धि वाला भी होता है। बालक में अच्छे श्रोता के लक्षणों का विकास प्रयत्न पूर्वक करके उसके ज्ञान में असाधारण वृद्धि की जा सकती है।

श्रवण की शिक्षा के महत्व को देखते हुए प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर-माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय के स्तर पर भी इसकी परीक्षा का प्रावधान किया जाता है। प्राथमिक स्तर पर यह भाषाकला शिक्षण (Language arts instruction) के रूप में, बड़ी कक्षाओं तथा विश्वविद्यालयों में इसे भाषण-माला (Speech Courses) के रूप में तथा उद्योग के क्षेत्र में इसे संपर्क और प्रबंध पाठ्यक्रम (Communication and Management Courses) के रूप में स्थान दिया जाता है।

IV. श्रवण योग्यता को प्रभावित करने वाले कारक

शोधकर्ताओं ने छानबीन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि श्रवण योग्यता का मूलाधार सावधानी (attention) ही है। सावधानी पर ही प्रत्यक्ष ज्ञान (Perception), निर्णय करने की शक्ति, तर्क शक्ति, विचार करने की शक्ति आदि अवलम्बित है। इन्हीं शक्तियों के आधार पर श्रोता पूर्वज्ञान का लाभ उठा कर नए ज्ञान को ग्रहण करता है। समाज में कुछ व्यक्ति तथा साधु-मुनि

इसी अवधान के बल पर एकाधिक व्यक्तियों की बात को सुनकर स्मरण रखते हैं। विद्यालयों में इस प्रकार के वातावरण के निर्माण की आवश्यकता है कि सावधानी के कारक का पूर्ण लाभ उठाया जा सके। साथ ही विद्यालय तथा कक्षा का वातावरण शोर के प्रदूषण से मुक्त हो।

V. श्रवण को उत्तम कोटि का बनाने के सिद्धान्त

श्रवण को सुखद और ग्राह्य बनाने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त सहायक हो सकते हैं—

1. श्रुत सामग्री रोचक होनी चाहिए तथा भय और आतंक की स्थिति में नहीं दी जानी चाहिए। पंचतंत्र और हितोपदेश की सामग्री इसी सिद्धान्त पर आधारित है।
2. ऊब से बचाव के लिए कक्षा के प्रतिदिन के कार्यक्रम में आवश्यकता से अधिक श्रुत सामग्री की व्यवस्था नहीं हो।
3. कक्षा में बालक अध्यापक के सम्मुख केवल मूक श्रोता बनकर न रह जाए।
4. कक्षा में दी गई श्रुत सामग्री बालकों के लिए हो उन पर आरोपित नहीं की गई हो।

VI. श्रोता के लक्षण

‘श्री भागवत सुधा सागर’ में गुणों के आधार पर श्रोता दो प्रकार के नाने गए हैं—उत्तम और अधम।

उत्तम श्रोता

उत्तम श्रोता को चातक, हंस, शुक और मीन की संज्ञा दी गई है। चातक अन्य जल को ग्रहण नहीं करता। स्वाति की बूंद में ही तृप्त होता है। इसी प्रकार श्रेष्ठ श्रोता का ध्यान अन्य शोर-गुल नहीं बाँट सकता। उसकी साधना श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति में है। हंस नीर को छोड़ क्षीर ग्रहण करता है। इसी प्रकार श्रेष्ठ श्रोता लम्बे भाषण से सार ग्रहण कर लेता है। शुक सुने हुए ज्ञान को मधुर स्वर में ज्यों का त्यों सुना देता है। इसी प्रकार श्रेष्ठ श्रोता प्राप्त ज्ञान का प्रचार दूसरों तक करता है। मीन मीन रहकर अपलक क्षीर सागर का पान करती है। श्रेष्ठ श्रोता निनिमेष नयनों से वक्ता को देखता है और मुँह से एक शब्द भी नहीं निकालता।

2. अधम श्रोता

अधम श्रोता को वृक भुरंड, वृष और उष्ट्र की संज्ञा दी गई है। वृक या भेड़िया वन में भयंकर आवाज निकालकर मृगों को डराता रहता है। इसी प्रकार अधम श्रोता शोर मचाकर दूसरों का ध्यान बँटवाता रहता है। भुरंड नाम का पक्षी शिक्षाप्रद आवाज को सुनकर उसकी प्रतिध्वनि निकालता है किन्तु उस उपदेश का लाभ नहीं उठाता। इसी प्रकार अधम श्रोता श्रुत ज्ञान से लाभान्वित नहीं होता। वृष या बैल अंगूर और कड़वी खली को समान भाव से खा जाता है। सार-असार में भेद नहीं करता। इसी प्रकार अधम श्रोता में सार ग्रहण की क्षमता नहीं होती। जैट मीटे आम को छोड़कर कड़वे नीम को खाता है। उसी प्रकार अधम श्रोता हीन बात को ग्रहण करता है श्रेष्ठ को नहीं।

श्रोता को विनम्र होना चाहिए। उसे शिष्य भाव से उपदेश ग्रहण करना चाहिए। वह श्रद्धावान और विश्वासी भी होना चाहिए। जो बात समझ में न आए उसे पूछे। सुनी हुई बात का बार बार चिंतन करे।

VII. सुनने की योग्यता के स्तरानुसार उद्देश्य

विद्यार्थी में सुनने की योग्यताओं के विकास का क्रम निर्धारण मातृभाषा के रूप में तथा द्वितीय भाषा के रूप में किया जाता है। एन० सी० ई० आर० टी० द्वारा तैयार दस वर्षीय स्कूली पाठ्यक्रम तथा ईश्वर भाई पटेल कमेटी ने हिन्दी शिक्षण के समय बालकों में जिन योग्यताओं के विकास के लक्ष्य निश्चित किए हैं उनको नीचे दिया जाता है। भारत सरकार का नीति सम्बन्धी “शिक्षा की चुनौती” प्रपत्र भी अपरोक्ष रूप से इन उद्देश्यों का समर्थन करता है।

I. सुनने की योग्यता का विकास (मातृ भाषा के संदर्भ में)

पहली और दूसरी कक्षाओं के लिए

- (क) मातृभाषा की सभी ध्वनियों को सुनकर उनमें विभेद कर सकना।
(विशेषतः—इ-ई, उ-ऊ, ए-ऐ, स-श, ब-व, ड-ड़, क्ष-छ आदि में अन्तर समझ सकना)।
- (ख) ध्यानपूर्वक सुनना, सुनने के शिष्टाचार का पालन करना और निर्देशों को सुनकर उनका पालन करना।
- (ग) कहानियाँ, कविताएँ, चुटकुले, वर्णन, वातावरण आदि सुनकर ज्ञानवृद्धि एवं मनोरंजन करना।
- (घ) वक्ता के स्वर से कथन, प्रश्न, आश्चर्य, झिड़की आदि को पहचानना।

तीसरी से पाँचवीं तक की कक्षाओं के लिए

- (क) ध्यानपूर्वक सुनकर समझने की योग्यता का विकास होना ।
- (ख) मातृभाषा की ध्वनियों में विभेदीकरण और उनके ठीक-ठीक श्रवण की योग्यता आ जाना ।
- (ग) सुनी हुई बात के सम्बन्ध में प्रश्न करना ।
- (घ) कहानियाँ, कविताएँ, वर्णन, संक्षिप्त भाषण, रेडियो के बाल कार्यक्रम आदि सुनकर समझना और उनका आनन्द लेना ।
- (ङ) वक्ता के मनोभावों (हर्ष, क्रोध, आश्चर्य, घृणा, झिड़की, करुणा, व्यंग्य आदि) को समझ सकना ।

छठी से आठवीं तक की कक्षाओं के लिए

- (क) धैर्य और ध्यानपूर्वक सुनना, शुद्ध एवं अशुद्ध उच्चारण में भेद करना ।
- (ख) कक्षाओं और सभाओं में तथा रेडियो पर विभिन्न प्रकरणों पर कविता-पाठ, संवाद, समाचार वार्ताएँ आदि सुनकर भाव अधिग्रहण करना ।
- (ग) वक्ता के कथन में निहित व्यंग्य-विनोद भावना, बल आदि को समझना ।
- (घ) सुनते समय मूल्यांकन करने की योग्यता का विकास करना ।
- (ङ) वक्ता के कथन का आद्यन्त क्रमानुसार अर्थबोध के साथ अनुसरण करना ।
- (च) अपनी शंका प्रकट कर सकना तथा प्रश्न पूछ सकना ।
- (छ) औपचारिक एवं अनौपचारिक वार्ता या कथन में भेद कर सकना ।
- (ज) आनन्द, सूचना और प्रेरणा के लिए सुनना ।
- (झ) वक्ता के कथन में निहित महत्वपूर्ण तथ्यों, विचारों और भावनाओं को समझना और आवश्यकतानुसार नोट करना ।

नवीं और दसवीं कक्षाओं के लिए

- (क) कक्षाओं और सभाओं में तथा रेडियो पर स्तर के अनुरूप वार्ता, परिचर्चा, भाषण आदि सुनकर अर्थ ग्रहण करना ।
- (ख) वक्ता के कथन में निहित व्यंग्य, विनोद आदि को समझना ।
- (ग) वक्ता के विचारों से असहमत होते हुए भी उसकी बात को ध्यानपूर्वक और शिष्टाचार के साथ सुनना तथा उसके दृष्टिकोण को समझना ।
- (घ) ज्ञान, मनोरंजन एवं प्रेरणा के लिए सुनना ।
- (ङ) वक्ता की बात को आलोचनात्मक दृष्टि से सुनना और समझना ।

2. सुनने की योग्यता का विकास

द्वितीय भाषा के रूप में (कक्षा 5/6 से 8 तक के लिए)

- (क) हिन्दी की ध्वनियों को सुनकर मातृभाषा की ध्वनियों और हिन्दी ध्वनियों में विभेद कर सकना। मिलती-जुलती ध्वनियों (जैसे इ-ई, उ-ऊ, ए-ऐ, ओ-औ तथा अल्पप्राण-महाप्राण, घोष-अघोष, अनुस्वार-अनुनासिक-निरनुनासिक, ष-स, क्ष-स, छ-क्ष, ड-ड़, ङ-ढ़, ढ-ढ़, व-ब, य-ज, स-श आदि पर विशेष ध्यान देना।
- (ख) हिन्दी में दिए गए सामान्य निर्देशों को समझना।
- (ग) रेडियो, फ़िल्म और टेलीविजन पर मनोरंजन और ज्ञान-प्राप्ति के लिए हिन्दी कार्यक्रम सुनना और देखना।

VIII. श्रवण शक्ति के विकास के साधन

सुनने की उपर्युक्त योग्यताओं के विकास के लिए स्तरानुसार विभिन्न साधन अपनाए जा सकते हैं। कक्षा शिक्षण, पाठ्यक्रम सहगामी कार्यक्रम तथा पाठ्यान्तर क्रियाएँ इन योग्यताओं के विकास में काम में लाई जा सकती हैं।

1. कक्षा शिक्षण के समय :

1. विभिन्न स्वरों की उच्चारण विधि, उच्चारण का मात्राकाल, उच्चारण स्थान आदि का ज्ञान देकर।
2. विभिन्न व्यंजनों की उच्चारण विधि, उच्चारण स्थान आदि का ज्ञान देकर।
3. विशिष्ट व्यंजन ध्वनियों को शब्द के आदि, मध्य, अन्त, निरन्तर दो बार, घोष-अघोष, अल्पप्राण-महाप्राण, ह्रस्व तथा दीर्घ मात्रा आदि की स्थिति में रखकर सुनने का अभ्यास देकर।
4. क्षेत्र विशेष की उच्चारण सम्बन्धी कठिनाइयों का विश्लेषण करके, यथा—
न-ण, श-स, ल-ल, ष-छ, क्ष-छ, र-ल वर्ण युग्मों का अभ्यास करवाकर।
5. अध्यापक द्वारा सस्वर वाचन, आदर्श वाचन, भावानुकूल वाचन, संवाद, वार्ता, नाटक तथा साहित्य की अन्य विधाओं का वाचन करके।
6. कहानी, कथाएँ सुनाकर।
7. कक्षा में अतिरिक्त वाचन के अवसर देकर।
8. विभिन्न मनोभावों—हर्ष, क्रोध, आश्चर्य, घृणा, करुणा, व्यंग्य आदि पर आधारित सामग्री कक्षा में सुनाकर।
9. सामान्य निर्देश पालन के अवसर देकर।

10. कक्षा में प्रश्न पढ़ने के अवसर देकर ।

2. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं द्वारा :

सुनने की उपर्युक्त योग्यताओं के विकास के लिए निम्नलिखित पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का सहारा लिया जा सकता है—

1. कक्षा बाल सभा ।
2. कक्षा अभिनय ।
3. ध्वनियों के खेल ।

3. पाठ्यान्तर क्रियाओं द्वारा :

1. वाद-विवाद प्रतियोगिता ।
2. कहानी प्रतियोगिता ।
3. नाटक प्रतियोगिता ।
4. कविता वाचन प्रतियोगिता ।
5. सामूहिक बालसभा ।
6. समाचार वाचन ।
7. विशिष्ट व्यक्तियों के विस्तार भाषण ।
8. आकाशवाणी से प्रसारित विभिन्न कार्यक्रम सुनकर ।
9. वृत्तचित्र, चलचित्र, दूरदर्शन आदि को देखकर ।
10. दूरभाष सुनने के अवसर देकर ।
11. बालचर, रेडक्रास या भाषा सम्बन्धी ऐसे खेलों का आयोजन करके जहाँ विद्यार्थियों को संदेश सुनने तथा आगे भेजने के अवसर मिलते हैं ।
12. विभिन्न प्रान्तों और अहिन्दी भाषा-भाषियों के हिन्दी भाषणों का आयोजन करके और उच्चारण भेदों का मूल्यांकन करके ।
13. विभिन्न देशों के दूतावास के व्यक्तियों को आमन्त्रित करके तथा उनके द्वारा बोली गई हिन्दी को सुनकर उसका मूल्यांकन करके ।
14. महत्वपूर्ण अवसरों पर भाषण सुनकर मुख्य विचार नोट करने के अवसर देकर ।
15. वक्ता की बात को आलोचनात्मक ढंग से सुनने का अवसर देकर ।
16. विरोधी विचारों के वक्ता को धैर्यपूर्वक सुनने के अवसर देकर ।
17. विभिन्न परिस्थितियों में सुनने के शिष्टाचार-पालन करने के अवसर देकर ।

व्यावहारिक कार्य

श्रवण शक्ति की योग्यताओं के विकास तथा मूल्यांकन सम्बन्धी कार्य के लिए व्यावहारिक कार्य की भी आवश्यकता है। एन० सी० ई० आर० टी० द्वारा प्रकाशित Teacher Education Curriculum में सम्बन्धित व्यावहारिक कार्य यानी Related Practical Work के लिए समस्त पाठ्यक्रम में 10% स्थान निश्चित किया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रशिक्षणार्थी अपने व्यवसाय के विकास के लिए आरम्भ से ही अपना योगदान दे।

श्रवण की योग्यता विकास सम्बन्धी सामग्री के निर्माण में प्रशिक्षणार्थी निम्नलिखित प्रकार के कार्य कर सकता है :

1. स्थानीय बोली का सर्वेक्षण करना।
2. स्थानीय बोली तथा मानक हिन्दी के उच्चारण भेद संकलित करना।
3. उच्चारण भेद सुधार के लिए एकत्रित सामग्री के आधार पर अभ्यास पाठों (Drilling Lessons) का निर्माण करना।
4. सुनने की योग्यता के मापन के परीक्षण तैयार करना।
5. श्रवण दोषों की सूची बनाना।

संदर्भ

1. कौशिक, जय नारायण (डॉ०)—हिन्दी हरयाणवी उच्चारण भेद।
2. गैरोला, वाचस्पति—संस्कृत साहित्य का इतिहास।
3. दस वर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम—एक रूपरेखा, एन० सी० ई० आर० टी० (1976).
4. शिक्षा की चुनौती—नीति संबंधी परिप्रेक्ष्य, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, (1985).
5. श्री भागवत सुधा सागर—गीताप्रेस गोरखपुर।
6. Encyclopedia of Educational Research (Fourth Edition).
7. Ishwar Bhai Patel Committee, Report on ten year school curriculum.

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. श्रवण का जीवन के कार्यव्यापार में क्या महत्व है? क्या नियोजित विधि से श्रवण का विकास संभव है? तर्क सहित उत्तर दें।
2. श्रवण योग्यता को प्रभावित करने वाले कौन-कौन से कारक हैं? हम श्रवण को उत्तम कोटि का कैसे बना सकते हैं?
3. मातृभाषा शिक्षण के संबंध में श्रवण के कौन-कौन से उद्देश्य होने

चाहिएँ ? इन उद्देश्यों की पूर्ति आप किन-किन साधनों की सहायता से कर सकते हैं ?

4. अच्छे श्रोता के क्या लक्षण हैं ? आप विद्यार्थियों में इनका विकास कैसे करेंगे ? उदाहरण सहित स्पष्ट करें ।
5. टिप्पणी लिखें—

1. सभासद् 2. पाठ्यांतर क्रियाएँ और श्रवण शक्ति का विकास
 3. श्रवण शक्ति विहीन व्यक्ति का जीवन 4. द्वितीय भाषा के रूप में सुनने की योग्यता के उद्देश्य 5. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ और श्रवण शक्ति का विकास ।

अध्याय 7

बोलचाल की शिक्षा (मौखिक अभिव्यक्ति)

I. बोलचाल तथा मानव समाज

भाषा मानव की चिरसंचित धरोहर है। बालक जन्मकाल से ही रुदन और हास्य द्वारा अपने दुःख-सुख के भावों को अभिव्यक्त करता है। वह बड़ा होते-हुँते अपने वातावरण की भाषा को सहज में सीख लेता है। वह जीवन के अधिकांश व्यापार बोलचाल के द्वारा सम्पन्न करता है। लिपि के प्रयोग से पूर्व मानव समाज का समस्त कार्य बोलचाल के माध्यम से सम्पन्न होता रहा है। वास्तव में संस्कृत का 'भाषा' अंग्रेजी का 'Tongue' लैटिन का 'Lingua' फ़ारसी का 'जुबान' आदि शब्दों का मूल अर्थ 'बोलना, जिह्वा, जुबान' आदि के रूप में ही रहा है क्योंकि भाषा आरंभिक काल से बोलचाल और संदेशवाहन का माध्यम रही है।

संस्कृत भाषा में बोलचाल के लिए प्रयुक्त शब्द 'वद्' तथा 'वच्' और इनसे व्युत्पन्न वाद-प्रतिवाद, संवाद, वाद-विवाद आदि शब्दों का अर्थ बोलना, उच्चारण करना, बातें करना, समाधार देना, सूचित करना, वर्णन करना, प्रवीणता दर्शाना आदि भावों से ही संबंधित रहा है।

आज भी अशिक्षित समाज के कार्य व्यापार बोलचाल द्वारा ही सम्पन्न हो रहे हैं। सुशिक्षित समाज भी अधिकांश कार्य बोलचाल के माध्यम से कर रहा है।

II. बोलचाल से अभिप्राय

बोलचाल के समय व्यक्ति का अपना संदेश होता है। वह इसी संदेश को श्रोता के सम्मुख ध्वनि के प्रतीक शब्दों का सहारा लेकर प्रेषित करता है। प्रेषण के समय वह वागिन्द्रिय तथा अन्य अंगों का संचालन करता हुआ श्रोता के विचारों को प्रभावित करता है तथा वांछित फल प्राप्ति का प्रयत्न करता है।

बोलचाल के उपर्युक्त तत्त्वों से स्पष्ट है कि बोलचाल मानव समाज का सशक्त साधन है जिसके द्वारा वक्ता अपने संदेश को ध्वनि के प्रतीक शब्दों द्वारा उचित अंग संचालन करता हुआ श्रोता के मन को प्रभावित करता है।

तथा मनवांछित प्रभाव डालने का प्रयत्न करता है।

वास्तव में बोलचाल या मौखिक अभिव्यक्ति मनुष्य की सामान्य प्रक्रिया न होकर एक सोद्देश्य प्रयत्न है।

III. बोलचाल की शिक्षा का महत्त्व

एन० सी० ई० आर० टी० द्वारा तैयार की गई प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या (1985)* में मौखिक अभिव्यक्ति की उपेक्षा पर खेद प्रकट करते हुए कहा गया है कि यह कितने दुःख की बात है कि हमारी शिक्षा प्रणाली में तथा भाषा शिक्षण में मौखिक अभिव्यक्ति के पक्ष की नितांत उपेक्षा की गई है।

शिक्षा के क्षेत्र में बोलचाल की शिक्षा या मौखिक अभिव्यक्ति का ऐतिहासिक महत्त्व है। वैदिक युग का समग्र ज्ञान मौखिक रूप से ही गुरु-शिष्यों में चलता रहा। पहले भी अन्यत्र संकेत दिया जा चुका है कि वैदिक शाखाओं के बहुसंख्यक शिष्य ही वैदिक शाखाओं के बोलते हुए पृष्ठ थे।

प्राप्त प्रमाणों के अनुसार उत्तर वैदिक युग की परिवर्तित परिस्थितियों के कारण ज्ञानानुराग में ह्रास होने लगा। नारद पुराण में एक प्रसंग से हमें विदित होता है कि छः मास के बाद ही कंठस्थ ज्ञान विस्मृत होने लगा। जिन ऋषिवंशजों के पास जो मौखिक ज्ञान सुरक्षित था लिपिबद्ध होने के अभाव में उसका समग्र ज्ञान मृत्यु के बाद उसके साथ ही अन्तर्धान हो गया।

सूत्र ग्रंथ काल में भोजपत्रों और ताड़पत्रों पर ग्रंथ निर्माण की परम्परा चली किन्तु ऋषिकुलों में लिखित सामग्री के अभाव में शिक्षा-दीक्षा मौखिक रूप में चलती रही।

बौद्ध तथा जैन काल में भी शिक्षा का मुख्य माध्यम बोलचाल ही रहा। मिश्र, यूनान तथा इंग्लैंड आदि के शिक्षा शास्त्र के इतिहास के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इन देशों में भी मौखिक अभिव्यक्ति का शिक्षा में प्रमुख स्थान था।

ब्रिटिश शासन काल में शिक्षा के क्षेत्र में बोलचाल की शिक्षा का ह्रास हुआ क्योंकि उनको क्लर्कों की आवश्यकता थी स्वतंत्र रूप से विचार अभिव्यक्त करने वालों की नहीं।

भारत स्वतंत्र होने के बाद प्रजातांत्रिक प्रणाली में बोलचाल की शिक्षा के महत्त्व को पुनः स्थापित किया गया है। कुशल वक्ताओं द्वारा ही प्रजा के हितों

*National Curriculum For Primary and Secondary Education—
A Framework (1985) p. 115.

की रक्षा संभव है।

अन्य विषयों के अतिरिक्त भाषा शिक्षण के समय विद्यार्थियों को बोलचाल की शिक्षा प्रदान करने के अधिक अवसर मिलते हैं। अतः मौखिक अभिव्यक्ति के विकास का प्रमुख दायित्व भाषा अध्यापक पर है।

IV. बोलचाल की शिक्षा की आवश्यकता

भाषा शिक्षण के लिए सभी स्तरों पर बोलचाल की शिक्षा का महत्त्व है। आरंभिक कक्षाओं में तो बोलचाल की शिक्षा की और भी अधिक आवश्यकता है। आरंभिक कक्षा में बालक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा बौद्धिक दृष्टि से भिन्न-भिन्न परिवारों से आते हैं। बहुत से बालकों के माता-पिता भिन्न-भिन्न प्रकार की बोलियाँ बोलते हैं। विद्यालय में अध्यापक उन्हें मानक हिन्दी के माध्यम से पढ़ाएगा। स्वभावतः पठन से पहले मौखिक अभिव्यक्ति पर बल देना आवश्यक है।

वाचन तथा लेखन आदि आरंभ कराने से पूर्व सभी बालकों का शब्द भंडार, वाक्य विन्यास तथा उच्चारण यदि मौखिक अभिव्यक्ति द्वारा कुछ समान हो जाए तो मानक हिन्दी शिक्षण में सुगमता रहेगी।

बालक बड़ा होकर जीविकोपार्जन करेगा। यदि बोलचाल की शिक्षा के माध्यम से उसकी वाणी में स्पष्टता, पधुरता, पटुता, प्रभावोत्पादकता, व्यावहारिकता आदि गुणों का विकास हो जाए तो वह उत्तरोत्तर उन्नति को प्राप्त होता जाएगा।

V. बोलचाल की शिक्षा के उद्देश्य

भाषा शिक्षण में बोलचाल की शिक्षा की आवश्यकता और महत्त्व को देखते हुए स्तरानुसार निम्नलिखित उद्देश्य निश्चित किए गए हैं :—

I. मातृ भाषा के संदर्भ में

पहली और दूसरी कक्षा के लिए

- (क) मातृभाषा की सभी ध्वनियों—इ-ई, उ-ऊ, ए-ऐ, आदि स्वरों ; स-श, ब-व, ड-ड़, छ-क्ष आदि व्यंजनों तथा प्र, ज्ञ, द्य आदि व्यंजन-मुच्छों का शुद्ध उच्चारण कराना।
- (ख) बिना झिझके ओर प्रवाह के साथ बोलने की योग्यता का विकास होना।
- (ग) समूहगान, कविताओं, तथा कहानियों को हाव-भाव, आरोह-अवरोह तथा नाटकीयता के साथ सुनाना।

- (घ) अपने साथियों तथा अध्यापकों से निस्संकोच बातचीत करना ।
- (ङ) प्रश्न, आश्चर्य, क्रोध आदि भावों को वाणी द्वारा व्यक्त करना ।
- (च) संवादात्मक अभिनय में भाग लेना ।
- (छ) बोलने में हिन्दी के मानक रूप का प्रयोग करने की योग्यता प्रारम्भ होना ।

तीसरी से पाँचवीं कक्षा तक के लिए

- (क) हिन्दी की सभी ध्वनियों तथा परिचित शब्दों का शुद्ध उच्चारण करना ।
- (ख) देखी और सुनी घटनाओं और स्थानों का मौखिक वर्णन करना ।
- (ग) पाठशाला के सामूहिक क्रियाकलापों में प्रभावशाली ढंग से कविता और कहानी सुनाना तथा वार्तालाप, नाटक, लघु भाषण आदि में भाग लेना ।
- (घ) शुद्ध भाषा का प्रयोग करने की क्षमता का विकास होना ।
- (ङ) नए सीखे हुए शब्दों का प्रयोग करना ।
- (च) विचारों को क्रमबद्ध रूप से व्यक्त करना ।

कक्षा छठी से आठवीं तक के लिए

- (क) बोलने में सभी स्वरों, व्यंजनों, व्यंजन-गुच्छों का शुद्ध उच्चारण करना ।
- (ख) उचित बलाघात, अनुतान और प्रवाह के साथ बोलना ।
- (ग) अपने विचारों और भावों को शुद्ध, स्पष्ट, रोचक एवं प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त करना ।
- (घ) व्यवस्थित रूप में वांछित सामग्री को प्रस्तुत करना ।
- (ङ) अपने भाषण में स्थानीय बोली के प्रभाव से मुक्त होने का प्रयत्न करना ।

नवीं और दसवीं कक्षा तक के लिए

- (क) शुद्ध उच्चारण, बल एवं अनुतान तथा सहजता एवं प्रवाह के साथ बोलना ।
- (ख) बोलते समय शुद्ध एवं उपयुक्त भाषा का प्रयोग करना ।
- (ग) अपने मनोभावों जैसे—हर्ष, विषाद, क्रोध, विस्मय, आदर आदि को भावपूर्ण ढंग से व्यक्त करना ।
- (घ) असहमत होते हुए भी अपनी प्रतिक्रियाओं को शिष्ट एवं संयत भाषा

में व्यक्त करना ।

- (ड) अवसर के अनुकूल औपचारिक भाषा के प्रयोग में समर्थ होना ।
- (च) अपने भाषण में स्थानीय बोली के प्रभाव से मुक्त होने का प्रयास करना ।
- (छ) क्रमबद्धता, संक्षिप्तता और प्रकरण की एकता बनाए रखना ।
- (ज) अपनी मौखिक अभिव्यक्ति को रोचक और प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयास करना ।
- (झ) मौखिक अभिव्यक्ति के निम्नांकित रूपों में योग्यता प्राप्त करना—
 1. सामाजिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर बातचीत, संवाद, परिचर्चा, वाद-विवाद में भाग लेना ।
 2. स्वागत करना, परिचय कराना और धन्यवाद देना, कृतज्ञता-ज्ञापन, संवेदना, बधाई आदि की भाषा से परिचित होना ।
 3. लगभग पाँच मिनट तक का भाषण दे सकना ।
 4. प्रभावपूर्ण ढंग से कहानी कहना और कविता वाचन करना ।
 5. अभिनय में भाग लेना तथा माइक पर बोलना ।

2. द्वितीय भाषा के संदर्भ में

कक्षा 5/6 से 8 तक के लिए

- (क) हिन्दी की सभी ध्वनियों का अलग-अलग और स्पष्ट मानक शब्दों में उच्चारण कर सकना ।
- (ख) संयुक्ताक्षर वाले शब्दों का शुद्ध उच्चारण कर सकना ।
- (ग) बोलते हुए सही बल तथा अनुतान का प्रयोग करना ।
- (घ) व्याकरणसम्मत वाक्य बोल सकना ।
- (ङ) सरल विषयों पर सामान्य स्तर की बातचीत में भाग ले सकना ।
- (च) हिन्दी में सरल कविताएँ और कहानियाँ सुनाना ।
- (छ) मित्रों और अपरिचितों को अपनी बात हिन्दी में समझा सकना ।
- (ज) हिन्दी के सरल संवादों के अभिनय में भाग ले सकना ।

VI. मौखिक अभिव्यक्ति के रूप

व्यावहारिक जीवन में मौखिक अभिव्यक्ति के अनेक रूप हो सकते हैं । मुख्य रूप से इनका विभाजन निम्नलिखित प्रकार से हो सकता है—

मौखिक अभिव्यक्ति के रूप

1	2	3	4	5	6	7
औपचारिक (फ़ार्मल)	अनौपचारिक (इंफ़ार्मल)	वार्ता (कन्वरसेशन)	वर्णन (नरेशन)	चित्रण (डिस्क्रिप्शन)	भाषण (स्पीच)	इतिवृत्त (रिपोर्ट)

1. औपचारिक (फ़ार्मल)

अतिथि के स्वागत, समारोह में प्रकट किए गए विचार, बड़ों, या कक्षा अध्यापक से की गई बातचीत अधिकतर औपचारिक मौखिक अभिव्यक्ति का रूप ले लेती है। ऐसे अवसरों पर प्रयुक्त शब्दावली, वाक्य विन्यास, अभिव्यक्ति का लहजा बनावटी-सा बन जाता है। वक्ता एक-एक शब्द नाप-तोल कर प्रयोग में लाता है। कई बार संबोधित व्यक्ति को इस प्रकार का बनावटी वातावरण रुचिकर नहीं लगता किन्तु ऐसे अवसरों से हम बच भी नहीं सकते। औपचारिक वार्ता उच्च श्रेणी का कौशल माना गया है।

2. अनौपचारिक (इंफ़ार्मल)

मित्रों की आपसी बातचीत, जलपान गृहों में लोगों का आपसी मिलन, वाहनों में यात्रा आदि करते समय व्यक्ति सामान्यतः अनौपचारिक रूप से अपने आपको अभिव्यक्त करता है। इस समय शब्दावली, वाक्य और यहाँ तक कि विषय भी बड़े लचीले होते हैं। बात करते समय कोई घुटन अनुभव नहीं होती। औपचारिकता के जाम की छाया छू तक नहीं पाती। मनुष्य को जीवन में अनौपचारिक अभिव्यक्ति के अगणित अवसर मिलते हैं। भाषा के कितने शब्दों का विकास अनौपचारिक अभिव्यक्ति के समय होता है। हाँ, अनौपचारिक अभिव्यक्ति में शिष्टाचार की सीमा का उल्लंघन नहीं होना चाहिए।

3. वार्ता (कन्वरसेशन)

वार्ता दोनों ही रूप में संभव है—औपचारिक तथा अनौपचारिक। वार्ता में अधिकतर औपचारिकता का पुट अंशतः अधिक रहता है। वार्ता में सुनने का धैर्य होना अच्छा गुण माना जाता है।

4. वर्णन (नरेशन)

घटना तथा तथ्यों का मौखिक रूप से प्रस्तुतीकरण 'वर्णन' कहलाता है।

मनुष्य को जीवन में अनेक ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जिसे वह यथातथ्य बताना चाहता है। ऐसे वर्णन में घटना अथवा तथ्यों की सत्यता की ओर सचेत रहना पड़ता है। वर्णन करना वाणी का एक कौशल है। इस कौशल के विकास के लिए अभ्यास की आवश्यकता है।

5. चित्रण (डिस्क्रिप्शन)

चित्रण मौखिक अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण पहलू है। जहाँ वर्णन में घटना तथा तथ्यों को यथावत् कहने पर बल है वहाँ चित्रण में किसी व्यक्ति या स्थान का शब्दजाल के माध्यम से सजीव चित्र उपस्थित किया जाता है। चित्रण में व्यक्ति की शारीरिक विशिष्टताओं के अतिरिक्त उसके मानसिक गुणों को भी चित्रवत् अभिव्यक्त किया जाता है। चित्रण के माध्यम से श्रोता के सम्मुख व्यक्ति या परिस्थिति का जीता जागता मूर्त रूप उपस्थित हो जाता है। चित्रण भी एक कौशल है। इस कौशल का विकास विद्यालयों में कराया जा सकता है।

6. भाषण (स्पीच)

किसी विषय विशेष पर व्यक्ति या समूह के सम्मुख स्वानुभूति-परानुभूति आदि की अभिव्यक्ति करना 'भाषण' है। भाषण के समय श्रोताओं के मस्तिष्क और हृदय के भावों को आन्दोलित किया जाता है। प्रजातंत्र में इस कला के विकास की बहुत आवश्यकता है।

7. इतिवृत्त (रिपोर्ट)

इतिवृत्त से अभिप्राय किसी सुनी, देखी या कही गई बात या घटना का बिना किसी व्यक्तिगत स्वार्थ या दुर्भावना के यथातथ्य विवरण प्रस्तुत करना है।

मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के साधनों की चर्चा नीचे की जा रही है।

VII. मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के साधन

विद्यालय में प्रवेश के समय तक बालक अपने घरों में परिवार और अपने समाज की परम्परा के अनुसार बोलना सीख कर आते हैं। सामान्यतः आयु-सीमा, बौद्धिक स्तर की विभिन्नता आदि अनेक कारणवश उसे विद्यालय में योजनाबद्ध रूप से बोलचाल की शिक्षा की आवश्यकता होती है। पूर्व प्राथमिक शिक्षा (Pre Primary Education) अर्थात् नर्सरी तथा के० जी० आदि कक्षाओं में मुख्य रूप से बोलचाल की शिक्षा या मौखिक अभिव्यक्ति के विकास

पर बल रहता है।

प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च कक्षाओं में पाठ्य पुस्तक पढ़ते समय तथा अन्यान्य कार्यक्रमों में अनेक ऐसे अवसर मिलते हैं जबकि औपचारिक और अनौपचारिक विधि से मौखिक अभिव्यक्ति का विकास कराया जा सकता है। ऐसे अवसरों पर अध्यापक को ध्यान देना होगा कि बोलचाल की शिक्षा के विषय छात्रों की रुचि, वातावरण तथा आवश्यकता के अनुसार हों।

नीचे ऐसे साधनों पर विचार किया जाएगा जिनका उपयोग मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के लिए किया जा सकता है।

मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के साधन

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
अनौपचारिक बात-चीत	कहानी	घटना वर्णन	चित्र वर्णन	संस्मरण वाचन	प्रश्नोत्तर	कविता पाठ	समालोचना	भाषण	आणु भाषण प्रतियोगिता	वाद-विवाद	चर्चा	नाटक	बाल सभा	विशेष सभाएं	ध्वनियंत्रों पर बोलने का अभ्यास

1. अनौपचारिक बात-चीत

आरंभिक कक्षाओं में अधिकांश विद्यार्थी संकोचशील स्वभाव के होते हैं। विद्यालय का वातावरण उनके लिए नया अनुभव होता है। वे अध्यापक और अपने बीच की दूरी का भी अनुभव करते हैं क्योंकि वहाँ कुटुंबिजनों-सी आत्मीयता का अनुभव उन्हें नहीं हो पाता। परिवारजनों-सी आत्मीयता कराने के लिए विद्यार्थी से ऐसी बात-चीत करनी चाहिए जिसे वह घर के वातावरण में छोड़कर आया है। बच्चों के भोजन, वस्त्र, परिवार के सदस्यों के नाम, परिवार के सदस्यों की संख्या, उनके प्रिय खेल और खिलौने, घर का सामान, मित्र, पास-पड़ोस, हाट-बाजार ऐसे माध्यम हैं जिन पर अनौपचारिक रूप से घंटों-घंटों तथा दिनों तक रुचिकर विधि से बात-चीत की जा सकती है। संबंधियों, अपने से बड़ों आदि के साथ श्री, श्रीमती, श्रीमानजी आदि आदर सूचक शब्दों का प्रयोग सिखाया जा सकता है।

अनौपचारिक बात-चीत से बच्चों की शिक्षक खुलती है तथा आत्मविश्वास

उत्पन्न होता है। इससे उनके शब्द भंडार में वृद्धि होती है तथा वाक्य विन्यास में सुधार होता है। इससे वार्ता, संवाद, कथोपकथन आदि में भाग लेने की पृष्ठ-भूमि तैयार होती है।

2. कहानी

आरंभिक कक्षाओं में विद्यार्थियों को कहानी सुनने और सुनाने में बहुत आनंद आता है। मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के लिए अध्यापक को इस विधा का प्रयोग करना चाहिए।

कहानियों के विषय पशु-पक्षी, नाना-नानी, परियाँ, पौराणिक पुरुष, वीर बालक-बालिकाएँ, आदर्श स्त्री-पुरुष आदि हो सकते हैं। यथासंभव कहानियाँ इस प्रकार से प्रस्तुत की जाएँ कि वे उपदेशवाद का रूप न लें अपितु पात्रों के कार्य, कथोपकथन से विद्यार्थी सत्पात्रों के गुणों को ग्रहण करें।

कक्षा में कहानी सुनाने के बाद अध्यापक अधिकाधिक बच्चों से उसे पूर्ण रूप से अथवा खंडशः सुने। कहानी से संबंधित अन्य कहानी भी विद्यार्थियों से सुनी जा सकती हैं।

कहानी सुनते समय कथ्य विषय की शब्दावली, वाक्य विन्यास, घटनाक्रम तथा काल पर विशेष ध्यान दिया जाए। एक 'राजा' होता है, 'एक रानी होती है' के स्थान पर 'एक राजा था', 'एक रानी थी' आदि के मानक प्रयोग अपनाने पर बल होना चाहिए।

कहानी सुनते समय संभव है विद्यार्थी ग्रामीण बोली का भी प्रयोग करे। ऐसी अवस्था में उसे उपहास का पात्र न बनने दें। धीरे-धीरे मानक हिन्दी के प्रयोग लिए के उत्साहित करें।

कहानी सुनते समय पात्रों के प्रति विद्यार्थियों की प्रतिक्रिया जानना भी बोलचाल की शिक्षा का अच्छा अवसर है। विद्यार्थियों से ऐसे प्रश्न पूछे जा सकते हैं कि अमुक पात्र तुम्हें क्यों अच्छा लगा? और अमुक क्यों बुरा? अमुक पात्र ने ऐसा क्यों किया होगा? अगर आप इस पात्र के स्थान पर होते तो क्या करते? ऐसे चिन्तनात्मक प्रश्न बोलचाल, तर्क-वितर्क आदि शक्तियों का विकास करते हैं।

कहानी सुनते समय कहानी सुनाने का उचित शिष्टाचार, उचित आंगिक अभिनय, भाव के अनुसार स्वर का उचित आरोह-अवरोह का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए।

माध्यमिक तथा उच्च कक्षाओं में कहानी का सार, संदेश, कथ्य आदि के अतिरिक्त कहानी के विभिन्न साहित्यिक पक्षों पर विद्यार्थियों के विचार और प्रतिक्रिया आमंत्रित करने चाहिए।

3. घटना वर्णन

विद्यार्थी देखी-सुनी बातों को अपने शब्दों में सुनाने में बड़ा आनंद लेते हैं। मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के लिए आरंभिक कक्षाओं से माध्यमिक तथा उच्च कक्षाओं तक इस विद्या का लाभ उठाया जा सकता है। विद्यार्थियों के पास-पड़ोस में क्या-क्या होता है? क्यों होता है? विद्यालय आते समय वे क्या-क्या देखते हैं? विद्यालय में वे अपना समय कैसे व्यतीत करते हैं? वे अपनी छुट्टी का दिन कैसे बिताते हैं? वे अमुक त्योहार कैसे मानते हैं? उन्होंने मेले में क्या-क्या देखा? जीवन की सुखद-दुखद, रोमांचकारी, अविस्मरणीय घटना वर्णन ऐसे विषय हैं जिन से विद्यार्थी को अपने निजी अनुभवों को प्रकट करने के श्रेष्ठ अवसर मिलते हैं। इन घटनाओं में शब्दावली के प्रयोग, वास्तविक स्थिति और काल्पनिक विचारों के सम्मिश्रण, मौलिक शैली के विकास आदि के अच्छे अवसर मिलते हैं। जिन विद्यार्थियों को बोलचाल के माध्यम से इन घटनाओं का वर्णन करना आ जाएगा वे लिखित रूप में भी इनकी अभिव्यक्ति सम्यक् रूप से कर सकेंगे।

विद्यालय में होने वाले हाकी, क्रिकेट, खोखो, कबड्डी, वालावाल आदि पर सतत विवरण (रनिंग कमेंटरी) देने के अभ्यास से भी मौखिक अभिव्यक्ति का विकास होता है।

4. चित्र वर्णन

बोलचाल की शिक्षा के लिए पाठ्य पुस्तक तथा कहानियों से संबंधित चित्रों पर बातचीत बहुत ही उपयोगी रहती है। आरंभिक कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकों में चित्रों की बहुलता होती है। चित्रों के बारे में कौन, कहाँ, कब, कैसे आदि प्रश्न पूछे जा सकते हैं। संकेत के आधार पर कहानी पूरी कराई जा सकती है। ऐसा करने से बच्चों की शब्दावली, वाक्य विन्यास, घटनाक्रम जानना आदि भाषा कौशलों का विकास होगा।

5. सस्वर वाचन

सस्वर वाचन बोलचाल की शिक्षा के लिए सुदृढ़ भूमिका तैयार करने का अच्छा अवसर प्रदान करता है। बोलचाल की शिक्षा के पूर्वनिर्दिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति में यह बहुत सहायक है।

सस्वर वाचन, मुखर वाचन (लाउड रीडिंग) के समय भाषा में प्रयुक्त स्वर, व्यंजन, संयुक्त व्यंजन, व्यंजन गुच्छ आदि के उच्चारण करने के अनेक अवसर मिलते हैं। इन वर्णों से निर्मित शब्द तथा भाषा के वाक्य गठन की विधि के अभ्यास का भी यहाँ अवसर मिलता है।

आदर-सम्मान, अनुनय-विनय, क्रोध-शांति, आदेश-निर्देश आदि भावों से संबंधित सामग्री को उचित ढंग से बोलने के अवसर प्राप्त होते हैं।

सस्वर वाचन के समय साहित्य की विभिन्न विधाओं यथा—कहानी, लघु-नाटिका, एकांकी, नाटक, वार्ता, संवाद, पत्र लेखन, आत्मकथा, डायरी लेखन, साहित्यिक लेख, उपन्यास, गद्य, पद्य, चम्पू, खंड काव्य, महाकाव्य आदि के मुखर वाचन का अवसर मिलता है। इन विधाओं में जीवन के अनेकशः ऐसे कार्य व्यापार होंगे जिनका विद्यार्थी के भावी जीवन से सीधा संपर्क होगा। इस सामग्री के वाचन से विद्यार्थी का भावी व्यावहारिक जीवन प्रभावित होगा।

सस्वर वाचन के उपर्युक्त महत्त्व को देखते हुए विद्यार्थी को इस प्रकार की सामग्री को पढ़ने के अनेक अवसर प्रदान कराने चाहिए। हिन्दी की मातृभाषा समझने के कारण हिन्दी अध्यापक अधिकांशतः सस्वर वाचन कराने के उचित अवसर प्रदान नहीं करते किन्तु ऐसा समझने वाले अध्यापकों को तुरन्त अपनी भूल सुधार कर लेनी चाहिए।

6. प्रश्नोत्तर

प्रश्नोत्तर अनौपचारिक बातचीत की अगली सीढ़ी है। प्रश्नोत्तर में कुछ औपचारिकता का समावेश हो जाता है। प्रश्नकर्ता प्रश्नों का निर्माण औपचारिक विधि से करता है तथा विद्यार्थी से भी आशा की जाती है कि वह भी उसका उत्तर औपचारिक विधि से दे। विद्यार्थी की शब्दावली, वाक्य-विन्यास, भाव-ग्रहणता, भाषा सौष्ठव आदि में कक्षा के स्तर के अनुसार मानक अभिव्यक्ति की आशा की जाती है।

प्रश्नोत्तरों के विषय विद्यार्थी की पाठ्य पुस्तक, पाठ्य पुस्तक पर आधारित योग्यता विस्तार के प्रश्न, स्वतन्त्र चिंतन, मौलिक अभिव्यक्ति, किसी विषय के प्रति प्रतिक्रिया आदि कुछ भी हो सकते हैं।

प्रश्नोत्तर काल में अध्यापक को ध्यान रखना होगा कि प्रश्न स्तर के अनुसार हों तथा अधिकाधिक विद्यार्थी उसमें भाग लें। उचित विधि से उत्तर न देने वाले, आंशिक रूप से उत्तर देने वाले तथा वक्ता के आचार का पालन न करने वाले विद्यार्थियों को हतोत्साहित न करके उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण और उत्साहवर्धक व्यवहार करें। ऐसा न करने से विद्यार्थी कुंठाग्रस्त हो जाते हैं।

7. कविता पाठ

बोलचाल की शिक्षा में कविता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये कविताएँ बाल-गीत, वर्णनात्मक गीत, प्रयाणगीत अभिनयगीत, साहित्यिक कविताओं आदि के

रूप में होती है। इनमें सामान्य तुक, तुकहीन कविताओं से लेकर दोहा, छन्द, चौपाई, सवैया, सोरठा आदि विभिन्न छंदों का प्रयोग होता है।

कविता श्रोता के भावों को प्रभावित करने का महत्वपूर्ण साधन है। अध्यापक को चाहिए कि कविता के भाव के अनुसार विद्यार्थी से कविता पाठ कराए।

कविता पाठ व्यक्ति तथा सामूहिक दोनों ही प्रकार से कराया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के छंदों के गायन की अलग-अलग विधियाँ हैं। अध्यापक कक्षा में तथा कक्षा से बाहर विद्यार्थी को कविता पाठ के अवसर प्रदान कर सकता है।

कविता पाठ के अतिरिक्त कविता की व्याख्या, कविता के संदेश के प्रति प्रतिक्रिया, कविता के भावपक्ष और कलापक्ष की समीक्षा बोलचाल की शिक्षा के सुनहरे अवसर प्रदान करते हैं।

अन्त्याक्षरी, स्वरचित कविता पाठ, शरद, वसंत, होली आदि अवसरों पर कवि सम्मेलन मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के लिए उचित अवसर हैं।

8. समालोचना

माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में पाठ्य पुस्तकों के अलावा अतिरिक्त पठन का भी प्रावधान होता है। विद्यार्थी पुस्तकालय में अनेक प्रकार की पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते हैं। अध्यापक पठित साहित्य की समालोचना करने के अवसर कक्षा में प्रदान कर सकता है ताकि विद्यार्थियों को मौखिक अभिव्यक्ति के अवसर मिल सकें।

9. भाषण

प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली में भाषण कला का बहुत महत्व है। अपने विचारों को प्रभावशाली ढंग से समाज तक पहुँचाने, विरोधी के तर्कों को काटने, जन-जन के हृदय को जीतने में भाषण का महत्वपूर्ण योगदान है।

भाषण करना भी एक कला है। विद्यार्थियों में इस कला का विकास कराने की बहुत आवश्यकता है। भाषण को प्रभावशाली बनाने के लिए उसके आधार-भूत तत्वों का ज्ञान आवश्यक है।

भाषण के तत्व

1. मूल विचार या कथ्य
2. इन विचारों को यथाक्रम सँजोने की विधि
3. विचारों की पुष्टि के लिए सहायक सामग्री के ताने-बाने का निर्माण
4. श्रोताओं की पृष्ठभूमि के अनुसार इस सामग्री का अनुकूलन
5. विचार-

संप्रेषण के लिए उचित अंग संचालन 6. वाणी का उचित आरोह-अवरोह तथा श्रोताओं की संख्या के अनुसार उचित स्वर 7. श्रोताओं के स्तर के अनुसार भाषा 8. श्रोताओं की मनःस्थिति के अनुसार भाषण में आवश्यक फेर-बदल 9. विषय, समय और मंच के गौरव का सम्मान 10. विषय का उचित समाहार या समापन ।

भाषणकर्ता यदि भाषण के पूर्व, मध्य तथा समापन के समय इन तत्वों का ध्यान रखेगा तो श्रोताओं पर वक्ता का अनुकूल प्रभाव पड़ेगा ।

वास्तव में संवाद, वार्ता, चर्चा तथा वाद-विवाद भी भाषण का ही अंग हैं । इनकी तैयारी में भी उपर्युक्त बातों का ध्यान रखना चाहिए ।

10. आशु भाषण प्रतियोगिता

आशु भाषण प्रतियोगिता या 'एक्सटेम्पोर स्पीच' बोलचाल की शिक्षा का उपयोगी साधन है । माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में विद्यालय या अंतर्विद्यालय प्रतियोगिता के रूप में इनका आयोजन किया जा सकता है । विद्यार्थियों को कुछ विषय पहले दे दिए जाते हैं और लाटरी द्वारा तत्काल नम्बर निकालकर विद्यार्थी को निश्चित अवधि (तीन से पाँच मिनट) तक उस विषय पर बोलने को कहा जाता है ।

11. वाद-विवाद

कक्षा के विद्यार्थियों या कक्षाओं के विद्यार्थियों के बीच अन्तर्विद्यालय, अन्तर्जिला या अन्तर्राज्य स्तर पर वाद-विवाद प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जा सकता है । इस प्रकार के आयोजनों से विद्यार्थियों में तर्कशक्ति, प्रतुष्टपन्न-मति या हाज़िरजवाबी, हास्य-व्यंग्य का गुण, विचारों को संक्षिप्त रूप से अवसर अनुकूल कहने के गुणों का विकास होता है ।

वाद-विवाद के विषयों के चुनाव में सावधानी बरतने की आवश्यकता है । वाद-विवाद के विषय ऐसे हों जिनमें जाति, धर्म, क्षेत्र आदि के बीच किसी प्रकार की कटुता उत्पन्न न हो । विपक्ष के विचार प्रमाण और तर्क पर आधारित हों । कार्यक्रम की समाप्ति पर वाद-विवाद का शास्त्रार्थ शस्त्रार्थ में परिवर्तित न हो जाए ।

नई शिक्षा प्रणाली, नई शिक्षा प्रणाली और व्यवसाय के साधन, समाज उपयोगी रचनात्मक कार्य कितना रचनात्मक और उपयोगी है, क्या हमारी नैतिकता में ह्रास हुआ है, क्या हमारी शासन प्रणाली वास्तव में प्रजातान्त्रिक है, विवाह की आयु क्या हो, इक्कीसवीं शती का भारत, कंप्यूटर और मानव आदि विषयों पर वाद-विवाद का आयोजन कराया जा सकता है ।

12. चर्चा

चर्चा (पैनल डिस्कशन) विरोधी दल के विचार धैर्यपूर्वक सुनने के गुण के विकास का अच्छा साधन है। प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली में एक ही विषय पर कई प्रकार की विचारधाराएँ हो सकती हैं। सभी विचारधाराओं में आंशिक सत्य होता है। उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के विचारों का झुकाव किसी-न-किसी राजनीतिक दल की ओर हो जाता है।

छात्र-जीवन, शिक्षा-नीति, आर्थिक नीति आदि विषयों को भी चर्चा का विषय बनाया जा सकता है।

चर्चा के समय एक निर्णायक या प्रधान की नियुक्ति की जा सकती है। प्रधान सभी विचारधाराओं को सुनकर अपना निष्कर्ष दे सकता है। यहाँ भी सावधानी बरतनी पड़ेगी कि कहीं विचार मंथन का शास्त्रार्थ शस्त्रार्थ में परिवर्तित न हो जाए।

आजकल दूरदर्शन और आकाशवाणी पर बहुत ही उच्च स्तर की चर्चाओं का आयोजन किया जाता है। इन चर्चाओं के आधार पर विद्यालयों के बीच चर्चाओं का आयोजन किया जा सकता है। युववाणी, यूथ फोरम आदि के माध्यम से प्रशिक्षणार्थी भी अपना कार्यक्रम आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से प्रसारित करवा सकते हैं।

13. नाटक

भावानुकूल भाषा, उचित आंगिक अभिनय, वाणी में प्रभावोत्पादकता, माइक पर बोलने आदि के अभ्यास के लिए नाटकों का आयोजन बहुत उपयोगी रहता है।

विद्यालय की परिस्थिति के अनुसार मंच, वेशभूषा आदि सामान्य से लेकर श्रेष्ठ स्तर तक के हो सकते हैं।

नाटक के विषय पाठ्य पुस्तकों से चुने जा सकते हैं। विशेष राष्ट्रीय, सांस्कृतिक पर्वों, सामाजिक उत्सवों पर विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर रचे गए नाटकों का भी मंचन किया जा सकता है।

साहसी अध्यापक विद्यालय में पुतली-नाटक (पपट-प्ले), छायानाटक (शेडो-प्ले) तथा रेडियो और दूरदर्शन के लिए नाटकों का आयोजन भी कर सकते हैं।

14. बाल सभा

मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के लिए बाल सभा बहुत ही उपयोगी साधन है। बाल सभा विद्यालय के कार्यक्रम का महत्वपूर्ण अंग है। बाल सभा सप्ताह में एक दिन कक्षा स्तर पर तथा एक पखवाड़े में सामूहिक रूप से आयोजित की

जा सकती है। इसके आयोजन का समय अर्ध अवकाश के बाद सुविधाजनक रहता है। साप्ताहिक तथा पाक्षिक वालसभा के अतिरिक्त विशेष अवसरों पर भी इसका आयोजन किया जा सकता है।

विषयों की दृष्टि से इसमें कहानी, चुटकुले, भाषण, स्वगत भाषण, एकांकी, कविता पाठ, साप्ताहिक गान सम्मिलित किए जा सकते हैं। होली, दीपावली, गणतन्त्र-दिवस, स्वतन्त्रता-दिवस जैसे अवसरों पर एक ही मुख्य विषय पर भाषण, कहानी, कविता, नाटक आदि का आयोजन किया जा सकता है।

15. विशेष सभाएँ

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली इस बात से लांछित है कि विद्यार्थियों में व्यावहारिकता का एकान्त अभाव है। सुख-दुःख, बधाई-शोक, संवेदना, परिचय, धन्यवाद, कृतज्ञता ज्ञापन जैसे औपचारिक अवसरों पर हमारे विद्यार्थी अलग-थलग से खड़े नजर आते हैं।

घर-परिवार, पास-पड़ोस तथा विद्यालय में सुख-दुःख के अनेक अवसर आते हैं। इन अवसरों पर सभाओं का आयोजन भी किया जाता है। हमारे विद्यालयों का दायित्व है कि हम ऐसे अवसरों पर विद्यार्थियों को भावाभिव्यक्ति का अवसर दें। किसी व्यवहारकुशल अध्यापक की देख-रेख में विद्यार्थी समयानुकूल सामग्री का निर्माण या संग्रह करें।

विचाराभिव्यक्ति के लिए तैयार की गई यह सामयिक सामग्री संतुलित मस्तिष्क से तैयार की जानी चाहिए। विचारों का अधिक ऊहापोह, अनर्गल बड़ाई, अतिशयोक्तिपूर्ण स्वागत उपहास का कारण बन जाते हैं। वक्ता की सामग्री में सन्तुलन तथा समयानुकूलता की पुष्टि होनी चाहिए।

16. ध्वनि यंत्रों पर बोलने का अभ्यास

शिक्षा के क्षेत्र में श्रव्य और दृश्य साधनों का उपयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से शिक्षा संबंधी कार्यक्रम पाठ्यचर्या का अभिन्न अंग बनता जा रहा है। कक्षा में टेपरिकार्डर, वीडियो टेप, ध्वनि विस्तारक यंत्र का प्रयोग भी होने लगा है। विद्यालयों से विद्यार्थी भी इसमें सक्रिय भाग लेने लगे हैं। इन परिस्थितियों में हमें विद्यार्थियों को इन ध्वनि-यंत्रों पर बोलने का उचित अवसर देना चाहिए। इक्कीसवीं शताब्दी का कक्षा-कक्ष आज से काफी भिन्न होगा। उसमें ऐसे यंत्र होंगे जिनका संचालन स्वयं विद्यार्थी ही करेंगे।

VIII. बोलचाल के गुण

मनुष्य का कुल तथा उसकी शिक्षा-दीक्षा का स्तर उसकी वाणी से मिल जाता है। एक जनश्रुति के अनुसार एक नेत्रहीन व्यक्ति ने राजा, मंत्री, सेवक तथा दास की पहचान उनकी वाणी को सुनकर की थी। कोयल और कौए की पहचान उनके स्वर से ही की जाती है। हमें अपने विद्यालयों में विद्यार्थियों को बोलचाल के सभी गुणों से मंडित करना होगा। इसके लिए सतत अभ्यास की आवश्यकता है। इस अभ्यास के लिए उपयुक्त साधनों और अवसरों की चर्चा पीछे की जा चुकी है। यहाँ संक्षेप में बोलचाल के प्रमुख गुणों की चर्चा की जाएगी।

बोलचाल के गुण

1	2	3	4	5	6
शुद्धता	अवसर अनुकूलता	गतिशीलता	यांत्रिक कौशलों का उपयोग	विचारों की क्रमबद्धता	प्रभावोत्पादकता

1. शुद्धता

उच्चारण की शुद्धता बोलचाल या मौखिक अभिव्यक्ति का परमावश्यक गुण है। अधिकांश देशवासियों का संबंध गाँवों की किसी बोली अथवा उप-बोली से होने के कारण उच्चारण दोष का होना स्वाभाविक है। हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में ही वर्णों के उच्चारण मात्राकाल में अन्तर है। इन उच्चारण-भेदों के कारण और निवारण के उपाय आदि पर उच्चारण की शिक्षा विषय पर विचार करते समय प्रकाश डाला जाएगा। यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि वक्ता को उच्चारण की शुद्धता के प्रति सचेष्ट रहना चाहिए।

2. अवसर अनुकूलता

(क) अवसर के अनुकूल विषय या प्रकरण का चुनाव हर्ष-शोक, क्रोध-शांति, अनुनय-विनय, आदेश-निर्देश, मधुरता-कटुता आदि अनेकविध अवसरों पर अवसर के अनुकूल वाणी का प्रयोग करना चाहिए।

दैनिक जीवन के सामान्य व्यवहार में मधुर और शिष्ट भाषा का प्रयोग होना चाहिए।

- (ख) अवसर के अनुसार शब्दावली, वाक्य विन्यास, लोकोक्ति, मुहावरे, उदाहरण, उद्धरण आदि का प्रयोग उचित रहता है। श्रोताओं की आयु, स्थिति, पद आदि को ध्यान में रखकर बोलने से श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

3. गतिशीलता

विचाराभिव्यक्ति के समय अनुचित विधि से अटक-अटक बार बोलना वक्ता के संदेश को प्रभावहीन बना देता है अतः विचारों की निरंतरता तथा गतिशीलता बनी रहना आवश्यक है।

4. यांत्रिक कौशलों का उपयोग

बोलचाल के कुछ यांत्रिक कौशल हैं, यथा—उचित श्वास प्रक्रिया, वाणी का उचित आरोह-अवरोह, अनुतान, बल आदि का उचित प्रयोग, उचित मुद्रा, उचित अंगसंचालन या अभिनय आदि। इनका बोलचाल में महत्वपूर्ण स्थान है। इन कौशलों का समुचित विकास कराया जाए।

5. विचारों की क्रमबद्धता

प्रकरण के अनुसार विचारों की क्रमबद्धता मौखिक अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण गुण है। इनके अभाव में वक्ता श्रोताओं तक अपने विचारों को उत्तम विधि से नहीं पहुँचा सकता।

6. प्रभावोत्पादकता

मौखिक अभिव्यक्ति या बोलचाल की शिक्षा के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए पीछे इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि वक्ता का अन्तिम लक्ष्य श्रोता तक अपना संदेश पहुँचाकर मनोवांछित विधि से प्रभावित करना होता है। इस प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए शुद्धता, अवसर अनुकूलता, गतिशीलता, यांत्रिक कौशलों का उपयोग, विचार की क्रमबद्धता आदि पर बल देना चाहिए।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि वक्ता अपने संदेश के विषय, संदेश प्रेषित करने की विधि तथा श्रोताओं को समझने में जितना ही कुशल होगा उसका प्रभाव उतना ही स्थायी होगा।

IX. बोलचाल की त्रुटियाँ—कारण तथा निवारण

सामान्यतः देखने में आता है कि विद्यार्थियों की बोलचाल में कई प्रकार की त्रुटियाँ होती हैं। इन त्रुटियों के कारणों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

1. शारीरिक दोष
2. मानसिक दोष
3. शिक्षा पद्धति।

1. शारीरिक दोष

बोलचाल की त्रुटियों का एक कारण बालक के शारीरिक दोष भी होते हैं। भारत में इस समय प्रामाणिक रूप से इस प्रकार के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं कि किस आयु वर्ग के कितने प्रतिशत बालक किन-किन शारीरिक रोगों से पीड़ित हैं और बोलचाल की शिक्षा पर उनका क्या-क्या प्रभाव पड़ रहा है। अमरीका की American Speech and Hearing Association Committee के अपने देश के एक सर्वेक्षण के अनुसार पूर्व विद्यालय के आयु वर्ग के 1.3% तथा विद्यालय की आयु वर्ग के 5% बालक भयंकर वाणी रोगों से तथा 5% बालक सामान्य वाणी दोषों से पीड़ित थे।

एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार बोलचाल की 75% त्रुटियाँ अक्षरावस्थान या अक्षर व्यंक्ति (Articulation) से संबंधित थीं।

वाणी के अतिरिक्त श्रवण दोष भी बोलचाल की त्रुटियों के कारण बनते हैं।

1979 का वर्ष विश्व भर में बाल दिवस के रूप में मनाया गया। भारत में राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री ने आशा प्रकट की थी कि बालकों और विशेषतः कमजोर आयु वर्ग के बालकों के पोषण तथा उपचार आदि का ओर विशेष ध्यान दिया जाएगा। यदि हम बालकों के वाणी और श्रवण दोषों का कुछ भी सुधार कर पाए तो बालकों की बोलचाल की शक्ति का विकास होगा।

2. मानसिक दोष

बोलचाल के समम बच्चों में हकलाना, थथलाना, तुतलाना, नकयाना (नाक में बोलना) आदि उच्चारण दोष मिलते हैं। इन दोषों को भूल से शारीरिक दोष समझ लिया जाता है। वास्तव में इन दोषों की जड़ में कुपोषण के कारण मस्तिष्क का अल्प विकास तथा माता-पिता, अभिभावकों और स्वयं अध्यापकों का बालकों के प्रति कठोर व्यवहार आदि होते हैं। अनेक वर्षों से बालकों के प्रति यह भ्रामक धारणा बन गई है कि बिना ताड़ना के बच्चा बिगड़ जाता है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि बच्चों के बिगड़ने का कारण उनके प्रति भय, आतंक, दमन आदि का व्यवहार अधिक है और लाड़-चाव कम।

उपर्युक्त वाणी दोषों से पीड़ित विद्यार्थियों की कठिनाइयों का पता लगाना चाहिए। ऐसे बच्चों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। बाल कल्याण संबंधी संस्थाओं से उनके उचित उपचार का प्रबंध कराना चाहिए।

3. शिक्षा नीति

(क) शिक्षा नीति में परिवर्तन

हमारी ऋषिकुल प्रणाली बोलचाल की शिक्षा पर आधारित थी। उसमें तर्क-वितर्क, शास्त्रार्थ आदि का विधान था। ब्रिटिश शासन प्रणाली ने हमारे राष्ट्र को मूक बना दिया। अपनी कठिनाई की फ़रियाद लिखित रूप में ही भेजी जा सकती थी। क्लर्क उत्पन्न करने वाली शिक्षा का मौखिक अभिव्यक्ति से छतीस (३६) का नाता होना स्वाभाविक ही था। हमारी लिखित परीक्षा प्रणाली ने मानों विद्यार्थियों की वाणी ही छीन ली। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमने प्रजातांत्रिक प्रणाली अपनाई। अब पुनः मौखिक अभिव्यक्ति की शिक्षा पर बल दिया जाने लगा है।

(ख) अध्यापक की स्थिति

हमारे बहुत से अध्यापक बालसभा आदि के कार्यक्रमों पर नाक-भोंह सिकोड़कर उसे समय का दुरुपयोग समझते हैं। यह उनकी नासमझी और बोलचाल की शिक्षा के प्रति उपेक्षा के कारण ही है।

बोलचाल की त्रुटि का एक कारण यह भी है कि हमारे अधिकांश अध्यापक ग्रामीण पृष्ठभूमि से आते हैं। उनका संबंध ग्रामीण बोलियों से है। आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पीछे होने के कारण अनेक अध्यापकों की वाणी में वह प्रज्वलन शक्ति नहीं होती जो विद्यार्थी रूपी दीपक को प्रकाशित कर सके। इस अभाव की पूर्ति के लिए अध्यापकों को कुशल प्रशिक्षकों की देख-रेख में प्रशिक्षण देना होगा।

(ग) वाक् शिक्षण अध्यापक

वैदिक युग के ऋषि उच्चारण की शुद्धि की ओर जागरूक थे। वेद के छः अंगों में एक अंग 'शिक्षा' है। इस शास्त्र में वेद के शुद्धपाठ पर बल दिया गया है तथा उच्चारण की शिक्षा देने वाले गुरु के लक्ष्णों का उल्लेख किया गया है।

उच्चारण दोष से होने वाले अनिष्ट की चर्चा करते हुए श्रीमती विमला कौशिक ने अपने शोध पत्र में लिखा है कि—'उच्चारण स्थूलित और स्वर भ्रष्ट वेद पाठ से होतु और यजमान के लिए इष्ट के स्थान पर अनिष्ट होने

की बात में भले ही कुछ विचारकों का विश्वास न हो किन्तु कालान्तर में वैदिक संस्कृत का पाली, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के माध्यम से आधुनिक भारतीय अथवा प्रान्तीय भाषाओं में परिवर्तन तथा उससे उत्पन्न अनावश्यक क्षेत्रीय विवादों से नित्य प्रति देश का अनिष्ट अवश्य हो रहा है।”

अशुद्ध उच्चारण को अनिष्टकारक मानने के पीछे यही भाव रहा होगा कि उच्चारण भेद से मूल शब्द आमूलचूल परिवर्तित होकर संकुचित प्रान्तीय भाषा का रूप धारण कर अपने को मूल से दूर का समझ बैठता है। यह परिवर्तन इतना शनैः-शनैः होता है जैसे बाल्यावस्था से नित्य प्रति दर्पण में अपनी मुखाकृति देखने वाला मनुष्य वृद्धावस्था में कैसे नरककाल बन जाता है इसका आभास मात्र भी नहीं हो पाता।

(घ) वाक् पाठ्यक्रम

बोलचाल की शिक्षा के विकास के लिए वाक् पाठ्यक्रम (Syllabus for Speech) के निर्माण की आवश्यकता है। इस पाठ्यक्रम से श्रेष्ठ वक्ता तथा उच्च कोटि के सांसदों (Parliamentarians) का भी निर्माण किया जा है।

(ङ) भाषा प्रयोगशाला

देश में अभी भाषा प्रयोगशालाओं के महत्त्व को नहीं समझा गया है। अंग्रेज सात समुद्र पार होते हुए भी अंग्रेजी के उच्चारण को शुद्ध बनाए रखने के लिए करोड़ों डालर यहाँ भाषा प्रयोगशालाओं की स्थापना, वीडियो टेप्स का वितरण, ग्रीष्मकालीन संस्थानों का आयोजन तथा उच्चारण संबंधी सामग्री का निर्माण करके योजनाबद्ध विधि से निवेश (अपव्यय नहीं) करते हैं दूसरी ओर हम 600 से भी अधिक बहु-भाषा या बहु-बोली बोलने वाले राज-भाषा हिन्दी के उच्चारण को मानक बनाने और उसे स्थिर रखने के प्रति कितने उदासीन हैं।

(च) भारतीय वाक् संस्थान

बोलचाल की शिक्षा की उन्नति तभी संभव है जब विदेशों में स्थापित Speech Association के आधार पर भारतीय वाक् या भाषण संस्थान (Indian Speech Association) की स्थापना की जाए तथा इस संस्थान के लक्ष्य निर्धारित करके शिक्षा बजट में राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर विशेष पूंजी का प्रबन्ध किया जाए।

नोट—बोलचाल के उच्चारण संबंधी पक्ष पर उच्चारण की शिक्षा अध्याय में

चर्चा की गई है। पाठक उस अध्याय को भी पढ़ें।

व्यावहारिक कार्य

प्रशिक्षण संस्थानों के लिए नवीन पाठ्यक्रम में व्यावहारिक कार्य के लिए 20-25% अंक निश्चित किए गए हैं। अध्यापक शिक्षण प्रशिक्षण संस्थान इस विषय पर निम्नलिखित व्यावहारिक कार्य प्रशिक्षणार्थियों से करवा सकते हैं। यह कार्य संस्थान के लिए विकासात्मक योजनाओं का स्थान ले सकता है। इन योजनाओं की पूर्ति के लिए एन० सी० ई० आर० टी०, नई दिल्ली की एक शाखा Educational Research and Innovation Committee (ERIC) या विश्वविद्यालय आयोग से भी आर्थिक सहायता तथा शैक्षिक मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सकता है।

1. क्षेत्र की बोलियों का सर्वेक्षण

- (क) क्षेत्र की बोलियों की शब्दावली एकत्रित करना।
- (ख) क्षेत्र की बोलियों की वाक्य संरचना ज्ञात करना।
- (ग) क्षेत्र की बोलियों की ध्वनियों का वर्गीकरण करना।
- (घ) हिन्दी या क्षेत्रीय बोली के उच्चारण भेदों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- (ङ) उच्चारण भिन्नता की ध्वनियों पर अभ्यास सामग्री (Drilling Exercises) का निर्माण करना।

2. क्षेत्र के बच्चों के उच्चारण दोषों का सर्वेक्षण

- (क) उच्चारण दोषों के प्रकार।
- (ख) उच्चारण दोषों के कारण।
- (ग) उच्चारण दोष निवारण की विधियाँ।

3. ध्वनि यंत्रों का प्रशिक्षण

- (क) टेपरेकार्डर, वीडियो टेप, ध्वनि विस्तारक के कार्यों के मूल सिद्धांत।
- (ख) इन यंत्रों के सामान्य प्रयोग की विधि।
- (ग) श्रव्य-दृश्य केन्द्र में इन यंत्रों के प्रयोग आदि का प्रशिक्षण।

4. सहायक सामग्री का निर्माण

वागिन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय, नासिका, कंठ, मुख, मुख-विवर, वर्णों के उच्चारण

स्थान आदि के माडल, चार्ट आदि का निर्माण ।

5. यात्राएँ

- (क) मूक-बधिर विद्यालय का भ्रमण ।
- (ख) भाषा प्रयोगशाला का भ्रमण ।
- (ग) Speech Therapy Clinic का भ्रमण ।

6. बोलचाल का प्रशिक्षण

- (क) बोलचाल का परीक्षण करने वाली सामग्री का अध्ययन ।
- (ख) बोलचाल के परीक्षण प्रश्नों (Test item) का निर्माण करना ।
- (ग) बोलचाल के परीक्षण तैयार करना जो क्षेत्रीय वातावरण के अनुकूल हों ।

संदर्भ

1. श्रीमती विमला कौशिक, संस्कृत भाषा प्रयोगशाला के लिए आधारभूत अभ्यास सामग्री, पुरस्कृत आख्या (1979-80) एन० सी० ई० आर० टी०, नई दिल्ली ।
2. Techniques of Material Development for Language lab.; Dr. J. N. Kaushik, (National Award winner paper); N.C.E.R.T. (1979).
3. National Curriculum for Primary and Secondary Education—A Framework, N.C.E.R.T., New Delhi (1986).
4. Secondary Teacher Education Curriculum, N.C.E.R.T. (1975).

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. दैनिक व्यवहार में बोलचाल की भाषा का क्या महत्व है ? क्या बोलचाल के कौशल का विकास सुनियोजित शिक्षण विधि से कराया जा सकता है ? यदि हाँ तो कैसे ?
2. हमारे विद्यालयों में बोलचाल की शिक्षा के कौन-कौन से उद्देश्य निश्चित किए गए हैं ? इस विषय पर एक विश्लेषणात्मक विवेचन करें ।
3. हम अपने विद्यालयों में कितन-कितन माध्यमों से बच्चों में मौखिक अभिव्यक्ति का विकास करा सकते हैं ? किन्हीं पाँच माध्यमों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालें ।
4. अच्छी बोलचाल के कौन से गुण हैं ? बच्चों में इन गुणों का विकास

हम कैसे कर सकते हैं ?

5. बोलचाल को दुष्प्रभावित करने वाले कारक कौन से हैं ? आप इनका निदान किस प्रकार करेंगे ?
6. टिप्पणी लिखें—
 1. वाक् शिक्षण अध्यापक
 2. बोलचाल की शिक्षा में प्रौद्योगिकी का योगदान
 3. आशुभाषण प्रतियोगिता
 4. वर्णन और चित्रण में अन्तर
 5. मौखिक अभिव्यक्ति के विविध रूप ।

अध्याय 8

उच्चारण की शिक्षा

1. उच्चारण की शिक्षा का महत्त्व

प्राचीन भारत में शिक्षा की परम्परा मौखिक थी। शिष्य गुरु के मुख से ज्ञान ग्रहण करते थे। लिखित पुस्तकें सुलभ न थीं। वेद की शिक्षा मौखिक रूप से गुरु-शिष्य परंपरा में सुरक्षित रही।

उस काल में उच्चारण की शिक्षा पर इसलिए भी बल दिया जाता था कि सूक्ष्म उच्चारण भेद से अर्थ का अनर्थ होने का भय था। इसीलिए अशुद्ध उच्चारण पाप माना जाता था। उसी व्यक्ति को गुरु बनने का अधिकार था जिसका उच्चारण शुद्ध हो।

संक्षेप में उच्चारण के महत्त्व को निम्नलिखित विद्वानों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है :—

1. शुद्ध उच्चारण शिष्टता का लक्षण

शुद्ध उच्चारण शिष्टता का लक्षण है। शिष्ट समाज का उच्चारण आदर्श उच्चारण माना जाता है। अन्य लोग उन्हीं के उच्चारण का अनुकरण करते हैं। यह कल्पना की जाती है कि शिष्ट समाज भावी शिक्षा-दीक्षा के प्रति अधिक सचेत है। वह देश के कार्यव्यवहार की केन्द्रीय धुरी के अधिक निकट है। राजकाज, व्यापार, सामाजिक व्यवहार आदि में वह अधिक गतिशील है। अतः शुद्ध उच्चारण शिष्टता का प्रतीक है।

2. विद्वत् समाज में सम्मान

विद्वत् समाज में उसी व्यक्ति को सम्मान मिलता है जिसका उच्चारण शुद्ध हो। विद्वत् गोष्ठियों में अशुद्ध उच्चारण करने वाला उपहास का पात्र बनता है।

3. शुद्ध उच्चारण भाषा का सौन्दर्य

शुद्ध उच्चारण भाषा का सौन्दर्य है। शुद्ध उच्चारण से भाषा कर्णप्रिय और

मोहक लगती है। वक्ता के प्रति श्रोता का आकर्षण बना रहता है।

4. भाषा में स्थिरता

शुद्ध उच्चारण से भाषा में स्थिरता बनी रहती है। उसमें परिवर्तन की गति रुक जाती है। उसका रूप कुरूप नहीं होता। सीखने और सिखाने वाले को असुविधा नहीं होती क्योंकि शब्दों का उच्चारण वही बना रहता है जो वर्षों पहले था। भाषा विभिन्न धाराओं में बँटकर क्षीण नहीं होती। उसकी मुख्य धारा बनी रहती है।

5. विद्यालयी शिक्षा की रीढ़

शुद्ध उच्चारण विद्यालयी शिक्षा की रीढ़ है। आज विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र-छात्राएँ किसी न किसी ग्रामीण बोली से जुड़े हुए हैं। घरों-गलियों और मोहल्लों में ग्रामीण बोली का वर्चस्व है। ऐसी अवस्था में मानक उच्चारण की शिक्षा की नितांत आवश्यकता है।

उच्चारण शिक्षा के महत्व के बारे में अन्य महत्वपूर्ण जानकारी बोलचाल की शिक्षा नामक अध्याय में दी गई है। पाठक उस सामग्री को वहाँ पढ़ सकते हैं।

II. उच्चारण के पक्ष

शब्दों का उच्चारण एक शारीरिक और मानसिक प्रक्रिया है। उच्चारण के समय उच्चारण से संबंधित अवयव या अंग (फेफड़े, कंठ, जिह्वा, दाँत, ओष्ठ आदि) स्वचालित यंत्र की तरह अपना काम करते हैं। अवयव संचालन की इस प्रक्रिया के पीछे मानसिक प्रक्रिया अपना काम करती रहती है। वही क्रिया उच्चारण अवयवों पर नियंत्रण रखती है। अतः उच्चारण के मोटे रूप से दो पक्ष हुए—1. यांत्रिक पक्ष 2. मानसिक पक्ष।

1. यांत्रिक पक्ष (मैकेनिकल एस्पेक्ट)

उच्चारण के समय किसी अक्षर, शब्द, वाक्य खंड या वाक्य पर कम या अधिक बल देने से अर्थ में परिवर्तन आ जाता है। उच्चारण की गति या लहजा अर्थ परिवर्तन का कारण बनता है। उच्चारण के इन यांत्रिक पक्षों की ओर अध्यापक का ध्यान रहना चाहिए। यहाँ उच्चारण के इन यांत्रिक पक्षों पर संक्षेप में चर्चा की जा रही है।

1. उच्चारण और बलाघात (आर्टिक्युलेशन एण्ड एक्सेंट)

उच्चारण के समय सभी अक्षरों या शब्दों पर बराबर बल नहीं होता। यह बल किसी अक्षर पर अधिक और किसी पर कम होता है। एक अक्षर या शब्द के एक खंड पर अधिक बल डालने की क्रिया को बलाघात कहते हैं।

‘राम’ शब्द को लीजिए। इसका अर्थ सामान्य रूप से कोई व्यक्ति है। किन्तु बलाघात के आधार पर इसके कई अर्थ हैं—

राम इधर आओ।

राम तुम इधर कैसे ?

बेचारा राम।

हाय राम ! आदि।

2. विराम (पॉज)

वाक्य के किसी खण्ड पर विराम देने से वाक्य का अर्थ बदल जाता है। जैसे—

रोको, मत जाने दो।

रोको मत, जाने दो।

3. सुर-लहर (इंटोनेशन)

सुरलहर मनुष्य की भावुकता, दुःख, विद्वशता, क्रोध, सहानुभूति, वृणा आदि भावों को प्रकट करती है। सुरलहर में शब्द का कोशीय अर्थ बदल जाता है। उदाहरण के लिए ‘अच्छा’ शब्द को लें—

अच्छा। (स्वीकृति)

अच्छा ! (आश्चर्य)

अच्छा ! (संभावना)

अच्छा ? (प्रश्न)

अच्छा, (आज्ञा)

4. गति (स्पीड)

बोलने की गति वक्ता के भावों को प्रकट करती है। वक्ता अपनी बात को कहने में कितना गंभीर है या कहने का निर्वाह मात्र कर रहा है यह बात गति से प्रकट हो जाती है।

5. सुर (पिच)

सुर शब्द के लिए संगीतात्मक सुराघात, गीतात्मक स्वराघात, स्वरतान

आदि का भी प्रयोग किया जाता है। सुर भी उच्चारण का एक यांत्रिक पक्ष है।

2. मानसिक पक्ष (इंटेलेक्चुअल एस्पेक्ट)

उच्चारण मानसिक प्रक्रियाओं द्वारा नियंत्रित होता है। भावाभिव्यक्ति के समय प्रभावोत्पादकता के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

1. विचारों की संबद्धता या प्रासंगिकता।
2. विचारों की यथातथ्यता या शुद्धता।
3. विचारों का आपसी सह-पंबंध।
4. विचारों की सुव्यवस्था।
5. श्रोताओं की संख्या के अनुसार उच्चारण स्तर या स्वर।
6. भावानुकूल मुखाकृति तथा अंग संचालन।
7. वक्ता के शिष्टाचार का पालन।

III. उच्चारण दोष के कारण

हिन्दी भारत के विस्तृत भू-भाग में बोली जाती है। राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार आदि राज्यों की अपनी-अपनी महत्वपूर्ण और सक्षम बोलियाँ हैं। यहाँ के सभी क्षेत्रों की बोलियाँ हिन्दी उच्चारण को प्रभावित करती हैं। वक्ता के सामने सदा यह प्रश्न बना रहता है कि किस उच्चारण को मानक माना जाए।

प्राचीन शास्त्रों में जैसे दिल्ली के निकट यमुना के आरपार के आचरण को अनुकरणीय माना गया है उसी प्रकार हिन्दी के उच्चारण की स्थिति है। दिल्ली के आस-पास की संस्कृति यमुना-संस्कृति या यामुनेय संस्कृति है। महाभारतकाल से यह क्षेत्र शासन की केन्द्रीय धुरी रहा है। कुरुक्षेत्र, कुरुजांगल और कुरुराष्ट्र की भाषा केन्द्रीय हिन्दी है। इस क्षेत्र की उच्चारण पद्धति संस्कृत पाठशालाओं की उच्चारण पद्धति के निकट है। इस रहस्य को न समझ पाने के कारण हिन्दी का मानक उच्चारण कौन-सा हो, जैसे प्रश्न उठाए जाते हैं।

मोटे रूप से उच्चारण दोष के कारण निम्नलिखित हैं—

1. ऐतिहासिक कारण

परतंत्रता काल में भारत इतने छोटे-छोटे राजे-रजवाड़ों में विभक्त हो गया था कि शिक्षा के मुख्य केन्द्रों का महत्व कम होता चला गया। सामाजिक गतिशीलता में अवरोध आया और चार कोस पर बोली बदलने का सिद्धान्त माना जाने लगा। यह अवरोध हमारी प्राचीन परंपरा के अनुकूल नहीं था। हमारी वेद पाठ परंपरा सर्वत्र समान थी, सीमाबद्ध नहीं।

2. प्रांतीयता का प्रभाव

भारत छोटे-बड़े प्रांतों में विभक्त हो गया। प्रांतीय मोह बढ़ने लगा। राजनीतिक सीमाएँ उच्चारण विशेष को अपनाने लगीं। इन सीमाओं में राजा द्वारा बोली जाने वाली बोली अपना उच्च स्थान बनाती चली गई। भाषायी आधार पर राज्यों का गठन इसी प्रवृत्ति का प्रमाण है।

3. शिक्षा केन्द्रों पर वज्राघात

दुर्भाग्यवश हमारे शिक्षा केन्द्र राजनीति का शिकार बनने लगे। अन्दरूनी और बाहरी आक्रमणों के कारण शिक्षा केन्द्रों की वित्तीय स्थिति डगमगा गई। इन केन्द्रों की स्वायत्तता पर वज्राघात हुआ। दूर-दूर के क्षेत्रों तक उच्चारण को अपने अनुकूल रखने वाले आचार्य प्रभावहीन हो गए। अराजकता की स्थिति में कोई किसी को रोकटोक भी नहीं सकता था।

4. अध्यापकों की अपात्रता

शिक्षा के केन्द्रीय क्षेत्र समाप्त होने के कारण सामान्य बुद्धि के लोग अध्यापक बनने लगे। गुरु-शिष्य परंपरा में असीम श्रद्धा-भक्ति के कारण अध्यापक का अपात्र पुत्र भी अध्यापक बनने लगा। यदि सिचाई का मूल स्रोत ही पंकिल होगा तो उससे जुड़ने वाले स्रोत अपने आपको कैसे शुद्ध बनाए रख सकते हैं।

5. अनियंत्रित शिक्षा विस्तार

प्रजातंत्र में शिक्षा प्राप्त करने का सभी को मूल अधिकार है। गत चालीस-पचास वर्षों के प्रयत्न के बाद हम अपनी जनता का 50 प्रतिशत भाग भी शिक्षित नहीं कर पाए। आज बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण शिक्षा-संस्थाओं पर नियंत्रण नहीं हो पा रहा है। अनेक कारणों से उन स्थानीय अध्यापकों की नियुक्ति करनी पड़ती है जिसका स्वयं का उच्चारण ठीक नहीं है। शिक्षा संस्थाओं के प्रतिदिन होने वाले विस्तार के कारण यह स्थिति नियंत्रण से बाहर बनी हुई है। हमने अपनी नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में विस्तार के साथ गुणात्मक पक्ष पर भी बल देने का निर्णय लिया है। आशा है हम कुछ वर्षों में इस स्थिति पर नियंत्रण कर पाएँगे।

6. सामाजिक प्रभाव

बच्चा जिस समाज में रहता है वह उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यदि वह अशिक्षितों के बीच रहेगा तो उसका उच्चारण स्वतः पास-

पड़ोस के लोगों से प्रभावित होता रहेगा।

7. मनोवैज्ञानिक कारण

मनुष्य की आंतरिक तथा मानसिक स्थिति उच्चारण को प्रभावित करती है। जिस परिवार में भय, आशंका, क्रोध, विद्वेष, अशांति का वातावरण रहेगा उस परिवार के सदस्यों के उच्चारण पर भी उसका प्रभाव पड़ेगा। उच्चरित भाषा उच्चारण अवयवों की सहायता से उच्चरित आंतरिक विचार हैं। यदि भय आदि के कारण इन अवयवों में अनावश्यक संकोचन या विस्तार होगा तो बाहर निकलने वाले शब्द उसी प्रकार प्रभावित होंगे जैसे खड़े पानी में कंकर फेंकने से वह तरंगित हो उठता है और जल में पड़ने वाला बिम्ब विकृत हो जाता है।

8. व्यक्तिगत कारण

व्यक्तिगत शारीरिक कारण उच्चारण को प्रभावित करते हैं। नाक, कान, होंठ, जिह्वा, कंठ, गाल, दाँत, फेफड़े आदि की स्थिति यदि सामान्य नहीं है तो उच्चारण पर भी प्रभाव पड़ता है। संस्कृत के आचार्यों ने ठीक ही लिखा है—

प्रकृतिर्यस्य कल्याणी दंतोष्ठी यस्य शोभनौ।

प्रगल्भश्च विनीतश्च स वणन् वक्तुमर्हति॥

अर्थात् जिसकी प्रकृति अच्छी है, जिसके दाँत और ओष्ठ अच्छे हैं, वार्तालाप में प्रगल्भ तथा विनीत है वही वर्णों का ठीक-ठीक उच्चारण कर सकता है।

इसके अतिरिक्त हमारी शिक्षा पद्धति में उच्चारण के महत्त्व पर कम बल, व्याकरण की शिक्षा का अभाव आदि भी उच्चारण दोष के कारण हैं।

IV. हरियाणों की प्रमुख बोलियाँ और हिन्दी उच्चारण

भारत के सभी प्रदेशों में अनेक बोलियाँ और उप-बोलियाँ हैं। भाषा-अध्यापक को अपने क्षेत्रों की बोलियों का ज्ञान होना चाहिए। उन बोलियों के शब्दों की उच्चारण की तुलना मानक हिन्दी के साथ करके उच्चारण भेद की सूचियाँ तैयार करनी चाहिए।

उदाहरण के लिए हरियाणों में बांगरू, मेवाती, ब्रज, अहीरी, वागड़ी, अंबालवी, कौरवी, पहाड़ी आदि प्रमुख बोलियाँ हैं। इन बोलियों के उच्चारण में भी भेद-उपभेद हैं। यहाँ इनके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है। लेखक ने हरियाणवी हिन्दी कोश की भूमिका में इस पर विस्तार से चर्चा की है। नीचे इसकी सामान्य जानकारी दी जा रही है।

हरियाणे की प्रमुख बोलियाँ

1	2	3	4	5	6	7	8
बाँगरू	मेवाती	ब्रज	अहीरवादी	वांगड़ा	अवालवा	कौरवा	पहाड़ी

1. बाँगरू

बाँगरू हरियाणे की केन्द्रीय बोली है। यह बोली रोहतक के चारों ओर तथा उधर दिल्ली तथा यमुना पार तक इसका वर्चस्व है। इसको आधारभूत शब्दावली हरियाणे की अन्य बोलियों का आधार है।

‘है’ क्रिया के स्थान पर ‘सै’ क्रिया का प्रयोग इसकी प्रमुख विशेषता है। अधिकांश स्थानों पर ‘ल’ के स्थानों पर मूर्धन्य ल (ल्) का प्रयोग होता है। इसी प्रकार अधिकांश स्थितियों में ‘न’ के स्थान पर ‘ण’ वर्ण का प्रयोग होता है। श, ष तथा स के उच्चारण में भेद नहीं बरता जाता। तालव्य और मूर्धन्य श, ष का उच्चारण दन्त ‘स’ ही है। इस बोली की उच्चारण सम्बन्धी प्रमुख विशेषताएँ आगे हिन्दी हरियाणवी उच्चारण भेद में दी गई हैं।

2. मेवाती

मेवाती हरियाणवी की उप-बोली है। यह मोटे रूप से एक हजार वर्ग मील के क्षेत्र में फैली हुई है। हरियाणे की तहसील गुड़गाँव, रिवाड़ी, बावल, पाटौधी, नूँह, फिरोजपुर झिरका और झज्जर के कुछ भाग के निवासी इस बोली को बोलते हैं। अनुमानतः पाँच लाख लोग इस बोली का प्रयोग करते हैं।

इस बोली में ब्रज, राजस्थानी, उर्दू तथा बाँगरू की शब्दावली का मिश्रण है। इसमें ‘ण’ और मूर्धन्य ‘ल्’ की प्रधानता है। बहुवचन में ‘ए’ के स्थान पर ‘आ’ लगाने की प्रवृत्ति है। यथा—छोहरा (लड़का) छोहराँ।

कहीं-कहीं ‘यी’ आदि क्रियाओं का उच्चारण ‘ई’ मात्र रह गया है। यथा—यहीं थी—यहीं ई।

नीचे मेवाती के कारकों के कुछ नमूने दिए गए हैं—

नर्ता—ने	हमाँ ने।
कर्म—कूँ, तें	घर कूँ, या तें।
करण—सूँ	इन सूँ।
संप्रदान—तू	खाणा लेण तू।

अपादान—सु	कब सु ।
सम्बन्ध—को, का, के, की,	या को ।
अधिकरण—मैं, पै	वा पै ।
सम्बोधन—वाड़ी ।	

मेवाती में आकारान्त शब्दों को ओकारांत करने की प्रवृत्ति है। यथा—
थोड़ा—थोड़ो । म्हारा—म्हारो । गया था—गयो थो ।

3. ब्रज

ब्रज के साथ सटे हरियाणा के क्षेत्र में ब्रज बोली का प्रयोग होता है। यह क्षेत्र सीमित है। गुड़गाँव तहसील के पलवल क्षेत्र में यह बोली मुख्य रूप से बोली जाती है।

इस बोली में 'ड', 'ल' को 'र' उच्चरित करने की प्रवृत्ति है। यथा—
कीड़ी—कीरी ।
काला—कारा ।
इसमें आकारांत शब्दों को ओकारांत करने की प्रवृत्ति है। यथा—
खाया—खायो ।
गया—गयो ।

णान्त क्रियाओं के स्थान पर नान्त क्रियाओं को ओकारांत करने की प्रवृत्ति है। यथा—

खाणा—खानो ।
पीणा—पीनो ।

4. अहीरवाटी

अहीरवाटी को हीरवाटी, अहीरी या हीरी बोली भी कहा जाता है। यह बोली अहीर-बहुल जनसंख्या वाले क्षेत्र में बोली जाती है।

यह मुख्यतः कोसली, महेन्द्रगढ़, नारनोल, बहरोड़, मुँडावर, बावल, रिवाड़ी तथा पाटीधी के क्षेत्रों में बोली जाती है। गुड़गाँव जिले से सटे दिल्ली के गाँवों में भी यह बोली बोली जाती है। रिवाड़ी अहीरवाटी का केन्द्र है।

इसकी शब्दावली, वाक्य संरचना आदि केन्द्रीय हरियाणवी वाँगरू के लगभग समान है। परन्तु इसकी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। यथा—

1. अहीरवाटी में आकारांत पुल्लिङ्ग संज्ञाओं का कर्तृरूप ओकारांत हो गया है।
2. विकारी एकवचन का रूप आकारांत हो गया है।
3. व्यंजनांत पुल्लिङ्ग संज्ञाओं का अधिकांश रूप ईकारांत हो गया है।

यथा—

घर में—घरी ।

4. व्यक्तिवाचक सर्वनाम का 'मैं' मानें या मूनें हो जाता है ।

5. भूतकाल पुल्लिङ्ग में 'था' के स्थान पर 'थो' रूप उच्चरित होता है ।

वास्तव में अहीरवादी अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण मेवाती, राजस्थानी, बागड़ी, शेखावादी तथा बाँगरू का सम्मिश्रण है ।

5. बागड़ी

हरियाणु का पश्चिम-दक्षिणभू-भाग राजस्थान से सटा हुआ है । सिरसा, हिसार, भिवानी, महेन्द्रगढ़, गुड़गाँव तथा फरीदाबाद का कुछ भाग इस बोली के प्रमुख क्षेत्र हैं ।

बागड़ी में उदासीन स्वर का लोप हरियाणवी के समान ही है । यथा—

अहीर—हीर ।

उतारणा—तारणा ।

उठाणा—ठाणा ।

बहुवचन बनाते समय भी व्यंजनांत शब्दों में 'अँ' प्रत्यय का योग होता है । यथा—

बुलध—बुलधँ ।

बात—बातँ ।

आकारांत शब्दों को ओकारांत करने की प्रवृत्ति मेवाती तथा ब्रज के समान है । केन्द्रीय हरियाणवी में यह प्रवृत्ति नहीं है ।

6. अंबालवी

अंबाला, जगाधरी, कुरुक्षेत्र, थानेसर आदि क्षेत्रों में बोली जाने वाली बोली को अंबालवी नाम दिया गया है । यह पटियाला जिले में घग्घर नदी के पूर्व तथा जिला कुरुक्षेत्र के आस-पास बोली जाती है ।

अंबालवी मुख्यतः चार बोलियों से प्रभावित है । पश्चिम-उत्तर में पंजाबी, उत्तर में पहाड़ी, उत्तर-पूर्व में कौरवी तथा दक्षिण में बाँगरू या केन्द्रीय हरियाणवी इसे प्रभावित करती है । इस बोली की शब्दावली केन्द्रीय हरियाणवी होते हुए भी उच्चारण में कुछ अन्तर है ।

अंबालवी की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. एकाक्षरी शब्दों में जब बलाघात की मात्रा मध्यम से दुर्बल हो जाती है तो उसमें आने वाले अघोष महाप्राण स्पर्श अपनी महाप्राणता खो बैठते हैं । जैसे—

थ् आ—त आ (था) ।

स् आ थ—स आ त (साथ) ।

ह् आ थ—ह आ त (हाथ) ।

2. दुर्बल बलाघात आने पर मूलतः तानयुक्त शब्दों की तान लुप्त हो जाती है ।

3. बलाघात की मात्रा में परिवर्तन के कारण कुछ ध्वनियों का लोप हो जाता है । इस स्थिति में अधिकांशतः 'अ' ध्वनि का लोप हो गया है जैसे—

अमरुद—मरुद ।

अनार—नार ।

7. कौरवी

कुरु प्रदेश हस्तिनापुर आंचल के निकटवर्ती क्षेत्र मेरठ, मुजफ्फर नगर और सहारनपुर के पश्चिमी भाग की बोली को कौरवी नाम दिया गया है । यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से यह क्षेत्र उत्तर प्रदेश में है किन्तु इसकी शब्दावली का मूलाधार केन्द्रीय हरियाणवी ही है । दिल्ली के पटपड़गंज, खिड़की, ओखला आदि पूर्वी-दक्षिणी क्षेत्र के गाँवों में इस बोली का प्रभाव है ।

इस बोली में केन्द्रीय हरियाणवी के समान ण्, म्ह, ल्ह, र्ह तथा व्यंजनों में द्वित्वीकरण की प्रवृत्ति है । स्थानवाचक क्रिया विशेषण ईधै, ऊँधै आदि भी समान हैं ।

अम्बालवी के समान इस बोली में आदि स्वर की प्रवृत्ति प्रायः लुप्त होने की है । जैसे—

अकेला—केला ।

उतार—तार ।

उजाड़—जाड़ ।

यहाँ बाँगरू का 'से' क्रिया के स्थान पर मानक हिन्दी 'है' क्रिया का प्रयोग होता है । णान्त क्रियाएँ भी नान्त हो गई हैं । जैसे—

खाणा—खाना ।

पीणा—पीना ।

महाप्राण ध्वनियों की कोमलता की ओर जाने की प्रवृत्ति है । जैसे—

रहा—रा ।

था—ता ।

है—अ ।

बहुवचन बनाने की प्रवृत्ति व्रज से प्रभावित है । जैसे—

बालकाँ—बालकन ।

बुलधौं—बुलधन ।

लौगाँ—लोगन ।

इसकी शब्दावली की प्रवृत्ति उर्दू-फ़ारसी से हटकर संस्कृतनिष्ठता की ओर है ।

8. पहाड़ी

अविभाजित पंजाब एक विस्तृत राजनीतिक इकाई थी । वर्तमान हिमाचल का कुछ अंश पंजाब का अंग था । शिमला सरकारी दफ़्तरों का केन्द्र था । हरियाणे के लोगों का पर्वतीय क्षेत्र से सक्रिय सम्पर्क था । पहाड़ी क्षेत्र की बोलियों का मूल हरियाणवी के समान शौरसेनी ही है । परिणामतः पहाड़ी बोलियाँ शब्दावली की दृष्टि से हरियाणवी से प्रभावित हैं । अम्बालवी की तुलना कालका, शिमले आदि क्षेत्र की बोलियों से करके कुछ स्पष्ट परिणाम निकाले जा सकते हैं ।

ऊपर संक्षेप में हरियाणवी बोली की विशेषताओं की चर्चा की गई । नीचे इन बोलियों की ध्वनियों का मानक हिन्दी से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करके उच्चारण भेदों को स्पष्ट किया जाएगा ।

IV. हरियाणवी की ध्वनियों की मुख्य विशेषताएँ

ऊपर हरियाणवी की कुछ प्रमुख बोलियों के विषय में प्रकाश डाला गया । यहाँ इन बोलियों की ध्वनियों की मुख्य विशेषताओं का विवरण दिया जा रहा है ।

1. हरियाणवी में स्वरभक्ति का आधिक्य है । जैसे—तप्त-तपत ।
2. हरियाणवी में शब्द के अन्त की 'इ' और 'उ' ध्वनि को दीर्घ करने की प्रवृत्ति है । जैसे—पति-पती, साधु-साधू ।
3. अनेक स्थानों पर 'ए' का उच्चारण 'ऐ' के समान है । जैसे—में (अधिकरण कारक)—मैं ।
4. आदि उदासीन स्वर का अधिकांशतः लोप हो जाता है । जैसे—अंगूठा-गूँठा, अहीर—हीर ।
5. कुछ क्षेत्रों में आकारांत शब्दों को ओकारांत किया जाता है । जैसे—गया—गयो ।
6. 'औ' के स्थान पर 'ओ' की ध्वनि उच्चरित होती है । जैसे—एक सो-एक सो ।
7. अनेक स्थानों पर 'ड़' के स्थान पर 'ड' उच्चरित होता है । जैसे—उड़ना—उडना ।

8. 'ढ' की ध्वनि 'ढ' के समान उच्चरित होती है।
9. अधिकतर 'न' का उच्चारण 'ण' हो जाता है। जैसे—अपनाना-अपणाणा।
10. कुछ शब्दों में 'य' की श्रुति है। जैसे—चार-च्यार।
11. मूर्धन्य ल (ल) का उन्मुक्त प्रयोग है। जैसे—चालीस-चालीस।
12. श—ष की ध्वनि 'स' के समान बोली जाती है।
13. 'है' क्रिया के स्थान पर 'सै' का बहुल प्रयोग है।
14. न्ह, म्ह ल्ह, लह, र्ह ध्वनियों का काफ़ी प्रयोग होता है।
15. वर्णों को द्वित्व करने की प्रवृत्ति है। जैसे—दादा—दादा।
16. क, ख, ग, ज, फ की आगत ध्वनियों का उच्चारण क्रमशः—क, ख, ग, ज, फ ही है।
17. बहुवचन बनाते समय आँ या याँ प्रत्यय अंत में जोड़े जाते हैं। जैसे—बालक—बालकाँ, लुगाई—लुगाइयाँ।
18. कुछ क्षेत्रों में बहुवचन का रूप एकवचन के समान है। जैसे—बालक गया (एक वचन)।
बालक गया (बहुवचन)।

हरियाणवी के उच्चारण भेद के उदाहरण आगे विस्तारपूर्वक दिए गए हैं।

VI. हिन्दी हरियाणवी उच्चारण भेद

हरियाणवी हिन्दी की जननी है। हिन्दी हरियाणवी का शहरी संस्करण है। मुगल काल तथा उसके बाद मुसलमानी राज्य की शहरों पर प्रभुसत्ता बढ़ने के बाद हरियाणवी शहरी बोली से प्रभावित हुए बिना न रह सकी। इस पर उर्दू, फ़ारसी तथा अरबी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा। हिन्दी ने अपना प्राकृत और अपभ्रंश रूप बदला। उर्दू का प्रभाव हिन्दी के उच्चारण पर भी पड़ा। शब्दों के अन्त में 'ण' का उच्चारण 'न' होने लगा। इसका कारण था उर्दू लिपि में 'ण' वर्ण के स्थान पर 'न' का होना। हरियाणवी की वर्णों को द्वित्व करने की प्रवृत्ति समाप्त होने लगी। 'स' के स्थान पर 'श' का उच्चारण पुनः लौटने लगा। मूर्धन्य ल (ल) के स्थान पर ल का प्रयोग होने लगा। परिणाम-स्वरूप हरियाणवी गाँवों की बोली मात्र रह गई और हिन्दी ने नवयौवन में अपना रूप सजाया-सँवारा तथा अपने आपको शहर के अनुरूप ढालना आरम्भ किया।

आज हरियाणवी और हिन्दी में अनेक समानताएँ होते हुए भी उच्चारण भेद हैं। नीचे इसी प्रकार के कुछ प्रमुख भेद उदाहरण के लिए दर्शाए जा रहे हैं। ये उदाहरण उच्चारण शुद्धि में बड़े सहायक होंगे।

1. स्वर

1. 'अ' सम्बन्धी उच्चारण भेद

	हिन्दी	हरियाणवी
अ को आ	अगला	आगला ।
अ को इ	अब	इब ।
अ को ई	अजगर	ईजगर ।
अ को उ	अफारा	उफारा ।
अ लोप	अंगूठा	गूँठा ।
अ आगम	धर्म	धरम ।

2. 'आ' सम्बन्धी उच्चारण भेद

आ को अ	आवाज	अवाज ।
अ को ऊ	गाढ़ी	गूढ़ी ।
अ को ए	नाप	नेप ।

3 इ संबंधी उच्चारण भेद

इ को आ	मिट्टी	माटी ।
इ को ई	बिजली	बीजली ।
	पति	पती ।
इ को उ	हिचकी	हुचकी ।
इ को ए	मिटाना	मेटना ।
इ को ऐ	इतवार	ऐतवार ।
इ लोप	इकट्ठी	कट्ठी ।
इ आगम	जब	जिब ।

4. ई सम्बन्धी उच्चारण भेद

ई को आ	गीदड़	गादड़ ।
ई को इ	ईसाई	इसाई ।
ई को ऊ	सीध	सूध ।
ई को ए	खींचना	खेँचणा ।

5. उ सम्बन्धी उच्चारण भेद

उ को अ	उसूल	असूल ।
उ को इ	सुलगाना	सिलगाणा ।
उ का विपर्यय	बगुला	बुगुला ।
उ को ऊ	कठपुतली	कठपूतली ।
उ लोप	उठाना	ठाणा ।
उ आगम	सपना	सुपना ।

6. ङ सम्बन्धी उच्चारण भेद

	हिन्दी	हरियाणवी
ऊ को उ	ऊँचाई	ऊँचाई ।
ऊ को ओ	भूचाल	भौंचाल ।
उ लोप	गुरुकुल	गुरकल ।

7. ऋ सम्बन्धी उच्चारण भेद

ऋ को इ	श्रृंगार	सिंगार ।
ऋ को र	अमृत	इमरत ।

8. ए सम्बन्धी उच्चारण भेद

ए को आ	कँचली	काँचली ।
ए को इ	देहात	दिहात ।
ए को ई	गेहूँ	गीहूँ ।
ए को ओ	लेटना	लोटना ।

9. ऐ सम्बन्धी उच्चारण भेद

ऐ को इ	ऐसा	इसा ।
ऐ को ए	थैला	थेला ।
ऐ लोप	हैरान	हरान ।

10. ओ सम्बन्धी उच्चारण भेद

ओ को उ	मोटाई	मुटाई ।
ओ को ऊ	गोंद	गूँद ।

11. औ सम्बन्धी उच्चारण भेद

औ को उ	औलाद	उलाद ।
औ को ऊ	औंधा	ऊँधा ।
औ को ओ	सौ	सो ।

12. अनुनासिकता सम्बन्धी उच्चारण भेद

अनुनासिकता आगम	ईख	ईख ।
	तू	तू ।
	चूसना	चूसना ।

13 अनुस्वार सम्बन्धी उच्चारण भेद

अनुस्वार आगम	पचास	पंचास ।
अनुस्वार लोप	तुरंत	तुरत ।

14. विसर्ग सम्बन्धी उच्चारण भेद

विसर्ग आगम	खेल	खेल ।
	सील	सील ।

2. व्यंजन

1. क संबंधी उच्चारण भेद

	हिन्दी	हरियाणवी
क को ख	सीक	सीख ।
क को ग	शोक	सोग ।
क आगम	भूखा	भूकखा ।
क लोप	चिपकाना	चेपना ।
क द्वित्व	चाकू	चक्कू ।

2. क्ष संबंधी उच्चारण भेद

क्ष को ख	प्रक्षालन	पखालना ।
क्ष को छ	क्षत्रिय	छतरी ।

3. ख संबंधी उच्चारण भेद

ख को क	सूखा	सूका ।
--------	------	--------

4. ग संबंधी उच्चारण भेद

ग को क	दिमाग	दिमाक ।
ग को ख	गड्ढा	खड्ढा ।
ग को घ	गमला	घमला ।
ग को ज	भागना	भाजना ।

5. च संबंधी उच्चारण भेद

च को क	बेचना	बेकना ।
च को छ	पहिचान	पिछाण ।
च आगम	ओछा	ओच्छा ।
च द्वित्व	चाचा	चाच्चा ।

6. ज संबंधी उच्चारण भेद

ज को झ	जोहड़	झोड़ ।
ज द्वित्व	राजा	राज्जा ।

7. झ संबंधी उच्चारण भेद

झ को ग	यज्ञ	यग ।
झ को ग्य	ज्ञान	ग्यान ।
झ को ज	यज्ञ	यज ।

8. ट संबंधी उच्चारण भेद

ट को ठ	टूटी (नल)	ठूठी ।
ट को ड	छुटवाना	छुडवाना ।
ट आगम	छठी	छट्ठी ।

	हिन्दी रोटी	हरियाणवी रोट्टी ।
ट द्वित्व		
9. ठ संबंधी उच्चारण भेद		
ठ को ट	झूठ	झूट ।
10. ड संबंधी उच्चारण भेद		
ड को ढ	कड़ाही	कढाई ।
ड को द	चंडीगढ़	चंदीगढ़ ।
11. ङ संबंधी उच्चारण भेद		
ङ को ड	उड़ाना	उडाणा ।
ङ को ढ	गुड़िया	गुढिया ।
ङ द्वित्व	गाड़ी	गाड्डी ।
12. ढ संबंधी उच्चारण भेद		
ढ को ड	चिढ़ना	चिड़णा ।
13. ण संबंधी उच्चारण भेद		
ण को न	घृणा	घिन्ना ।
14. त संबंधी उच्चारण भेद		
त को च	मितलाना	मिचलाना ।
त को थ	कंठ	कंथ ।
त आगम	माथा	मात्था ।
त द्वित्व	सीता	सीत्ता ।
15. द संबंधी उच्चारण भेद		
द को ड	दंड	डंड ।
द को त	शहद	सहत ।
द को ध	दहाड़	धाड़ ।
द आगम	आधा	आद्धा ।
द लोप	मजदूर	मजूर ।
16. घ संबंधी उच्चारण भेद		
घ को झ	संध्या	संझ्या ।
17. न संबंधी उच्चारण भेद		
न को ड	गन्ना	गंडा ।
न को ण	गाना	गाणा ।
	सुनना	सुणणा ।
	गिनती	गिणती ।

	हिन्दी	हरियाणवी
न को ल	नीलगर	लीलगर ।
	नोट	लोट ।
न द्वित्व	चीनी	चीन्ती ।
18. प संबंधी उच्चारण भेद		
प को फ	तड़पना	तड़फणा ।
प द्वित्व	पापी	पाप्पी ।
19. फ संबंधी उच्चारण भेद		
फ को प	फाड़ना	पाड़णा ।
20. ब संबंधी उच्चारण भेद		
ब को प	बताशा	पतासा ।
ब को भ	गुब्बारा	गुभारा ।
ब द्वित्व	धोबी	धोब्बी ।
21. म संबंधी उच्चारण भेद		
म को ग	रोम	हँग ।
म आगम	आरपार	आरम्पार ।
म द्वित्व	गुलामी	गुलाम्मी ।
22. य संबंधी उच्चारण भेद		
य को ए	क्या	के ।
य को ऐ	भय	भै ।
य को ज	यमुना	जमुना ।
य को व	दीया	दीवा ।
य आगम	चार	च्यार ।
	मारा	मार्या ।
य लोप	नीयत	नीत ।
	गाय	गा ।
23. र संबंधी उच्चारण भेद		
र को ड	ओर	ओड़ ।
र को ल	दरिद्र	दलिद्दर ।
र आगम	सड़क	सरड़क ।
र लोप	गोत्र	गोत ।
24. ल संबंधी उच्चारण भेद		
ल को ल	बालक	बाल्क ।
	होली	होली ।

	हिन्दी	हरियाणवी
ल को ड	निकलना	लिकड़ना ।
ल को म	सिलाई	सिमाई ।
ल द्वित्व	लाला	लाल्ला ।
ल लोप	धुलाई	धुआई ।
25. व संबंधी उच्चारण भेद		
व को उ	वज्जीर	उजीर ।
व को ब	वेद	वेद ।
व को भ	वेष	भेस ।
व को म	नीव	नीम ।
	गाँव	गाम ।
व को य	स्वामी	स्यामी ।
व आगम	पीना	पीवणा ।
व लोप	पाँव	पाँ ।
26. श संबंधी उच्चारण भेद		
श को स	शंकर	संकर ।
	दशरथ	दसरथ ।
	पशु	पसु ।
	शीश	सीस ।
श को स तथा द्वित्व	तमाशा	तमास्सा ।
27. ष संबंधी उच्चारण भेद		
ष को ख	वर्षा	बरखा ।
	ईर्ष्या	ईरखा ।
ष को स	दोष	दोस ।
ष को ह	पौष	पोह ।
28. स संबंधी उच्चारण भेद		
स को घ	चूँसना	चूँघना ।
स द्वित्व	आँसू	आँस्सू ।
स लोप	उन्नीस	उन्नी ।
29. ह संबंधी उच्चारण भेद		
ह को आ	सतरह	सतरा ।
ह आगम	रईस	रहीस ।
ह लोप	परवाह	परवा ।
ह विलय	जोहड़	झोड़ ।

विशेष—

हिन्दी हरियाणवी उच्चारण भेद की अधिक जानकारी के लिए इन पंक्तियों के लेखक की एक अन्य पुस्तक 'हिन्दी हरियाणवी उच्चारण भेद' पढ़ें।

VII. उच्चारण भेदों का वर्गीकरण

ऊपर हिन्दी हरियाणवी उच्चारण भेद की दृष्टि से कुछ उदाहरणों सहित सामग्री प्रस्तुत की गई। इन उदाहरणों का विभाजन इस प्रकार भी किया जा सकता है। इन उच्चारण भेदों को किसी बोली के उदाहरण लेकर भी स्पष्ट किया जा सकता है—

- | | |
|-----------------------------|-------------------|
| 1. स्वर आगम— | लग्न—लगन आदि। |
| 2. स्वर लोप— | अंगूठा—गूँठा आदि। |
| 3. दीर्घ स्वर को ह्रस्व— | ईसाई—इसाइ आदि। |
| 4. ह्रस्व स्वर को दीर्घ— | बिजली—बीजली आदि। |
| 5. न को ण— | रानी—राणी। |
| 6. श—ष—स को स— | शंकर—संकर आदि। |
| 7. ल को लृ— | बालक—बालक आदि। |
| 8. वर्ण विपर्यय— | चाकू—कावू। |
| 9. व्यंजन आगम— | सड़क—सरड़क। |
| 10. व्यंजन लोप— | गाय—गा। |
| 11. व्यंजन द्वित्व— | चाचा—चाच्चा। |
| 12. व्यंजन भ्रम— | विद्यालय—विधालय। |
| 13. अनुनासिक-अनुस्वार भ्रम— | ऊँचा—ऊँच्चा। |
| 14. अधिक या न्यून गति। | |
| 15. अस्पष्ट उच्चारण। | |

VIII. उच्चारण दोष दूर करने के उपाय

जिन-जिन कारणों से उच्चारण दोष होता है उन-उन कारणों पर विचार करके उनके निराकरण से उच्चारण दोष दूर किए जा सकते हैं। नीचे संक्षेप में इन्हीं बिन्दुओं पर विचार किया जाएगा।

1. शारीरिक जाँच

यदि उच्चारण दोष का कारण कोई शारीरिक विकार है तो उसकी भली प्रकार से जाँच पड़ताल करानी चाहिए तथा उचित उपचार की सलाह देनी चाहिए। आजकल विद्यालयों में प्रायः स्वास्थ्य परीक्षा की व्यवस्था उपलब्ध है।

2. मानसिक उपचार

यदि उच्चारण दोष का कारण विद्यालय या घर में भय, क्रोध, आतंक, विद्वेष, ईर्ष्या आदि है तो घर और विद्यालय में स्नेहपूर्ण वातावरण का निर्माण किया जाए। किसी का उच्चारण दोष के कारण उपहास नहीं किया जाए।

3. उत्तम अध्यापक से अध्यापन

सामान्यतः देखा गया है कि आज उच्चारण के प्रति जितने सचेत अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय हैं उतने हिन्दी माध्यम वाले विद्यालय नहीं हैं। विद्यालयों में ऐसे अध्यापकों की नियुक्ति की जाए जिनका स्वयं का उच्चारण आदर्श हो।

4. विद्यालय में उचित वातावरण का निर्माण

केवल एक अध्यापक पर ही उच्चारण ठीक करने का उत्तरदायित्व नहीं है। इस कार्य में सभी विषयों के अध्यापकों का योगदान होना आवश्यक है। विद्यालय में कक्षा सभाओं और सामूहिक सभाओं के अवसर प्रदान किए जाएँ ताकि छात्र-छात्राओं में छोटे-बड़े समूह के समक्ष बोलने का आत्म-विश्वास जाग्रत हो सके।

आवासीय विद्यालय उच्चारण सुधार में सहायक हो सकते हैं। नवोदय विद्यालयों के माध्यम से उच्चारण सुधार के उद्देश्यों की पूर्ति अवश्य हो सकेगी क्योंकि ये विद्यालय आवासीय होंगे।

5. वातावरण में सुधार

पहले बच्चों को छोटी अवस्था से ऋषिकुलों में शिक्षा के लिए भेज दिया जाता था। वहाँ विशेष प्रकार के वातावरण का निर्माण किया जाता था। सब ओर शुद्ध वाणी के श्रवण से बच्चे का स्वयं का उच्चारण स्वतः शुद्ध रहता था।

अब सामान्यतः ऐसा संभव नहीं है। अच्छा हो यदि अध्यापक छात्र-छात्राओं को घर या पास-पड़ोस में भी मानक हिन्दी में बात-चीत करने के लिए प्रोत्साहित करें। अभिभावकों को इस बात के लिए मनाएँ कि वे उनसे घर में मानक हिन्दी में ही बातचीत करें। समस्त सामाजिक वातावरण पर शिक्षक का प्रभाव नहीं है फिर भी वह समाज को इस ओर प्रेरित अवश्य कर सकता है।

6. शैक्षिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग

शैक्षिक प्रौद्योगिकी (Educational Technology) आज हमारे लिए कोई नई बात नहीं है। रेडियो, दूरदर्शन, वीडियो टेप्स, ग्रामोफोन,

कायमोग्राफ आदि का उपयोग विद्यालयों में उच्चारण शुद्धि के लिए किया जा सकता है। नए पाठ्यक्रमों में सुधार करके अध्यापक प्रशिक्षण विद्यालयों में इन मशीनों का प्रयोग प्रशिक्षणार्थियों को सिखाया जाए।

पूरक सामग्री के रूप में चित्र तथा माडलों का प्रयोग भी किया जा सकता है। इक्कीसवीं शताब्दी में प्रौद्योगिकी का उत्तरोत्तर प्रयोग होने लगेगा। एन० सी० ई० आर० टी० का प्रौद्योगिकी संस्थान इस ओर काफ़ी ध्यान दे रहा है।

7. वर्णों के उच्चारण स्थान का ज्ञान

हिन्दी की वर्णमाला का वर्गीकरण बड़ा वैज्ञानिक है। कवर्ग के वर्ण कंठ से आरम्भ होकर तालु (चवर्ग), मूर्द्धा (टवर्ग), दन्त (तवर्ग) और ओष्ठ (पवर्ग) पर आकर समाप्त होते हैं। इस वैज्ञानिक वर्गीकरण में आचार्यों को कितना समय लगा होगा। विद्यार्थियों को खेल-खेल में इन वर्णों का उच्चारण स्थान बताकर अभ्यास कराया जाए। नीचे तालिका में वर्णों का उच्चारण स्थान दिया गया है।

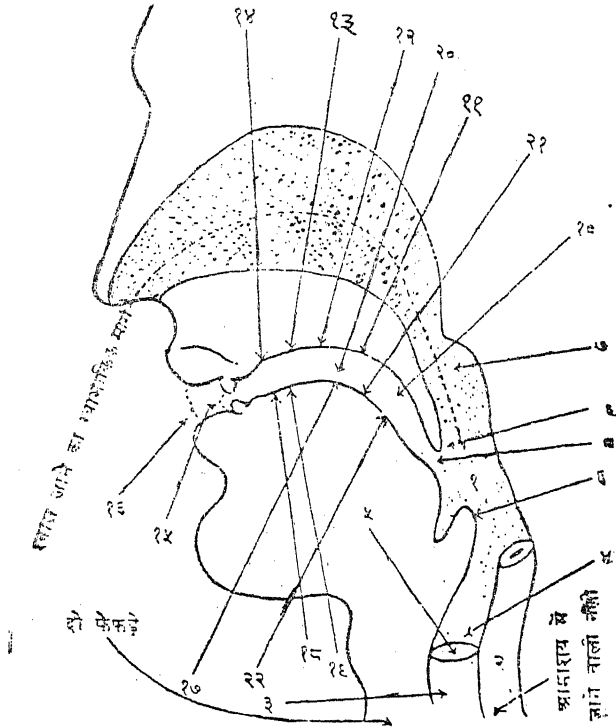
तालिका-8
वर्णों के उच्चारण स्थान

उच्चारण स्थान	स्वर	व्यंजन						ऊष्म
	स्पर्श.....	अघोष	घोष	अघोष	घोष	नासिक्य	अन्तस्थ
कण्ठ	अ, आ	क	ख	ग	घ	ङ	—	ह, विसर्ग (:)
तालु	इ, ई	च	छ	ज	झ	ञ	य	श
मूर्द्धा	ऋ	ट	ठ	ड	ढ	ण	र	ष
दन्त	ल	त	थ	द	ध	न	ल	स
ओष्ठ	उ, ऊ	प	फ	ब	भ	म	व	
कंठ-तालु	ए, ऐ							
कंठोष्ठ	ओ, औ							

आगे चित्र द्वारा वर्णों के उच्चारण स्थान दर्शाए गए हैं।

1. उपालिजिह्व, गलबिल, कंठ, कंठमार्ग (Pharynx)
2. भोजन-नलिका (Gullet)
3. स्वर-यंत्र, कंठ-पिटक, ध्वनि-यंत्र (Larynx)
4. स्वरयंत्र-मुख काकल, (Glottis)
5. स्वर-तंत्री ध्वनि-तंत्री, (Vocal Chord)
6. स्वरयंत्र-मुख-आवरण, अभिकाकल, स्वरयंत्रावरण, (Epiglottis)

चित्र-1



ध्वनि यंत्र का चित्र

7. नासिक-विवर (Nasal Cavity)
8. मुख-विवर (Mouth Cavity)
9. अलिजिह्व, कोवा, घंटी, शुंडिका (Uvula)
10. कंठ (Guttur)
11. कोमल तालु (Soft Palate)
12. मूर्द्धा (Cerebrum)

13. कठोर तालु (Hard Palate)
14. वर्त्स* (Alveola)
15. दाँत (Teeth)
16. ओष्ठ (Lip)
17. जिह्वा मध्य (Middle of the Tongue)
18. जिह्वा नोक (Tip of the Tongue)
19. जिह्वा (Front of the Tongue)
20. जिह्वा (Tongue)
21. जिह्वा पश्च (Back of the Tongue)
22. जिह्वा मूल (Root of the Tongue)

8. उच्चारण संबंधी अभ्यासों का निर्माण

क्षेत्रीय भिन्नता के कारण स्थानीय उच्चारण भेद का विश्लेषण करके उच्चारण दोष ठीक कराने के अभ्यासों का निर्माण किया जाए। इनमें श—ष—स, 'न—ण', स्वर आगम, स्वर लोप, द्वित्व आदि की अशुद्धियाँ तो ऐसी हैं जिनका क्षेत्र काफी व्यापक है। इन अशुद्धियों पर विशेष प्रकार के उच्चारण अभ्यास बनाए जाएँ। नीचे इस प्रकार के अभ्यासों के कुछ नमूने प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

IX. उच्चारण अभ्यास के नमूने

1. ण—न ध्वनि भेद अभ्यास

(क). इन शब्दों को ध्यान से सुनो तथा अनुगामी उच्चारण करो—

(कंठ्य वर्णों के बाद 'न')

खाना। गाना। ढकना। सूँघना। चाहना।

(तालव्य वर्णों के बाद 'न')

चना। जाना। पूछना। राशन।

(मूर्धन्य वर्णों के बाद 'न')

रटना। उड़ना। पढ़ना। गणना। करना।

(दंत्य वर्णों के बाद 'न')

थाना। दाना। धोना। सुनना। कितना।

(ओष्ठ्य वर्णों के बाद 'न')

* वैदिक साहित्य में शुद्ध शब्द 'वर्त्स' है, जिससे 'वर्त्स्य' विशेषण बनता है। अब शुद्ध शब्द 'वर्त्स' तथा उनका विशेषण 'वर्त्स्य' ही प्रचलित हो गए हैं।

पाना । बाना ! पनघट । मानना । उनसठ ।

(ख) इन शब्द युग्मों का सावधानी से उच्चारण करो—

(1) कातना—ताकना । सुलझना—झुलसना । रानी—नारी ।
चना—नाच ।

(2) पाना—आना । खोदना—खोना । लगाना—गाना । फाड़ना—
आड़ना ।

(ग) निरंतर दो 'न' ध्वनियों का उच्चारण करो—

गिनना । जानना । मानना । हिनहिनाना ।

(घ) रूपान्तरित शब्दों का उच्चारण करो—

(1) गिनना—गिनाना । रोना—रुलाना । हारना—हराना ।

(2) सुनना—सुनाना—सुनवाना । हँसना—हँसाना—हँसवाना ।

(3) इतना—इतने । दाना—दाने । रानी—रानियाँ ।

(ङ) इन शब्दों का उच्चारण करो (न—ण ध्वनि भेद)

कन—कण । कोन—कोण । बान—बाण ।

रन—रण । शान—शाण ।

(द) इन वाक्यों का उच्चारण सावधानी से करो—

अच्छा खाना-पीना, रहना-सहना, ओढ़ना-पहनना सभी के मन भाता
है । व्यर्थ का भागना-दौड़ना, रोना-धोना, लड़ना-झगड़ना, तथा
हँसना-हँसाना भी ठीक नहीं ।

2. श—ष—स ध्वनि भेद अभ्यास

(क) श ध्वनि, आधारित अभ्यास

इन शब्दों का उच्चारण ध्यान से करो—

(1) शक्ति । शीतल । शृगाल । शैल । शोभा ।

(2) अवश्य । आश्चर्य । आश्रम । प्रश्न ।

(3) दुःशासन । निःशंक । निःशेष ।

(4) शस्त्र । शास्त्र । शास्त्री । यशस्वी । प्रशंसा । श्वास । विश्वास ।

(ख) ष ध्वनि आधारित अभ्यास

इन शब्दों का उच्चारण सावधानी से करो—

(1) ऋषि । दोष । पुरुष । पाषाण । विषय । विशेष ।

(2) कृष्ण । गोष्ठी ; ज्येष्ठ । दृष्टि । पुष्प । मनुष्य । राष्ट्र । विष्णु ।

(3) अक्षर । दक्षिणा । कक्षा । परीक्षा । रक्षा । वृक्ष । लक्ष्मण ।

(4) राक्षस । वक्षस्थल । शिष्य । शेष । शोषण । श्रेष्ठ ।

(ग) 'स' ध्वनि आधारित अभ्यास

इन शब्दों का उच्चारण सावधानी से करो—

- (1) साफ़ । सुख । सुर । सूर्य । सृजन । प्रसन्न । वसुधा । उत्सव ।
- (2) स्थान । स्नेह । स्वच्छ । तपस्या । पुस्तक । व्यवस्था । सहस्र ।
- (3) निस्सार । निस्सीम ।
- (4) शुश्रूषा । सर्वश्रेष्ठ । अस्पृश्य । सुश्री । सप्तर्षि । स्पष्ट । संशय ।

(घ) श—ष—स मिश्रित अभ्यास

इन शब्दों का शुद्ध उच्चारण करो—

- (1) सुशील स्वभाव सुषेण औषध शास्त्र का यशस्वी विशेषज्ञ था । जब लक्ष्मण सूचिछत हुए तब विभीषण के कहने से हनुमान सुषेण वैद्य को लाए । इसके बाद हनुमान शैलराज से संजीवनी औषधि लाए ।
- (2) ईश्वर के शुभ आशीर्वाद से शमशेर और अशफ़ी की शादी हो गई । शमा और शबनम उनकी दो संतानें थीं ।
- (3) मनुष्य का विश्वास है कि सृष्टि के शुरु में वर्षों-वर्षों तक भीषण वर्षा होती रही । उस समय विष्णु शेषनाग की शैया पर शयन करते थे । उनकी बलिष्ठ भुजाओं पर आकर्षक पुष्पलता और आभूषण सुषमा पाते थे ।

3. स्वर आगम दोष निवारण अभ्यास

1. इन शब्दों का उच्चारण ध्यान से करो—

- (1) कर्म—क्रम । वर्ण—व्रण । नर्म—नम्र । प्रवाह—परवाह ।
- (2) आदि—आदी । पत—पति । मत—मति । अवधि—अवधी । अलि—अली ।
- (3) तुलना—तूलना । बुरा—बूरा । बहु—बहू । सुत—सूत ।
- (4) मेला—मैला । में—मैं । सेर—सैर । बेल—बैल ।
- (5) जो—जौ । सो—सौ । बोना—बौना । ओर—और ।
- (6) सास—साँस । हंस—हँस ।

4. व्यंजनभेद आधारित अभ्यास

1. निम्नलिखित शब्दों का शुद्ध उच्चारण करो—

- (1) गोल—घोल । डाल—ढाल । बूरा—भूरा । ताली—थाली ।
- (2) शाल—साल । शादी—सादी । बाग—बाघ । कोड़ी—कोढ़ी ।

व्यावहारिक कार्य

1. पास-पड़ोस अथवा कक्षा के किन्हीं पाँच बच्चों के उच्चारण दोषों के कारणों का पता लगाना ।
2. उच्चारण से संबंधित अवयवों के माडलों, चित्रों, यंत्रों आदि के बारे में जानकारी प्राप्त करना ।
3. क्षेत्रीय बोली से प्रभावित पचास शब्दों की सूची अकारादिक्रम से तैयार करना ।
4. पास-पड़ोस के हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने वाले विद्यालयों से संबंध स्थापित करके ज्ञात करना कि वे अपने विद्यार्थियों का उच्चारण शुद्ध करने के लिए किन उपायों को अपनाते हैं ।
5. अपने संपर्क में आने वाले विद्यार्थियों का उच्चारण शुद्ध कराने के लिए वार्षिक योजना तैयार करना ।
6. भाषा प्रयोगशाला के बारे में जानकारी प्राप्त करना ।
7. अपने प्रदेश की विभिन्न बोलियों का भाषावैज्ञानिक दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन करना ।
8. हिन्दी तथा प्रांतीय बोलियों के तत्सम तथा तद्भव शब्दों की सूची पर आधारित चार्ट तैयार करना ।
9. स्थानीय आवश्यकता के अनुसार उच्चारण दोष सुधारने के अभ्यासों का निर्माण करना ।
10. आदर्श उच्चारण प्रतियोगिताओं का आयोजन करना ।

संदर्भ

1. हरियाणवी हिन्दी कोश—डा० जय नारायण कौशिक, हरियाणा साहित्य अकादमी प्रकाशन (1985) ।
2. हिन्दी हरियाणवी उच्चारण भेद, डा० जय नारायण कौशिक ।
3. हरियाणवी प्रत्यय कोश—डा० जय नारायण कौशिक ।
4. हिन्दी ध्वनियाँ और उनका उच्चारण, डा० भोलानाथ तिवारी (1973) ।
5. हरियाणा लोकगीत—डा० भीमसिंह (1981) ।
6. अहीरवाल का इतिहास, डा० कृपाल चन्द्र यादव (1967) ।
7. बागड़ी बोली का स्वरूप—डा० एल० डी० जोशी ।
8. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, डा० हरिदत्त भट्ट शैलेश (1976) ।
9. उच्चारण पुस्तिका—केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा (1977) ।
10. Sound Discrimination Lessons, Dr. J. N. Kaushik,

(National Award winner Paper) N.C.E.R.T. (1980).
11 Vowel Insertion in Speech, Dr. J. N. Kaushik (National Award winner Paper) N.C.E.R.T. (1982).

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. 'विद्वत् मंच पर उस व्यक्ति को सम्मान मिलता है जिसका उच्चारण शुद्ध हो,' इस कथन की विवेचना करें तथा शुद्ध उच्चारण के महत्त्व पर प्रकाश डालें।
2. 'शुद्ध उच्चारण के लिए यांत्रिक और मानसिक पक्ष का संतुलन अनिवार्य है,' इस कथन की पुष्टि करें।
3. विद्यार्थियों में उच्चारण दोष के कौन-कौन से कारण हैं ? हम इन दोषों का निवारण किस प्रकार कर सकते हैं ?
4. हिन्दी के मानक उच्चारण में 'बोलियाँ आड़े आती हैं,' इस कथन की समीक्षा करें तथा अपने क्षेत्र की बोली के उदाहरण देकर कथन की पुष्टि करें।
5. अपने क्षेत्र की बोलियों की उच्चारण संबंधी विशेषताओं का वर्णन उदाहरण सहित करें।
6. 'मानक उच्चारण के लिए निदानात्मक और उपचारात्मक अभ्यासों का निर्माण आवश्यक है,' इस कथन की समीक्षा करें और उदाहरण के रूप में निदानात्मक और उपचारात्मक परीक्षण के दो-दो अभ्यास प्रश्नों का निर्माण करें।
7. अपने क्षेत्र की बोली और मानक हिन्दी उच्चारण भेदों का वर्गीकरण करें। आप किन साधनों से इस अन्तर का निराकरण कर सकते हैं ?
8. टिप्पणी लिखें—
 1. हिन्दी वर्णमाला का उच्चारण स्थान 2. उच्चारण का यांत्रिक पक्ष
 3. सुर और सुर लहर 4. हरियाणों की प्रमुख बोलियाँ 5. हमारे शरीर के ध्वनि यंत्र।

वाचन की शिक्षा

I. वाचन क्या है ?

सामान्यतः वाचन पठन, साक्षरता तथा शिक्षा का पर्यायवाची माना जाता है। जो व्यक्ति पढ़ सकता है वह मोटे तौर से साक्षर और शिक्षित माना जाता है।

अंग्रेजी में वाचन के लिए 'रीडिंग' शब्द का प्रयोग होता है। यूरोपीय भाषाओं में वाचन के लिए 'रेडेन', 'रेटेन' आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं और इन शब्दों का प्रयोग व्याख्या करना, सलाह देना तथा पढ़ना आदि के अर्थ में होता है।

संस्कृत में 'वाचनम्' शब्द की व्युत्पत्ति 'वच्' धातु से की जाती है तथा इसका अर्थ पढ़ना, पाठ करना, धोषणा, प्रकथन, उच्चारण (जैसा कि स्वस्ति-वाचन) आदि है।

ग्रामीण बोलियों में वाचन का पर्याय 'बाँचना' है जिसका अभिप्राय पुस्तक या चिट्ठी आदि को पढ़ना या पढ़कर सुनाना है।

संस्कृत भाषा में वाचन के लिए 'पठ्' या 'पठनम्' शब्द का भी प्रयोग होता है जिसका अभिप्राय ऊँचे स्वर से पढ़ना या दोहराना, सस्वर पाठ करना, अध्ययन करना आदि है।

वास्तव में 'पढ़ना' और 'अध्ययन' आदि शब्दों का अर्थ विस्तृत है। वह अमुक कक्षा तक पढ़ा है या अध्ययन कर चुका है आदि में पठित विषय आदि का विस्तार भी सम्मिलित है।

वर्तमान अर्थ में 'वाचन' शब्द का प्रयोग पढ़ने, अध्ययन करने, साक्षर होने आदि की पहली सीढ़ी के रूप में किया जाता है। वाचन एक ऐसा कौशल है जो पढ़ने की योग्यता के निर्माण में फलीभूत होता है। आरंभिक कक्षाओं में वाचन के कौशल का विकास कराया जाता है जिससे कि छात्र पुस्तक की सामग्री को पढ़ना सीख जाएँ।

शिक्षा के क्षेत्र में वाचन से अभिप्राय केवल सार्थक ध्वनि के प्रतीक लिपि-चिह्नों को पहचानना मात्र नहीं है। यहाँ वाचन से अभिप्राय है पूर्वश्रुत

सार्थक ध्वनियों के प्रतीक शब्दों को पढ़कर उनका अर्थ ग्रहण करना। वास्तव में वाचन की प्रक्रिया की समाप्ति पठित शब्दों के अर्थ ग्रहण करने पर ही नहीं हो जाती बल्कि वाचन की प्रक्रिया की समाप्ति पठित सामग्री का अर्थग्रहण करने के पश्चात् उस पर अपना मंतव्य स्थिर करने और फिर तदनुसार व्यवहार करने पर सम्पन्न होती है।

वाचन या पठन की कोई परिभाषा कर सकता कठिन कार्य है। वाचन सिखाने वाला व्यक्ति को इससे संबंधित तत्वों की जानकारी होनी चाहिए।

II. वाचन के तत्व

1. ध्वनि के प्रतीक वर्णों को देखकर पहचानना।
2. वर्णों के प्रयोग से शब्दों का निर्माण करना।
3. शब्दों को उचित दृष्टिसोपान (आई स्पेन) में बाँटकर उचित गति से उच्चरित करना।
4. वाक्य को सार्थक इकाइयों (मीनिंगफुल यूनिट) में बाँटकर पढ़ना।
5. संदर्भ के अनुसार शब्दों का भाव ग्रहण करना।
6. लेखक के विचारों को समझ कर पूर्व अर्जित ज्ञान से पठित सामग्री का संबंध स्थापित करना।
7. निश्चयात्मिका बुद्धि से पठित सामग्री पर अपना मंतव्य स्थिर करना।
8. मंतव्य के आधार पर अपना आचरण स्थिर करना तथा तदनुसार निरंतर व्यवहार करना।

वाचन के उपर्युक्त तत्वों से स्पष्ट है कि वाचन केवल यांत्रिक कौशल नहीं है। वाचन मस्तिष्क का उच्चस्तरीय व्यापार है जिसमें देखने, पहचानने, बोलने की सामान्य क्रिया से लेकर सोचने, कल्पना करने, तर्क करने, निर्णय या निश्चय करने तथा मूल्यांकन करने आदि के व्यापार सम्मिलित हैं।

वाचन ज्ञान प्राप्ति के विभिन्न साधनों में से एक ऐसी उद्देश्यपूर्ण मानसिक प्रक्रिया है जिसमें विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विकास के लिए उद्देश्यपूर्ण सामग्री का समायोजन किया जाता है।

III. वाचन का महत्त्व

वाचन या पठन साक्षरता का पर्याय है। किसी भी राष्ट्र तथा समाज की उन्नति के लिए बहुपठित नागरिकों का होना आवश्यक है। बहुपठित नागरिक ही प्रगतिशील विचारधारा को सहज में अपनाकर चिर नवीन समाज का निर्माण कर सकता है। भारत जैसे विशाल देश में पूर्ण साक्षरता लाने के लिए सातवीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षा पर भारी राशि खर्च करने की व्यवस्था की

गई है। हमारा साक्षर समाज ही नवराष्ट्र का निर्माण करेगा। सन् 1986-87 में लागू नई राष्ट्रीय नीति में इस तथ्य की पुनः सबल पुष्टि की गई है।

वाचन का महत्व सामान्य काम चलाऊ जानकारी प्राप्त करने से लेकर गहन अध्ययन तक है। शिक्षा औपचारिक हो अथवा अनौपचारिक (नॉन-फॉर्मल), व्यावहारिक (फंक्शनल) हो अथवा गूढ़, प्राथमिक स्तर की हो अथवा उच्च, संसार में संभवतः कोई भी शिक्षा पद्धति ऐसी नहीं जहाँ वाचन को उसका उचित स्थान न मिलता हो। प्राचीन भारत में 'कथावाचक' अथवा 'पाठक' निरक्षर स्त्री-पुरुषों की ज्ञान पिपासा को सामूहिक रूप में तृप्त किया करते थे। आज सार्वजनिक तथा अनिवार्य शिक्षा के युग में हर नागरिक से स्वयं अच्छा पाठक होने की आशा की जाती है जो स्वाभाविक ही है।

सामान्य कारगर सड़क, बस, दुकान का नामपट्ट पढ़ कर अनेक कठिनाइयों से बच सकता है। कारीगर अपनी व्यावसायिक उन्नति के लिए छुटपुट पुस्तकें पढ़ सकता है।

वयोवृद्ध तथा विकलांग स्त्री-पुरुष अपने समय का उपयोग रूचि की पुस्तकों को पढ़कर कर सकते हैं।

वाचन के माध्यम से चिरसन्तित ज्ञानराशि प्राप्त की जा सकती है। वाचन ज्ञान प्राप्ति का एक ऐसा माध्यम है जिससे समय तथा दूरी की सीमा सुगमता से लाँघी जाती है।

वाचन के माध्यम से सामाजिक संवेदनशीलता, राष्ट्रप्रेम तथा अन्य सद्वृत्तियों का विकास संभव है। सत् साहित्य वाचन से अपने व्यक्तित्व की बहुमुखी उन्नति की जा सकती है।

नित्य नवीन प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएँ, कहानी, उपन्यास आदि साहित्य हमारे मनोरंजन का सस्ता और सुगम साधन है।

बिना वाचन शिक्षा के हमारी स्कूली शिक्षा की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आरंभिक कक्षाओं में अधिकांश समय वाचन का कौशल सीखने पर व्यतीत होता है। बड़ी कक्षाओं में अधिकतर समय स्वाध्याय तथा गहन अध्ययन पर लगता है।

प्राचीन काल में बहुश्रुत व्यक्ति को श्रेष्ठ माना जाता था। आज के युग में प्रकाशित सामग्री विपुल मात्रा में उपलब्ध होने के कारण बहुपठित व्यक्ति को अच्छा माना जाता है। बहुपठित व्यक्ति देश-विदेश के बारे में नवीनतम जानकारी प्राप्त करके समाज में सम्मान अर्जित कर सकता है।

भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में हमारे जीवन में अनेक ऐसे अवसर आते हैं जब हमें मंच, आकाशवाणी अथवा दूरदर्शन के माध्यम से माँग पत्र, अभिनंदन पत्र, स्वागत भाषण, नेताओं के संदेश आदि पढ़ने पड़ते हैं। एक श्रेष्ठ वाचक

ही पठित सामग्री की मूल भावनाओं को श्रोताओं तक सफलतापूर्वक पहुँचा सकता है।

IV. वाचन की प्रक्रिया

शिक्षा के क्षेत्र में वाचन के महत्व को देखते हुए मनोवैज्ञानिकों, शरीर-विज्ञानियों, शिक्षा शास्त्रियों तथा समाजविदों ने वाचन प्रक्रियाओं को समझने और सुधारने में बहुत उपयोगी कार्य किया है। वास्तव में वाचन की शिक्षा देने वाले व्यक्ति को स्वयं वाचन की प्रक्रिया का पूरा ज्ञान होना आवश्यक है।

शिक्षा के इतिहास को वाचन का इतिहास कहना अत्युक्ति नहीं होगी। प्राचीन काल में वाचन (वच्—बोलना) मौखिक होता था किन्तु लिपि के आविष्कार के साथ इसने पठन का रूप धारण कर लिया।

वाचन या पठन की प्रक्रिया को वैज्ञानिक ढंग से जानने के लिए गत शताब्दी के अंत से वर्तमान काल तक महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। आई मूवमेंट कैमरा की सहायता से हमारे सामने अनेक महत्वपूर्ण तथ्य प्रकट हुए हैं।

प्रयोगों द्वारा सिद्ध हुआ है कि पढ़ते समय हमारी आँखें एक दिशा से दूसरी दिशा में (बाएँ से दाएँ) कुछ गति से रुक-रुक कर बढ़ती हैं। यह गति वाक्य या पंक्ति के समाप्त होने पर अपेक्षित रूप से कुछ अधिक क्षण तक रुकती है।

बोलते समय हम एक-एक वर्ण न बोलकर शब्द बोलते हैं तथा वाक्य पूरा होने तक सार्थक शब्द समूहों पर कुछ विराम लेते रहते हैं। कुछ इसी प्रकार की स्थिति वाचन के समय होती है। वाचन के समय आँखों का दृष्टिकेन्द्र (फिक्सेशन प्वाइंट) वर्ण न होकर एक शब्द बनता है। यह दृष्टिकेन्द्र निरंतर अगले शब्दों की ओर कुछ-कुछ विराम के साथ गतिशील होने लगता है। दो केन्द्रों के बीच के विराम को एक दृष्टिविराम (आई स्पेन) कहते हैं। यह दृष्टिविराम व्यक्तिगत भिन्नता के अनुसार होता है। मानसिक स्तर, शारीरिक अवयवों के कार्य करने की क्षमता, सामाजिक वातावरण, पठन सामग्री का सरल या कठिन होना, आयु, अन्यास, पठन का उद्देश्य आदि मूलभूत ऐसे कारण हैं जिनका दृष्टिकेन्द्र तथा दृष्टिविराम से सीधा संबंध है। नीचे कुछ वाक्य लिखकर वाचन की इस प्रक्रिया को स्पष्ट किया जाता है।

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20
म/हा/त्मा/गां/धी/का/पू/रा/ना/म /मो/ ह / न / दा / स / क / र / म / च/द
21 22 23
गां/ धी / था।

प्रत्येक अक्षर पर बल देने से ऊपर की पंक्ति को पढ़ते समय आँख के 23 दृष्टिविराम बनते हैं।

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11
महात्मा/गांधी/का/पुरा/नाम/मोहन/दास/करम/चंद/गांधी/था ।

एक अन्य पाठक इसी वाक्य को 11 दृष्टिविरामों में पढ़ सकता है ।

1 2 3 4
महात्मा गांधी का/पुरा नाम/मोहन दास करम चंद गांधी/था ।

उपर्युक्त पंक्ति को एक सामान्य पाठक चार दृष्टिविरामों में भी पढ़ सकता है ।

1 2
महात्मा गांधी का पुरा नाम/मोहन दास करमचंद गांधी था ।

एक अन्य कुशल पाठक इस वाक्य को केवल दो दृष्टिविरामों में पढ़ सकता है । अभ्यास द्वारा पूरे का पुरा वाक्य एक दृष्टिविराम में भी पढ़ा जा सकता है । विद्यार्थियों को वाचन का जितना अधिक अभ्यास दिया जाएगा वे उतनी ही तीव्र गति से पढ़ने के अभ्यस्त हो जाएँगे ।

V. वाचन मुद्रा (पोसचर तथा जैसचर)

वाचन का अपना एक शिष्टाचार है अतः विद्यार्थियों को आरंभकाल से ही शिष्ट विधि से पढ़ने का अभ्यास करवाया जाए । यथा—

1. पुस्तक या पठित सामग्री को ठीक विधि से पकड़ना ।
2. पुस्तक की आँखों से उचित दूरी ।
3. पुस्तक पर अधिक न झुकना ।
4. खड़े होकर पढ़ते समय पैर और शरीर के अंगों की उचित मुद्रा ।
5. पढ़ते समय आँख, नाक, भौंह, गर्दन आदि न मचकाना ।
6. पढ़ते समय सिर न हिलाना ।
7. स्वाभाविक वाचन मुद्रा में पढ़ना ।
8. दत्तचित्त मुद्रा में पढ़ना ।

VI. वाचन शैली

वाचन शैली का वाचक की भावग्रहणता तथा श्रोता पर पढ़ने वाले प्रभाव से सीधा संबंध है । अटक-अटककर, अतितीव्र या अतिमंद गति से पढ़ने या उच्चारण करने, भावानुकूल तथा उचित मुद्रा में न पढ़ने से वाचन प्रभावोत्पादक नहीं हो सकता ।

पाठकों की जानकारी के लिए पाणिनीय शिक्षा के उच्चारण संबंधी कुछ श्लोक यहाँ दिए जाते हैं :—

व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रान्द्रष्टाभ्यां न च पीडयेत् ।

भीता पतन भेदायां तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत् ॥

जिस प्रकार बाधित और बिल्ली गिरने और छिन्न-भिन्न हो जाने के भय से अपने बच्चों को दौतों से दबाकर स्थानान्तरित तो करती है किन्तु इतना नहीं दबाती कि उनके बच्चों को पीड़ा का अनुभव हो, उसी प्रकार वर्णों का उनके स्वरूप-व्यवन तथा स्वरूप-भंग के भय से उच्चारण करते समय उनके उच्चारण स्थानों को उतना ही व्याप्त करना चाहिए जिससे वर्णों का पीड़न (अस्पष्ट अथवा विकृत) न हो ।

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः ।

सम्यक्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ॥

वर्णों का उच्चारण इस प्रकार करना चाहिए कि वे न तो अव्यक्त रहें और न पीड़ित (कर्कश), क्योंकि वर्णों के उचित उच्चारण से उच्चारयिता ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है ।

गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः ।

अनर्थशोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ॥

संगीतपूर्वक, शीघ्रता से, सिर को हिलाते हुए, जो जैसा लिखा हो उसे उसी रूप में अथवा स्वलिखित को अर्थ को समझे बिना और अत्यन्त संकुचित (शिथिल) कंठ से वर्णों का उच्चारण करने वाले अधम उच्चारयिता हैं ।

माधुर्यमक्षर व्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।

धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ॥

माधुर्य, अक्षरों की सुव्यक्तता, पदच्छेद, सुस्वरता (उदानादि स्वरों का यथावत् उच्चारण), धैर्य (गाम्भीर्य अथवा मंदगति) और लयसम्पन्नता ये छह पाठकों के गुण हैं ।

शङ्कितं भीतमुद्धृष्टमव्यक्तमनुनासिकम् ।

काक स्वरं शिरसिगं तथा स्थानविवर्जितम् ॥

उपांशु दष्टं त्वरितं निरस्तं विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम् ।

निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यम् ॥

मंदिध रूप में, भयातुर होकर, विषम स्वर में (एक पद के कुछ वर्णों का मंद, कुछ का मध्यम और कुछ का तार स्वर में अथवा आवश्यक न होने पर भी तार स्वर में), अस्पष्ट रूप में, अनुनासिक रूप में, काक के स्वर के समान कर्कश स्वर में, अनावश्यक रीति से मूर्धा को आहत कर, उचित उच्चारण स्थान से भिन्न स्थान से, अत्यन्त मंद स्वर में (जिससे श्रोता तक ध्वनि न पहुँच सके), सन्दष्ट अर्थात् जबड़ों को नीचा करके अत्यन्त शीघ्रता से, उच्चारण स्थान और करणों का अपकर्ष करके, अतिविलम्ब से, गद्गदित स्वर में (तुतला कर), गाने

की तरह, उच्चारण स्थान का अनावश्यक संकोच करके, जिह्वामूल में ही दवाते हुए (बीच-बीच में पद अथवा वर्ण को व्यक्त किए बिना ही), दानभाव से तथा व्यर्थ अनुनासिकतायुक्त करके वर्णों का उच्चारण कदापि न करें।

वाचन के समय निम्नलिखित बातों का भी ध्यान रखना चाहिए—

1. शब्दोच्चारण ।
2. अक्षर व्यक्ति—(आर्टिकुलेशन) शुद्ध स्पष्ट रूप से उच्चारण स्थानों तथा जिह्वा की सहायता से ध्वनियों को व्यक्त करना ।
3. बल—(एम्फेसिस) प्रत्येक शब्द को अन्य शब्द से अलग करके उचित बल के साथ उच्चरित करना ।
4. विराम—(पाज) उचित विराम के साथ पढ़ना ।
5. सस्वरता—(इंटोनेशन) भावों के अनुसार ध्वनियों का उतार-चढ़ाव ।
6. लय ।
7. प्रवाह ।
8. गति ।

कविता वाचन के समय शब्द की गति, यति, लय तथा भाव आदि का ध्यान रखना चाहिए ।

VII. वाचन शिक्षण के उद्देश्य

प्राथमिक कक्षाओं में लेकर उच्च कक्षाओं तक वाचन उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए । विद्यालय के अंदर और विद्यालय के बाहर विद्यार्थियों को वाचन के उचित अवसर प्रदान किए जाने चाहिए । नीचे पठन से संबंधित ईश्वर भाई पटेल कमेटी द्वारा निर्दिष्ट तथा नई शिक्षा नीति द्वारा समर्थित विभिन्न कक्षाओं के शिक्षण उद्देश्य दिए गए हैं । मुख्यतः राष्ट्रीय स्तर पर यही उद्देश्य सामान्य परिवर्तन के साथ समर्थित हैं ।

पढ़ने की योग्यता के स्तरानुकूल उद्देश्य

1. मातृभाषा के संदर्भ में

पहली और दूसरी कक्षाओं के लिए

- (क) देवनागरी लिपि के सभी संकेतों (स्वरों, व्यंजनों, मात्राओं व संयुक्ताक्षरों) को पहचान कर पढ़ना ।
- (ख) इन लिपिसंकेतों के योग से बनने वाले परिचित शब्दों और वाक्यों का शुद्ध रूप से मुखर वाचन करना ।
- (ग) शब्दों, पदों तथा पदबंधों को प्रवाह के साथ पढ़ना ।

- (घ) पूर्णविराम, प्रश्नवाचक, अर्धविराम तथा आश्चर्यबोधक चिह्नों के अनुसार सही ढंग से पढ़ना।
- (ङ) सरल कहानियाँ, संवाद, कविताएँ, वर्णन आदि अर्थग्रहण करते हुए पढ़ सकना।

तीसरी से पाँचवी कक्षाओं के लिए

- (क) हिन्दी के परिचित शब्दों के साथ-साथ नए शब्दों को भी शुद्ध-शुद्ध पढ़ना।
- (ख) गद्य खंडों और कविताओं में उचित आरोह अवरोह एवं प्रवाह के साथ पढ़ना, मुखरवाचन करते समय पूर्णविराम, अर्धविराम, प्रश्न-वाचक एवं आश्चर्यबोधक चिह्नों के अनुसार उचित विराम देते हुए पढ़ने की योग्यता का विकास होना।
- (ग) पठित वस्तु के महत्वपूर्ण तथ्य, विचार तथा केन्द्रीय भाव को जानने की योग्यता का विकास होना।
- (घ) शब्दों एवं मुहावरों का अर्थ प्रयोग के अनुसार समझना।
- (ङ) मनोरंजन एवं ज्ञानवृद्धि के लिए पाठ्यपुस्तक के अतिरिक्त अन्य सामग्री को भी पढ़ने की योग्यता तथा रुचि का प्रारंभ होना।
- (च) विषय-सूची तथा पाठ्य पुस्तक में दिए गए शब्दकोष के प्रयोग की योग्यता का आरंभ होना।

कक्षा 6 से 8 तक के लिए

- (क) शुद्ध उच्चारण, उचित बलाघात, अनुतान एवं प्रवाह के साथ मुखर वाचन करना।
- (ख) विषय-सामग्री एवं श्रोताओं के अनुसार, गति एवं स्वर को नियंत्रित करना।
- (ग) विरामचिह्नों का ध्यान रखते हुए पढ़ना।
- (घ) निबंध, कविता, कहानी, नाटक आदि का उपयुक्त ढंग से मुखर वाचन करना।
- (ङ) पढ़ते समय शुद्ध एवं अशुद्ध वर्तनी तथा विरामचिह्नों में भेद करना।
- (च) समुचित गति एवं बोध के साथ मौन पठन करना।
- (छ) ध्यानपूर्वक एवं सावधानी के साथ पढ़ने की आदत विकसित करना।

कक्षा 9 एवं 10 के लिए

- (क) मुखर वाचन की यांत्रिक कुशलताओं (शुद्ध उच्चारण, बलाघात, अनुतान, स्वर, गति आदि) में पूर्णता आ जाना।
- (ख) अर्थबोध एवं गति के साथ मौन पाठ करना।
- (ग) शब्द के वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ को जान सकना।
- (घ) सरसरी दृष्टि से पढ़कर केन्द्रीय विचार या सार ग्रहण कर लेना।
- (ङ) ज्ञान, आनंद व प्रेरणा के लिए पढ़ना।
- (च) संदर्भ ग्रंथ, विषय-सूची, अनुक्रमणिका आदि देखकर वांछित सामग्री ढूँढ़ना, सामग्री चयन करना, उसे व्यवस्थित करना। 'नोट बनाना' आदि योग्यताओं का विकास करना।
- (छ) आलोचनात्मक दृष्टि से पढ़ना और पठित सामग्री पर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट कर सकना।
- (ज) भाषा, विचार एवं शैली की सराहना कर सकना।
- (झ) साहित्य के प्रति अभिरुचि का विकास करना।
- (ञ) सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक आदि विषयों की सामग्री समझना।

ग्यारहवीं तथा बारहवीं कक्षाओं के लिए

सेंट्रल बोर्ड आफ़ सेकेंडरी एज्युकेशन की ओर से +2 की कक्षाओं के मोटे तौर पर पठन के लिए निम्नलिखित व्यवहारगत उद्देश्य निश्चित किए गए हैं—

1. छात्र किसी रचना का शुद्ध, प्रवाहपूर्ण एवं अर्थानुकूल भावभंगिमा के साथ वाचन कर सकेंगे।
2. पठित विषय सामग्री में निहित भावों तथा विचारों को ग्रहण कर सकेंगे तथा उसके महत्वपूर्ण बिन्दुओं को चुन सकेंगे। केन्द्रीय विचार तथा उसके प्रतिपादक विचारों, तर्कों, तथ्यों, प्रमाणों, उदाहरणों आदि को भली-भाँति समझ सकेंगे।
3. पठित रचना पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण बना सकेंगे।
4. पठित रचनाओं में अपने उपयोग को सामग्री का चयन कर सकेंगे।
5. विविध साहित्यिक विधाओं (उपन्यास, एकांकी, कहानी आदि) की शैलीगत विशेषताओं को समझ सकेंगे।
6. किसी रचना को उसके ऐतिहासिक, सामाजिक, नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में समझ सकेंगे।
7. नवीन साहित्यिक प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

विशेष—पाठक उपर्युक्त विधाओं को पढ़ाने की विधियों के बारे में कहानी, उपन्यास, एकांकी आदि शिक्षण से संबंधित अध्यायों को पढ़ें।

2. द्वितीय भाषा के रूप में

(पाँचवीं से आठवीं कक्षा तक)

हिन्दी में शब्दों और वाक्यों को शुद्ध उच्चारण के साथ सप्रवाह पढ़ सकना।

VIII. वाचन शिक्षण की विधियाँ

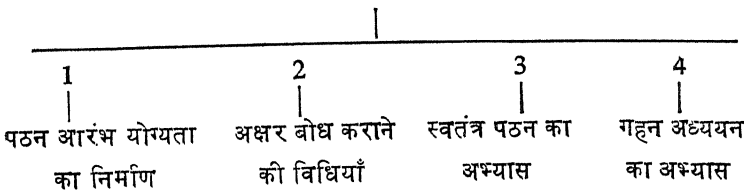
वाचन एक कौशल है। इसके सतत अभ्यास से पढ़ने तथा अध्ययन करने की योग्यता का निर्माण होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि वाचन का संबंध मानसिक परिपक्वता, शारीरिक विकास, संवेगात्मक स्थिरता तथा सामाजिक समायोजन से है। बालक की आयु की बढ़ोतरी के साथ पठन संबंधी इन कारकों का विकास स्वयं होता रहता है और बालक बिना किसी कठिनाई के वाचन सीख सकता है।

वाचन सिखाने के बारे में दूसरी धारणा यह है कि किसी भी कौशल को सुनियोजित विधि से सिखाया जा सकता है। वाचन का संबंध अंशतः मानसिक परिपक्वता, शारीरिक विकास आदि से है किन्तु उचित प्रशिक्षण और निर्देशन से बच्चों को वाचन सीखने के लिए तैयार किया जा सकता है। पठन की योग्यता का निर्माण प्रकृति प्रदत्त योग्यता तथा प्रशिक्षण दोनों के सम्मिश्रण से संभव है।

शिक्षा शास्त्रियों का यह भी अनुभव है कि आरंभिक कक्षाओं में अवरोधन या विद्यालय छोड़ने का प्रमुख कारण यह है कि शिक्षण पद्धति रुचिकर नहीं है और हम पढ़ाना शुरू करने से पूर्व बालक को पढ़ने के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं करते।

वाचन की जटिल प्रक्रिया को सिखाने के लिए आवश्यक है कि उसका प्रशिक्षण क्रमिक विधि से दिया जाए। सुगमता के लिए हम वाचन प्रक्रिया को निम्नलिखित खंडों में बाँट सकते हैं—

वाचन-प्रक्रिया-क्रम



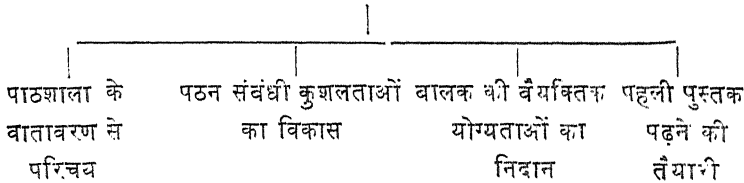
1. पठन आरंभ योग्यता का निर्माण ।
2. अक्षर बोध कराने की विधियाँ ।
3. स्वतंत्र पढ़ने का अभ्यास ।
4. गहन अध्ययन का अभ्यास ।

यहाँ वाचन अथवा पठन के इन चारों पहलुओं पर ध्यान करना उपयुक्त होगा ।

1. पठन आरम्भ योग्यता (रीडिंग रेडीनेस)

पठन आरम्भ योग्यता, वाचन आरम्भ योग्यता, पठन तत्परता की योग्यता निर्माण आदि शब्दों से अभिप्राय बालक में उन योग्यताओं के निर्माण से है जो वाचन सीखने के लिए अनिवार्य हैं तथा जिनके निर्माण से वह जीवन पर्यन्त अच्छा पाठक बना रहे । पठन आरम्भ योग्यता बालक की प्रकृतिप्रदत्त शक्तियों का विकास तथा शिक्षक के व्यवस्थित प्रशिक्षण और निर्देशन का ऐसा सम्मिश्रण है जिससे वह आजीवन योग्य पाठक बनने के लिए तैयार हो सके । इसके लिए एक सुव्यवस्थित कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता है ।

पठन आरम्भ योग्यता कार्यक्रम



पूर्व प्राथमिक विद्यालयों (प्री-प्राइमरी स्कूल) में पूर्णकाल तक तथा प्राथमिक विद्यालयों में प्रथम चार से आठ सप्ताह तक ऐसे कार्यक्रम का आयोजन होना चाहिए जिससे वाचन सीखने सम्बन्धी आवश्यक कौशलों का विकास हो सके ।

विद्यालय में अनिवार्य शिक्षा नियमों के अधीन प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों में वातावरण, परिवार, आर्थिक स्थिति आदि की भिन्नताएँ होती हैं । नई शिक्षा नीति (1986) में भी इसका स्पष्ट उल्लेख है । बच्चों में भी शारीरिक तथा मानसिक भिन्नताएँ होती हैं । बच्चों को विद्यालय के वातावरण के साथ एकरस होने में समय लगता है । यही कारण है कि आधुनिक शिक्षा शास्त्री विद्यालय के आरम्भ के कुछ सप्ताहों में पठन आरम्भ योग्यता के तत्वों के विकास पर बल देते हैं । पठन आरम्भ योग्यता का कार्यक्रम निम्नलिखित प्रकार से हो सकता है—

1. पाठशाला के वातावरण से परिचय ।
2. पठन सम्बन्धी कुशलताओं का निर्माण ।
3. बालकों की वैयक्तिक योग्यताओं का निदान ।
4. पहली पुस्तक पढ़ने की तैयारी ।

पठन आरम्भ योग्यता से सम्बन्धित उपर्युक्त विदुओं पर संक्षेप में यहाँ चर्चा की जाती है ।

1. पाठशाला के वातावरण से परिचय

पाठशाला के वातावरण के परिचय से विद्यार्थी में पाठशाला के कार्यक्रमों के प्रति रुचि बढ़ेगी और परिणामस्वरूप पठन के प्रति भी उसकी तत्परता बढ़ेगी । पहले कुछ सप्ताह तक ऐसे कार्यक्रम कराए जा सकते हैं जिनसे बालक अपनी आत्मा के बच्चों के साथ मिल-जुलकर काम करना और खेलना सीख ले तथा निर्देशों का पालन करना सीख ले । पठन में प्रयुक्त सहायक सामग्री (फ्लैश कार्ड, वर्णमाला के ब्लॉक, चित्र, चार्ट आदि) का सावधानी से प्रयोग करना सीख ले और वातावरण से सम्बन्धित शब्दावली को समझ ले ।

इन योग्यताओं के विकास के लिए निम्नलिखित सामूहिक क्रियाकलाप कराए जा सकते हैं—

1. विविध प्रकार के खेल ।
2. अभिनय एवं गीत ।
3. कहानियाँ सुनना तथा सुनाना ।
4. चित्रों की सहायता से कहानी सुनना-सुनाना तथा बनवाना ।
5. सादे रंगीन चित्र बनवाना, खिलौने बनवाना तथा उनके विषय में बात-चीत करना ।

2. पठन सम्बन्धी कुशलताओं का निर्माण

पठन की परिभाषा करते समय इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि ध्वनि के प्रतीक लिपिचिह्नों का अर्थ ग्रहण करते हुए पूर्व अनुभवों के आधार पर अपना मतव्य स्थिर करके तदनुसार आचरण करना ही पठन है । स्पष्ट है कि पठन की कुशलताओं का मुख्य सम्बन्ध लिखी हुई बात को समझ सकना, क्रमबद्ध समझ सकना, प्रसंगानुसार समझ सकना, निष्कर्ष पर पहुँच सकना तथा तुलनात्मक दृष्टि से समझ सकना आदि तत्त्वों से है । आइए इन्हीं पाँचों सोपानों को स्पष्ट रूप से समझें ।

(क) भाषा ज्ञान और प्रत्यय निर्माण ।

(ख) श्रव्य बोध ।

- (ग) दृष्टि बोध ।
- (घ) गति नियंत्रण ।
- (ङ) पठन के प्रति रुचि ।

(क) भाषा ज्ञान और प्रत्यय निर्माण

प्रत्यय निर्माण तथा शब्द भण्डार विकास का सम्बन्ध वाचन से है । यदि विद्यार्थी दाएँ-वाएँ आदि के प्रत्यय से परिचित हैं तथा इन शब्दों के अर्थ को समझता है तो जिस समय वह देवनागरी लिपि में लिखित इन शब्दों को देखेगा तो उसके मस्तिष्क पर दुहरा बोझ नहीं पड़ेगा । वह केवल वर्णों की पहचान पर अपना ध्यान केन्द्रित करेगा तथा अर्थ की दुरुहता के बोझ से बच पाएगा । उस समय दाएँ-वाएँ शब्द उसे किसी खेल की याद दिलाएँगे । उसे इस शब्द के पढ़ने में थकान की बजाय एक स्फूर्ति की अनुभूति होगी ।

पठन आरम्भ योग्यता के निर्माण के समय भाषा-ज्ञान और प्रत्यय-ज्ञान निर्माण के लिए निम्नलिखित कार्य करवाए जा सकते हैं—

1. परिवार, परिसर, बच्चों के भोजन, खेल, रुचियाँ आदि पर परस्पर वार्तालाप ।
2. कहानी कहना तथा सुनना ।
3. घटनाओं का वर्णन करना ।
4. पहेलियाँ बूझना ।
5. अभिनय करना या नकल उतारना ।
6. कविता पाठ करना ।

(ख) श्रव्यबोध

हिन्दी ध्वनि प्रधान भाषा है । यदि विद्यार्थियों में घोष-अघोष, अल्पप्राण-महाप्राण ध्वनियों में विभेद करने की योग्यता का निर्माण कर दिया जाए तो पठन के समय उनका उच्चारण शुद्ध होगा । उन्हें सूक्ष्म ध्वनियों के कारण (खान-गान) में होने वाले अर्थ-भेद को समझने में कठिनाई नहीं होगी ।

श्रव्यबोध के लिए मिलती-जुलती ध्वनियों से आरम्भ होने वाले खेल खिलाए जा सकते हैं । विभिन्न ध्वनियों को शब्द के आदि मध्य तथा अन्त में रखकर अभ्यास करवाया जा सकता है (ख़त—तख़त—ताख़) ।

(ग) दृष्टि बोध

पठन का दृष्टिबोध की परिपक्वता से सीधा सम्बन्ध है । वास्तविक अक्षर-ज्ञान देने से पूर्व लगभग समान अकृति वाले (व—ब, म—भ), आंशिक रूप से

समान आकृति वाले (त—न), भिन्न आकृति वाले (फ—भ) वर्णों को शब्द के आदि, मध्य तथा अन्त में रखकर आकृति विभेदीकरण कराया जा सकता है। वर्ग, आयत, त्रिभुज, छोटी-बड़ी रेखाओं की आकृतियों द्वारा भी यह अभ्यास सम्भव है।

चित्रों की सहायता से बाएँ से दाएँ देखने का अभ्यास भी कराया जा सकता है। दाएँ से बाएँ देखने के अन्य कार्यों का भी आयोजन किया जाना चाहिए।

(घ) गति नियंत्रण

बालक का दृष्टि-नियंत्रण, हाथ तथा मस्तिष्क-समन्वय, बाएँ से दाएँ देखने का अभ्यास आदि का पठन सामग्री (तख्ती, कलम, पुस्तक, स्लेट) के सम्भालने से सीधा सम्बन्ध है। इस गति नियंत्रण का पठन पर प्रभाव पड़ता है।

गति नियंत्रण के अभ्यास के लिए खिलौनों को पकड़ने, लकड़ी की गिट्टियों से विभिन्न आकृतियों के निर्माण करवाने, टँगलियों से भूमि पर रेखाएँ खिंचवाने, चित्र बनवाने, ड्रिल करवाने आदि कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है। 'धूलि कर्म' भारत की प्राचीन परम्परा रही है।

(ङ) पठन के प्रति रुचि

बालकों को वास्तविक रूप से पठन के प्रति मनोवैज्ञानिक विधि से तैयार करना अत्यंत आवश्यक है। इस अभ्यास को बड़ी कक्षाओं में भी बनाए रखने की आवश्यकता है।

पठन में रुचि जाग्रत करने के लिए कक्षा में विभिन्न प्रकार के चित्रमय चार्ट लगाए जा सकते हैं। इन चित्रों के नीचे मोटे अक्षरों में सामग्री लिखी जा सकती है। स्वाभाविक है कि नित्यप्रति देखने के अभ्यास से बालकों में इस सामग्री की जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ेगी।

बालकों को चित्रमय पुस्तकों से कहानियाँ पढ़कर सुनाई जा सकती हैं। उन्हें इस बात के लिए प्रेरित किया जा सकता है कि यदि वे शीघ्र पढ़ना सीख लें तो स्वयं अच्छी-अच्छी कहानियाँ पढ़ने का आनन्द ले सकेंगे।

3. बालकों की वैयक्तिक योग्यताओं का निदान

पठन योग्यता निर्माण सम्बन्धी कार्यक्रम के समय बच्चों के स्वभाव, उनके सीखने की गति, शारीरिक क्षमता, आपसी व्यवहार, गति नियंत्रण, पठन तत्परता के निर्माण आदि का मूल्यांकन करना स्वाभाविक है। इसी पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए पठन के क्षेत्र में उसका प्रवेश सावधानीपूर्वक कराना चाहिए। जिन विद्यार्थियों के पठन योग्यता के पक्ष अभी भी दुर्बल हैं उन्हें कुछ अतिरिक्त अवसर

देकर पठन आरम्भ कराना चाहिए।

4. पहली पुस्तक पढ़ने की तैयारी

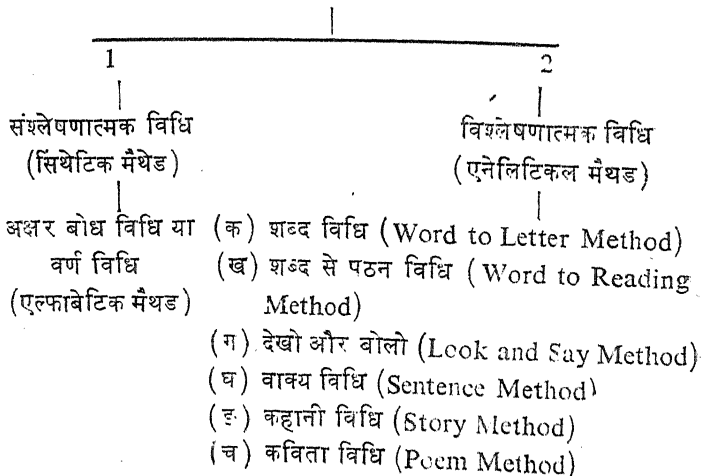
पहली पुस्तक या प्रवेशिका आरम्भ कराने से पूर्व पुस्तक के पात्र, उसकी शब्दावली, प्रत्यय, चित्र आदि के विषय में बालालाप द्वारा इस प्रकार पूर्व जानकारी देनी चाहिए कि बच्चे को इस भाषा को समझने में कोई कठिनाई न हो। उसे शब्दों के पढ़ने पर ही अपनी शक्ति व्यय करनी पड़े, अर्थ ग्रहण पर नहीं। पठन आरम्भ योग्यता की चर्चा के बाद आइए अक्षर बोध कराने की विधियों पर विचार करें।

अक्षर बोध कराने की कई विधियाँ हैं। इन सबकी उपयोगिता तथा कमियों पर नीचे चर्चा की जा रही है।

2. अक्षरबोध कराने की विधियाँ

वाचन सिखाने के लिए कई प्रकार की विधियों का आश्रय लिया जाता है। मुख्यतः इन विधियों को संश्लेषणात्मक विधि (सिंथेटिक मैथड), विश्लेषणात्मक विधि (एनेलिटिकल मैथड) तथा संयुक्त विधि (एक्लेक्टिकल मैथड) नामों से अभिहित किया जाता है।

अक्षरबोध कराने की विधियाँ



प्रथम दो विधियों में से कौन विधि श्रेष्ठ है इसके बारे में कोई वैज्ञानिक निर्णय नहीं लिया जा सकता। आजकल कुछ विद्वान विश्लेषणात्मक विधि पर बल दे रहे हैं किन्तु एक विद्वान मँथ्यूस का मत यहाँ उद्धृत किया जाता है—

'No matter how a child is taught to read, he comes sooner or later to strait gate and the narrow ways : he has to learn the letters and sounds.'

मैथ्यूस के इसी मत की पृष्टि करते हुए एल० टी० हैरिस अपने लेख Reading (Encyclopedia of Educational Research—Fourth Edition) में लिखते हैं—

While Mathew's opinion may not be widely shared by reading educators, there appears to be no evidence that the Analytical Method in the many years of its ascendancy has succeeded in reducing the percentage of underachievers in reading in schools or that of functionally illiterate adults.

मंश्लेषणात्मक-विश्लेषणात्मक विधियों के विवाद में न जाकर नीचे इन विधियों के गुण दोषों पर संक्षेप में चर्चा की जा रही है।

1. संश्लेषणात्मक विधि (सिथेटिक मैथड)

मंश्लेषणात्मक विधि के अन्तर्गत अक्षर या वर्ण की पहचान पर बल है शब्द या उसके अर्थ पर नहीं। इसे एन्फाबेटिक मैथड भी कहा जाता है।

हिन्दी ध्वनि प्रधान भाषा है। इसकी वर्णमाला को स्वर तथा व्यंजनों में विभक्त किया हुआ है। व्यंजनों की उच्चारण स्थान की दृष्टि से क, च, ट, त, प आदि वर्णों में बाँटा हुआ है। इसी कारण ऐतिहासिक दृष्टि से बालकों को पहले अक्षर या वर्ण सिखाए जाते हैं और फिर वर्णों को मिलाकर शब्दों का निर्माण सिखाया जाता है। तदनंतर स्वरों की मात्राओं से निर्मित शब्द पढ़ने का अभ्यास दिया जाता है।

पश्चिमी देशों में भी अठारहवीं शती तक अक्षर विधि को ही अपनाया जाता रहा। ग्राम देश के लोगों से रोमन वासियों ने अक्षर शिक्षण पद्धति को अपनाया। रोमन की पद्धति को जर्मन देश के लोगों ने अपनाया तथा इंग्लैंड में भी इसी एकमात्र पद्धति का प्रचलन अठारहवीं शती तक होता रहा।

अनेक अध्यापक अब भी या तो पठन सिखाने से पूर्व वर्णों की ध्वनियों तथा आकृतियों का परिचित करा देने के पक्ष में हैं या वर्ण विधि से पठन सिखाना पसन्द करते हैं।

चित्र-वर्ण विधि इसी का सुधरा हुआ रूप है। इस विधि के अंतर्गत बच्चे को ऐसा चित्र दिखाया जाता है जो उसके वातावरण का होता है और वह उसके अर्थ से भी परिचित होता है। चित्र के साथ उस चित्र का नाम भी लिख दिया जाता है। चित्र के नाम का पहला वर्ण या तो अन्य वर्णों से बड़ी आकृति का

होता है या अलग रंग का होता है। बालक का ध्यान पहले वर्ण की आकृति की ओर बार-बार दिलाया जाता है। इस वर्ण आकृति की पहचान कराने के लिए इसे शब्द के आदि, मध्य, अंत, तथा निरंतर स्थितियों में प्रदर्शित किया जाता है। यथा—



कबूतर



बकरी



नाक



ककड़ी

(आदि स्थिति) (मध्य स्थिति) (अंत स्थिति) (निरंतर स्थिति)

इसी प्रकार 'क' वर्ण की ध्वनि तथा उसकी आकृति का बार-बार अभ्यास कराया जाता है। ऐसा करने से बालक वर्णों की आकृतियों को पहचानना सीख जाता है।

यदि संदर्भ रोचक हों और ठीक विधि से वर्ण तथा चित्र को प्रदर्शित किया जाए तो यह विधि पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक है। कुछ वर्णों की पहचान हो जाने पर इन वर्णों से सार्थक शब्दों का निर्माण भी करवाया जा सकता है। स्वरों से निम्नलिखित सार्थक शब्द बन सकते हैं—

आ। आई। आए। आइए। आओ।

औपचारिक शिक्षा के अतिरिक्त अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़शिक्षा में इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है। प्रौढ़ों की आकृति पहचानने की शक्ति अधिक होती है तथा सामान्य शब्दावली में अर्थ के स्तर पर भी कोई कठिनाई नहीं होती। यदि उन्हें एकबार वर्णमाला का ज्ञान करा दिया जाए तो किसी भी स्थिति में सामान्य वाचन का कामचलाऊ ज्ञान हो जाता है।

प्रौढ़ों के लिए वर्णों के साथ दिए जाने वाले चित्र सीखने वाले के व्यवसाय से संबंधित हों तो अधिक उपयोगी रहेगा। उदाहरण स्वरूप बढई के लिए 'क' से कतिया 'व' से बसूला 'ल' से लकड़ी, दर्जी के लिए 'क' से कपड़ा, कमीज आदि शब्दों का निर्माण करवाया जा सकता है। आजकल इस प्रकार की शब्द सूचियाँ* भी उपलब्ध हैं।

एक सर्वेक्षण के अनुसार शब्द विधि द्वारा वाचन सिखाए गए बच्चों से जिस समय क्रम से वर्णमाला सुनाने को कहा गया तो सातवीं-आठवीं कक्षा तक के बच्चे भी इसे क्रम से नहीं सुना सके। वर्णक्रम ज्ञान के अभाव में छात्र घोष-अघोष, अल्पप्राण-महाप्राण तथा संधि के समय काम आने वाले अनेक नियमों को नहीं समझ पाते।

देवनागरी लिपि चीनी लिपि की तरह चित्राक्षर या भावचित्र लिपि (आइडियोग्राफिक) नहीं है। यहाँ 'खाना', 'पीना', 'रानी' आदि शब्द भिन्न-भिन्न वर्ण तथा मात्राओं के मेल से निर्मित होते हैं।

अक्षर बोध प्रणाली की उपर्युक्त चर्चा कोई अंतिम नहीं है। अपनी उपयोगिता के कारण विभिन्न भाषाओं के सिखाने में इसका प्रयोग हो रहा है। वाचन सिखाने वाले व्यक्ति स्वयं इसका परीक्षण करें और इसमें आवश्यक सुधार लाएँ।

2. विश्लेषणात्मक विधि (एनेलिटिकल मैथड)

विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग अनेक भाषाओं में सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इस विधि के अंतर्गत निम्नलिखित प्रणालियों का प्रयोग किया जा रहा है :—

- (क)—शब्द से वर्ण (Word to letter)
- (ख)—शब्द से पठन (Word to reading)
- (ग)—देखो और बोलो (Look and say)
- (घ)—वाक्य विधि (Sentence method)
- (ङ)—कहानी विधि (Story method)
- (च)—कविता विधि (Poem method)

इस विधि के अंतर्गत पहले शब्द सिखाए जाते हैं और फिर शब्द का विश्लेषण करके वर्ण सिखाए जाते हैं। नीचे संक्षेप में इन पर चर्चा की जा रही है।

(क) शब्द से वर्ण

कुछ विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में विद्यार्थी के प्रवेश के समय उसको पाटी पर 'अँ नमो सिद्धम्' वाक्य लिखवाया जाता था और इसे ही बार-बार पढ़ने को कहा जाता था। विद्यार्थी शनैः शनैः इस वाक्य के वर्णों से परिचित हो जाता था।

अठारहवीं सदी में शब्द से वर्ण विधि को जर्मनी में सफलतापूर्वक अपनाया गया और जर्मनी से यह विधि अमरीका ने अपनाई। यह विधि वर्ण विधि का ही

सुधरा हुआ रूप है। यहाँ पठन में शब्द के अर्थ पर बल नहीं है अपितु शब्द के वर्णों की पहचान और उनकी ध्वनि के उच्चारण पर बल दिया जाता है।

(ख) शब्द से पठन

अमरीका में उन्नीसवीं शताब्दी में 'शब्द से वर्ण' विधि को सुधार कर 'शब्द से पठन' नाम दिया गया है। इस विधि के अनुसार शब्द के लिखित रूप की कल्पना भावाक्षर (आइडियोग्राफिक) के रूप में की जाती है। यहाँ वाचन के स्थान पर शब्द के अर्थ पर अधिक बल है।

(ग) देखो-बोलो

अमरीका में बीसवीं शती में शब्द से पठन विधि को 'देखो-बोलो' विधि का नाम दिया गया। पाठक पूरे शब्द को देखता है और इस शब्द के विभिन्न वर्णों का उच्चारण न करके सम्पूर्ण शब्द का उच्चारण करता है। कुछ पठन शब्दावली का निर्माण हो जाने के बाद शब्दों में प्रयुक्त वर्णों का विश्लेषण किया जाता है।

विश्लेषणात्मक विधि को मनोवैज्ञानिक विधि कहा जाता है क्योंकि अर्थ की इकाई शब्द है वर्ण नहीं।

दूसरे यदि विद्यार्थी इस विधि से शब्द पढ़ना सीख जाता है तो उसकी पठन गति तेज रहती है। वह प्रत्येक वर्ण पर नहीं अटकता।

अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा में शब्द पद्धति का उपयोग वाचक के वातावरण तथा व्यवसाय से संबंधित शब्दों का चुनाव करके किया जा सकता है।

इस विधि से वाचन सिखाने में कई कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती हैं। यथा—

1. भाववाचक शब्दों के चित्र बनाने में कठिनाई होती है।
2. देवनागरी लिपि चित्र लिपि या भाव लिपि नहीं है। शब्द वर्णों का पुंज है अतः वर्णों से हमें विद्यार्थियों को परिचित तो कराना ही पड़ेगा।
3. हिन्दी में अनेक सार्थक और उपयोगी शब्द मात्राओं के योग से बनते हैं। जैसे 'रानी' शब्द में दो मात्राएँ सम्मिलित हैं। स्वर ज्ञान बिना मात्राओं का ज्ञान देवनागरी लिपि के द्रुत अनुकूल नहीं बैठता।
4. हिन्दी ध्वनि प्रधान भाषा है। यदि वर्णमाला को क्रम के अनुसार सिखाया जाता है तो वर्णों का उच्चारण स्थिर हो जाता है। कवर्ग,

चवर्ग आदि के भिन्न-भिन्न उच्चारण स्थान हैं। यदि इन वर्गों के वर्णों को शब्दों में विकीर्ण करके समझाया जाए तो उच्चारण स्थान का उचित अभ्यास नहीं हो पाएगा और उच्चारण दोष की संभावना बनी रहेगी।

5. यदि विद्यार्थी आरंभ से पहाड़ों के समान वर्णमाला को क्रम से कंठस्थ नहीं कर पाते तो बड़ी कक्षाओं में व्याकरण के अनेक नियमों को समझने और याद करने में कठिनाई होगी।
6. शब्द द्वारा दिए गए ज्ञान से विद्यार्थी बहुधा उन वर्णों को उन्हीं शब्दों के संदर्भ में समझते हैं और अन्य शब्दों के संदर्भ में बड़ी कठिनाई से समझ पाते हैं जबकि स्वतंत्र रूप से सीखे हुए वर्ण को किसी भी स्थिति में पहचानना सुगम रहता है।

(घ) वाक्य विधि

यह विधि शब्द विधि का विस्तार मात्र है। वाक्य विधि के अनुसार विद्यार्थियों को एक वाक्य पढ़ने को दिया जाता है जैसे—चाचा आया। तत्पश्चात् इन शब्दों का विश्लेषण करवाया जाता है। अगले वाक्यों में कोई नया शब्द जोड़ दिया जाता है और उसका विश्लेषण किया जाता है। यथा—

चाचा आया।

नाना आया।

दादा आया।

मामा आया।

आम लाया।

इस विधि का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह लाभ है कि पाठक को पहले वाक्य से ही विश्वास हो जाता है कि उसे पढ़ना आ गया। इसमें पूर्व सीखे गए वर्णों के मेल से नए शब्दों का निर्माण किया जाता है।

अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ों के लिए पाठ्य पुस्तकें लिखते समय इस पद्धति का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

आजकल कुछ इस प्रकार के प्रयोग भी किए जा रहे हैं कि स्वर से पहले ही उसकी मात्रा का ज्ञान दे दिया जाए। जैसे 'आ' सिखाने से पूर्व 'आ' की मात्रा (I) का प्रयोग। इस प्रयोग के पीछे यही तर्क है कि जैसे 'आ' ध्वनि प्रतीक है वैसे ही 'I' की मात्रा भी स्वतंत्र ध्वनि प्रतीक माना जा सकता है। मात्रा को स्वतंत्ररूप से ध्वनि प्रतीक स्वीकार करने से मात्रायुक्त सार्थक और सुगम शब्द निर्माण में बहुत सहायता मिलेगी।

वाक्य में आने वाले नए वर्ण या मात्रा की आकृति का परिचय कराया

जाता है तथा इसी प्रकार वर्णों के ज्ञान की संख्या में वृद्धि होती रहती है। अंत में स्वर व्यंजन आदि को वर्ण-क्रम से याद करवाया जाता है।

वाक्य विधि द्वारा वाचन सिखाने से पाठक में वाचन के प्रति शीघ्र आत्म-विश्वास जाग्रत हो जाता है। पठन सार्थक क्रिया बन जाती है। इस विधि में कठिनाई यह है कि स्वर और उसकी मात्रा स्वतंत्र रूप से मान लेने से ध्वनि-प्रतीक वर्णों की संख्या बढ़ जाती है तथा इ—ँ, ई—ी वर्ण को पढ़ने में भ्रम भी उत्पन्न हो सकता है क्योंकि दोनों एक ही ध्वनि के स्वतंत्र प्रतीक हैं।

(ङ) कहानी विधि

कहानी विधि विश्लेषणात्मक विधि का ही विस्तार है। सम्पूर्ण वर्णमाला को वाक्यों से निर्मित कहानी द्वारा सिखाया जाता है। इस प्रकार के वाक्यों का निर्माण किया जाता है कि कोई कहानी भी बनती जाए तथा नए-नए वर्णों का संयोजन नए-नए शब्दों में होता जाए।

इस विधि से वाचन रुचिकर बन जाता है। हिन्दी में अभी तक इस प्रकार की पठन सामग्री का एकांत अभाव है। अध्यापकों द्वारा प्रयोग के आधार पर इस विधि के परीक्षण की आवश्यकता है।

(च) कविता विधि

इस विधि द्वारा बालकों को पहले कविता याद करा दी जाती है। कविता इस प्रकार लिखी जा सकती है जिसमें विभिन्न स्वर-व्यंजनों तथा उनकी मात्राओं का प्रयोग हो। शब्दों और वर्णों की आवृत्ति के सिद्धान्त का ध्यान रखा जाता है। कवर्ग के वर्णों पर आधारित कविताओं की कुछ पंक्तियाँ उदाहरण के लिए यहाँ दी जा रही हैं—

क कबूतर करे गुटरगूँ, घूम-घूम कर गाए।

काली कोयल कूह करके, फुदक-फुदक कर गाए ॥

ख खरगोश के कान खड़े हैं, घास खेत में खाए।

खोखो करके बोले बंदर, आँखों को मटकाए ॥

ग गऊ घास खाती है, गटगट गन्ने खाए।

ग गधे की ढेचूँ-ढेचूँ, कानों को न भाए ॥

घ का घोड़ा हिन-हिन करता, खड़ी घास खा जाए।

घोड़ा गाड़ी खींच-खींचकर, हमको खूब घुमाए ॥

कविता कंठस्थ हो जाने के बाद वर्णों का विश्लेषण किया जाता है और अंत में वर्णक्रम सिखाया जाता है।

हिन्दी भाषा में अभी तक इस प्रकार की पठन सामग्री का एकांत अभाव

है। अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय इस प्रकार की सामग्री का निर्माण करें तो बहुत अच्छा हो।

कविता विधि से वाचन सिखाना जहाँ रुचिकर है वहाँ यह कठिनाई उपस्थित होती है कि बालक को एक ही साथ बहुत से नवीन वर्ण और मात्राएँ सीखनी पड़ती हैं। यह बात सरलता से सीखने के सिद्धान्त के विपरीत है।

3. संयुक्त विधि (एक्लेक्टिक मैथड)

ऊपर संश्लेषणात्मक और विश्लेषणात्मक विधियों पर विचार किया गया। अध्यापक के सम्मुख यह प्रश्न उठता है कि वह इन विधियों में से किसे अपनाए।

बहुत से राज्य किसी एक विधि के आधार पर अपनी पाठ्य पुस्तकों का निर्माण करते हैं। वे अपने राज्य के प्रशिक्षण विद्यालयों में भी उसी प्रकार का प्रशिक्षण अध्यापकों को देते हैं। आजकल अधिकांश हिन्दी भाषी प्रदेशों में विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग हो रहा है। अतः अध्यापक के समक्ष अपनी व्यक्तिगत विधि अपनाने का विकल्प कम रह जाता है।

जागरूक कक्षा अध्यापक कक्षा के छात्रों को समान वर्गों में विभाजित करके अलग-अलग वाचन प्रणालियों द्वारा वाचन की शिक्षा दे सकते हैं। वे अपने परीक्षणों का लेखा-जोखा वैज्ञानिक विधि से रखें और अपने परिणामों के आधार पर संश्लेषणात्मक, विश्लेषणात्मक अथवा संयुक्त विधि को अपनाएँ। संयुक्त विधि से तात्पर्य है सभी विधियों के सबल पक्षों को ग्रहण करना। अभी पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय पर लेख प्रकाशित करवाने की आवश्यकता है।

IX. पठन सामग्री के गुण

पठन सीखना तथा सिखाना शिक्षा प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है अतः पठन सामग्री का चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

1. आरंभिक अवस्था में वाचन सामग्री के सभी शब्द पूर्व श्रुत तथा अर्थ की दृष्टि से सरल होने चाहिए। यथासंभव शब्दों की आवृत्ति कई बार होनी चाहिए। शब्द मात्रा तथा संयुक्त व्यंजनों से रहित होने चाहिए। पाठ्य पुस्तक में आए शब्दों की आवृत्ति अतिरिक्त पठन की सामग्री में भी होनी चाहिए।
2. वाक्य सरल तथा लोघगम्य हों। आरंभिक कक्षाओं में वाक्य की लम्बाई एक शब्द से लेकर चार-पाँच शब्दों तक हो सकती है। वाक्यों में लक्षणा तथा व्यंजना शक्ति के प्रयोग से बचा जाए।
3. पठन सामग्री बालक के वातावरण, रुचि तथा आवश्यकताओं के अनुसार होनी चाहिए।

4. पठन सामग्री में जीवन मूल्यों को इस विधि से परोया जाए कि वह उपदेश मात्र न रहे अपितु पाठक उन गुणों को सहज रूप में ग्रहण करने को प्रेरित हो।
 5. पाठों की लम्बाई अधिक न हो। पाठ छोटे-छोटे अनुच्छेदों में विभक्त हों।
 6. पठन सामग्री में आवश्यकतानुसार चित्रों का समावेश हो। चित्र उपयुक्त तथा रंगीन हों।
 7. आरंभिक कक्षाओं में वर्णों का आकार बड़ा हो।
 8. बड़ी कक्षाओं में भाषा स्तर का उत्तरोत्तर विकास होना चाहिए।
- इस विषय पर विस्तृत जानकारी पाठ्य पुस्तक नामक अध्याय में दी गई है। पाठक अधिक जानकारी के लिए उस अध्याय को पढ़ें।

X. वाचन सिखाने के सहायक साधन

वाचन सिखाने के साधनों का उपयुक्त चुनाव महत्वपूर्ण विषय है। वाचन सिखाने के आरंभिक युग में तिनके, पत्ते, लकड़ी, कंकड़, बालू मिट्टी आदि साधनों का प्रयोग किया गया होगा। चूना, खड़िया, विभिन्न प्रकार के रंग, आटा आदि यज्ञ वेदी की रचना के अतिरिक्त वाचन साधन के रूप में भी काम में लाए जाते रहे होंगे। इस प्रकार की सामग्री का उपयोग वातावरण के अनुसार आज भी किया जा सकता है।

वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ वाचन के साधनों में शनैः-शनैः विकास हो रहा है। अजकल निम्नलिखित साधन काम में लाए जा रहे हैं—

1. वर्णमाला के चार्ट।
2. प्लास्टिक, लकड़ी, गत्ते आदि से बने वर्णमाला के ब्लाक।
3. अक्षरों के सुंदर सचित्र ताश।
4. स्वरों की मात्राओं के ब्लाक।
5. उभरे हुए अक्षरों के कार्ड।
6. लकड़ी के टुकड़े जोड़कर अक्षर बना सकने वाले टुकड़ों का किंडर-गार्टन वाक्स।
7. वर्णों को मिलाकर बनाए जाने वाले शब्द चार्ट।
8. मोटो तथा वाक्य फीतियाँ।
9. वाचन शिक्षण पेटियाँ या किट।
10. ग्र्यामपट्ट।
11. स्लाइड।
12. दूरदर्शन, डॉक्यूमेंटरी फ़िल्म।
13. प्रवेशिका, पाठ्य पुस्तक।

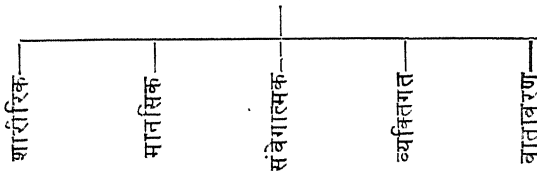
14. कंप्यूटर।

अनौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा आदि के कार्यक्रमों में प्रवेशिका या पहली पुस्तक का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि सभी चित्र तथा शब्दावली उसके व्यवसाय तथा जीवन की आवश्यकता से संबंधित हों। वाचन सामग्री को पाठक या नवसिखिया के वातावरण तथा उसकी आवश्यकताओं के अनुसार कहानी के रूप में मँजोया जाता है। प्रौढ़ शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा के लिए एन० सी० ई० आर० टी० द्वारा निर्मित प्रवेशिकाएँ* सामान्यतः इसी आधार को लेकर लिखी गई हैं। ऐसी सामग्री से पाठक में स्वयं पढ़ने की भावना जाग्रत होती है।

XI. वाचन को प्रभावित करने वाले कारक

संस्थाओं के सतत प्रयत्न, अध्यापक के कुशल मार्गदर्शन तथा सीखने वाले के सद्प्रयत्न के बाद भी देखने में आया है कि पठन में कई प्रकार के वाचन-संबंधी दोष पाए जाते हैं। वाचन को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक निम्नलिखित हैं—

वाचन को प्रभावित करने वाले कारक



1. शारीरिक

कान, जिह्वा, नाक, आँख, दाँत, ओष्ठ आदि अवयवों का वाचन की प्रक्रिया से सीधा संबंध है। इन अवयवों में किसी भी प्रकार का दोष वाचन की प्रक्रिया को प्रभावित करता है।

2. मानसिक

मंद बुद्धि के कारण प्रत्यय निर्माण, सूक्ष्म अर्थ ग्रहण कुशलता, तर्क शक्ति, अवधारणा शक्ति, शब्दभंडार आदि भाषा सीखने की क्रिया को प्रभावित करते हैं। स्वभावतः वाचन पर भी इनका प्रभाव पड़ता है।

* हम भी पढ़ेंगे—संयोजक-प्र० के० जी० रस्तोगी, एन० सी० ई० आर० टी० (1979)।

3. संग्रेगात्मक

माता-पिता तथा अध्यापक का भय, गरीबी, जाति-पाँति आदि के कारण हीन भावना, आलस्य, तिरस्कार, पढ़ने में अरुचि, असफल होने की भावना आदि का भी वाचन पर दुष्प्रभाव पड़ता है।

4. व्यक्तिगत कारण

वाचन मंदता या वाचन दोष के कुछ व्यक्तिगत कारण भी हैं। निरंतर रोगी रहना, घरेलू कार्यवश कक्षा से अनुपस्थित रहना, समय पर पाठ्य पुस्तकें न मिलना, विद्यार्थियों द्वारा सताया जाना, वाचन का अभ्यास न करना आदि भी वाचन को प्रभावित करते हैं।

5. वातावरण

परिवार में पढ़ने-लिखने का वातावरण न होना, बोली या प्रान्तीय उच्चारण का प्रबल प्रभाव भी वाचन दोष के कारण बनते हैं।

विशेष—वाचन से संबंधित अन्य कारकों के बारे में रुचिकर जानकारी के लिए पाठक भाषा शिक्षण में शोध कार्य संबंधी अध्याय पढ़ें।

XII. वाचन दोष के प्रकार

पाठक में विभिन्न स्तरों पर निम्न प्रकार के वाचन संबंधी दोष पाए जाते हैं—

1. लगभग समान वर्णों में भेद न कर सकना यथा—

ड—ड़—ड, भ—म, व—ब, फ—भ, ट—ठ—द।

2. ह्रस्व और दीर्घ मात्राओं में भेद न कर सकना। यथा—

िी, ु—ू, े—ै, ो—ौ।

3. व्यंजनों में मात्रा का योग न कर सकना।

4. व्यंजन विपर्यय करना। यथा—कलम को कमल, लकड़ी को लड़की, चाकू को काकू आदि पड़ना।

5. वर्णों की द्विरुक्ति। यथा—कल को ककल, आम को आआम पड़ना।

6. वर्णों का अनावश्यक आगम। यथा—सड़क—सरड़क।

7. शब्द में वर्णों को छोड़ देना। यथा—दारचीनी—दाचीनी।

8. वर्णों का शुद्ध उच्चारण न कर सकना। यथा—क्ष को छ, त्र को तर।

9. संयुक्त व्यंजनों में भ्रम करना। यथा—ब को ध, ख को स्त्र, ह को न्ह।

10. वाक्य पढ़ते समय शब्दों को छोड़ना । यथा—‘राम घर गया’ को ‘राम गया’ पढ़ना ।
11. पंक्ति की पंक्ति छोड़ देना ।
12. मंदता दोष यथा—
 - (क) वर्णों को एक-एक करके पढ़ना—क ल म ।
 - (ख) शब्दों को अटक-अटक कर पढ़ना ।
 - (ग) कक्षा तथा आयु के स्तर के अनुसार गति से न पढ़ सकना ।
13. शारीरिक दोष के कारण । यथा—
 - (क) गुनगुनाकर नाक में पढ़ना ।
 - (ख) हकला कर पढ़ना ।
 - (ग) भारी स्वर से पढ़ना ।
14. विषय सामग्री को भावानुसार उचित स्वर से न पढ़ना । यथा—
 - (क) बहुत मंद स्वर से पढ़ना ।
 - (ख) बहुत ऊँचे स्वर से पढ़ना ।
 - (ग) गद्य को भी लय से पढ़ना ।
 - (घ) विनय, क्रोध, आदेश, प्रश्न, भय आदि भावों को भावानुकूल न पढ़ना ।
15. विराम चिह्नों का ध्यान रखकर न पढ़ना ।
16. दृष्टि विराम तथा सार्थक इकाइयों का ध्यान रखकर न पढ़ना ।
17. बिना अर्थ ग्रहण किए यांत्रिक विधि से पढ़ना ।
18. उचित मुद्रा में न पढ़ सकना । यथा—
 - (क) पुस्तक को आँख से बहुत दूर या निकट रखना ।
 - (ख) पुस्तक को ठीक विधि से न पकड़ना या भूमि आदि पर रखना ।
 - (ग) पढ़ते समय आगे-पीछे हिलना ।
 - (घ) गर्दन को बाएँ-दाएँ हिलाते रहना ।
 - (ङ) वाचन के शिष्टाचार का पालन न करना ।
19. मौन वाचन न कर सकना, बोलकर ही पढ़ना ।
20. साहित्य की विधा (कहानी, नाटक, कविता आदि) के अनुसार न पढ़ सकना ।

XIII. वाचन दोष निवारण

ऊपर वाचन संबंधी विभिन्न दोषों की चर्चा की गई है । प्रत्येक दोष के निवारण की विभिन्न विधियाँ अपनाई जा सकती हैं । वाचन दोष निवारण के लिए संक्षेप में निम्नलिखित उपाय काम में लाए जा सकते हैं —

1. लिपि का पूरा ज्ञान देना ।
2. अध्यापक द्वारा बार-बार आदर्श वाचन करना ।
3. पठन का अभ्यास करवाना ।
4. पाठ्यचर्या में पठन का उचित स्थान रखना ।
5. अतिरिक्त पठन की आदत डालना ।
6. स्तरानुसार पठन सामग्री की व्यवस्था करना ।
7. वाचन प्रतियोगिताओं का आयोजन करना ।
8. शारीरिक दोषों का उपचार करना ।
9. संवेगात्मक दोषों का निराकरण करना ।
10. पठन में रुचि उत्पन्न करना ।

XIV. वाचन की अवस्थाएँ

नवसाक्षर से गहन अध्ययता बनने तक पाठक को वाचन की कई सीढ़ियों का पार करना पड़ता है। ये क्रम हैं —

1. सस्वर वाचन या मुखर वाचन ।
2. मौन वाचन ।
3. अध्ययन ।

1. सस्वर वाचन (लाउड रीडिंग)

वाचन सीखते समय वाचक आरंभिक अवस्था में प्रत्येक वर्ण अथवा शब्द को मुख से उच्चरित करता है। वह ध्वनि के प्रतीक लिपि चिह्नों को पहचानता है, उनका उच्चारण करता है और अर्थ ग्रहण करता है।

पहली तथा दूसरी कक्षा के विद्यार्थियों को सस्वर वाचन का अभ्यास कराया जाता है। सस्वर वाचन से अध्यापक को छात्र को वाचन संबंधी अशुद्धियों का पता लग जाता है और उन्हें शुद्ध कराया जा सकता है।

सस्वर वाचन से पाठक में आत्म विश्वास जाग्रत होता है। भाषा की ध्वनियों का उच्चारण मानक रूप से स्थिर हो जाता है। वाचन कौशलों—ध्वनि का आरोह-अवरोह, बल, अनुतान, गति आदि का विकास होता है और भाषा के वास्तविक उद्देश्य अर्थात् भाव ग्रहण की पृष्ठ भूमि तैयार हो जाती है।

सस्वर वाचन अधिक काल तक नहीं करवाना चाहिए अन्यथा पाठक में बिना ऊँचे स्वर से पढ़े भावग्रहण की आदत नहीं बन पाती। सस्वर वाचन से थकान भी शीघ्र होती है तथा पुस्तकालयों में अध्ययन के समय पाम बैठे पाठकों को अधिक असुविधा होती है।

2. मौन पाठ (साइलेंट रीडिंग)

पाठक में ज्यों ही वाचन के आरंभिक कौशलों का विकास हो जाए त्यों ही उसे मौन पाठ का अभ्यास करना आरम्भ कर देना चाहिए। मौन पाठ के समय उच्चारण की ध्वनि नहीं आनी चाहिए। इस अवस्था में पाठक अपने ओठों को हिलाता मात्र है।

मौन पाठ के समय पाठक पठन सामग्री के मुख्य भाव या सारांश को ग्रहण करता है। पठन सामग्री के प्रति मन-ही-मन में प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करता है तथा मानसिक तर्क-वितर्क करता रहता है।

मौन पाठ से पठन की गति तीव्र हो जाती है तथा एकाग्रचित होकर पढ़ने का अभ्यास उत्पन्न होता है। मौन पाठ गहन अध्ययन की पहली सीढ़ी है।

3. अध्ययन (स्टडी)

यदि सस्वर वाचन एक कौशल है तो अध्ययन इस कौशल के माध्यम से प्राप्त एक श्रेष्ठ योग्यता है। अध्ययन की योग्यता के बल पर अधिकाधिक ज्ञानार्जन संभव है। इसी के सहारे गंभीर पठन संभव है।

अध्ययन के समय पाठक न केवल वाक्य अपितु समस्त अनुच्छेद को एक सार्थक इकाई मानकर पढ़ डालता है। पाठक की गति अध्ययनकाल में इतनी तीव्र होती है कि वह कुछ घंटों में समस्त पुस्तक के मुख्य भाव को ग्रहण कर सकता है। ऐसी अवस्था में वह गृहीत विचारों का विश्लेषण और आलोचना करते हुए अपने किसी निष्कर्ष पर भी पहुँच जाता है जो वाचन का उच्च लक्ष्य है।

XV. वाचन में रुचि उत्पन्न कराने के उपाय

हमारे देश में प्रकाशित होने वाली पाठ्य सामग्री, पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकालयों के सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाएगा कि हमारे देशवासियों में सामान्यतया वाचन की रुचि का अभाव है। अध्यापक, विद्यार्थी, तथा परीक्षार्थी वर्ग साधारणतया पाठ्य पुस्तकें पढ़ने तक ही सीमित है। नीचे वाचन के प्रति रुचि के अभाव के कारण तथा वाचन में रुचि उत्पन्न करने संबंधी कुछ संकेत दिए जाते हैं —

वाचन में रुचि के अभाव के कारण

1. निरंतरता।
2. आर्थिक बाधनाइयाँ।

3. सामाजिक चेतना का अभाव ।
4. रुचिकर पाठ्य सामग्री का अभाव ।
5. घर में वाचन संबंधी वातावरण का अभाव ।
6. विद्यालय में वाचन संबंधी वातावरण का अभाव ।
7. पाठ्यक्रम तथा मूल्यांकन में वाचन को उचित स्थान न दिया जाना ।
8. शिक्षक की स्वयं की वाचन में उचित रुचि न होना ।

उपाय

प्रजातांत्रिक देश में बहुपठित समाज का होना बहुत आवश्यक है । इस अभाव की पूर्ति के लिए निम्नलिखित विधियों से वाचन में रुचि जाग्रत की जा सकती है —

1. वाचन सिखाने से पूर्व वाचन योग्यता का निर्माण ।
2. रुचिकर वाचन सामग्री की व्यवस्था ।
3. निदानात्मक तथा उपचारात्मक वाचन विधियों का उपयोग ।
4. घर तथा विद्यालय में वाचन के लिए आवश्यक वातावरण का निर्माण ।
5. वाचन संबंधी कार्यक्रमों का आयोजन ।
6. पाठ्यक्रम तथा मूल्यांकन में वाचन को उपयुक्त स्थान ।
7. शारीरिक, संवेगात्मक तथा अन्य व्यक्तिगत वाक् दोषों का निवारण ।
8. अध्यापकों में वाचन की रुचि बनाने के लिए वाचन भत्ते (Reading Allowance) की व्यवस्था ।
9. वाचन संगठनों का निर्माण ।
10. वाचन प्रतियोगिताओं का आयोजन ।

व्यावहारिक कार्य

1. वाचन संबंधी अर्वाचीन और प्राचीन साहित्य का सर्वेक्षण ।
2. सर्वेक्षण के आधार पर वाचन संबंधी ग्रंथों की संदर्भ सूची तैयार करना ।
3. वाचन के उद्देश्यों पर गोष्ठियों का आयोजन तथा उनमें सक्रिय भाग लेना ।
4. वाचन की प्रक्रिया को प्रकट करने वाले यंत्रों की जानकारी प्राप्त करना ।
5. वाचन मुद्रा का अभ्यास तथा वाचन मुद्रा निरीक्षण ।
6. विभिन्न प्रकार की वाचन शैली का आदर्श प्रदर्शन ।
7. वाचन के समय श्रोता पर पड़ने वाले प्रभावों का अवलोकन ।
8. उच्चारण संबंधी मुख अवयवों के चार्ट, मॉडल आदि का निर्माण ।

9. वाचन-वर्णन के अनुसार स्तरानुसूचित पठन सामग्री का निर्माण ।
10. विभिन्न वाचन पैलियों से वाचन की शिक्षा तथा उनके कुप्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन ।
11. पठन आरम्भ योग्यता परीक्षणों का निर्माण ।
12. छात्र विषय की पठन संबंधी वृत्तियों की सूची तैयार करना, उनके कारण जानना तथा उनका निवारण करना ।
13. छात्रों से प्रत्यय निर्माण सम्बन्धी सामग्री तैयार कराना ।
14. बच्चों की रचि के साहित्य की सूची तैयार करना ।
15. छात्रों की अवस्थानुसार वाचन संबंधी रचियों की सूची तैयार करना ।
16. शारीरिक, संवेगात्मक, मानसिक रूप से पीड़ित विद्यार्थियों की सूची तैयार करना तथा अभिभावकों को सूचित करके उनका उपचार कराना ।
17. हिन्दी वर्णमाला, मात्रा आदि के चित्र, चार्ट, मॉडल आदि का निर्माण ।
18. वाचन संबंधी खेल सामग्री का निर्माण ।
19. वाचन शिक्षण की विभिन्न विधियों के आधार पर सामग्री का निर्माण ।
20. वाचन सिखाने के स्थानीय साधनों का सर्वेक्षण तथा निर्माण ।
21. वाचन संबंधी प्रतियोगिताओं का आयोजन ।
22. स्थानीय, जिला, राज्य तथा राष्ट्रीय स्तर पर पठन संस्थाओं का आयोजन तथा गठन ।
23. क्षेत्र सर्वेक्षण के आधार पर निरक्षरों की संख्या ज्ञात करना तथा उन की निरक्षरता का कारण जानना ।
24. क्षेत्र में समाजसेवियों के सहयोग से पुस्तकालय तथा वाचनालय की स्थापना करना ।
25. अध्यापकों, छात्रों तथा सामान्य नागरिकों द्वारा पढ़ी जाने वाली पाठ्य सामग्री का सर्वेक्षण करना ।
26. छात्रों तथा प्रशिक्षणार्थियों द्वारा साक्षरता आंदोलन में भाग लेना ।
27. कक्षानुसार औसत वाचन गति ज्ञात करना ।
28. राष्ट्रीय स्तर पर वाचन की मानक गति ज्ञात करना ।

संदर्भ

1. पठन आरम्भ योग्यता-निर्माण—अध्यापक दशिका—राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (1966) ।
2. ईश्वर भाई पटेल कमेटी की रिपोर्ट (1978) ।
3. केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम (1986) ।

4. मिनिमम लरनिंग कांटिन्यूअम, एन० सी० ई० आर० टी० (1979) ।
5. हम भी पढ़ेंगे, एन० सी० ई० आर० टी० (1979) ।
6. न्यूनतम अपेक्षित योग्यताएँ—दिल्ली राज्य शिक्षा संस्थान, रूप नगर, दिल्ली (1978) ।
7. हिंदी की कुछ शिक्षण इकाइयाँ, भाग—2, एन० सी० ई० आर० टी० (1973) ।
8. पहली, दूसरी तथा तीसरी किरण, एन० सी० ई० आर० टी० (1979-80) ।
9. प्राथमिक शिक्षकों के लिए पत्र-व्यवहार तथा सम्पर्क पाठ्यक्रम इकाइयाँ, एन० सी० ई० आर० टी० (1977-78) ।
10. उठो जागो (प्रवेशिका संदर्शिका) एन० सी० ई० आर० टी० (1979) ।
11. मेरी अभ्यास पुस्तिका, भाग—एक तथा दो, एस० पी० सी० डी० प्रकोष्ठ (दिल्ली प्रशासन) चाबी गंज, कश्मीरी गेट, दिल्ली (1985-86) ।
12. ओपन स्कूल विवरणिका—39, सामुदायिक केन्द्र, वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र, रिंग रोड, दिल्ली-110052 (1986) ।
13. Encyclopedia of Educational Research (Fourth Edition).
14. Reading Rates of Delhi Children (at the age of 11⁺)
Dr. J. N. Kaushik, National Award winner paper, N.C.E.R.T. (1983-84).
15. Study in Reading Rates—Dr. J. N. Kaushik—Research paper—Submitted to N. C. E. R. T. (1986-87).

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. वाचन क्या है ? शिक्षा के क्षेत्र में वाचन का क्या महत्त्व है ?
2. वाचनशैली से क्या अभिप्राय है ? आदर्श वाचनशैली को कुछ विशेषताओं का वर्णन करें ।
3. विद्यालयी स्तर पर वाचन के कौन-कौन से उद्देश्य निश्चित किए गए हैं ? संक्षिप्त वर्णन करें ।
4. प्रथम भाषा और द्वितीय भाषा के रूप में वाचन संबंधी उद्देश्यों में भिन्नता है । इन भिन्नताओं का आधार क्या है ? तर्क सहित उत्तर दें ।
5. 'वाचन भाषा का उच्च स्तरीय कौशल है', इस कथन की समीक्षा करें । आप किन माध्यमों से बच्चों में इस कौशल का निर्माण करेंगे ?
6. पठन आरम्भ योग्यता क्या है ? वास्तविक पठन और पठन आरम्भ

योग्यता के निर्माण में क्या-क्या समानताएँ और भिन्नताएँ हैं ? समीक्षा करें ।

7. अक्षरबोध कराने की कौन-कौन-सी प्रमुख विधियाँ हैं ? आप इन विधियों में से कौन-सी विधि को श्रेष्ठ समझते हैं ? युक्तियुक्त उत्तर दें ।
8. 'अक्षर शिक्षण विधि लिपि की प्रकृति के अनुकूल होनी चाहिए', इस कथन की समीक्षा करते हुए अक्षर बोध विधि के गुण दोषों का विवेचन करें ।
9. पठन सामग्री के कौन-से गुण होने चाहिए ? उदाहरण सहित उत्तर दें ।
10. वाचन की शिक्षा में आप किस प्रकार की सहायक सामग्री का प्रयोग करेंगे ? इस सामग्री का संक्षेप में वर्णन करें ।
11. वाचन को प्रभावित करने वाले कारक कौन-कौन से हैं ? आप वाचन की शिक्षा के समय इन कारकों को दृष्टिगत रखते हुए कौन-कौन-सी सावधानियाँ बरतेंगे ?
12. वाचन के समय विद्यार्थी किस प्रकार की अशुद्धियाँ करते हैं ? वाचन अशुद्धियों के प्रमुख कारण क्या हैं ? आप इस समस्या का क्या समाधान करेंगे ? संक्षेप में उत्तर दें ।
13. टिप्पणी लिखें—
 1. वाचन शिक्षण की अवस्थाएँ 2. वाचन के प्रकार 3. मौन पाठ का महत्त्व 4. वाचन में रुचि के अभाव के कारण 5. वाचन प्रक्रिया ।
 6. वाचन मुद्रा 7. प्रत्यय निर्माण 8. देखो-बोली पठन विधि 9. किंडर-गार्टन वाक्स 10. सस्वर वाचन ।

लेखन या लिपि शिक्षा

I. लेखन का अर्थ

लेखन शब्द का अर्थ सामान्य अक्षर विन्यास से लेकर रचनात्मक लेखन के उच्च स्तरों तक व्याप्त है।

सामान्य अक्षर विन्यास से अभिप्राय भाषा की विभिन्न ध्वनियों के प्रतीक उन वर्णों से है जिनके योग से सार्थक शब्दों और वाक्यों का निर्माण होता है।

इन्हीं ध्वनि प्रतीकों के लेखन के माध्यम से प्राचीनकाल के विचारों का संरक्षण और संवर्धन हो सका है तथा इन्हीं के माध्यम से वर्तमान पीढ़ी आगामी पीढ़ियों के लिए अपनी विचारधारा को सातत्य देने के लिए प्रयत्नशील है।

लेखन एक ओर जहाँ सभ्यता-संस्कृति को संरक्षण देने में सफल हुआ है वहाँ दूसरी ओर व्यक्ति के विचारों की अभिव्यक्ति को लेखनीबद्ध रूप में अभिव्यक्त करने का प्रबल साधन है।

वास्तव में लेखन मानव जाति के विचारों का अमर अभिलेख है।

लेखन के रचनात्मक रूप से अभिप्राय है मौलिक लेखन। मौलिक लेखन की सीमा आरम्भिक कक्षाओं की लिखित विचाराभिव्यक्ति से लेकर लेख, कहानी, नाटक, उपन्यास, काव्य तथा महाकाव्य आदि के सृजन तक व्याप्त है।

इस अध्याय में लेखन को अक्षर विन्यास के पहलू तक सीमित किया जाएगा। रचनात्मक लेखन की चर्चा रचना की शिक्षा नामक अध्याय में की जाएगी। अक्षर विन्यास की शिक्षा को लिपि की शिक्षा तथा हैंड राइटिंग की शिक्षा आदि नाम दिए जाते हैं।

II. लेखन का महत्त्व

लेखन साक्षरता का पर्याय है। विश्व-भर में सामान्यतया उस व्यक्ति को साक्षर मान लिया जाता है जो अपने हस्ताक्षर कर सकता है। अतः साक्षर व्यक्ति निरक्षरता के कलंक से बच जाता है।

लेखन संदेश भेजने का एक महत्वपूर्ण साधन है। पत्र-व्यवहार द्वारा आज सहस्रों व्यक्ति अपने कारोबार का संचालन कर रहे हैं।

लेखक अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए लेखन का सहारा लेता है। बड़े-बड़े विद्वान, विचारक और दार्शनिक लेखन के माध्यम से अपनी विचारधारा का प्रचार प्रसार करते हैं।

लेखन की सत्ता के कारण आज समय तथा दूरी पर विजय पाई जा सकती है। किसी भी काल या देश के लेखकों के विचार हमें आज लिखित रूप में उपलब्ध हैं।

कुछ लोग लेखन को व्यवसाय के रूप में ग्रहण किए हुए हैं। पत्रकार तथा साहित्यकार लेखन के सहारे अपने जीवन को कृतकृत्य करते हैं।

बिना लेखन के वर्तमान शिक्षा की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पाठ्य-पुस्तकें, कक्षा कार्य, गृहकार्य, परीक्षाएँ तथा मूल्यांकन का कार्य लेखन द्वारा ही सम्भव हो रहा है।

अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा का लक्ष्य लोगों को इतना लिखने योग्य बनाना है कि वे अपने कार्य-कौशल को बढ़ाकर उपयोगी नागरिक बन सकें। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि लेखन कौशल का सम्बन्ध आबाल-वृद्ध सभी से है। इसके महत्त्व को कभी कम नहीं किया जा सकता।

III. लेखन की शिक्षा के उद्देश्य

भाषा शिक्षण में लेखन की शिक्षा के महत्त्व और आवश्यकता को देखते हुए ईश्वर भाई पटेल कमेटी ने मातृ-भाषा और द्वितीय-भाषा के संदर्भ में लेखन के स्तरानुसार निम्नलिखित उद्देश्य निश्चित किए हैं। इन्हीं उद्देश्यों का समर्थन नई शिक्षा नीति ने भी किया है।

1. मातृभाषा के संदर्भ में

पहली और दूसरी कक्षा के लिए

- (क) लेखन सामग्री (कलम, दवात, पेंसिल, स्लेट, कापी, तख्ती आदि) सही ढंग से रखना और प्रयोग करना तथा लिखते समय सही ढंग से बैठना।
- (ख) लिखते समय आँख और हाथ की गति में समन्वय होना।
- (ग) देवनागरी के सभी लिपि-संकेतों—स्वरों, मात्राओं, व्यंजनों और संयुक्ताक्षरों को शुद्ध रूप में लिखना।
- (घ) सुपाठ्य और सुडौल अक्षरों में लिखना।
- (ङ) सरल शब्दों और वाक्यों का अनुलेख और श्रुतलेख। सभी परिचित शब्दों को शुद्ध रूप से लिख सकना।

तीसरी से पाँचवीं कक्षा तक के लिए

- (क) लिखावट का सुपाठ्य एवम् सुडौल होना ।
- (ख) हिन्दी के सभी परिचित शब्दों तथा वाक्यों को शुद्ध लिखने की योग्यता था जाना ।
- (ग) पूर्णविराम, अर्धविराम, प्रश्नवाचक एवं आश्चर्यबोधक चिह्नों के सही प्रयोग की योग्यता होना ।
- (घ) व्याकरण सम्मत शुद्ध भाषा का प्रयोग करना ।
- (ङ) उचित भाँति से अनुलेख और श्रुतलेख लिखने की योग्यता का होना ।
- (च) सरल वर्णन, साधारण पत्र तथा सरल विषयों पर छोटे-छोटे निबन्ध अपने शब्दों में लिखने की योग्यता का होना ।

कक्षा छठी से आठवीं तक

- (क) सुन्दर और सुपाठ्य अक्षरों में लिखना ।
- (ख) चार्ट और भित्ति पत्रिका तैयार करने के लिए बलात्मक ढंग से लिखने का अभ्यास करना ।

वर्तनी

- (क) सभी परिचित शब्दों को शुद्ध रूप से लिखना ।
- (ख) शब्दों की रूप-रचना के नियमानुसार शुद्ध वर्तनी लिखना ।
- (ग) शुद्ध वर्तनी के निश्चय के लिए शब्दकोश की सहायता लेना ।

विराम चिह्न

विराम चिह्नों (पूर्णविराम, अल्पविराम, प्रश्नसूचक, अर्धविराम, विस्मय-सूचक, उद्धरण चिह्न, समास चिह्न) आदि का सही प्रयोग करना ।

भाषा

- (क) व्याकरण सम्मत भाषा का प्रयोग करना ।
- (ख) लिखने के लिए सक्रिय शब्द भण्डार की वृद्धि करना ।
- (ग) समानार्थी शब्दों के प्रयोग में सावधानी बरतना ।
- (घ) शब्दों का उचित और प्रभावशाली प्रयोग करना ।

अनुच्छेद रचना

- (क) अनुच्छेदों में लिखने की आदत डालना ।
- (ख) एक अनुच्छेद में केवल एक मुख्य विचार अभिव्यक्त करना ।

(ग) आवश्यकतानुसार शीर्षक तथा उपशीर्षक देना ।

लिखित अभिव्यक्ति के रूप

- (क) वैयक्तिक एवं सामाजिक पत्र ।
- (ख) व्यावसायिक पत्र ।
- (ग) प्रार्थना पत्र लिखना और विविध प्रपत्रों को भरना ।
- (घ) विभिन्न अधिकारियों को आवश्यकतानुसार पत्र लिखना ।
- (ङ) पत्र-मित्र बनाना ।

निबन्ध और कहानी

- (क) विविध विषयों पर वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक निबन्ध लिखना ।
- (ख) विविध स्रोतों से आवश्यक सूचना प्राप्त करके सामान्य विषयों पर लेख लिखना ।
- (ग) दी गई रूपरेखा के आधार पर कहानी लिखना ।
- (घ) अधूरी कहानी को पूरा करना ।
- (ङ) अपने मन से कहानी लिखना ।

सारांश और भावार्थ

- (क) पठित पाठों का सारांश लिखना ।
- (ख) प्रमुख भावपूर्ण एवं विचारपूर्ण गद्यांशों का सरलार्थ एवं भावार्थ लिखना ।

विविध

- (क) पठित कहानी को संछाद में बदलना तथा पठित एकांकी या संवाद को कहानी में बदलना ।
- (ख) महापुरुषों की संक्षिप्त जीवनी लिखना ।
- (ग) विभिन्न वस्तुओं, पक्षियों और पशुओं आदि की आत्मकथा लिखना ।
- (घ) सभाओं और उत्सवों की सूचना एवं प्रतिवेदन तैयार करना ।
- (ङ) कुछ महत्वपूर्ण दिनों की डायरी लिखना ।
- (च) कविता की कुछ पंक्तियाँ लिखना ।
- (छ) लेखन में सृजनात्मक एवं मौलिकता का विकास करना ।

कक्षा 9-10 के लिए**वर्तनी और भाषा**

- (क) लिपि के मानक रूप का ही व्यवहार करना ।
- (ख) रूप-विज्ञान एवं ध्वनि-विज्ञान के नियमों के आधार पर शब्दों की उचित वर्तनी जानना ।
- (ग) शुद्ध वर्तनी जानने के लिए कोश देखने की योग्यता का विस्तार करना ।
- (घ) विराम चिह्नों का सही प्रयोग करना ।
- (ङ) लेखन के लिए सक्रिय (व्यवहार प्रयोगी) शब्दभंडार की वृद्धि करना ।
- (च) शब्दों, मुहावरों और पदबंधों का प्रभावशाली और उपयुक्त प्रयोग करना तथा समानार्थक शब्दों के प्रयोग में विशेष सावधानी बरतना ।
- (छ) शुद्ध प्रभावपूर्ण भाषा तथा लेखन शैली का स्वाभाविक रूप से प्रयोग करना ।
- (ज) उपयुक्त अनुच्छेदों में बाँटकर लिखना ।

लिखित अभिव्यक्ति

- (क) प्रार्थना पत्र, निमन्त्रण पत्र, बधाई पत्र, संवेदना पत्र, धन्यवाद पत्र, आदेश पत्र आदि लिखना, तार लिखना और विविध प्रपत्रों को भरना ।
- (ख) स्तरानुकूल उपयुक्त विषयों पर वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक और कल्पनात्मक निबंध लिखना ।
- (ग) विविध स्रोतों से आवश्यक सामग्री एकत्रित करके अभीष्ट विषय पर निबंध और जीवनी लिखना ।
- (घ) निर्दिष्ट रूपरेखा के आधार पर निबंध और कहानी लिखना ।
- (ङ) देखी हुई घटनाओं का वर्णन करना और उन पर प्रतिक्रिया भी प्रकट करना ।
- (च) अपूर्ण कहानी को पूर्ण करना ।
- (छ) स्वतंत्र रूप से कहानी, संवाद आदि लिखना और लिखने में मौलिकता एवं सृजनात्मकता का विकास करना ।
- (ज) पढ़ी हुई कहानी को संवाद में परिवर्तित करना और संवाद को कहानी में ।
- (झ) समारोहों और गोष्ठियों की सूचना और प्रतिवेदन तैयार करना ।
- (ञ) सार, संक्षेपीकरण, भावार्थ और व्याख्या लिखना ।

केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा ग्यारहवीं व बारहवीं कक्षा के लिए लेखन की दृष्टि से निम्नलिखित कुशलताओं का विकास सुझाया गया है—

विद्यार्थी—

1. अपठित रचना का सारांश लिख सकेंगे।
2. किसी विषय की वर्णनात्मक, विवेचनात्मक अथवा भावात्मक शैली में लिखित अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास कर सकेंगे।
3. पठित रचना की व्याख्या लिख सकेंगे।
4. वर्णनात्मक, विवेचनात्मक, भावात्मक आदि शैलियों में निबंध लिखने की क्षमता का विकास कर सकेंगे।
5. विभिन्न साहित्यिक विधाओं के माध्यम से अपने भाव, विचार, अनुभव एवं प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त कर सकेंगे।

2. द्वितीय भाषा के संदर्भ में

कक्षा 5/6 से 8 तक के लिए

1. सरल विषयों पर कुछ वाक्य या एक दो अनुच्छेद लिख सकना।
2. हिन्दी में पत्र लिख सकना।
3. चित्रों अथवा अन्य संकेतों की सहायता से कहानी लिख सकना।
4. व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध भाषा का प्रयोग करना।
5. हिन्दी से मातृभाषा में अनुवाद करना।

नवी-दसवीं कक्षाओं के लिए

द्वितीय भाषा के संदर्भ में—

1. हिन्दी के परिचित व अपरिचित शब्दों की शुद्ध वर्तनी लिखना।
2. विराम चिह्नों का समुचित प्रयोग कर सकना।
3. लिखते समय व्याकरण सम्मत भाषा का प्रयोग करना।
4. हिन्दी में पत्र, निबंध, संकेतों के आधार पर कहानियाँ, वर्णन, सारांश आदि लिखना।
5. हिन्दी से मातृभाषा में और मातृभाषा से हिन्दी में अनुवाद कर सकना।

विशेष—

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शिक्षण की उपयोगी विधियाँ अपनाने

की आवश्यकता है। इन विधियों की चर्चा कहानी, नाटक, उपन्यास आदि शिक्षण के अध्यायों के अतिरिक्त रचना की शिक्षा नामक अध्याय में विशेष रूप से की गई है। पाठक इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संबंधित अध्यायों को पढ़ें।

IV. लेखन शिक्षा का उचित समय

लेखन की शिक्षा वाचन की शिक्षा से पहले दी जाए या बाद में अथवा साथ-साथ इस विषय पर विद्वान एकमत नहीं हैं। भारतीय पाठशालाओं में शाला प्रवेश के पहले ही दिन पाटी या तख्ती पर हरिद्रा लगाकर पूजा होती थी। गुरु शिष्य का हाथ पकड़कर लेखनी से पहला शब्द लिखवाता था—ॐ नमो सिद्धम्। पढ़ाई गई सामग्री का श्रवण, मौखिक अभिव्यक्ति, वाचन तथा लेखन साथ-साथ चलते थे। बच्चा जिन अक्षरों को पढ़ता था उन्हें बोल-बोल कर लिखता था।

लेखन कार्य व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर भिन्न-भिन्न होता था। वाचन के साथ लेखन की शिक्षा का कारण यह था कि प्रवेश के समय बालक की आयु लगभग आठ वर्ष की होती थी। उसका मानसिक, शारीरिक तथा सामाजिक विकास इस स्तर तक हो चुका होता था कि वह लेखन सीखने में सक्षम था। अनेक विद्याओं में अक्षरविद्या भी एक विद्या थी जिसका अभ्यास पहले दिन से कराया जा सकता था। रेत पर कराए जाने वाले अभ्यास के कारण इसे धूलिकर्म कहते थे।

लेखन और वाचन सिखाने के उचित काल का विवाद बालोद्यान, बालवाड़ी, बालमंदिर, नर्सरी आदि शिक्षा पद्धति के विकास के साथ आरम्भ हुआ है। जहाँ अठ्ठाई-तीन वर्ष वय-वर्ग के विद्यार्थियों की शिक्षा की कल्पना की गई है। इस वय-वर्ग के लिए यह विवाद स्वाभाविक भी है।

लेखन सीखने से पूर्व बालक में उन सभी कुशलताओं का विकास हो जाना चाहिए जो अच्छे लेखन के लिए आवश्यक हैं। बालक के स्नायुमंडल का विकास, दृष्टि की स्थिरता, आकृति विभेदीकरण तथा ध्वनि विभेदीकरण के गुण, मस्तिष्क और स्नायुमंडल के बीच सहयोग, कुछ समय निचला बैठे रहने की आदत आदि अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं।

मांतेसरी का मत

श्रीमती मांतेसरी लेखन को शारीरिक क्रिया मानती हैं। लेखन में हाथों की क्रिया होने के कारण वे इसे वाचन की अपेक्षा सरल और आनन्दमय कार्य मानती हैं। वे वाचन को कठिन कार्य मानती हैं और लेखन को पहले सिखाने

पर बल देती हैं।

फ़ोबेल का मत

फ़ोबेल पहले वाचन सिखाने पर बल देते हैं। उनके अनुसार वाचन मानसिक प्रक्रिया है तथा लेखन मानसिक तथा शारीरिक दोनों।

महात्मा गांधी का मत

महात्मा गांधी के अनुसार हाथ से पहले आँखें, कान से पहले जुवान आती है। लिखने से पहले पढ़ना और वर्णमाला के अक्षरों को लिखने से पहले चित्रांकन आता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट होता है कि आज जिस वय-वर्ग के बालकों का विद्यालय में प्रवेश होता है उनके लिए पहले वाचन की शिक्षा सरल रहेगी। अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम में वाचन और लेखन के कार्यक्रम को साथ-साथ चलाया जा सकता है। प्रौढ़ों का मानसिक तथा शारीरिक विकास इस स्तर का होता है कि वे इन दोनों क्रियाओं का निर्वाह साथ-साथ कर सकते हैं। प्रौढ़ शिक्षा के उद्देश्य सामान्य शिक्षा में भिन्न हैं अतः लेखन की क्रिया को बहुत समय के लिए टाला नहीं जा सकता।

नॉबे सामान्य शिक्षाक्रम में लेखन शिक्षण के कार्यक्रम पर चर्चा की जाएगी।

V. लेखन शिक्षण की अवस्थाएँ

लेखन भी शिक्षा को दो पड़ावों में विभाजित किया जा सकता है—

1. लिपि का ज्ञान 2. रचना की शिक्षा।

लिपि का ज्ञान

1. प्रथम अवस्था—लेखन आरंभ योग्यता का निर्माण।
2. द्वितीय अवस्था—अक्षर रचना।
3. तृतीय अवस्था—शब्द तथा वाक्य रचना।

रचना की शिक्षा

4. चतुर्थ अवस्था—रचना की शिक्षा।
5. पंचम अवस्था—व्यावहारिक लेखन।
6. षष्ठ अवस्था—मौलिक लेखन।
7. सप्तमी अवस्था—स्वतंत्र लेखन।

लिपि का ज्ञान

1. प्रथम अवस्था—लेखन आरंभ योग्यता का निर्माण

हमारे विद्यालयों में अधिकांशतः ऐसे विद्यार्थी प्रवेश पाते हैं जो बालबाड़ी तथा नर्सरी आदि किसी पूर्व प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश से पूर्व कहीं नहीं पढ़ते। संभवतः गहरी विद्यालयों में दो-तीन प्रतिशत विद्यार्थी पहली कक्षा से पूर्व कहीं पढ़े होते हैं किन्तु गाँव के विद्यालयों में ऐसे विद्यार्थियों की संख्या नगण्य है।

विद्यार्थी नर्सरी स्तर का हो अथवा औपचारिक विद्यालय में पहली कक्षा का दोनों स्थितियों में लेखन सिखाने से पूर्व लेखन आरंभ योग्यता के गुणों का निर्माण करना अनिवार्य है।

1. लेखन आरंभ योग्यता निर्माण क्या है ?

लेखन आरंभ योग्यता के निर्माण से अभिप्राय बालक में उन गुणों का निर्माण करना है जो अक्षर लेखन, शब्द लेखन तथा वाक्य लेखन के लिए अनिवार्य हैं। सुंदर लेखन एक उच्च कोटि का गुण है। कुछ सीमा तक यह ईश्वर प्रदत्त या प्राकृतिक गुण हो सकता है किन्तु यदि इसे सुनियोजित ढंग से सिखाया जाए तो यह एक कौशल भी है।

मोटे तौर पर लेखन आरंभ योग्यता निर्माण में निम्नलिखित अभ्यास सम्मिलित हैं—

1. उँगलियों की मांसपेशियों का अभ्यास।
2. उँगलियों में पेंसिल, ब्रुश, कलम आदि पकड़ने का अभ्यास।
3. उचित मुद्रा में बैठने का अभ्यास।
4. लेखन सामग्री को ठीक ढंग से पकड़ने का अभ्यास।
5. लेखन सामग्री के उचित रखरखाव का अभ्यास।
6. वर्णों की आकृति विभेदीकरण का अभ्यास।
7. घोष-अघोष आदि ध्वनियों के विभेदीकरण का अभ्यास।
8. लेखन सामग्री के पारस्परिक आदान-प्रदान तथा साझेदारी का अभ्यास।
9. सौन्दर्य निरीक्षण, सौन्दर्य प्रशंसा तथा सौन्दर्य बोध।
10. सृजनात्मक चिन्तन तथा लेखन में रुचि उत्पन्न होना।

2. लेखन आरंभ योग्यता निर्माण की कार्य विधि

लेखन आरंभ योग्यता निर्माण के समय अध्यापक स्थानीय आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए निम्नलिखित कार्यविधि अपना सकता है :—

1. बाबू, स्लेट, कागज, स्यानपट आदि पर चित्र बनवाना ।
2. विद्यालय में टैंग चित्र, मोटो आदि का निरीक्षण कराना ।
3. लकड़ी, गत्ते, प्लाईवुड, हाईबोर्ड, प्लास्टिक, बगमाला चाटें आदि में कटे वर्णों पर उँगली, चाक आदि केर कर रखा खिचवाना ।
4. वर्णमाला के वर्णों में ब्रुश से रंग भरवाना ।
5. वर्णमाला-पेटी, मातिसरी मंजूषा, लेखन आरंभ मंजूषा आदि की सामग्री से वर्णों का निर्माण करवाना ।
6. वर्णमाला में प्रयुक्त सरल, ऋजु, खड़ी, पड़ी, तिरछी आदि रेखाएँ बनाने व वृत्त, अर्ध वृत्त खींचने का अभ्यास करवाना ।
7. चित्र के नीचे लिखे उसके नाम के पहले वर्ण का चित्र बनवाना ।
8. कंकड़, तिनके, बीज, गिट्टियाँ आदि रखकर वर्ण बनवाना ।

प्राइमरी की शिक्षा के लिए यह आवश्यक नहीं कि उन्हें भी इसी प्रक्रिया से गुजारा जाए । उनकी शिक्षा के उद्देश्य भिन्न होने तथा समयाभाव के कारण अक्षर लिखने का ज्ञान सीधे ही दिया जा सकता है ।

2. द्वितीय अवस्था

अक्षर रचना—जिन विद्यार्थियों में लेखन आरंभ योग्यता का निर्माण हो गया हो उन्हें अक्षर रचना की शिक्षा दी जा सकती है । अक्षर रचना की कई विधियाँ प्रचलित हैं जिन पर नीचे विचार किया जाएगा ।

लेखन या अक्षर विन्यास की शिक्षा से संबंधित एक विचार यह भी है कि क्या उन्हें वर्णों का लेखन पहले कराया जाए जो वाचन की दृष्टि से आवश्यक हैं ? उदाहरण के लिए अक्षर शब्द वाचन की दृष्टि से आवश्यक समझा गया और पुस्तक में इसे ही पहला स्थान मिला । किन्तु लेखन की दृष्टि से 'न' या 'त' वर्ण सरल हैं । विद्वानों का मत है कि लेखन और वाचन के शब्दों का क्रम भिन्न-भिन्न भी हो सकता है ।

लेखन से संबंधित एक अन्य विचारणीय विषय यह है कि क्या देवनागरी वर्णमाला को यथाक्रम लिखना सिखाया जाए ? शब्द का विश्लेषण करके सिखाया जाए अथवा चित्राक्षर विधि से ? इन प्रश्नों के पक्ष या विपक्ष में हमारे पास वैज्ञानिक विधि से एकत्रित आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं । सामान्यतया उपयोगी विधि यही है कि पहले किसी वस्तु का चित्र दिखाया जाए चित्र के नीचे उस वस्तु का नाम लिखा जाए तथा फिर उस शब्द के पहले वर्ण को लिखवाया जाए ।

3. तृतीय अवस्था—शब्द तथा वाक्य रचना

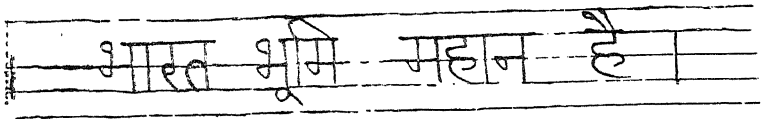
जिस समय बालक वर्ण लिखना सीख जाए तो उसे शब्द तथा वाक्य

लिखना सिखाया जा सकता है। अध्यापक को यह ध्यान रखना पड़ेगा कि अक्षर सुंदर और सुडौल हों। इस प्रकार के अभ्यास के लिए निम्नलिखित विधि अपनाई जा सकती है :—

1. तद्धती या अभ्यास पुस्तिका पर लिखना

तद्धती या कापी पर पाँच पंक्तियाँ खींची जा सकती हैं। बीच की तीन पंक्तियों में वर्ण लिखे जाएँ। ऊपर-नीचे की दोनों पंक्तियों में शिरो रेखा से ऊपर तथा वर्ण के नीचे जुड़ने वाली मात्राएँ लिखी जाएँ।

यथा—



तद्धती पर एक समय में दो पंक्तियाँ लिखवाई जाएँ। इनमें शब्द भले ही कम हों किन्तु सभी सुडौल और सुन्दर हों।

अंग्रेजी लिखने की अभ्यास पुस्तिका पर हिन्दी के वर्ण नहीं लिखवाए जाएँ। ऐसी कापी पर लिखने से वर्णों और मात्राओं का अनुपात गड़बड़ा जाएगा।

2. अनुलिपि (केलीग्राफी)

इस विधि का वर्णन आगे रूप-अनुसरण विधि में किया जाएगा।

3. प्रतिलिपि (कॉपीइंग)

इस विधि का वर्णन भी आगे अनुलेख विधि में किया जाएगा।

ऊपर लेखन की पहली तीन अवस्थाओं का वर्णन किया गया। इन तीनों अवस्थाओं का सम्बन्ध लिपि की शिक्षा तक सीमित है।

रचना की शिक्षा, व्यावहारिक लेखन, मौलिक लेखन तथा स्वतंत्र लेखन की कुशलताओं का सम्बन्ध लेखन की उच्च कोटि की कुशलताओं से है। इन सभी शेष अवस्थाओं का विवेचन रचना की शिक्षा नामक अध्याय में किया गया है।

VI. अक्षर रचना सिखाने की विधियाँ

अक्षर रचना सिखाने के लिए सामान्यतया निम्नलिखित विधियाँ अपनाई जाती हैं :—

अक्षर रचना सिखाने की विधियाँ

1	2	3	4	5	6	7
सार्थक रेखाएँ खींचने की विधि	खंडशः लेखन विधि	रूपअनुसरण या रेखा अनुसरण विधि	अनुलेख विधि	स्वतंत्र लेखन विधि	तुलना विधि	अन्य विधियाँ
						(क) मातिसरी विधि (ख) पेस्टालाजी की रचनात्मक विधि (ग) जेकार्टोंट विधि (घ) विश्लेषण विधि (ङ) संश्लेषण विधि (च) नवसाक्षर लेखन विधि

1. सार्थक रेखाएँ खींचने की विधि

सार्थक रेखाएँ खींचने की विधि लेखन योग्यता निर्माण तथा अक्षर विन्यास की शिक्षा के बीच की कड़ी है। देवनागरी लिपि शिक्षा के लिए इस प्रकार की रेखाओं का अभ्यास उत्तम रहेगा। इस प्रकार की सार्थक रेखाएँ तथा उनसे निर्मित वर्ण अगले पृष्ठ पर दर्शाए गए हैं।

2. खंडशः लेखन विधि

सार्थक रेखाओं के अभ्यास के पश्चात् वर्णों की रचना के लिए खंडशः लेखन का अभ्यास करवाया जा सकता है। बालक के लिए सम्पूर्ण अक्षर की रचना एक बार समझ पाना कठिन कार्य है। वर्ण को आरम्भ करने की विधि का ज्ञान बहुत आवश्यक है। लेखनी को किस ओर से किस ओर घुमाना है इसके लिए प्रत्येक खण्ड को तीर के चिह्न से समझाया जा सकता है। इन संकेतों में कुछ भिन्नता भी सम्भव है किन्तु ये संकेत लेखन की गति में सहायक होंगे। पृष्ठ* 177 पर देवनागरी वर्णमाला के कुछ वर्णों की खंडशः रूप से लेखन की स्थिति समझाई गई है।

* केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के लिपि संबंधी चार्ट से।

सार्थक रेखाएँ

निमित्त वर्ण

1.	— — —	शिरो रेखा
2.	— — — / —	अनुस्वार / अनुनासिक
3.	। । ।	खड़ी पाई
4.	⌈ ⌈ ⌈	आ की मात्रा
5.	न न न	अ ज
6.	\ \ \	र रा
7.	/ / /	प्र श्र
8.	c c c	ट ठ ड ढ ङ इ ई व ह
9.	७ ७ ७	क फ भ
10.	ε ε ε	घ ध ढ
11.	उ उ उ	उ अ
12.	८ ८ ८	त ल
13.	ग ग ग / —	ग / न
14.	म् म् म्	म भ भ
15.	८ ८ ८	प फ ष
16.	० ० ०	व क ब
17.	० ० ०	ब
18.	९ ९ ९	रे कू ऐ औ
19.	७ ७ ७	कु (उ की मात्रा)
20.	८ ८ ८	च
21.	२ २ २	श
22.	८ ८ ८	य थ

खंडशः लेखन विधि

० ३ ३ अअ	आआ	' ८ ८ ८	ई ई ई	' ३ ३ ३	ऊ ऊ ऊ	० ० ० अअ
० ० ० लललू	ए ए	ऐ ऐ	ओ ओ ओ	औ औ	० ३ ३ अअ अं अः	
० ० ० कक	ख ख ख	ग ग ग	घ घ घ	' ६ ६ ६	' ६ ६ ६	
० ० ० चच	छ छ छ	ज ज ज	झ झ झ	० ० ० झझ	० ० ० अअ	
' ० ० ० टट	ठ ठ ठ	' ० ० ०	' ० ० ०	' ० ० ०	० ० ० ण	
० ० ० तत	थ थ थ	' ० ० ०	' ० ० ०	' ० ० ०	० ० ० नन	
० ० ० पप	फ फ फ	० ० ० वव	० ० ० वव	० ० ० वव	० ० ० मम	
० ० ० यय	र र र	' ० ० ०	० ० ० लल	० ० ० लल	' ० ० ० शश	
० ० ० षष	० ० ० सस	' ० ० ०	' ० ० ०	० ० ० झझ	० ० ० ञ	
० ० ० णण	श श श	' ० ० ०	' ० ० ०	' ० ० ०	० ० ० ङ	

3. रूप अनुसरण या रेखा अनुसरण विधि

रूप अनुसरण या रेखा अनुसरण विधि बहुत प्राचीन और उपयोगी विधि है। इस विधि के अनुसार अध्यापक तख्ती, स्लेट या कागज पर वर्ण के रूप को पेंसिल, हल्की स्याही या बिन्दुओं से अंकित कर देता है। विद्यार्थी स्वयं या अध्यापक उसका हाथ पकड़कर रेखाओं का अनुसरण करते हुए वर्ण के रूप को उभारते हैं। इन रेखाओं अथवा बिन्दुओं पर लेखनी की गति के संकेत भी दिए जा सकते हैं।



छात्र जिस समय रेखानुसरण विधि से लिखे तो अध्यापक द्वारा निरीक्षण बहुत आवश्यक है अन्यथा विद्यार्थी तख्ती को उल्टा पकड़कर देवनागरी लिपि को बाएँ से दाएँ लिखने की बजाय दाएँ से बाएँ लिख सकता है। वह किसी भी वर्ण के किसी भाग पर लेखनी रखकर उसे सुन्दर लिख सकता है किन्तु ऐसा करने से लेखन सीखने का उद्देश्य निरर्थक हो जाता है।

आजकल बाजार में इस प्रकार की अभ्यास पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं जिनका रूप रेखानुसरण विधि से लेखन सीखने के लिए उपयोग किया जा सकता है।

अध्यापक को यह ध्यान रखना होगा कि रूपरेखानुसरण प्रणाली का उपयोग विद्यार्थी अधिक समय तक नहीं करे, वह शीघ्र ही अनुलेख विधि से लिखने लगे।

4. अनुलेख विधि

अनुलेख विधि रेखानुसरण विधि का अगला क्रम है। इस विधि के अनुसार कोई भी वर्ण सुन्दर और मोटे लेख में लिख दिया जाता है। विद्यार्थी इस वर्ण को देखकर इसका अनुलेखन करता है। यथा—

क	क	क
ख	ख	ख

अनुलेख लिखते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अध्यापक का अपना लेख सुन्दर हो। जिस वर्ण का अनुलेख करना है वह सुन्दर और सुडौल हो। लिखते समय निरीक्षण भी बहुत आवश्यक है क्योंकि वर्ण का लेखन उचित क्रम से होना चाहिए जैसा कि खंडशः प्रणाली में स्पष्ट किया गया है, पहला खंड पहले और अन्य खंड क्रमशः बाद में।

5. स्वतंत्र लेखन विधि

खंडशः लेखन, रूपरेखानुसरण, अनुलेख आदि के बाद स्वतंत्र लेखन विधि से अभिप्राय है बिना वर्ण देखे या नकल किए उसकी मानसिक चित्रछाया के अनुसार लिखना। कुशाग्र बुद्धि बालक बहुत कम समय में इस विधि को अपना लेते हैं। वे वर्णों की ध्वनि सुनकर श्रुतलेख के रूप में इन्हें लिख सकते हैं।

6. तुलना विधि

यदि विद्यार्थी ने देवनागरी लिपि सीखने से पूर्व संयोग से कोई अन्य लिपि सीख ली हो तो उस अभ्यास का लाभ उठाया जा सकता है। विभिन्न लिपियों में कुछ वर्ण ऐसे हो सकते हैं जो पूर्ण, अर्ध, या आंशिक रूप से एक दूसरी लिपियों में समान हों। यदि अध्यापक को स्वयं कई लिपियों का ज्ञान है तो वह विद्यार्थी का मार्गदर्शन भली प्रकार कर सकता है।

गुजराती-बंगाली आदि के वर्ण बहुत कुछ देवनागरी से मिलते जुलते हैं। नीचे देवनागरी लिपि से मिलते जुलते कुछ लिपियों के चिह्न दिए गए हैं—

हिन्दी	गुजराती	बंगाली
क	ક	ক
अ	અ	অ
उ	ઉ	উ

7. अन्य विधियाँ

उपर्युक्त लेखन विधियों से मिलती जुलती कुछ अन्य विधियाँ हैं जिनकी चर्चा संक्षेप में नीचे की जाती है—

(क) मांतेसरी विधि

इस विधि के अनुसार गत्ते, लकड़ी, प्लास्टिक आदि के बने वर्णों का प्रयोग किया जाता है। बालक वर्णों के ऊपर उँगली फेरता है। वह चारू या पेंसिल को वर्णों के बाहर की ओर घुमाता है और इस प्रकार उसके लिखने का अभ्यास हो जाता है। छोटे बच्चों के लिए यह विधि रुचिकर है।

(ख) पेस्टालीज की रचनात्मक विधि

इस विधि के अनुसार पहले वर्ण लेखन में उपयोग होने वाली विभिन्न रेखाओं, वृत्तों आदि का वर्गीकरण कर लिया जाता है जैसे कि पीछे सार्थक रेखाएँ खींचने की विधि में दर्शाया गया है।

इस विधि में वर्णों को लेखन की दृष्टि से सुविधा के अनुसार वर्गीकृत कर लिया जाता है। उदाहरण के लिए देवनागरी लिपि के वर्णों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :—

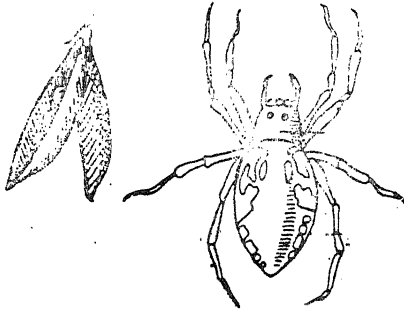
1. न म ग त ल त्र।
2. व ब क।
3. प फ ष।
4. उ ऊ आ ओ औ अं अः।
5. ट ठ ड द छ।
6. ङ ङ ङ ई ई ह ङ।
7. म भ ङ।
8. र ए ऐ स ख।
9. य थ श।
10. ष ध।
11. ज ङ।
12. च ऋ क्ष।

(ग) जेकाटाट विधि

इस विधि के अनुसार बालक को एक वाक्य लिखकर दे दिया जाता है। बालक पहले इस वाक्य को लिखता है और फिर बिना देखे इसे लिखता है। लिखने के बाद वह इसे मूल शब्द से मिलाता है तथा स्वयं अशुद्धि शोधन करता है। यह पद्धति उस भारतीय पद्धति के समान है जिसमें कहा गया है कि— पहले पढ़ो, फिर उसे लिखो, फिर लिखे हुए को मूल से मिलाओ, फिर मूल को देखो, विद्वानों की संगति करो तभी तुम विद्वान बन सकते हो।

(घ) विश्लेषण विधि

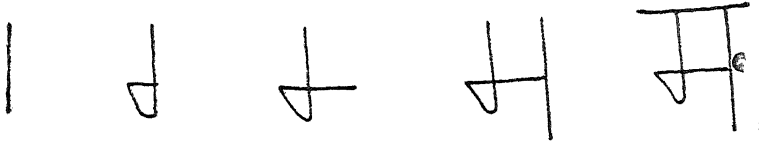
इस विधि के अनुसार लेखन शब्द एवं वाक्यों से आरम्भ कराया जाता है। बालक को पहले चित्र दिखाया जाता है। चित्र के नीचे वस्तु का नाम लिखा जाता है। बालक का ध्यान चित्र के पहले वर्ण की ओर दिलाया जाता है फिर पहले वर्ण का खंडशः लेखन सिखाया जाता है। उदाहरण के लिए बालक को कुछ चित्र दिखाए गए :—



मटर

मकड़ी

बच्चे का ध्यान पहले वर्ण की ओर दिलाया गया। इस वर्ण को अलग से लिख दिया गया। फिर इसको खंडशः लिख दिया गया। यथा :—



अब बालक को इसे खंडशः लिखने को कहा गया। इसी प्रकार टमाटर, टब, टमटम आदि शब्दों से 'ट' वर्ण का लेखन सिखाया गया।

विद्वान इस विधि को अधिक वैज्ञानिक मानते हैं क्योंकि इसमें प्रत्येक वर्ण सार्थक संदर्भ में होता है।

इस विधि द्वारा पूरे वाक्य के शब्दों का विश्लेषण करके भी लेखन सिखाया जा सकता है।

(ड) संश्लेषण विधि

इस विधि के अंतर्गत पहले वर्ण लिखना सिखाया जाता है। वर्णों के बाद उनसे निर्मित शब्द तथा फिर वाक्य, वर्ण सिखाने में निम्नलिखित विधियाँ अपनाई जा सकती हैं।

1. परम्परागत विधि

इस विधि के अनुसार पहले स्वर, फिर व्यंजन, तदनन्तर मात्राएँ तथा फिर शब्द तथा वाक्य लिखने सिखाए जाते हैं।

2. समान आकृति वर्ण समूह विधि

वर्णों को ऐसे समूहों में बाँट लिया जाए जो लगभग समान आकृति के हों और बनावट की दृष्टि से लिखने में सरल हों। देवनागरी लिपि के वर्णों का यह विभाजन पीछे पेस्टालाँजी की रचनात्मक विधि में दर्शाया जा चुका है।

3. चित्राक्षर विधि

इस विधि के अनुसार पहले वर्ण विशेष से आरम्भ होने वाला चित्र दिखाया जाता है। चित्र के नीचे उस वस्तु का नाम लिखा होता है। बालक को इस शब्द का पहला वर्ण लिखना सिखाया जाता है। यथा—अ—अनार, आ—आम, इ—इमली आदि।

नवसाक्षर लेखन विधि

सरकार ने प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए अनेक अनौपचारिक केन्द्रों की स्थापना की है। इन केन्द्रों में चौदह वर्ष से अधिक वयवर्ग के ऐसे लोग शिक्षा ग्रहण करते हैं जो विभिन्न व्यवसायों में कार्य कर रहे हैं। इन लोगों को ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे ये कम समय में अपने व्यवसाय की उन्नति के बारे में कुशलता प्राप्त कर सकें। इन नवसाक्षरों को लिखना सिखाते समय ऐसी शब्दावली का चयन करना होगा जो इनके रोजगार से सम्बन्धित हो।

उदाहरण के लिए दर्जी के व्यवसाय में लगे व्यक्ति को 'क' से कपड़ा, कैंची, किसान के लिए 'क' से ककड़ी 'ख' खुरपा, होटल में कार्य करने वाले को 'क' कड़छी आदि शब्दों का लेखन सिखाया जाए तो वह अधिक रुचिकर और उपयोगी रहेगा। इसी प्रकार विभिन्न व्यवसायों में काम में आने वाली शब्द सूचियाँ तैयार करनी होंगी ताकि लेखन को रुचिकर और व्यावहारिक बनाया जा सके।

VII. श्रुतलेख (डिक्टेशन)

1. श्रुतलेख क्या है ?

श्रुतलेख अनुलिपि तथा प्रतिलिपि से भिन्न क्रिया है। पहले दो कौशलों में विद्यार्थी लिखित सामग्री के आश्रय से लिखता है। श्रुतलेख में विद्यार्थी श्रुत ध्वनियों को लेखनीबद्ध करता है।

श्रुतलेख विद्यार्थी की लेखन शक्ति का मूल्यांकन करने की वह प्रक्रिया है जिसमें वह वक्ता या वाचक को सुनकर श्रुतध्वनि प्रतीकों को वर्ण, शब्द तथा वाक्य आदि में लिपिबद्ध करता है। श्रुतलेख के समय वक्ता के भाव, गति, विराम आदि का ध्यान रखते हुए विराम चिह्नों का भी ध्यान रखा जाता है।

2. श्रुतलेख का महत्त्व

किसी भाषा की ध्वनियों को ध्यानपूर्वक सुनने से भाषा सीखने वाले की सुनने, लिखने, अभिव्यक्त करने तथा भावग्रहण करने की शक्तियाँ प्रभावित होती हैं। श्रुतलेख इन पक्षों को प्रबल करने के महत्त्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है। अनुनासिक (हँस) और अनुस्वार (हंस) में भेद न कर सकने मात्र से अर्थ का अनर्थ हो सकता है।

आशुलिपि (शार्ट हैंडराइटिंग) की समस्त शिक्षा ही श्रवण पर आधारित है। संगीतविद्या सीखते समय श्रुत के महत्त्व को न्यून नहीं किया जा सकता।

विद्यार्थी के वर्तनी सम्बन्धी दोषों के निदान और उपचार का श्रुतलेख ही महत्त्वपूर्ण साधन है।

श्रुतलेख के अभ्यास से लेखन की उचित गति, वक्ता के भाव (प्रश्न, विस्मय, सम्बोधन आदि) को उचित संदर्भ में समझने की शक्ति, विराम आदि को प्रकट करने सम्बन्धी कौशलों का उचित अभ्यास मिलता है।

3. श्रुतलेख अभ्यास का समय

श्रुतलेख का अभ्यास परिस्थिति के अनुकूल कुछ वर्णों का वाचन सीख लेने, वर्णों का आकृति विभेदीकरण करने तथा सामान्य शब्द निर्माण से लेकर वाक्य रचना आदि के किसी स्तर से भी करवाया जा सकता है।

श्रुतलेख किसी समय भी करवाया जाए, वक्ता या वाचक को यह ध्यान रखना चाहिए कि इसका उद्देश्य निदानात्मक तथा उपचारात्मक है छिद्रान्वेषण या विद्यार्थी का साहस तोड़ना नहीं है।

आरम्भिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण का 10 से 15% तथा बड़ी कक्षाओं में 3 से 5% समय श्रुतलेख के अभ्यास के लिए दिया जा सकता है।

4. श्रुतलेख अभ्यास के सोपान

श्रुतलेख का अभ्यास विद्यार्थी की भाषा योग्यता के अनुसार कुछ सोपानों में विभाजित करके करवाया जा सकता है।

(1) स्वतंत्र वर्णों का श्रुतलेख

आरम्भिक अवस्था में कुछ वर्णों का श्रुतलेख दिया जा सकता है। यथा—

1. भिन्न आकृति वाले वर्ण—क—प—ट आदि।

2. लगभग समान आकृति वाले वर्ण—व—ब, भ—म आदि।

(2) शब्द के पहले वर्ण का श्रुतलेख

श्रुतलेख को रोचक तथा संदर्भ सापेक्ष बनाने के लिए किसी भी शब्द के पहले वर्ण को लिखवाया जा सकता है। यथा—

कबूतर—केवल 'क' वर्ण लिखवाएँ।

खरगोश—केवल 'ख' वर्ण लिखवाएँ।

(3) शब्द के मध्य तथा अंत के वर्ण का श्रुतलेख

ऐसा करने से भी श्रुतलेख में रोचकता आ सकती है यथा—

कबूतर—केवल 'त' वर्ण को लिखना है।

खरगोश—केवल 'श' वर्ण को लिखना है।

(4) मात्रा युक्त वर्णों का श्रुतलेख

“सरलता से कठिनाई को ओर” सूत्र का ध्यान रखते हुए मात्रायुक्त वर्णों के श्रुतलेख का अभ्यास करवाया जा सकता है।

(5) संयुक्त वर्णों का श्रुतलेख

तीसरी, चौथी तथा इनसे बड़ी कक्षाओं में संयुक्त वर्णों को वर्गीकृत* करके श्रुतलेख का अभ्यास कराया जा सकता है। इस प्रकार के अनुच्छेद का निर्माण करवाया जाए जिनमें विद्यार्थी उस वर्ण विशेष की अशुद्धियाँ करते हैं यथा—

(क) रेफ संबंधी अभ्यास

1. प्रकाश, क्रोध, टुक।

2. कर्म, धर्म, मर्म।

(ख) पंचम अक्षर नियम का अभ्यास

चंडीगढ़ (चण्डीगढ़)।

डंडा (डण्डा)।

(6) पठित अंश का श्रुतलेख

छात्रों को पाठ्य पुस्तक का कोई अंश घर से पढ़कर आने को दिया जाता

* इस प्रकार के श्रुतलेख अभ्यास के लिए देखें—

शुद्ध हिन्दी लेखन, डॉ० जय नारायण कौशिक—आर्य बुक डिपो, दिल्ली—5 (1986).

है अथवा श्रुतलेख देने से पूर्व उस अंश को पढ़ने को कहा जाता है। आरंभिक कक्षाओं में इस प्रकार का प्रयोग बहुत उपयोगी रहता है।

(7) अपठित अंश का श्रुतलेख

उच्च प्राथमिक तथा उच्च माध्यमिक कक्षाओं में वर्तनी के अभ्यास, लेखन की गति, विराम चिह्नों के लिए अपठित अंश का श्रुतलेख करवाया जा सकता है।

VIII. सुंदर लेख के गुण

शुद्ध वर्तनी के अतिरिक्त लेख का सुंदर होना एक गुण है। अच्छा लेख वह माना जाएगा जो सुपाठ्य (सुवाच्य) हो, सुंदर हो तथा उचित गति से लिखा गया हो। सुंदर लेख के गुणों को विस्तार पूर्वक नीचे दिया जाता है—

1. अनुपात—प्रत्येक वर्ण सुपाठ्य, सुझोल तथा सानुपाती हो। यदि किसी वर्ण का कोई भाग छोटा और कोई बड़ा बना दिया जाए तो वह अपनी सुंदरता खो बैठेगा। इसी प्रकार एक शब्द के सभी वर्ण भी सानुपाती होने चाहिए।

2. पाई—देवनागरी लिपि में वर्णों में पाई (I) का चिह्न लेख को सुंदर बनाने में बड़ा महत्त्व रखता है। पाई का कोण 90 अंश पर होना चाहिए टेढ़ा-मेढ़ा नहीं।

3. शिरोरेखा—शिरोरेखा (—) सीधी होनी चाहिए तथा आदि और अंत के वर्ण इसी छाया से लगभग आच्छादित होने चाहिए। वक्र शिरोरेखा (~) तथा शिरोरेखा रहित वर्ण लेख के सौन्दर्य को बिगाड़ देते हैं।

4. मात्रा का योग—मात्रा का योग ठीक नहीं करने से लेख सुंदर नहीं रह पाता। स्वरों की मात्राएँ निम्नलिखित प्रकार से लगाई जाएँ—
अंत की पाई वाले वर्ण के साथ—

प पा पि पी पु पू पे पै पो पौ पं पः।

मध्य की पाई वाले वर्ण के साथ—

क का कि की कु कू के कै को कौ कं कः।

शीर्ष मध्य अर्ध पाई या पाई विहीन वर्ण के साथ—

ट टा टि टी टु टू टे टै टो टौ टं टः।

कुछ विशेष वर्णों के साथ—

खू खू खे।

गु गु गे।

छू छू छे।

डू डू डे।

रू रू रे ।

हु हु हे ।

5. उचित दूरी

वर्णों, मात्राओं, शब्दों, पंक्तियों आदि की उचित दूरी लेख में सौन्दर्य लाती है ।

(क) वर्णों की दूरी—

वर्ण से वर्ण के बीच में एक पाई (1) की दूरी रखी जाए । यथा—अब ।

(ख) मात्राओं की दूरी—

वर्ण और मात्रा के बीच में भी एक पाई की दूरी रखी जाए । यथा—राम ।

(ग) शब्दों की आपसी दूरी

शब्द से शब्द के बीच की दूरी दो पाई के समान होनी चाहिए । यथा—
राम राम ।

(घ) वाक्यों की दूरी

दो वाक्यों के बीच की दूरी विराम चिह्नों को छोड़कर चार पाई की दूरी के समान होनी चाहिए । यथा—राम आया । रहीम आया । करीम आया ।

(ङ) पंक्तियों की आपसी दूरी

पंक्ति से पंक्ति के बीच की दूरी इतनी हो कि ऊपर की पंक्ति के वर्ण के नीचे लगी मात्राएँ तथा नीचे की पंक्ति की शिरोरेखा के ऊपर लगी मात्राएँ आपस में नहीं मिलें तथा उनके बीच कुछ स्थान बचा रहे । यथा—

भालू ने आलू और कचालू खाए ।

गीदड़ और लोमड़ी ने पानी पीया ।

(च) विराम चिह्नों की दूरी

वाक्य के अन्त में शब्द से विराम चिह्न की दूरी दो पाई की दूरी के समान होनी चाहिए । यथा—

राम ! तुम कैसे आए ? आओ । बैठो ।

6. अनुच्छेदों में विभाजन

विषय सामग्री को छोटे-छोटे अनुच्छेदों में विभक्त किया जाए तथा अनुच्छेद नई पंक्ति से बाईं ओर 10—12 पाई का स्थान छोड़कर लिखना आरम्भ किया जाए ।

7. उचित हाशिया

कागज के चारों ओर उचित हाशिया छोड़ने से लेख सुन्दर लगता है ।

8. उचित गति

लेख पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाए कि यह उचित गति से लिखा गया है । लिखावट में प्रवाह दिखाई देना चाहिए ।

IX. सुन्दर लेख के उपाय

सुन्दर लेख के लिए नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना चाहिए । इन उपायों से लेख का सौन्दर्य बढ़ता है—

1. उचित आसन ।
2. उचित लेखन सामग्री ।
3. लेखनी पकड़ने का उचित ढंग ।
4. प्रत्येक वर्ण की लिखावट पर सावधानी ।
5. प्रसन्न चित्त मुद्रा में लिखना ।

1. उचित आसन

उचित आसन अथवा बैठने के ढंग का लिखावट पर प्रभाव पड़ता है । यदि छात्र फर्श पर बैठकर लिखते हैं तो वे पलायी मारकर या घुटना टेक प्रणाली (बायाँ पैर दबाकर दाएँ घुटने पर तख्ती रखना) से बैठ सकते हैं । रीढ़ की हड्डी सीधी रखनी चाहिए ।

यदि विद्यालय में डेस्क आदि हैं तो वे छात्रों के शारीरिक विकास के अनुकूल हों ।

आँखों और तख्ती या कागज की दूरी 35-40 सेण्टीमीटर (लगभग 14 इंच) होनी चाहिए ।

दाएँ हाथ में तख्ती या कागज का छोर तथा बाएँ हाथ में लेखनी होनी चाहिए ।

2. उचित लेखन सामग्री

लेखन सामग्रियों का लिखावट से सीधा सम्बन्ध है । तख्ती या स्लेट खुरदरी या टेढ़ी-मेढ़ी नहीं हो । वह भली प्रकार से पुती हो । यदि कागज पर लिखना है तो वह रेखांकित हो । उसके नीचे कोई कठोर चीज रख ली जाए ।

लेखनी पेंसिल या पैन की लम्बाई बालक की एक बालिशत लम्बाई के समान या लगभग 15 सेण्टीमीटर से कभी भी कम न रहे । लिखते समय लेखनी के डंक

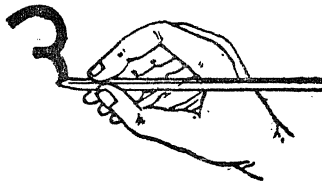
का झुकाव ऊपर से नीचे हो। लेखनी का मुख नीचे की ओर हो।

ध्यान रहे स्याही बहुत गाढ़ा न हो। दवात को दाएँ हाथ की ओर रखा जाए। लेखनी निकालते समय दवात के किनारों से सटाकर निकाली जाए ताकि अतिरिक्त स्याही दवात में झड़ जाए। यदि पेंसिल से लिखना है तो वह कोमल सिक्के (सोफ्ट लीड) की हो। कलम तथा पेंसिल की नोक की बनावट का बराबर ध्यान रखा जाए।

आरम्भिक अवस्था में कलम, तख्ती तथा स्याही से लिखना सिखाया जाए इससे अक्षरों की उचित मोटाई, पतलेपन, तीखेपन, उचित कोण आदि का अभ्यास होगा।

3. लेखनी पकड़ने का उचित ढंग

लेखनी पकड़ने के ढंग से भी लेख प्रभावित होता है। ज्येष्ठा उँगली के शीर्ष पोर को लेखनी का आसन बनाया जाए और उसके मुख पोर से लगभग तीन-चार सेण्टीमीटर आगे निकला हो। अंगूठे तथा तर्जनी उँगली से कलम को इस तरह हल्के-से पकड़ा जाए कि तर्जनी कुछ आगे तथा अंगूठा कुछ पीछे रहे। कलम का पृष्ठ भाग तर्जनी उँगली की मूल ग्रंथी से कुछ नीचे 60 अंश पर झुका हो। कलम को बहुत आगे या बहुत पीछे से पकड़ने से जल्दी थकान होती है। अध्यापक व्यक्तिगत ध्यान देकर कलम पकड़ने की रीति समझाए।



यथासम्भव लेखनी दाएँ हाथ में हो किन्तु बाएँ हाथ का प्रयोग करने वाले को दाएँ हाथ से लिखने को बाध्य न किया जाए।

4. प्रत्येक वर्ण की लिखावट पर सावधानी

जैसे भली प्रकार से घड़ा हुआ प्रत्येक हीरा माला की शोभा को बढ़ाता है उसी प्रकार प्रत्येक वर्ण की सुन्दर बनावट कुल लिखावट को सुन्दर बना देती है। वर्णों की सुन्दर बनावट के विषय में पीछे सुन्दर लेख के गुणों की चर्चा के समय संकेत दिया जा चुका है।

5. प्रसन्न चित्त मुद्रा में लिखना

चित्त की अवस्था का प्रभाव लेखक के भावपक्ष को तो प्रभावित करता ही है वह लेख के कलापक्ष को भी प्रभावित करता है। क्रोध, भय, आवेश, त्वरा आदि से मुक्त होकर लिखा गया लेख सुन्दर होगा।

व्यावहारिक कार्य

1. अपने क्षेत्र का साक्षरता सर्वेक्षण।
2. निरक्षरता के कारणों की जाँच पड़ताल।
3. प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र, तथा अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र में लेखन सिखाने में योगदान।
4. मंदबुद्धि छात्रों को लेखन सिखाना।
5. लेखन यानी वर्तनी सम्बन्धी दोषों की सूची तैयार करना।
6. क्षेत्र के विद्यालयों में सुलेख प्रतियोगिता का आयोजन करना।
7. सूक्तियों की पट्टियाँ तैयार करना तथा संस्थान को सजाना।
8. सुलेख पखवाड़ा मनाना।
9. श्रुतलेख के लिए अनुच्छेद लेखन।
10. लेखन पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
11. सुन्दर लेख लिखने वाले छात्रों के व्यक्तित्व की परख करना।
12. अक्षर-रचना शिक्षण के लिए किट तैयार करना।
13. लेखन की शिक्षा सम्बन्धी चार्टों का निर्माण करना।
14. विभिन्न कक्षाओं तथा आयुवर्ग के छात्रों की लेखन गति का मध्यमान निकालना।
15. लेखन सामग्री की प्रदर्शनी का आयोजन करना।

संदर्भ

1. हिन्दी की कुछ शिक्षण इकाइयाँ—भाग-एक, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग, एन० सी० ई० आर० टी० (1973)।
2. सुचित्रा, एन० सी० ई० आर० टी०, (1979)।
3. देवनागरी लेखन तथा हिन्दी वर्तनी व्यवस्था, डॉ० लक्ष्मी नारायण शर्मा, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, (1976)।
4. मेरी अभ्यास पुस्तिका भाग-एक तथा दो, एस० पी० सी० डी० प्रकोष्ठ (दिल्ली प्रशासन) कश्मीरीगट, चाबी गंज, दिल्ली—110006.
5. Encyclopedia of Educational Research, Fourth Edition.
6. A Basic Hindi Grammar of Modern Hindi, Central-

Hindi Directorate, New Delhi (1975).

7. An Investigation into the types and causes of errors in Devnagri Handwriting and their remedies, M. P. Bhara-dwaj, M. Ed. Dessertation, C. I. E., University of Delhi (1981).

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. लेखन क्या है ? शिक्षा के क्षेत्र में लेखन का क्या महत्व है ?
2. विभिन्न विद्यालयी स्तरों पर लेखन की शिक्षा के कौन-कौन से उद्देश्य निश्चित किए गए हैं ? क्या ये लक्ष्य प्राप्त करना हर विद्यार्थी की सीमा क्षेत्र में हैं ? युक्तियुक्त उत्तर दें ।
3. लेखन आरम्भ योग्यता क्या है ? इस योग्यता के निर्माण के लिए आप क्या उपाय करेंगे ?
4. आप लेखन की शिक्षा पहले देना चाहेंगे या वाचन की ? पक्ष और विपक्ष में तर्क संगत उत्तर दें ।
5. अक्षर रचना सिखाने की कौन-कौन-सी प्रमुख विधियाँ हैं ? आप इनमें से कौन-सी विधि को अपनाना चाहेंगे और क्यों ? संक्षिप्त उत्तर दें ।
6. श्रुतलेख का लेखन की शिक्षा में क्या महत्व है ? आप श्रुतलेख सामग्री का चयन किस आधार पर करेंगे ?
7. 'सुन्दरलेख एक मानसिक गुण है,' इस कथन की समीक्षा करें और बताएँ कि सुन्दर लेख के कौन-से गुण हैं ? आप इन गुणों का विकास अपने विद्यार्थियों में कैसे करेंगे ?
8. टिप्पणी लिखें—
 1. लेखन मुद्रा 2. विराम चिह्न 3. अक्षर शिक्षा की तुलना विधि
 4. नवसाक्षर लेखन विधि 5. खंडशः लेखन 6. बारहखड़ी ।

अध्याय 11

रचना शिक्षण

I. मौलिक लेखन अथवा लिखित रचना क्या है ?

जिस प्रकार वास्तुकार या मूर्तिकार अपने स्थूल साधनों के प्रयोग से विभिन्न कलाकृतियों का निर्माण करता है, जिस प्रकार चित्रकार तूलिका के सहारे अपने सूक्ष्म भावों को पटल पर अंकित करता है उसी प्रकार एक लेखक शब्द, वाक्य, लोकोक्ति, मुहावरों का आश्रय लेकर व्याकरण सम्मत नियमों में आबद्ध होकर लेखन के सहारे अपने आंतरिक मनोभावों को साकार करता है। वास्तुकार, मूर्तिकार, चित्रकार तथा लेखक का उद्देश्य एक ही है—रचना करना, अपने व्यक्तित्व की छाप कृति पर अंकित करना।

गत अध्याय में लिपि की शिक्षा पर चर्चा की गई थी। लिपि का ज्ञान लिखित रचना के लिए अनिवार्य है। यहाँ लिखित रचना के शब्द, वाक्य; लोकोक्ति, मुहावरे आदि पर विचार न करके इसके अगले पड़ावों पर विचार किया जाएगा क्योंकि वे विषय व्याकरण की शिक्षा के अधिक निकट हैं। यहाँ मुख्यतः भाषा लेखन के मौलिक पक्ष पर विचार किया जाएगा।

II. मौलिक लेखन का महत्त्व

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की अन्तर्निहित भावनाओं और शक्तियों को सुअवसर देकर उनका पूर्ण विकास करना है। भाषा इन शक्तियों के विकास में महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है। यदि बोलचाल और लेखन की शिक्षा का समुचित आयोजन किया जाए तो मौलिक अभिव्यक्ति के लिए मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

आज विद्यार्थी सामान्यतः कुंजी आदि का सहारा लेकर निबंध, पत्र, प्रस्ताव आदि लिखता है। ऐसा करने से अध्यापकों और विद्यार्थियों का परिश्रम तो बचता है लेकिन विद्यार्थियों की सोचने-समझने की बुद्धि कुंठित हो जाती है। उनका लिखने के प्रति आत्मविश्वास नहीं बन पाता। लेखन में नवीनता या मौलिकता उत्पन्न होने का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। यह सब कुछ लिखित रचना के महत्त्व को न समझ पाने के कारण ही है। नीचे इसके महत्त्व के कुछ

इन्हीं बिंदुओं पर विचार किया जाएगा।

1. सामाजिक व्यवहार के लिए

विज्ञान की जटिल जीवन पद्धति के कारण पत्र-व्यवहार तथा विचारों का आदान-प्रदान लेखन का माध्यम बनता जा रहा है। परिवार की इकाइयाँ दूर-दूर के स्थानों पर जा बसी हैं। इन बिखरे बिंदुओं को केन्द्रित करने के लिए हर दिन पत्र-व्यवहार करना पड़ता है। उच्च शिक्षा के लिए छात्रावास में रहने वाले बच्चे के लिए, औद्योगिक नगर में नौकरी के लिए बसे संबंधी के लिए या दूर देश में महान हितसाधनों के लिए बसे मित्र के लिए, पत्र-व्यवहार ही ऐसा माध्यम है जिससे आपसी विचारों का आदान-प्रदान हो सकता है। अतः पत्र-व्यवहार की रचना महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करती जा रही है।

2. व्यावसायिक तथा वाणिज्यिक व्यवहार के लिए

आज हर युवक को स्वरोजगारोन्मुखी होने का प्रोत्साहन दिया जा रहा है। हमारी नई शिक्षा नीति का उद्देश्य हर बालक को अपना स्वतंत्र व्यवसाय चुनने को प्रोत्साहन देना है। उन्हें इक्कीसवीं शताब्दी में समरस होकर जीने को तैयार करना है। परिणामतः हमें व्यावसायिक और वाणिज्य से सम्बन्धित पत्र-व्यवहार, सार लेखन, टिप्पणी, विचार या भाव विस्तार आदि कुशलताओं के विकास पर बल देना होगा। रचना के समुचित अभ्यास के माध्यम से ही यह सम्भव हो पाएगा।

3. ज्ञान-विज्ञान के विस्तार के लिए

आज ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न विधाओं का विकास हो रहा है। हमारे वैज्ञानिक ऊर्जा के विभिन्न साधनों की खोज में जुटे हैं। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या के समाधान खोजे जा रहे हैं। इन मौलिक उद्भावनाओं को तभी स्थायी रूप दिया जा सकता है जब हम अपने विद्यालयों में विद्यार्थियों को वैज्ञानिक विधाओं में मौलिक लेखन का उचित अवसर प्रदान करें। उन्हें निबंध की शैलियों से परिचित कराएँ तथा विज्ञान की जटिल शब्दावली को सहज और सरल भाषा में प्रकट करना सिखाएँ।

4. राष्ट्रीय जीवन के लिए

हमारी प्रजातांत्रिक संसदीय प्रणाली में लिखित व्यवहार का बहुत महत्व है। हमारा संविधान, न्यायिक प्रक्रिया और शासकीय पद्धति लिखित रूप में ही है। इन पहलुओं में हर शब्द का अपना ही अर्थ है। विद्यालयों पर यह दायित्व

है कि विद्यार्थियों को शब्द के सूक्ष्म भेदों-उपभेदों के प्रति सचेत करें। उनका उचित प्रयोग करना सिखाएँ ताकि वे अपने मत को सुस्पष्ट और सारगर्भित शब्दों में प्रकट कर सकें।

5. सृजनात्मक साहित्य के विकास के लिए

विज्ञान के युग में मानव हृदय कठोर होता जा रहा है। मशीनों के व्याहमोह में उसके हृदय का स्पंदन अपनी संवेदनशीलता खोता जा रहा है। प्राकृतिक स्रोतों का अमानवीय दोहन उसकी स्वार्थपरता पर अंकुश नहीं लगा पाता। भारतीय मनीषियों ने बिना स्टेथेस्कोप-यंत्र की सहायता से धरती के स्पंदन का अनुभव किया था किन्तु सिसमों ग्राफ जैसे यंत्रों का आविष्कार करके भी वैज्ञानिक पृथ्वी के स्पंदन की अनुसूची कर रहा है।

इस स्थिति में ऐसे भावुक लेखक तैयार करने की आवश्यकता है जो मौलिक लेखन द्वारा वैज्ञानिक के मन को गुदगुदाकर उन्हें अपनी भूल पर प्रायश्चित्त करने पर बाध्य कर सकें।

साहित्य की विभिन्न विधाएँ हैं—कविता, कहानी, नाटक, निबंध आदि। इन सभी विधाओं में नवीन साहित्य सृजन की आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति हमारे विद्यालय ही कर सकते हैं। विद्यार्थीकाल ऐसा निर्माण काल है जिसमें उन्हें उचित दिशाबोध दिया जा सकता है। हजारों बीज विकीर्ण होंगे तो सैकड़ों उपजेंगे ही और उनमें दर्जनों ऐसे भी होंगे जिनकी अलग पहचान होगी।

अभिप्राय यह है कि व्यक्ति से लेकर समष्टि तक के उद्धार के लिए मौलिक रचनाकौशल के विकास की आवश्यकता है।

III. रचना-शिक्षा के मुख्य उद्देश्य

रचना शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों की चर्चा गत अध्याय में लेखन की शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा करते समय विस्तार से की जा चुकी है। वहाँ पर बताया जा चुका है कि प्राथमिक स्तर पर लिपि की शिक्षा पर अधिक बल है तो माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर मौलिक लेखन जैसी विधाओं के विकास पर अधिक बल देना है।

IV. रचना की शिक्षा के सोपान

जैसे व्याकरण, छंद, कोश, शिक्षा आदि के ज्ञान और पुराणों के पूर्व अध्ययन के बिना वेदों को समझना कठिन है उसी प्रकार बिना लिपि की शिक्षा, वर्तनी के अभ्यास, उचित शब्द प्रयोग और वाक्य संरचना की शिक्षा के रचना

का प्रासाद चरमरा जाएगा। रचना की शिक्षा में त्वरा बरतने का उतावलापन उचित नहीं। आरम्भिक कक्षाओं में रचना के इन्हीं आधारभूत तत्वों का भर-पूर अभ्यास कराने की आवश्यकता है।

रचना के इन सोपानों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

1. आरम्भिक सोपान।
2. मध्य सोपान।
3. उत्तर सोपान।

1. आरम्भिक सोपान

आरम्भिक सोपान में सुलेख, वर्णों की सुडौलता, शब्दों की उचित दूरी आदि पर ध्यान दिया जाता है। इसकी चर्चा गत अध्याय में सुन्दर लेख के गुणों की चर्चा करते समय की जा चुकी है।

2. मध्य सोपान

इस सोपान में भाषा सम्बन्धी विविध अभ्यास करवाने की आवश्यकता है। इसमें वर्तनी की शुद्धता पर अधिक बल दिया जाता है। इस विषय पर अगले अध्याय में लेखन की अशुद्धियों पर चर्चा करते समय विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

वाक्य रचना सम्बन्धी अभ्यास इसी सोपान के अंतर्गत आता है। वाक्य संरचना के विभिन्न रूपों—जैसे स्वीकारात्मक, नकारात्मक, प्रश्नार्थक, आज्ञार्थक, विधि आदि के अभ्यास की आवश्यकता है। इसी प्रकार वाक्य के एक रूप को दूसरे रूप में बदलना, वाक्य के शेष अंश की पूर्ति करना, अव्यवस्थित पदक्रम को व्यवस्थित कराना, वाक्यों में रिक्त स्थान की पूर्ति, क्रियाओं के विविध रूपों का अभ्यास, काल परिवर्तन आदि वाक्य संरचना के अभ्यास के उदाहरण हैं।

बहुत सम्भव है विद्यार्थी इस कार्य को करने में उत्साह न दिखाएँ। आवश्यकता इस बात की है कि इन वाक्यों के विषय रोचक और विद्यार्थी के अनुभव क्षेत्र के हों। यह कार्य खेल-खेल में हो तो बच्चे स्वयं इस ओर आकृष्ट होंगे।

वाक्य संरचना सम्बन्धी अशुद्धियों के दूर करने के उपायों पर भी अगले अध्याय में चर्चा की गई है।

3. उत्तर सोपान

वास्तव में यह तीसरा सोपान ही वास्तविक मौलिक रचना का आरम्भ है। इस सोपान की कई सीढ़ियाँ हैं। यथा—

1. अनुच्छेद रचना ।
2. साहित्यिक विधाओं की रचना ।
3. कार्यालयी पत्र-व्यवहार रचना ।

आइए अब एक-एक करके इन सोपानों और इसके विभिन्न क्षेत्रों पर विचार करें ।

V. रचना शिक्षा के क्षेत्र

रचना के अनेक क्षेत्र हैं अगले पृष्ठ पर इन्हें एक चार्ट के माध्यम से दर्शाया गया है । यहाँ इन क्षेत्रों पर संक्षेप में चर्चा की जाएगी ।

1. अनुच्छेद रचना

सुन्दर पच्चीकारी में जो महत्त्व एक बूटे का है, बड़े लेख में वही महत्त्व एक अनुच्छेद का है । एक-एक अनुच्छेद विस्तृत रचना के रूप को निखारता है । अनुच्छेद लेखन मौलिक रचना की पहली आधारभूत कड़ी है ।

अनुच्छेद ऐसा वाक्य समूह है जिसमें भावों और विचारों को स्पष्टतापूर्वक रूप में प्रस्तुत किया जाता है । हर अनुच्छेद में एक मुख्य विचार होता है ।

अनुच्छेद के विषय

(क) वर्णनात्मक तथा अनुभवगम्य

आरम्भ में अनुच्छेद लेखन के विषय विद्यार्थियों के अनुभवगम्य होने चाहिए । उदाहरण के लिए स्कूल का बगीचा, बगीचे के फूल, प्यारी तितली, विद्यालय की घण्टी आदि ।

विद्यार्थियों से उनकी सुनी हुई, स्पर्श की हुई, सूंघी हुई या चखी हुई वस्तुओं पर अनुच्छेद लिखाए जाएँ । इन्द्रियों से प्राप्त अनुभवों के वर्णन में विद्यार्थियों को अपनी व्यक्तिगत अनुभूति प्रकट करने का अवसर मिलता है । यदि विद्यार्थी को अपने जीवन अनुभव प्रकट करना आ गया तो मानो एक बड़ी उपलब्धि हो गई । व्यक्तिगत अनुभूति का प्रकटीकरण ही तो सृजनात्मक रचना है ।

छोटी कक्षाओं में सृजनात्मक लेखन के विषय वर्णनात्मक होने चाहिए । उन्हें धीरे-धीरे अपनी अनुभूतियों का मिश्रण लेखन में करना सिखाना चाहिए ।

(ख) काल्पनिक विषय

माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों को काल्पनिक विषयों पर लिखने का अभ्यास दिया जाना चाहिए । यथा—

- 1 — अनुच्छेद रचना— { वर्णनात्मक तथा
अनुभवगम्य
काल्पनिक
- 2 — निबन्ध लेखन— { कथात्मक या विवरणात्मक
चिन्तनात्मक या विचारात्मक
भावात्मक
- 3 — पत्र लेखन
- 4 — कहानी लेखन
- 5 — संवाद लेखन
- 6 — एकांकी लेखन
- 7 — नाटक लेखन
- 8 — संस्मरण लेखन
- 9 — आत्मकथा
- 10 — जीवनी
- 11 — पद्य या कविता लेखन
- 12 — पदान्वय
- 13 — सार लेखन
- 14 — विचार या भाव विस्तार
- 15 — रिपोर्ट लेखन
- 16 — रिपोर्टाजि
- 17 — साक्षात्कार
- 18 — सम्पादकीय
- 19 — पुस्तक समीक्षा
- 20 — अनुवाद

1. प्रातःकाल का संदेश ।
2. फूल और काँटे का स्नेह मिलन ।
3. ये ओस की बूँदें ।
4. काली आँधी ।
5. सुनसान तालाब आदि ।

यह आवश्यक नहीं कि हर विद्यार्थी इस प्रकार के लेखन के लिए मानसिक रूप से तैयार हो । ऐसी अवस्था में विद्यार्थियों को संकेत में कुछ बताया जाए । उनकी कल्पना शक्ति को जाग्रत किया जाए ।

यदि इन कार्पनिक विषयों पर अनुच्छेद लिखवाने से पहले मौखिक रूप से चर्चा की जाए तो विद्यार्थियों को सुगमता रहेगी । मौखिक लेखन सुविचारित मौखिक अभिव्यक्ति का ही व्याकरण सम्मत लिपिबद्ध रूप है ।

इन अनुच्छेदों में उपयुक्त शब्दावली तथा लोकोक्ति-मुहावरों के प्रयोग पर बल दिया जाए । अनुच्छेद में विषय की गम्भीरता की प्रतिच्छाया भी प्रतिबिम्बित होनी चाहिए ।

2. निबंध लेखन

निबंध का अर्थ है भली प्रकार से बँधा हुआ । निबंध एक ऐसी रचना है जिसमें विषय विशेष पर व्यक्ति अपने विचार सुनियोजित विधि से लिखित रूप में अभिव्यक्त करता है । निबंध आत्मप्रकाशन का एक सुनियोजित प्रयत्न है । यह आत्मप्रकाशन जितना सरल, स्वतंत्र और सजीव होगा उतना ही सराहा जाएगा ।

(क) निबंध के अंग

मुख्यतः निबंध के तीन अंग हैं :—

1. आरम्भ 2. मध्य 3. अंत ।

1. आरम्भ

निबंध के आरम्भ में निबंध के शीर्षक के भाव को स्पष्ट किया जाता है । इसमें वह सामान्य प्रस्तावना भी होती है जिन आयामों को निबंध में समेटा जाएगा या विषय के जिन पक्षों पर मध्य भाग में चर्चा की जाएगी । निबंध का आरम्भ किसी सुन्दर लोकोक्ति, मुहावरे अथवा आकर्षक वाक्य से हो तो अच्छा है ताकि पाठक इसे पढ़ने को लालायित हो सके ।

2. मध्य

निबंध के मध्य भाग में मुख्य विषय का विवेचन किया जाता है। इस विवेचन को विभिन्न अनुच्छेदों में विभाजित किया जाता है। पहले अनुच्छेद का अंतिम वाक्य अगले अनुच्छेद की पहली पंक्ति से संबंधित हो तो पाठक को लेख में भावों की लहरें उठती और गिरती नजर आएंगी। यह सातत्य क्रमिक होना चाहिए। निबंध का कथ्य विषय तर्क-संगत होना चाहिए। इसमें व्यक्तिगत अनुभव भी सँजोए जा सकते हैं।

3. अन्त

निबंध का अंत अथवा समापन ऐसा हो जिसमें पाठक को लगे कि जिस विषय का विस्तार से प्रतिपादन हुआ है उसका समाहार युक्तियुक्त तथा तर्क-संगत है। कोई ऐसा विषय नहीं बचा है जिसे उठाया गया हो और उसके प्रति उचित न्याय नहीं हो पाया हो।

(ख) निबन्ध के प्रकार

विषय, लेखन-विधा और उद्देश्यों के आधार पर निबंध कई प्रकार के होते हैं। यथा—

1. कथात्मक या विवरणात्मक निबन्ध

इस प्रकार के निबंधों में विवरण या वर्णन की प्रधानता होती है। इतिहास की कथा, साहसपूर्ण कार्य, किसी घटना का विस्तृत वर्णन या यात्रा आदि का वर्णन इस प्रकार के निबंधों के मुख्य विषय होते हैं। प्राथमिक कक्षाओं में पास-पड़ोस के समान्य परिचित विषयों पर और बड़ी कक्षाओं में पुराण-इतिहास के किसी पक्ष को लेकर इस कोटि के निबंध लिखे जा सकते हैं।

2. चिन्तनात्मक अथवा विचारात्मक निबन्ध

इस प्रकार के निबंधों में बुद्धि या मस्तिष्क की प्रधानता होती है। तर्क-वितर्क के आधार पर अपने मत की स्थापना तथा अन्य के मत का खंडन किया जाता है। कहानी, कथा आदि का आश्रय लेकर अपनी बान का समर्थन किया जाता है। आलोचना, शोध, दर्शन, मनोविज्ञान के क्षेत्र इसके सहज विषय हैं। इन निबंधों में समास शैली का आश्रय लिया जाता है। इस प्रकार के निबन्ध उच्च कक्षाओं के लिए उपयुक्त हैं।

3. भावात्मक निबन्ध

जैसा कि शब्द से स्पष्ट है इस प्रकार के निबन्ध में भावों को प्रधानता दी जाती है। इसमें लेखक अपने भाव या कल्पना की दुनिया में विचरण करता है। इसमें लेखक अपने हृदय को उँडेल देता है। ये निबन्ध एक प्रकार से व्यक्तिपरक निबन्ध होते हैं। तर्क, बुद्धि, मस्तिष्क पीछे रह जाते हैं, भावुकता ही प्रधान रहती है। इस प्रकार के निबन्ध लिखने का अवसर देने से ही विद्यार्थी में आत्म-विश्वास जाग्रत होता है। उसे लेखन की मौलिकता की अनुभूति होने लगती है। लेखक कल्पना की उड़ान भरना सीख जाता है। इस प्रकार के निबन्ध लेखन का अभ्यास कक्षा छठी से आरम्भ कर देना चाहिए।

(ग) अच्छे निबन्ध के गुण

निबन्ध लिखते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

ये बातें निबन्ध के कलापक्ष और भावपक्ष को निखारती हैं —

1. कला पक्ष

1. विषय अनुसार शब्दावली का प्रयोग।
2. सरल वाक्य रचना।
3. भावानुकूल भाषा।
4. विचारों की क्रमबद्धता।
5. विचारों की एकता।
6. विषय वस्तु के विस्तार के प्रति न्याय।
7. रचना की सरलता तथा सजीवता।
8. पुनरावृत्ति का बहिष्कार।
9. विषयान्तर त्याग।
10. निजी शैली।

2. भाव पक्ष

1. विचारों की दृढ़ता।
2. व्यक्तित्व की छाप।
3. मौलिकता।
4. प्रभावोत्पादकता।
5. कल्पना प्रवणता।

(घ) निबन्ध शिक्षण की विधियाँ

ऊपर निबन्ध के प्रकार तथा उसके गुणों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया। अध्यापक के समक्ष सदा यह चुनौती बनी रहती है कि विद्यार्थियों को किन विधियों से इस प्रकार के निबन्ध लिखने सिखाए जाएँ। जैसे कुंभ के समय पुण्य तीर्थों पर स्नान के लिए पहुँचने के अनेक साधन और मार्ग हैं उसी प्रकार निबन्ध रचना में अवगाहन की कई शैलियाँ हैं। कक्षा के स्तर और विषय की आवश्यकता के अनुसार इनमें से किसी का चुनाव किया जा सकता है। आइए, इन विधियों पर संक्षेप में विचार करें। ये विधियाँ हैं—

निबन्ध शिक्षण की विधियाँ

1	2	3	4	5	6
चित्र वर्णन विधि	प्रश्नोत्तर विधि	रूपरेखा विधि	प्रवचन विधि	स्वाध्याय विधि	परिचर्चा विधि या विचार विधि

1. चित्र वर्णन विधि

इस विधि के अनुसार विद्यार्थियों को लिखे जाने वाले विषय से संबंधित एक या अनेक चित्र दिखाए जाते हैं। ये चित्र किसी व्यक्ति के जीवन, घटनाक्रम के विकास अथवा अन्य पक्ष से संबंधित हो सकते हैं। पहले इन चित्रों पर मौखिक रूप से चर्चा होती है और फिर इन्हें क्रमिक रूप से प्रदर्शित किया जाता है। विद्यार्थी इनका वर्णन अपनी सूझ-बूझ और कल्पना के अनुसार करता है।

इस विधि का प्रयोग छोटी कक्षाओं में सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इस विधि से बच्चों में मौलिक लेखन तथा स्वानुभूति प्रकट करने का अच्छा अवसर मिलता है। इस विधि से विषयों की विविधता बनी रहती है और बच्चों को रटने की आदत से बचाया जा सकता है। इस विधि में विषयों और चित्रों के चुनाव में सावधानी बरतनी चाहिए।

2. प्रश्नोत्तर विधि

प्रश्नोत्तर विधि का संबंध चित्र विधि से भी है। अध्यापक चित्र के किसी पहलू पर प्रश्न पूछता है और विद्यार्थी उसका उत्तर देता है। इस प्रकार क्रमिक

प्रश्नों का निर्माण और उनका क्रमिक उत्तर निबन्ध का रूप ले लेता है। चित्र के अभाव में विषय पर प्रश्न पूछने से भी इस कार्य की आंशिक सिद्धि हो जाती है।

इस विधि से विद्यार्थियों में चिन्तन शक्ति का विकास होता है तथा वे क्रम-बद्ध रूप से सोचना सीखते हैं। माध्यमिक स्तर की कक्षाओं तक इस विधि का लाभ उठाया जा सकता है। इस विधि से बच्चों में लेखन के प्रति आत्मविश्वास जाग्रत होता है।

3. रूपरेखा विधि

जिस प्रकार बच्चे को पैदल चलना सिखाने के लिए 'गड्डलना' आदि का आश्रय देकर पदसंचलन क्रिया को रोचक बनाया जाता है तथा उसे न गिरने या चोट न लगने के लिए आश्वस्त किया जाता है उसी प्रकार निबन्ध जैसे ग्लेशियर को पार करने के लिए स्केटिंग पादुका या यष्टियों का काम निबन्ध की रूपरेखा से लिया जाता है।

इस विधि के अनुसार निबन्ध का आरम्भ, मध्य तथा समापन वाक्यांशों की रूपरेखा के माध्यम से दे दिया जाता है। विद्यार्थी को कुछ वाक्यों में रिक्त-स्थान की पूर्ति करनी पड़ती है। कुछ वाक्यों का निर्माण करना पड़ता है और कुछ वाक्यों से विषय के विस्तार में सहायता मिलती है।

यह विधि सभी स्तरों पर सफलतापूर्वक अपनाई जा सकती है आवश्यकता केवल रूपरेखा को विस्तृत अथवा संक्षिप्त करने की है।

4. प्रवचन विधि

इस विधि के अनुसार अध्यापक विषय के बारे में प्रवचन द्वारा पूरी जानकारी विद्यार्थियों के समक्ष रखता है। विद्यार्थी सुनते हैं तथा अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार व्यक्तिगत पुट मिलाकर निबन्ध लिखते हैं।

यह विधि माध्यमिक तथा उच्च कक्षाओं में प्रयुक्त की जा सकती है। यह विधि बहुत उत्तम विधि नहीं है क्योंकि इसमें विद्यार्थियों की बुद्धि कुंठित होने का डर रहता है।

5. स्वाध्याय विधि

उच्च कक्षाओं में इस विधि को अपनाया जा सकता है। अध्यापक तथा विद्यार्थियों दोनों को ही इस विधि में सक्रिय रहना पड़ता है। इस विधि से विद्यार्थियों के ज्ञान में वृद्धि होती है तथा विषय सामग्री के स्वाध्याय के समय उनका विभिन्न लेखन शैलियों से परिचय हो जाता है। इस विधि से लेखन की

अपनी शैली का निर्माण होता है क्योंकि विद्यार्थी को मधुमक्षिका वृत्ति का आश्रय लेना पड़ता है।

6. परिचर्चा विधि या विचार विधि

परिचर्चा विधि स्वाध्याय विधि का ही अगला चरण है। पहले विद्यार्थी विवेच्य विषय के बारे में स्वाध्याय करें तथा फिर सामूहिक चर्चा करें। लेखन मौखिक अभिव्यक्ति का लिपिबद्ध रूप है। चर्चा करने से विचारों में स्पष्टता आती है और विषय के प्रति प्रतिबद्धता होती है। इस शैली का प्रयोग उच्च कक्षाओं के लिए उत्तम है।

(ड) निबन्ध लेखन की पाठ योजना

प्रशिक्षणार्थी के समक्ष निबन्ध की विषय सामग्री स्पष्ट होते हुए भी यह समस्या बनी रहती है कि कक्षा में वास्तविक शिक्षण विधि क्या होगी? किस योजना के आधार पर वह पाठ का विकास करेगा? कार्यविधि की स्पष्टता के लिए पाठ योजना की निम्नलिखित पद्धति अपनाई जा सकती है :—

1. उद्देश्य

कोई भी निबन्ध लिखवाने से पूर्व उसके उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिए। पाठ-योजना में यह स्पष्ट करना चाहिए कि निबन्ध लिखने का आधार चित्र वर्णन, प्रश्नोत्तर, रूप रेखा, प्रवचन, स्वाध्याय, परिचर्चा या विचार विधि है। जिस विधि को अपनाया जाए उस विधि के अनुसार पाठ का विकास होना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि निबन्ध का आधार स्वाध्याय है या स्वाध्याय के आधार पर चर्चा है तो यह कार्य एक दिन में सम्पन्न नहीं होगा। वास्तविक निबन्ध की पाठ योजना बनानी पड़ेगी अर्थात् अमुक दिन निबन्ध लेखन का अमुक अंश तक का कार्य सम्पन्न होगा।

2. प्रस्तावना

प्रस्तावना को भी निबन्ध लिखने की विधि के अनुकूल ढालना पड़ेगा। चित्र, प्रश्नोत्तर तथा अन्य विधियों के अनुसार प्रस्तावना के प्रश्नों का निर्माण करना पड़ेगा। प्रस्तावना के प्रश्न सामान्यतः चार से आठ तक हो सकते हैं। प्रश्न उद्बोधक तथा विषय से सम्बन्धित होने चाहिए।

3. पाठ का विकास

चित्र तथा प्रश्नोत्तर विधि से लिखवाए जाने वाले निबन्ध का विकास प्रश्नों

के माध्यम से ही होगा चाहे ये प्रश्न चित्रों से सम्बन्धित हों अथवा विषय से। प्रश्नोत्तर के साथ-साथ विद्यार्थी निबन्ध को लिख भी सकता है।

रूपरेखा विधि से निबन्ध की सम्पूर्ण रूपरेखा भी दी जा सकती है या आंशिक रूप से भी लिखी जा सकती है।

प्रवचन, स्वाध्याय तथा परिचर्चा विधि अपनाने पर सभी विद्यार्थी एक साथ कक्षा में निबन्ध लिखते हैं। इस विधि से विद्यार्थी की स्मरण शक्ति का विकास होता है, नकल करने की आदत छूट जाती है तथा अपनी मौलिक शैली निर्माण का अवसर मिलता है। आरम्भ में विद्यार्थी भले हो जाल में फँसे कबूतर की तरह फड़फड़ाए या घुटन अनुभव करे किन्तु बाद में वह कल्पना के गगन में बहुत ऊँची और दूर तक की उड़ान भर सकता है। निबन्ध लिखने की वास्तविक शैली यही है।

3 पत्र लेखन

पत्रों का जहाँ व्यक्तिगत, सामाजिक तथा व्यावसायिक महत्त्व है वहाँ यह साहित्य की भी एक सशक्त विधा है। इस विधा की समुन्नति के लिए अध्यापक को सचेत रहना चाहिए। इसके शिक्षण में सुनियोजित वैज्ञानिक प्रणाली अपनानी चाहिए।

रूप भी दृष्टि से पत्र लेखन एक नियमबद्ध रचना है। इसके सुनिश्चित अंग हैं। उन अंगों के यथास्थान नियोजन का एक विधान है। वैयक्तिक पत्रों के विषय मुक्त रचना के विषय बन सकते हैं अर्थात् उनमें कल्पना, हास-परिहास को सँजोया जा सकता है।

(क) पत्र लेखन के उद्देश्य

गत अध्याय में लेखन शिक्षण की चर्चा करते समय संक्षेप में पत्र लेखन के उद्देश्यों की चर्चा की गई है। यहाँ इसी विषय को कुछ विस्तार के साथ लिया जाता है। पत्र लेखन शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं —

1. व्यक्तिगत या पारिवारिक पत्र लिखना सिखाना—माता-पिता, भाई-बहन तथा अन्य सम्बन्धियों तथा मित्रों को।
2. व्यावसायिक पत्र लिखना सिखाना—दुकान, फ़र्म, एजेंसी आदि से लेन-देन सम्बन्धी।
3. कार्यालयी पत्र लिखना सिखाना—विभिन्न अधिकारियों को प्रार्थना-पत्र आदि।
4. सरल, स्पष्ट, संक्षिप्त तथा शिष्ट भाषा में पत्र लेखन सिखाना।

(ख) पत्र के अंग

पत्र लेखन शिक्षण के लिए विद्यार्थियों को पत्र के विभिन्न अंगों के बारे में जानकारी देना आवश्यक है। मोटे रूप से पत्र के अंग हैं :—

1. स्थान तथा तिथि

पत्र के ऊपरी किनारे पर दाहिनी ओर पहली पंक्ति में पत्र भेजने वाले का स्थान तथा उसके नीचे पत्र लिखने की तिथि होनी चाहिए।

2. प्रशस्ति

पत्र आरम्भ करने से पूर्व दाईं ओर पत्र लेखक के सम्बन्ध के अनुसार सम्बोधन का प्रयोग करना चाहिए। यथा—आदरणीय भाई साहब आदि। सम्बोधन के बाद अर्धविराम का चिह्न लगाना चाहिए।

3. शिष्टाचार

प्रशस्ति के नीचे की पंक्ति में कुछ दाईं ओर सम्बन्ध के अनुसार शिष्टाचार का शब्द लिखना चाहिए। जैसे—प्रणाम, नमस्कार आदि।

4. मूल विषय

शिष्टाचारी शब्द की अगली पंक्ति से मूल विषय आरम्भ करना चाहिए। मूल विषय की लम्बाई विषय के अनुसार हो। इसे छोटे-छोटे अनुच्छेदों में विभाजित करना चाहिए।

5. पत्र की समाप्ति

पत्र की समाप्ति पर दाईं ओर पत्र लिखने वाले से अपना सम्बन्ध द्योतन अथवा अन्य विनम्र शब्द लिखना चाहिए। यथा—आपका पुत्र, स्नेही, हितैषी आदि। सरकारी पत्रों में बहुधा भवदीय या भवदीया शब्द लिखा जाता है। इसके नीचे स्पष्ट हस्ताक्षर का नियम है।

6. पता

पोस्टकार्ड या लिफाफे पर जिसे पत्र भेजना है उसका पूरा नाम तथा पता लिखना चाहिए। आजकल पिनकोड लिखने से डाक विभाग को बहुत सुविधा होने लगी है तथा पत्र भी गंतव्य पर शीघ्र पहुँचता है।

(ग) पत्र लेखन सिखाने की विधि

पत्र लेखन प्रार्थना के रूप में तीसरी या चौथी कक्षा से आरम्भ हो जाता है और विषय भिन्नता के साथ उच्च कक्षाओं तक इसका अभ्यास कराया जाता है। प्रशिक्षणार्थी के समक्ष यह समस्या रहती है कि वह विद्यार्थियों को पत्र लेखन कैसे समझाए। पत्र लेखन के लिए निम्नलिखित विधियाँ अपनाई जा सकती हैं :—

पत्र लेखन सिखाने की विधियाँ

1	2	3	4
विधि	विधि	विधि	विधि
आदर्श	खंडशः पत्र लेखन	खंडशः पत्र विलेखन	रूप रेखा

1. आदर्श विधि

इस विधि के अनुसार विद्यार्थियों के समक्ष पत्र का नमूना या आदर्श प्रस्तुत किया जाता है। छोटी कक्षाओं में पत्र के विभिन्न अंगों तथा इन अंगों को लिखने की विधि को समझाना बड़ा कठिन है। विद्यार्थी आदर्श पत्र के नमूने को लिखित रूप में श्यामपट्ट पर देखते हैं और उसकी नकल कर लेते हैं। अध्यापक हर पंक्ति के लिखने की विधि की ओर उनका ध्यान दिलाता है। यह पत्र सामान्यतः विद्यालय के प्रधानाध्यापक के नाम विद्यालय से अवकाश लेने के लिए प्रार्थनापत्र के रूप में लिखवाया जाता है। आरंभ में इस प्रणाली का उपयोग करने में कोई हानि नहीं है।

2. खंडशः पत्र लेखन विधि

इस विधि के अनुसार विद्यार्थियों के समक्ष पत्र के एक-एक खंड पर विचार किया जाता है। अध्यापक विद्यार्थियों से प्रश्न पूछता है। जैसे—

प्रश्न—यह प्रार्थना पत्र किसके नाम लिखना है ?

प्रश्न—उस अधिकारी का पद क्या है ?

प्रश्न—वह किस विद्यालय का अधिकारी है ?

प्रश्न—वह विद्यालय कहाँ स्थित है ?

विद्यार्थी एक-एक प्रश्न का उत्तर देता है और अध्यापक उसे उचित स्थान

पर श्यामपट्ट पर लिखता जाता है। इस प्रकार विद्यार्थी के सामने पत्र का एक खंड स्पष्ट रूप से उभर कर आता है।

इसके बाद प्रशस्ति खंड आता है। यहाँ भी अध्यापक प्रश्न पूछता है—

प्रश्न—उस अधिकारी को हम किस सम्मानजनक शब्द से सम्बोधित करते हैं? अध्यापक स्वयं उस शब्द का परिचय दें। यथा—महोदय, श्रीमान् आदि।

अब पत्र का मूल विषय संबंधी खंड आरंभ होगा। यहाँ भी अध्यापक प्रश्न पूछे—

1. हमारे निवेदन का क्या विषय है ?
2. हमें निवेदन की क्यों आवश्यकता है ?
3. हमें कब से अवकाश चाहिए ?
4. हमें कब तक अवकाश चाहिए ?

इसी प्रकारके प्रश्न कक्षा के स्तर के अनुसार पूछे जाने चाहिए। इन प्रश्नों से उत्तर श्यामपट्ट पर लिखते जाएँ। प्रश्नों द्वारा मूल विषय का नमूना विद्यार्थियों के सम्मुख उभर कर आ जाएगा। इस विधि से कक्षा में क्रियाशीलता भी बनी रहती और उन्हें ऐसा भी अनुभव नहीं होगा कि पत्र लेखन कोई कठिन काम है।

इसी प्रकार पत्र के समाप्ति खंड पर भी प्रश्न पूछे जा सकते हैं। खंडशः पत्र लेखन विधि से विद्यार्थियों के समक्ष पत्र का सारा नमूना आदर्श रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

3. खंडशः पत्र विश्लेषण विधि

ऊपर पत्र के विभिन्न खंडों की चर्चा की गई है। पत्र के हर खंड पर एक-एक करके चर्चा की जा सकती है। यथा—

संबोधन	प्रशस्ति	समाप्ति स्वनिर्देश
1. अपने से बड़े, अध्यापकों, नेताओं आदि के लिए— श्रद्धेय, आचार्य जी, आदरणीय गुरु जी आदि।	सादर प्रणाम सादर प्रणाम	भवदीय आपका आज्ञाकारी
2. अपने से बड़े संबंधियों के लिए— आदरणीय भाई साहब, आदरणीय माता जी,	सादर प्रणाम सादर चरण स्पर्श	आपका प्रिय भाई आपका प्रिय पुत्र आदि
3. समान आगु वालों के लिए— प्रिय,	सप्रेम नमस्ते	तुम्हारा प्रिय मित्र आदि

4. अपने से छोटों के लिए—

चिरंजीव प्रिय पुत्र, प्रसन्न रहो तुम्हारा शुभ चितक
प्रिय पुत्र सदा सुखी रहो तुम्हारा हितैषी

इस प्रकार खंडशः विश्लेषण से पत्र के सभी खंडों का उद्देश्य विद्यार्थी के सम्मुख स्पष्ट हो जाता है। आवश्यकता पड़ने पर थोड़े परिवर्तन के साथ वह पत्र का नमूना स्वयं बना सकता है।

4. रूप रेखा विधि

पत्र लेखन सिखाने के लिए पत्र की रूप रेखा विधि भी अपनाई जा सकती है। इस विधि के अनुसार अध्यापक विद्यार्थियों को ये निर्देश दे सकता है—

1. पत्र जिसे लिखा जाना है।
2. उचित संबोधन।
3. उचित प्रशस्ति।
4. पत्र के विषय की रूप रेखा।
5. समापन।
6. पता।

विद्यार्थी रूप रेखा के आधार पर पत्र को लिखे।

(घ) पाठ योजना का नमूना—

अध्यापक के समक्ष पत्र लेखन की पाठ योजना का नमूना स्पष्ट होना चाहिए। इस पाठ योजना का प्रमुख प्रारूप निम्न प्रकार से हो सकता है :—

1. उद्देश्य

पत्र लेखन की पाठ योजना के उद्देश्य स्पष्ट रूप से लिखे जाएँ। यथा—
विद्यार्थी को पत्र के विभिन्न अंगों का ध्यान रखते हुए व्यक्तिगत पत्र लिखना सिखाना।

या

विद्यार्थी को पत्र के विभिन्न अंगों का ध्यान रखते हुए व्यावसायिक पत्र लिखना सिखाना।

या

विद्यार्थी को पत्र के विभिन्न अंगों का ध्यान रखते हुए अधिकारियों को लिखे जाने वाले पत्र लिखना सिखाना।

या

विद्यार्थी को पत्र लेखन के अमुक अंग या खंड का परिचय देना आदि आदि।

2. प्रस्तावना

पत्र लेखन की प्रस्तावना पत्र का कोई नमूना दिखाकर की जा सकती है। प्रश्न विधि से भी प्रस्तावना संभव है। यथा—

1. तुम्हारा निवास स्थान कहाँ है ?
2. उस निवास स्थान की सफ़ाई, बिजली, अस्पताल आदि की क्या स्थिति है ?
3. यदि हम उस स्थान की सफ़ाई से सन्तुष्ट नहीं हैं तो हमें किस अधिकारी से सम्पर्क करना चाहिए ?
4. इस संबंधित अधिकारी को पत्र लिखने की क्या विधि है ?

या

ऐसे पत्र का नमूना क्या होगा ? आदि।

3. पाठ का विकास

पाठ का विकास प्रश्नोत्तर विधि से किया जा सकता है। पहले विषय से संबंधित प्रश्न पूछा जाए। विद्यार्थी से उसका उत्तर निकलवाया जाए। उस उत्तर को श्यामपट्ट पर लिखा जाए। बहुत संभव है विद्यार्थियों के उत्तर में बहुत असमानता हो ऐसी स्थिति में विद्यार्थी अपनी परिस्थिति के अनुसार उत्तर लिखें।

प्रश्न-उत्तर विधि के द्वारा ही पत्र का समापन, पता आदि लिखवाया जाए।

पाठ का विकास प्रवचन विधि द्वारा भी संभव है। अध्यापक अपनी ओर से पूरा विषय बता दें किन्तु यह पद्धति ठीक नहीं होगी क्योंकि ऐसा करने से कक्षा निष्क्रिय रहेगी और पत्र की सामग्री में विविधता नहीं आएगी।

पाठ योजना के शेष चरण अन्य पाठ योजनाओं के अनुसार लिखे जा सकते हैं।

4. कहानी लेखन

कहानी साहित्य की एक सशक्त विधा है। इसमें बाल-वृद्ध सभी की समान रुचि होती है। कहानी लेखन एक कला है। इसके अभ्यास से विद्यार्थी स्वयं कहानी लिखने को उत्सुक हो सकता है।

कहानी लिखना सिखाने के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थियों को कहानी के विभिन्न तत्वों के बारे में अवगत कराया जाए। उन्हें विभिन्न प्रकार की कहानियों—घटना प्रधान, वर्णन प्रधान, पारिवारिक, सामाजिक, ऐतिहासिक आदि से परिचित कराया जाए।

बच्चों में कहानी लेखन की प्रवृत्ति जाग्रत कराने के बारे में विस्तृत जानकारी कहानी शिक्षण तथा कहानी लेखन के अध्याय में दी गई है। पाठकगण कृपया उस अध्याय को देखें।

5. संवाद लेखन

क. संवाद क्या है ?

संवाद का अर्थ है दो या दो से अधिक पात्रों के बीच किसी विषय विशेष पर होने वाली युक्ति-युक्त वार्ता या कथोपकथन। संवाद दिन प्रतिदिन की भाषा का व्यावहारिक पक्ष है। पाठ्य पुस्तकों में विद्यार्थी से इसका सम्पर्क लघु-नाटिका के माध्यम से प्राथमिक स्तर पर ही हो जाता है। संवाद वाक्पटुता की एक कला है।

अध्यापक को चाहिए कि वह संवाद की चुस्त, संक्षिप्त, तर्क-वितर्कमयी भाषा की ओर विद्यार्थियों का ध्यान दिलाए और उन्हें संवाद लिखने की कला से अवगत कराए।

ख. संवाद के विषय

माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक कक्षाओं में संवाद लेखन के निम्नलिखित विषय हो सकते हैं —

1. ओस की बूंद और सूर्य की पहली किरण।
2. घास और गाय।
3. पुस्तक और विद्यार्थी।
4. कलम और अभ्यास पुस्तिका।
5. धूप और छाया।
6. रात और दिन।
7. सड़क और यात्री।
8. सास और बहू।
9. वृक्ष और लकड़हारा।
10. बीसवीं और इक्कीसवीं शती आदि।

संवाद लेखन से पूर्व उस पर मौखिक चर्चा भी की जा सकती है। संवाद में प्रतिपाद्य विषय का संबंध वर्तमान समस्याओं के कारण और उनसे निपटने के उपाय हों तो विषय रोचक रहेगा।

ग. संवाद लेखन की पाठ योजना

संवाद लेखन की पाठ योजना बनाते समय बच्चों के पूर्वज्ञान का ध्यान

रचना अनिवार्य है। संवाद रचना एकदम से आरम्भ होने वाली घटना नहीं है। इसकी सुनिश्चित पूर्वपीठिका है। इस पूर्वपीठिका पर ही संवाद रचना का शिलान्यास होगा। इसकी पाठ योजना में निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करना चाहिए:—

1. उद्देश्य -

संवाद लेखन का उद्देश्य है विद्यार्थियों को चुस्त, संक्षिप्त और तर्कपूर्ण भाषा लिखना सिखाना। संवाद के समय व्यंग्य-विनोद का प्रयोग करना। बात से बात निकालना सिखाना। बात को कुशलतापूर्वक टालना या बदलना। तर्क से प्रतिपक्षी को अवाक् करना। पाठक या श्रोताओं का मनोरंजन करना तथा उनकी जिज्ञासा शांत करना। संवाद की विषय सामग्री में ये सभी गुण प्रतिबिंबित होने चाहिए।

2. प्रस्तावना

संवाद की प्रस्तावना बहुत व्यावहारिक होनी चाहिए। प्रस्तावना चित्र, कार्टून, मॉडल दिखाकर की जा सकती है। संवाद के लिए सुझाए गए उपर्युक्त विषयों में चित्र आदि का प्रदर्शन प्रभावोत्पादक रहेगा। बच्चों के सामने ये मॉडल रख दिए जाएँ और अपनी कल्पना के आधार पर वे इनके बीच होने वाले कथोपकथनों को लिखें।

3. पाठ का विकास

संवाद लेखन का विकास प्रश्नोत्तर विधि से भी संभव है। अध्यापक एक प्रश्न पूछे। कक्षा का कोई विद्यार्थी वह पात्र बनकर उसका उत्तर दे। उन उत्तरों को श्यामपट्ट पर लिखा जाए।

विषय में विभिन्न प्रकार के भाव प्रतिबिंबित करने के लिए विद्यार्थी अपनी कल्पना के आधार पर संवाद का संचालन कर सकते हैं।

यदि किसी विद्यार्थी की संवाद रचना बहुत कसी हुई नहीं है तो उसे हतोत्साहित न करें, प्रोत्साहन दें। अच्छे नाटक और एकांकी लेखकों का विकास कक्षा-कक्ष से हो सकता है।

6. एकांकी रचना

क. सामान्य परिचय

हिन्दी साहित्य में एकांकी विधा का आगमन बीसवीं शताब्दी के तीसरे

दशक के आसपास माना जाता है। एकांकी जीवन के किसी पक्ष या घटना का चित्रण करता है। इसका काल नाटक के समान विस्तृत नहीं होता। इसमें उपन्यास के समान कथा का विस्तार न होकर कहानी की तरह इकट्ठा होता है किन्तु प्रभावोत्पादकता में कहीं भी कमी नहीं आती।

एकांकी में कई दृश्य होते हैं। दृश्यों की विविधता ही इसे संवाद विधा के अगले चरण पर आसीन करती है।

एकांकी रचना का ज्ञान देने से पूर्व विद्यार्थियों को इसके चरित्रचित्रण, कथोपकथन, देश, काल, उद्देश्य आदि के बारे में जानकारी देनी चाहिए। एकांकी रचना से पूर्व विद्यार्थी 15-20 अच्छे एकांकीयों का अध्ययन अवश्य करें।

एकांकी की कथा लिखने से पूर्व प्रत्येक दृश्य में आने वाली कथा के अंश को निश्चित कर लेना चाहिए। कथा के प्रत्येक दृश्य के अंत में पाठक या श्रोता की उत्सुकता और जिज्ञासा बनी रहनी चाहिए।

ख. एकांकी शिक्षण के पाठ योजना संकेत

एकांकी रचना की शिक्षा में भी प्रशिक्षणार्थी उद्देश्य, प्रस्तावना, पाठ का विकास आदि खंडों पर विस्तृत विवरण तैयार करें और कक्षा में ही कहानी का ढाँचा बनाने तथा संवाद लिखवाने का अभ्यास कराएँ।

7. नाटक लेखन

नाटक जीवन को प्रभावित करने वाली साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। बालक जन्म से ही अपने आंगिक व्यवहार से बड़े-बूढ़ों का मन मोह लेता है। बड़ा होने पर वह अपने से बड़ों के क्रियाकलापों का अनुकरण करने का अभिनय रचता है।

प्राथमिक स्तर से उच्च कक्षाओं तक की पाठ्य पुस्तकों में लघु नाटिका, संवाद, एकांकी अथवा नाटक पढ़ने की व्यवस्था निश्चित रूप से होती है। पाठ्यक्रम के इन अंशों द्वारा विद्यार्थियों को इस विधा से परिचित कराया जाता है।

नाटक रचना की शिक्षा देने से पूर्व नाटक के विभिन्न अंगों यथा—कथा, कथोपकथन, चरित्र चित्रण, स्थान, काल, उद्देश्य आदि के बारे में वांछित जानकारी देनी आवश्यक है। अंक विधान, दृश्य विधान आदि के ज्ञान के बाद ही विद्यार्थियों को नाटक लिखने की प्रेरणा दी जा सकती है।

उच्च कक्षाओं में नाटक लिखने की शिक्षा देने का अभिप्राय विद्यार्थियों को तुरन्त सफल नाटककार बनाना नहीं है किन्तु उनमें यह आत्म-विश्वास जाग्रत

करना है कि समय और साधन मिलने पर वे भी अपनी व्यथा को नाटक के माध्यम से अभिव्यक्त कर सकते हैं।

नाटक रचना की तीसरी सीढ़ी है। इससे पूर्व तो विद्यार्थी को संवाद लेखन तथा एकांकी लेखन का अभ्यास कराना पड़ेगा।

नाटक के बारे में विस्तृत जानकारी “नाटक की शिक्षा” अध्याय में दी गई है। पाठक कृपया इस सामग्री को वहाँ पढ़ें।

8. संस्मरण लेखन

संस्मरण गद्य साहित्य की एक रोचक विधा है। संस्मरण साहित्य का विकास गद्य साहित्य के विकास के काफ़ी बाद हुआ है। सन् 1940 के बाद इस साहित्य का विकास तेज़ी से हुआ है। महादेवी वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, उपेन्द्रनाथ अश्वक, रामधारी सिंह दिनकर आदि ने संस्मरण साहित्य के विकास में काफ़ी योगदान दिया है।

संस्मरण वह रचना है जिसका संबंध लेखक की स्मृति से है। भावुक लेखक अपनी स्मृति में सुख-दुःख, हास्य-विनोद, खट्टे-मीठे अनेक प्रकार के अनुभवों को अपने स्मृति पटल पर सँजोए रहता है। अवसर पाते ही वह उन विचारों को एक निबंध का रूप दे देता है।

संस्मरण में कल्पना की पुट कम होती है, भोगी हुई अनुभूति की अधिक। संस्मरण का लेखक अनुभूत घटना का विवरण तो देता ही है वह अपनी व्यक्तिगत छाप भी उसमें जोड़ देता है। वह अपनी पसंदगी-नापसंदगी उसमें जोड़ देता है।

यदि संस्मरण लेखक अपने विषय में लिखता है तो अंग्रेज़ी में उसे “रेमिनिसेंस” कहते हैं और यदि वह दूसरों के बारे में लिखता है तो उसे “मेमोयर” कहते हैं।

सामान्यतः संस्मरण प्रसिद्ध नेताओं, लेखकों, कवियों या यात्रियों के होते हैं। विद्यार्थियों को इस प्रकार का साहित्य पढ़ने तथा अपने संस्मरण लिखने को प्रोत्साहित करना चाहिए।

विद्यार्थियों द्वारा लिखे गए संस्मरण कक्षा में पढ़कर सुनाए जाएँ। अध्यापक स्वयं भी रोचक संस्मरण कक्षा में पढ़कर सुनाए। लेखन अभ्यास ही सफलता की कुंजी है।

विद्यार्थियों के संस्मरण उनका “स्कूल का पहला दिन,” “किसी विषय विशेष के अध्यापक का व्यवहार,” “नकल करते हुए पकड़े जाने पर,” “स्काउटिंग,” “पर्वतारोहण,” “तालाब में डूबते हुए को बचाना” आदि विषयों पर हो सकते हैं।

9. आत्मकथा

आत्मकथा जीवन चरित्र का एक रूप है। इस विधा के अन्तर्गत लेखक अपने जीवन से संबंधित संस्मरण, डायरी, पत्र आदि लिखता है। आत्मकथा अपने जीवन का दीर्घकाल का विवरण भी हो सकता है। इस साहित्य में लेखक अपने आंतरिक जीवन पर प्रकाश डालता है। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू आदि नेताओं के अतिरिक्त प्रसिद्ध लेखकों और कवियों ने भी आत्मकथा-परक साहित्य लिखा है।

विद्यार्थियों को इस प्रकार का साहित्य पढ़ने के लिए उत्साहित करना चाहिए। इससे जीवन के सफल और निर्बल पक्षों को समझने का अवसर मिलता है। हर व्यक्ति के जीवन में कोई ऐसी घटना होती है जो उसके जीवन 4-1 दर्शन को बदल देती है। आत्मकथाओं से व्यक्ति के जीवन-दर्शन के साथ उस युग का भी बोध होता है। गांधी, नेहरू की आत्मकथा इसके प्रमाण हैं।

विद्यार्थियों को प्रतिदिन डायरी लिखने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे उनके लेखन में निखार आएगा। दैनिक डायरी में दिनभर के काम के अतिरिक्त दैनिक घटनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया अवश्य लिखें। इस प्रकार का लेखन मौलिक लेखन को जन्म देता है।

तीर्थाटन, सरस्वती यात्राएँ, स्काउटिंग, पर्वतारोहण तथा अन्य आयोजनों में सम्मिलित होने वाले अवसरों को लेखनीबद्ध करने को प्रोत्साहित किया जाए। आत्मकथा के अच्छे अंश लिखने वाले विद्यार्थियों को प्रोत्साहित और पुरस्कृत किया जाए।

10. जीवनी

जीवनी साहित्य आत्मकथा साहित्य का एक अंग है। जीवनी किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के बारे में उसके परिचित क्रियाकलापों पर किसी अधिकारी व्यक्ति द्वारा लिखी जाती है। इस प्रकार के साहित्य में व्यक्ति के मित्रों, संबंधियों, संपर्क में आने वाले अन्य अधिकारियों, पत्र-व्यवहार, संस्मरण आदि का संग्रह किया जाता है। इस संग्रह में व्यक्ति के गुण-दोष दोनों ही तटस्थता से दर्शाए जाते हैं। इन घटनाओं को रोचक ढंग से प्रस्तुत करना जीवनी लेखक की सफलता है। जीवनी साहित्य को कोमल साहित्य कहा गया है। इसमें लेखक का किसी प्रकार का पक्षपात घोर अन्याय कर सकता है।

विद्यालयों में इस साहित्य के महत्व पर चर्चा होनी चाहिए तथा पुस्तकालयों में इस साहित्य को उपलब्ध कराना चाहिए।

विद्यार्थियों को उनके संपर्क के मित्रों, संबंधियों आदि के विषय में जीवनी लिखने को प्रोत्साहित किया जाए। खेल-खेल में किया गया यह कार्य अच्छे

साहित्य के सृजन की पूर्वपीठिका का काम दे सकता है।

11. पद्य लेखन

क. सामान्य परिचय

कविता लिखना ईश्वरप्रदत्त शक्ति मानी गई है किन्तु इसके लेखन में अभ्यास और मार्गदर्शन के महत्त्व जो कम नहीं किया जा सकता। यदि ईश्वर-प्रदत्त शक्ति के साथ अभ्यास और मार्गदर्शन का संयोजन हो जाए तो मणि-कांचन का योग सन्नेत्रों।

पद्य लेखन के विषय में विस्तृत जानकारी कविता शिक्षण के अध्याय में दी गई है। पाठक वहाँ विशेष रूप से कविता में रुचि उत्पन्न करने के उपाय अंश को पढ़ें। यहाँ भी संक्षेप में इस विषय पर प्रकाश डाला जाता है।

ख. पद्य लेखन अभ्यास का क्रम

पद्य लेखन एक कला है। इसके क्रमिक अभ्यास से प्रथम श्रेणी की न सही द्वितीय श्रेणी की कविता तो लिखी ही जा सकती है। इसके अभ्यास का क्रम इस प्रकार निश्चित किया जा सकता है।

1. छंदों के बारे में सामान्य जानकारी।
2. अलंकारों के विषय में सामान्य जानकारी।
3. छंदयुक्त कविता के बारे में सामान्य जानकारी।
4. रुचि के साथ कविता पढ़ना।
5. कविताएँ सुनना।
6. अभ्यास कार्य।

नीचे पद्य लेखन के अभ्यास कार्य के बारे में विचार किया जाएगा।

(i) तुक-तुकान्त का अभ्यास

विद्यार्थियों से एक, दो, तीन, चार आदि शब्दों की तुक मिलाने का अभ्यास कराया जाए। इसी प्रकार एक छोटे वाक्य की तुक मिलाने का अभ्यास कराया जाए। किसी कविता की पहली पंक्ति देखकर 8 से 12 पंक्तियों की कविता लिखवाई जा सकती है। इस अभ्यास के बाद किसी विषय पर कविता लिखने का अभ्यास दिया जा सकता है। आरम्भ में कविता का विषय वर्णनात्मक होना चाहिए। भावात्मक विषयों का अभ्यास बाद में दिया जाना चाहिए।

कविता की तुक मिलाने का अभ्यास प्राथमिक स्तर पर ही आरम्भ होना चाहिए। हमें विद्यार्थियों की रचनाशक्ति पर संदेह नहीं करना चाहिए।

माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी अपनी अर्जित शब्दभंडार की शक्ति के आधार पर बड़े चमत्कार दिखा सकते हैं।

क. एक शब्द की तुक

शब्द	तुक
आया	खाया, पाया, लाया, छाया, साया काया, माया, भाया, आदि।

ख. तीन वर्णों की तुक

शब्द	तुक
आएगा	जाएगा, खाएगा, पाएगा, लाएगा, आदि।

ग. पंक्ति की तुक

पंक्ति	तुक
कालू चाचा आएँगे	कालू चाचा आएँगे। खील बताशे लाएँगे। हमको खूब खिलाएँगे। कहानी भी सुनाएँगे। सबका मन बहलाएँगे। कालू चाचा आएँगे।

(ii) पहेलियाँ

लेखक ने अभ्यास के आधार पर बच्चों के लिए निम्नलिखित तुकांत पहेलियाँ लिखी हैं—

1. दूर खेत पे पशु निराले।
गोरे-पीले, भूरे-काले ॥
कौन इन्हें खेतों तक लाता ?
बड़े चाव से इन्हें चराता ॥
कौन है ऐसा भोला भाला ?
समझ गया मैं, वह है खाला ॥
2. फल-फूलों के पेड़ लगाए।
सुन्दर-सुन्दर फूल खिलाए ॥
खाद लगाए उनको सींचे।
हरियाली से भरे बगोचे ॥

झूम उठे हर डाली-डाली ।
कौन बताओ, जी हाँ माली ॥

(iii) दिए गए विषय पर कविता लिखना

परिवार कल्याण पर लिखी इन पंक्तियों के लेखक की इस कविता में आप प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों भावों का आनंद ले सकते हैं—

सुन्दर फूल

रीता मीनू से यों बोली, आओ सुन्दर फूल उगाएँ ।
सुन्दर-सुन्दर गमले लेकर, उनको मिट्टी से भरवाएँ ॥
सुन्दर फूल खिलेंगे उनमें, अच्छा सा जो खाद लगाएँ ।
देखें [किसके फूल बड़े हों, किन पर भौरे-तितली आएँ ॥
उपजाऊ सी मिट्टी लेकर, उनमें अच्छा खाद मिलाया ।
रीता ने दो बीज बखेरे, मीनू के मन में क्या आया ? ॥
उसने रीता से आँख बचाकर, मुट्ठी भरकर बीज गिराया ।
मीनू मन में सोच रही थी, मैंने रीता को बहकाया ॥
मेरे गमले में छत्ते से, कितने पौधे उग जाएँगे ।
रीता के गमले में केवल, दो ही पौधे उग पाएँगे ॥
रीता के पौधों को देखो, मोटे सुन्दर सजे सजाए ।
उनकी शोभा देख निराली, तितली आई, भौरे आए ॥
मीनू के फूलों को देखो, छोटे-गंदे और मुरझाए ।
इनके पास फटकने तक को, तितली-भौरे आँख छिपाएँ ॥
अपने छोटे फूल देखकर, मीनू मन ही मन शरमाई ।
रीता के क्यों फूल बड़े हैं, बात समझ में उसके आई ॥

इसी प्रकार पर्यावरण प्रदूषण से संबंधित इन पंक्तियों के लेखक की एक और कविता का आनंद लीजिए :—

बुलबुल रानी

बुलबुल रानी रुठ गई है ।
पंख नोच कर सूख गई है ॥
जल न पीए फल न खाए ।
बुलबुल राजा उसे मनाए ॥

क्यों रूठी हो बलबल रानी ?
 हँसकर रस का पीलो पानी ॥
 गुमसुम होना मुझे न भाए ।
 माँगो जो भी मन में आए ॥
 बाग-बगीचे काट रहे हैं ।
 नदी-नालों को पाट रहे हैं ॥
 माली कहाँ पर फूल उगाए ।
 चिंता यह दिन रात सताए ॥
 हर कोने अब शोर-शोर है ।
 लोगों का न ओर-छोर है ॥
 धुएँ के बादल से छाए ।
 मुझको तो अब साँस न आए ॥
 मेरे राजा जल्दी जाओ ।
 जैसे भी हो इन्हें मनाओ ॥
 यहाँ पर दूषण नहीं बढ़ाएँ ।
 पंचम स्वर जो सुनना चाहें ॥

12. पदान्वय (पैराफ्रेजिंग)

(क) सामान्य परिचय

मूलतः “पद” का अर्थ है वैदिक शब्दों का संधि विच्छेद करके पृथक्-पृथक् रखना या वैदिक मंत्रों का पदपाठ निर्धारित करना। अन्वय शब्द का अर्थ है वाक्य में शब्दों का स्वाभाविक क्रम या संबंध या वाक्य में शब्दों का व्याकरण विषयक क्रम या संबंध। यह एक प्रकार से शब्दों के युक्तियुक्त संबंध का द्योतक है।

अंग्रेजी में पदान्वय के लिए “पैराफ्रेजिंग” शब्द का प्रयोग होता है। यह एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है किसी वाक्य का समानान्तर या तुल्य वाक्य बनाना या एक विचार को अपने वाक्य में ज्यों का त्यों लिखना। विचार को अपने वाक्य में लिखते समय शैली भेद हो सकता है, भावभेद नहीं होता। वस्तुतः पदान्वय इस उक्ति को चरितार्थ करता है—“नामूलं लिख्यते किंचित् नापेक्षितमुच्यते”।

(ख) पदान्वय का लाभ

पदान्वय का उद्देश्य विद्यार्थी में रचना करने की शक्ति का विकास करना है। यह विद्यार्थी के लिए पाठ को ध्यानपूर्वक पढ़कर उसे व्याकरणसम्मत

भाषा में लिखने का अभ्यास प्रदान करता है। अनेक बार गद्य अथवा पद्य का अंश जटिल तथा अस्पष्ट होता है। पदान्वय उसे सरल भाषा में प्रकट करने का अभ्यास है।

(ग) अच्छे पदान्वय के गुण

1. पदान्वय अनुवाद की एक शैली है। पदान्वय भन्ने ही एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद न हो किन्तु एक व्यक्ति के विचारों का दूसरे व्यक्ति की भाषा में अनुवाद अवश्य है। उदाहरण के लिए 'अबला जीवन हाथ तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध और आँखों में पानी', पद्यांश को लें। इसका पदान्वय करते समय हम कहेंगे कि यहाँ कवि ने नारी के मातृत्व भाव और उसकी संवेदनशीलता की वृत्ति को उजागर किया है। "आँचल में दूध" के स्थान पर मातृत्व भाव और "आँखों में पानी" के स्थान पर सहज संवेदन-शीलता के भाव लिए हैं। यहाँ शैली का अन्तर हुआ है भाव दोनों एक ही हैं।

2. पदान्वय में विचार की सम्पूर्णता होती है। यह सार लेखन नहीं है। पदान्वय में मूल लेखक की कोई बात छोड़ी नहीं जाती, यह उन्हीं भावों की सम्पूर्ण पुनरुक्ति है।

3. पदान्वय में पद्यांश को समग्र रूप में ग्रहण किया जाता है। पदान्वय की जाने वाली पंक्ति का पंक्तिशः या शब्दशः व्याकरणसम्मत भाषा में पुन-लेखन पदान्वय नहीं है। यदि कवि या लेखक अप्रचलित शब्द का प्रयोग तुक-बंदी या अलंकार की दृष्टि से करता है और पाठक की समझ से वह बाहर है तो उसका सुगम पर्यायवाची देना चाहिए यथा—'भुजंग' 'प्रभंजन' आदि शब्दों के स्थान पर इनके सुगम पर्यायवाची शब्द लिखना। कई बार इन कठिन शब्दों को कोष्ठक में या अन्तर्दिन शब्दों को कोष्ठक में भी दिया जाता है क्योंकि आवश्यक नहीं कि 'नाग', 'सर्प' आदि शब्द 'भुजंग' के ही ठीक पर्यायवाची हों।

4. पदान्वय अपने शब्दों में लिखी ऐसी कृति है जिसका मूल भाव नष्ट नहीं होता। यह मौलिक रचना के समान सुगम, स्पष्ट और गतिशील होती है। मूल-पाठ को पढ़े बिना ही पाठक इसका मूल कृति जैसा ही आनन्द ले सकता है।

आजकल पदान्वय वैदिक पदपाठ के अर्थ में पूर्णरूप से प्रयुक्त न होकर अंग्रेजी के 'पैराफ्रेजिंग' के समान किया जाता है। इसका प्रयोग बहुधा कविता के सरलार्थ के रूप में ही हो रहा है।

(घ) पदान्वय लेखन विधि

विद्यार्थियों को पदान्वय सिखाने से पूर्व उन्हें पदक्रम, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि के वाक्य में पारस्परिक संबंध का विधिवत् ज्ञान होना चाहिए। उसे

कविता के वाचन और सामान्य भाव ग्रहण का अभ्यास होना चाहिए। विद्यार्थी मौखिक रूप से कविता का सरलार्थ बताने में अभ्यस्त होना चाहिए। इस पृष्ठ-भूमि के बाद निम्नलिखित विधि से पदान्वय का अभ्यास दिया जाए —

1. पद्यांश को सावधानी से भावग्रहण की दृष्टि से धीरे-धीरे पढ़ा जाए। समग्र भाव ग्रहण करने के लिए आवश्यक हो तो सामग्री को तीन बार भी पढ़ना चाहिए। बिना अर्थ ग्रहण किए पदान्वय असम्भव है।
2. पद्यांश के कठिन शब्दों, मुहावरों, आलंकारिक वाक्य खण्डों, व्याकरण की दृष्टि से वाक्य रचना की असाधारण घनावट, रूपक, उपमा आदि के प्रयोगों को सावधानीपूर्वक पढ़ें। सदा यह बात याद रखनी है कि पदान्वय में मुख्य भाव का ही नहीं भाषा संबंधी अन्य बातों का समावेश भी करना है।
3. पद्यांश को सरल भाषा में अपने शब्दों में लिखें।
4. अनुच्छेद या पद्यांश को समग्र रूप में देखें, पंक्तिशः या अक्षरशः उसका अनुवाद न करें।
5. पदान्वय सामग्री का अर्थ स्पष्ट करने के लिए इसमें आने वाले वाक्यों का क्रम निश्चित कर लें।
6. आवश्यकता अनुसार लम्बे वाक्यों को अनेक वाक्यों में और अनेक छोटे वाक्यों को मिश्रित वाक्यों में परिवर्तित करें।
7. उचित शब्दों के स्थान पर अन्य शब्द यथासम्भव न लिखें क्योंकि कविता में विशेषतः पर्यायवाची शब्द अर्थ के प्रति न्याय नहीं कर पाता और भाव का हनन हो जाता है। केवल अप्रचलित, दुर्बोध, तकनीकी तथा असाधारण प्रयोग के शब्दों के ही पर्यायवाची दें, कठिन तथा परिचित शब्दों को यथावत् रहने दें। व्यर्थ की बुद्धिसंगत या तर्कसंगत व्याख्या से बचें।
8. पदान्वय में व्याख्यापरक टिप्पणियाँ अनावश्यक हैं। कठिन भावों का स्पष्टीकरण पदान्वय का ही भाग है। उनको अलग से लिखना अवांछित है। यदि व्याख्या की आवश्यकता है तो वाक्य का गठन इस प्रकार करें कि वह स्वतः स्पष्ट हो जाए।
9. 'कवि कहता है', 'कवि आगे यह कहना चाहता है', 'कवि का आशय यह है' आदि शब्द अनावश्यक हैं। यदि आवश्यकता ही हो तो इस प्रकार के शब्द पहली पंक्ति में आ सकते हैं।
10. पदान्वय का अंतिम रूप लिखने से पूर्व उसका प्रारम्भिक रूप तैयार कर लेना चाहिए। इसे मुखर वाचन के रूप में पढ़ें और जहाँ आवश्यक हो इसमें संशोधन, परिवर्तन या परिवर्धन करें। ऐसा करने से पदान्वय

की अंतिम रचना के स्वरूप में पूरा निखार आ जाएगा ।

(ड) पदान्वय की पाठ योजना

पदान्वय की पाठ योजना में निम्नलिखित चरणों पर विशेष ध्यान दें :—

1. पूर्वज्ञान

इसके महत्त्व की चर्चा पीछे की जा चुकी है ।

2. उद्देश्य

पदान्वय के अनेक उद्देश्य हैं । एक उद्देश्य को प्रमुखता देनी है या सभी का समावेश करना है, इसका निश्चय अध्यापक स्वयं कर लें ।

3. पाठ विकास के सोपान

पाठ विकास के सोपान कक्षा और विषय सामग्री के अनुसार निश्चित किए जा सकते हैं । ये सामग्री के वाचन से आरम्भ होकर रचना की अंतिम प्रति तैयार करने तक हो सकते हैं ।

4. अशुद्धि शोधन

पदान्वय का अशुद्धि शोधन हर विद्यार्थी की उपस्थिति में होना चाहिए । एक विद्यार्थी के पदान्वय को आदर्श रूप में शुद्ध किया जा सकता है । सभी विद्यार्थी इन संशोधनों को सुनें और आवश्यकता हो तो तदनुसार स्वयं ही अपनी प्रति का संशोधन करें । अच्छे पदान्वय में अनेक प्रतियों में भेद-विभेद की संभावना कम है ।

13. सार लेखन

आज के वैज्ञानिक युग में समय का अत्यंत अभाव है । उच्च अधिकारी सारी फ़ाइल नहीं पढ़ सकता । विस्तृत सामग्री के प्रकाशन में अधिक खर्च आता है । समाचार पत्रों में नेताओं का समस्त भाषण छापने का स्थान नहीं मिल पाता । आकाशवाणी को निश्चित समय में अधिक से अधिक समाचार प्रसारित करने होते हैं । दूरदर्शन में आलेख और दृश्य सामग्री के बीच होड़ लगी रहती है । ऐसी स्थिति में बात को संक्षिप्त में कहने और लिखने का अभ्यास आवश्यक है । अनेक शब्दों के लिए एक शब्द लिखना, मुहावरे, लोकोक्ति तथा आलंकारिक भाषा के स्थान पर सरल और स्पष्ट बात कहना सार लेखन के मुख्य गुण हैं ।

सार के लिए दिए गए अवतरण को दो-तीन बार स्थिर चित्त से पढ़ना चाहिए। ऐसा करने से उसका मुख्य भाव स्पष्ट हो जाता है तथा शीर्षक देने में भी सुविधा रहती है।

कई बार अवतरण में रेखांकित शब्दों के अर्थ भी पूछे जाते हैं। अर्थ का स्पष्टीकरण संदर्भ के अनुसार ही होना चाहिए।

यदि अवतरण पर आधारित प्रश्नों के उत्तर पूछे गए हों तो उत्तर उपयुक्त और संक्षिप्त होने चाहिए।

सार-लेखन यथासंभव अपनी भाषा में होना चाहिए।

सार लेखन का अभ्यास उच्च कक्षाओं में ही दिया जाना चाहिए। माध्यमिक कक्षाओं में मुख्य भाव लिखने पर बल दिया जाए।

14. विचार या भाव विस्तार

विचार या भाव विस्तार रचना का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसमें विद्यार्थी को मौलिक लेखन का अवसर मिलता है। वह अपने व्यक्तित्व की छाप भाव विस्तार के समय कृति पर लगाता है। विचार विस्तार से ज्ञात होता है कि लेखक बहु-पठित है या नहीं।

विचार विस्तार किसी गद्य, पद्य, लोकोक्ति, मुहावरा या अन्य किसी आलंकारिक वाक्यांश पर किया जा सकता है।

विचार विस्तार का मूल्यांकन कक्षा के स्तर के अनुकूल ही होना चाहिए। माध्यमिक कक्षाओं में महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या की जाती है। उच्च कक्षाओं में भाव और भाषा सौन्दर्य दोनों पर बल होता है। उच्चतर कक्षाओं में भाव पक्ष, कलापक्ष, रस, सौन्दर्यविधान आदि का समावेश विचार विस्तार की दृष्टि से अपेक्षित है।

15. सभाओं की कार्यवाही या रिपोर्ट लिखना

(क) सामान्य परिचय

इक्कीसवीं सदी में समाज में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाने के लिए विद्यार्थियों को सामान्यतः उन भाषा कौशलों का अर्जन करना पड़ेगा जिन पर अब उतना बल नहीं दिया जाता। सभाओं की रिपोर्ट लिखना उन कौशलों में से एक ऐसा ही कौशल है।

प्रजातंत्र में अपनी विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए धुआँधार भाषणों की आवश्यकता है। विद्यालयों में भी मॉक पार्लियामेंट, राष्ट्रीय तथा अंतराष्ट्रीय विषयों पर वाद-विवाद चर्चा आदि का आयोजन होता है। ऐसे अवसरों पर विद्यार्थियों को रिपोर्ट तैयार करने का अवसर दिया जाना चाहिए। कुछ

विद्यालय अपनी पत्रिकाओं का प्रकाशन करते हैं। विद्यालय या अंतर्विद्यालयी प्रतियोगिताओं में होने वाले भाषणों का सही विवरण विद्यालय पत्रिका में दिया जाना चाहिए।

(ख) अच्छी रिपोर्टिंग के गुण

1. तटस्थता।
2. सरल और स्पष्ट भाषा।
3. विचारों की स्पष्टता।
4. विषय की सम्पूर्णता।
5. विषय का अनुच्छेदों में विभाजन।
6. उचित शीर्षक तथा उप-शीर्षक।
7. वक्ता का नाम, पद, स्थान, तिथि आदि का सही विवरण।

सभा की रिपोर्टिंग का अभ्यास नवीं कक्षा से आरम्भ होना चाहिए। इस समय विद्यार्थी अच्छी गति से लिख सकते हैं, उनकी वर्तनी स्थिर हो जाती है तथा भाव ग्रहण का स्तर भी बढ़ जाता है।

एक ही विषय पर दो या तीन विद्यार्थी मिलकर भी रिपोर्टिंग कर सकते हैं। विद्यार्थी रिपोर्टिंग के बाद अपने अनुच्छेदों का तालमेल बैठकाकर उसे पूर्ण-रूप दे सकते हैं।

यदि कुछ विद्यार्थियों को आशुलिपि का ज्ञान हो तो सोने पर सुहागा है। विद्यार्थी अपनी रिपोर्ट को स्वयं भी टंकित कर सकते हैं।

16. रिपोर्टाज

रिपोर्टाज फ्रांसीसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है रिपोर्ट प्रस्तुत करना। यह भी गद्य साहित्य की एक नवीन विधा है जिसका आरम्भ सन् 1936 के आस-पास हुआ। पीछे रिपोर्टिंग विधा की चर्चा हुई। रिपोर्टिंग यथातथ्य तटस्थ तथा नीरस होती है जबकि रिपोर्टाज आँखों देखा और कानों सुना ऐसा विवरण प्रस्तुत करता है जिससे मन के तार झंकृत हो उठते हैं। यह विवरण सदा-सदा के लिए मस्तिष्कपटल पर अंकित हो जाता है। इसकी कलात्मक अभिव्यक्ति मन को मोह लेती है।

मौखिक अभिव्यक्ति के रूप में गणतंत्र दिवस, स्वतंत्रता दिवस या अन्य सुख-दुःख के राष्ट्रीय महत्त्व के अवसरों पर आकाशवाणी से सतत प्रसारण (कामेंटरी) इसका उदाहरण है। इसी विवरण को जब लेखनीबद्ध किया जाता है तो इसे लिखित रिपोर्टाज साहित्य का नाम दिया जाता है।

शिवदानसिंह चौहान, उपेन्द्रनाथ अशक, शिवसागर मिश्र, श्रीकांत वर्मा के

रिपोर्ताज उदाहरण स्वरूप पठनीय हैं।

अध्यापक को चाहिए कि कक्षा में इस प्रकार का साहित्य विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए उपलब्ध कराएँ। रिपोर्ताज के कुछ अंश कक्षा में पढ़कर सुनाएँ तभी विद्यार्थी इस साहित्य की रचना के लिए मानसिक रूप से तैयार होंगे।

विद्यार्थी समय-समय पर सरस्वती यात्राएँ करते हैं। वे वाल मेले, वसंत मेले या विज्ञान मेले आदि में सम्मिलित होते हैं। वे मेले के मात्र सामान्य दर्शक न रहें, उसे भावात्मक दृष्टि से देखें। उस पर अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करें। आवश्यकता विद्यार्थियों को एक बार दृष्टि देने की है फिर वे अपने-आप अच्छे रिपोर्ताज लेखक बन जाएँगे।

विद्यालय पत्रिका के जहाँ कहानी, निबंध, पत्र विशेषांक निकाले जा सकते हैं वहाँ रिपोर्ताज विशेषांक भी निकाला जा सकता है। यदि ये रिपोर्ताज प्रकाशित न हो पाएँ तो भित्ति पत्रिका का अंग तो बन ही सकते हैं।

17. साक्षात्कार या इंटरव्यू

साक्षात्कार या इंटरव्यू हिंदी साहित्य की नवीन विधाओं में से है। इसके लिए 'भेंट वार्ता', 'विशेष चर्चा' आदि शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। इंटरव्यू से अभिप्राय है लेखक किसी व्यक्ति या समूह से स्वयं वार्ता करता है और उसका प्रमाणित व्यौरा लिखित रूप में प्रस्तुत करता है। व्यौरे के साथ लेखक अपनी प्रतिक्रिया भी प्रस्तुत करता जाता है।

डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के इंटरव्यू "मैं इनसे मिला" इस प्रकार के साहित्य का अच्छा उदाहरण है। डॉ० बनारसीदास चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर, विष्णु प्रभाकर आदि के लिखे इंटरव्यू साहित्य की महत्वपूर्ण निधि बन गए हैं।

विद्यार्थियों को इस प्रकार के साहित्य को पढ़ने का अवसर दिया जाए। उन्हें आस-पास रहने वाले खिलाड़ी, उद्योगपति, मजदूर, किसान और समाज के अन्य वर्गों के साथ सम-सामयिक घटनाओं या उनके जीवन अनुभवों के बारे में इंटरव्यू लेने को प्रोत्साहित किया जाए।

18 संपादकीय

(क) सामान्य परिचय

संपादकीय किसी पत्र-पत्रिका का उस अंक से संबंधित महत्वपूर्ण लेख होता है। यह किसी समसामयिक समाचार, घटना, आन्दोलन, विचार दोहन संबंधी विचारधारा को प्रकट करता है। इसमें अन्य व्यक्तियों से मतभेद होना साधारण बात है। संपादकीय उस पत्रिका का सर्वसम्मत मत माना जाता है। इसे

अधिकतर संपादक ही लिखता है।

(ख) संपादकीय के अंग

संपादकीय के सामान्यतः तीन भाग होते हैं। पहले भाग में उस घटना या विचार का सही विवरण प्रस्तुत किया जाता है जिस पर संपादक अपने विचार प्रकट करना चाहता है। यह समाचार या घटना पहले कहीं न कहीं प्रकाशित हो चुकी होती है।

दूसरे भाग में संपादक पक्ष विपक्ष में अपने तर्क उपस्थित करता है। वह घटना से संबंधित पिछले इतिहास का तारतम्य जोड़ता है। घटना से संबंधित दूसरों के विचारों पर अपनी टिप्पणी करता है। इस भाग में उसे विचार दोहन का अच्छा अवसर मिलता है।

तीसरे भाग में वह विषय के निष्कर्ष तक पहुँचता है। वह अपनी सलाह प्रस्तुत करता है। वह कभी-कभी चेतावनी भी देता है और भविष्यवाणी भी करता है।

संपादकीय सामान्यतः प्रथम पुरुष या 'मैं' की भाषा में नहीं लिखा जाता। यह अन्यपुरुष में ही लिखा जाता है।

(ग) अच्छे संपादकीय के गुण

1. सही सूचना प्रस्तुत करना।
2. घटना का पूरा व्योरा प्रस्तुत करना।
3. तर्कसंगत मत प्रस्तुत करना।
4. अन्य के विचारों पर अपना मत या विमत प्रकट करना।
5. पक्षपात विहीन तथा न्यायसंगत बात कहना।
6. भयभीत या आतंकित करके पद का दुरुपयोग न करना।
7. स्पष्ट भाषा में लिखना।
8. सरल भाषा में लिखना।
9. पत्र की नीति के अनुसार निडर होकर लिखना।
10. संपादकीय का उचित शीर्षक देना।

(घ) संपादकीय लेखन अभ्यास

संपादकीय लिखने का अभ्यास नवमी कक्षा से आरंभ कर देना चाहिए। अध्यापक को चाहिए कि संपादकीय से संबंधित प्रमुख बातों के बारे में विद्यार्थियों को पूर्ण जानकारी दें। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संपादकीय कक्षा में स्वयं पढ़ें और विद्यार्थियों से पढ़वाएँ।

प्रजातंत्र में संपादकीय एक महत्वपूर्ण अस्त्र है। सरकारी स्तर पर हर संपादकीय का विश्लेषण होता है। संपादकीय पर आकाशवाणी तथा अन्य माध्यमों पर चर्चा होती है। अतः संपादक को जागरूक नागरिक के समान अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करना चाहिए। उसे किसी भी स्थिति में अपने पद का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

संपादकीय मौलिक रचना का सर्वश्रेष्ठ अवसर प्रदान करता है क्योंकि इसमें लेखक अपना मत प्रस्तुत करता है। संपादकीय लेखन उच्च स्तर की रचना है।

19. पुस्तक समीक्षा

पुस्तक समीक्षा आलोचना साहित्य का एक अंग है। विद्यार्थी जीवन में ज्ञानवर्धन की दृष्टि से अनेक पाठ्य पुस्तकों और सामान्य पुस्तकों पढ़ता है। सामान्यतः प्रकाशित शब्दों के प्रति उसकी निष्ठा होती है। वह प्रकाशित सामग्री को अक्षरशः स्वीकार कर लेता है और उसमें त्रुटिवाची की संभावना नहीं मानता। छोटी कक्षाओं में विद्यार्थियों को अनास्थावान बनाना उचित भी नहीं है लेकिन उच्च कक्षाओं में रचनात्मक आलोचना को प्रोत्साहन देना चाहिए।

आलोचना या समीक्षा का अभिप्राय केवल पुस्तक के निर्बल बिन्दुओं को सामने लाना नहीं है। कृति के श्रेष्ठ पहलुओं को उजागर करना, उन्हें सराहना, उन्हें तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करना भी समीक्षक का कर्तव्य है।

पुस्तक समीक्षा के लिए विद्यार्थियों को तैयार करने लिए पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली पुस्तक समीक्षाओं को पढ़ने का अवसर प्रदान किया जाए। इससे विद्यार्थी को समीक्षा का व्यावहारिक ज्ञान हो जाएगा।

विद्यार्थी को पुस्तक के समीक्षा बिन्दुओं का ज्ञान कराना चाहिए। पुस्तक-लेखक का नाम, प्रकाशक, प्रकाशन वर्ष, पृष्ठ संख्या, पुस्तक का आकार, मूल्य आदि पुस्तक के स्थूल पक्ष हैं। भूमिका, प्राक्कथन, पुस्तक के बारे में विद्वानों की सम्मति, संदर्भ सूची, संदर्भ ग्रंथ आदि का विवरण भी समीक्षा में दिया जा सकता है।

पुस्तक की भाषा, शैली, पुस्तक का मुख्य कथ्य तथा समीक्षक की अपनी प्रतिक्रिया समीक्षा में अवश्य दी जानी चाहिए।

आरंभ में विद्यार्थियों को उनकी अपनी पाठ्य पुस्तकों की समीक्षा का अभ्यास कराया जा सकता है। पुस्तकालय में उपलब्ध कहानी, नाटक, उपन्यास आदिकी पुस्तकों की समीक्षा का अभ्यास कराया जाना चाहिए। समीक्षा करते समय विद्यार्थियों का पुस्तक जगत के प्रति दृष्टिकोण विस्तृत होता है। वह समीक्षा करते समय अपने उत्तरदायित्व को समझने लगता है।

उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों से समीक्षा का कार्य अध्यापक अपने निर्देशन में करा सकते हैं। एक ही पुस्तक पर अनेक विद्यार्थियों द्वारा की गई तुलनात्मक समीक्षा कक्षा में प्रस्तुत करना सभी के लिए रोचक रहेगा।

20. अनुवाद

अनुवाद साहित्य हमारे साहित्य की महत्वपूर्ण धरोहर है। सभी व्यक्ति सभी भाषाओं का ज्ञाता नहीं हो सकते। सारा ज्ञान भंडार एक ही भाषा के साहित्य में संचित है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। भारत में अंग्रेजी तथा उर्दू साहित्य के अतिरिक्त हमारी सभी प्रादेशिक भाषाओं में अमित ज्ञान-भंडार सुरक्षित है। ऐसी स्थिति में सभी भाषाओं के साहित्य का हिन्दी में और हिन्दी साहित्य का अन्य भाषाओं में अनुवाद की विपुल संभावनाएँ हैं। सरकार के सद्प्रयत्नों से इस प्रकार का साहित्य हमें उपलब्ध भी होने लगा है।

हमें अपने विद्यार्थियों को अनुवाद की महत्वपूर्ण कला के लिए तैयार करना है। आजकल अनुवाद को कला के साथ-साथ विज्ञान की संज्ञा दी जाने लगी है।

अनुवाद के लिए आवश्यक है कि जिस भाषा का अनुवाद अन्य भाषा में किया जाना है उन दोनों पर ही अनुवादक का समान अधिकार हो। अनुवाद के लिए शब्द भंडार, वाक्य संरचना की पद्धति के अतिरिक्त दोनों ही संस्कृतियों की जानकारी भी आवश्यक है। इसका अभिप्राय है कि अच्छा पाठक ही अच्छा अनुवादक बन सकता है।

आजकल अनुवाद विज्ञान पर अच्छा साहित्य उपलब्ध है। अनुवाद की समस्याओं से संबंधित पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होने लगी हैं। इस विषय पर समय-समय पर राष्ट्रीय स्तर पर गोष्ठियाँ भी आयोजित की जाती हैं। अध्यापक को इस अमूल्य साहित्यधारा की ओर सचेष्ट रहने की आवश्यकता है तभी वह विद्यार्थीजगत से अच्छे अनुवादक तैयार कर सकता है।

अनुवाद की कई विधियाँ हैं। अक्षरशः अनुवाद, भावानुवाद, छायानुवाद, तथ्यानुवाद आदि। श्रेष्ठ अनुवाद वही है जिसमें मूल लेखक का आशय स्पष्ट रूप से दूसरी भाषा में अनूदित हो जाए, उसमें न अनावश्यक अंश जोड़ा जाए और न ही छोड़ा जाए। अनूदित कृति मूल लेखन के समान पढ़ी जा सके।

अनुवाद का अभ्यास कराने के लिए एक ऐसी कृति ली जाए जिसका अनुवाद उपलब्ध हो। यह अनुवाद मानक होना चाहिए। विद्यार्थियों को मूल और अनूदित दोनों भाषाओं को पढ़ने को कहा जाए। उन्हें वादय रचना में होने वाले परिवर्तन के प्रति सजग किया जाए। शब्दों के उचित पर्यायों के चुनाव

का अभ्यास दिया जाए। आवश्यकता पड़ने पर कुछ शब्द जोड़ने तथा कुछ छोड़ने की स्वतंत्रता का अभ्यास दिया जाए।

अनुवाद रचना का कार्य पहले छोटी-छोटी कहानियों के माध्यम से कराया जाए। कई विद्यार्थी एक ही रचना का अनुवाद स्वतंत्र रूप से करें। फिर इन अनुवादों को कक्षा में सभी के सम्मुख पढ़ा जाए। सभी अनुवादों के आधार पर एक सर्वसम्मत अनुवाद की प्रति तैयार की जाए।

अनुवाद करने के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी की कोश कला के बारे में सामान्य जानकारी हो। अनुवाद करते समय दोनों ही भाषाओं के कुछ सर्वश्रेष्ठ कोश उपलब्ध रहने चाहिए। अनुवाद में प्रमाद से अर्थ का अनर्थ होने की संभावना रहती है।

व्यावहारिक कार्य

रचना शिक्षण क्षेत्र में प्रशिक्षणार्थी निम्नलिखित कार्य कर सकते हैं:—

1. मौलिक रचना के महत्व पर चर्चा करना।
2. विभिन्न शैलियों के आधार पर लेखों की सूची बनाना।

अनुच्छेद

1. अपने मनपसंद विषयों पर पाँच अनुच्छेद लिखना।
2. अपनी पाठ्य पुस्तक से दस मनपसंद अनुच्छेद चिह्नित करना।
3. विद्यालय में अनुच्छेद लेखन पर आयोजित प्रतियोगिता में भाग लेना।

निबंध

1. विद्यालय के पुस्तकालय में उपलब्ध निबंध की पुस्तकों की सूची बनाना।
2. अपने मनपसंद के विभिन्न शैलियों के 15 निबंध लिखना और उन्हें अप्रकाशित पुस्तक का रूप देना।
3. निबंध प्रतियोगिता में भाग लेना।
4. निबंध से संबंधित गोष्ठियों में भाग लेना।
5. निबंध की पाठ योजनाओं के नमूने तैयार करना।

पत्र लेखन

1. पुस्तकालय में पत्र लेखन से संबंधित उपलब्ध पुस्तकों की सूची बनाना।
2. निजी, व्यावसायिक तथा कार्यालय संबंधी पत्रों के नमूने इकट्ठे करना।
3. पत्र-मित्र मंडली का गठन करना।
4. अपने क्षेत्र की विभिन्न कठिनाइयों के निवारण हेतु संबंधित निकायों

के अधिकारियों को पत्र लिखना ।

5. पत्र लेखन प्रतियोगिता में भाग लेना ।
6. पत्र के विभिन्न अंगों से संबंधित चार्ट तैयार करना ।
7. विभिन्न प्रकार के पत्रों के नमूनों के चार्ट बनाना ।

कहानी

1. अपनी पाठ्य पुस्तक की कहानियों तथा उनके लेखकों की सूची तैयार करना ।
2. विद्यालय के पुस्तकालय से कहानी की पुस्तकों की सूची तैयार करना ।
3. अपने मनपसंद के विषयों पर 500 से 1000 शब्दों की कहानी लिखना ।
4. कहानी लेखन प्रतियोगिताओं में भाग लेना ।
5. किसी कहानी लेखक से भेंट करना ।

विशेष—पाठक कहानी शिक्षण तथा कहानी लेखन अध्याय के व्यावहारिक कार्य को भी देखें ।

संवाद लेखन

1. अपनी पाठ्य पुस्तक में आए संवादों को आलोचनात्मक दृष्टि से पढ़ना ।
2. पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तकों से उन पाठों की सूची तैयार करना जो संवादात्मक विधा में लिखे गए हैं ।
3. अपने मनपसंद के विषयों पर 5-10 संवाद लिखना ।
4. संवाद लेखन प्रतियोगिता में भाग लेना ।

एकांकी

1. पुस्तकालय में उपलब्ध एकांकी संग्रहों की सूची तैयार करना ।
2. एकांकी रचना के लिए उपयुक्त विषयों का चुनाव करना ।
3. एकांकी में आने वाले पात्रों का प्रतीक, व्यंग्य या उद्देश्य के आधार पर नामकरण करना ।
4. पाँच एकांकियों का कथासार दृश्य के अनुसार निश्चित करना ।
5. एकांकी अभिनय में भाग लेना ।
6. किन्हीं पाँच एकांकियों की कथा का सार लिखना ।
7. एकांकी लेखक से भेंट करना ।
8. किसी एक एकांकी की समीक्षा करना ।

नाटक

1. पुस्तकालय में उपलब्ध नाटक की पुस्तकों की सूची बनाना ।
2. किन्हीं पाँच नाटकों की कथा का सार अपने शब्दों में लिखना ।

3. नाटक के लिए पाँच कहानियाँ बनाना ।
4. नाटक के अभिनय में भाग लेना ।
5. किसी नाटककार से भेंट करना ।
6. किसी अभिनेता से भेंट करना ।

विशेष—पाठक नाटक की शिक्षा नामक अध्याय में दिए गए व्यावहारिक कार्य को भी देखें ।

संस्मरण

1. विद्यालय में प्राप्त संस्मरण साहित्य की विषय सूची तैयार करना ।
2. संस्मरण साहित्य का अध्ययन करना ।
3. किन्हीं पाँच अनुभूत विषयों पर संस्मरण लिखना ।
4. कक्षा के विद्यार्थियों के संस्मरण एकत्रित करके हस्तलिखित पुस्तिका का रूप देना ।

आत्म कथा

1. दिनभर के कार्य कलापों की दैनिक डायरी लिखना ।
2. अपनी यात्राओं का वर्णन लिखना ।
3. पुस्तकालय में प्राप्त आत्मकथा संबंधी साहित्य का स्वाध्याय करना ।
4. किसी आत्मकथा लेखक से भेंट करना ।

जीवनी

1. पुस्तकालय में उपलब्ध जीवनी साहित्य की सूची तैयार करना ।
2. जीवनी साहित्य का स्वाध्याय करना ।
3. जीवनी साहित्य की समीक्षा करना ।
4. अपने किसी परिचित व्यक्ति की जीवनी लिखना ।

पद्य लेखन

1. शब्द और वाक्यों की तुलना मिलाना ।
2. मनपसंद के विषयों पर वर्णनात्मक तथा भावात्मक कविताएँ लिखना ।
3. किसी कवि से भेंट करना ।

विशेष—शेष कार्य कविता शिक्षण में दिए गए व्यावहारिक कार्य के समान ।

पदान्वय

1. अपनी पाठ्य पुस्तक के किन्हीं 10 दोहों का पदान्वय करना ।
2. रामचरितमानस के पाँच सौरठों का पदान्वय करना ।
3. किन्हीं पाँच कुंडलियों का पदान्वय करना ।
4. चौपाई की आठ पंक्तियों का पदान्वय करना ।
5. आधुनिक छंदबद्ध रचनाओं का पदान्वय करना ।
6. अनुकांत कविताओं का पदान्वय करना ।

सार लेखन

1. अपनी निबंध की पाठ्य पुस्तक के किन्हीं पाँच निबंधों का सार अपनी भाषा में लिखना ।
2. किन्हीं पाँच संपादकीय लेखों को पढ़ें और उनका सार अपने शब्दों में लिखें ।
3. स्वयं द्वारा लिखे गए किन्हीं पाँच निबंधों का सार लिखें ।
4. किन्हीं पाँच कहानियों का सार अपने शब्दों में लिखें ।

विचार या भाव विस्तार

1. किन्हीं पाँच मुहावरों और लोकोक्तियों का भाव विस्तारपूर्वक लिखें ।
2. किन्हीं पाँच दोहों का भाव विस्तारपूर्वक लिखें ।
3. भाव विस्तार के महत्व पर एक टिप्पणी लिखें ।
4. “राम बाण”, “सूली ऊपर सेज पिया की”, “गंगा नहाना” तथा “अक्ल की पुड़िया” का भाव विस्तारपूर्वक लिखें ।

रिपोर्टिंग

1. विद्यालय की बालसभा की रिपोर्टिंग करना ।
2. किसी मेले का विवरण प्रस्तुत करना ।
3. पशु मेले, कुश्ती या दो दलों की लड़ाई की रिपोर्टिंग करना ।
4. पास-पड़ोस में होने वाली किसी सभा की रिपोर्टिंग समाचार पत्र के लिए करना ।
5. समाचार पत्र के किसी रिपोर्टर से भेंट करना ।

रिपोर्ताज

किसी मेले, सभा तथा यात्रा पर रिपोर्ताज लिखना ।

साक्षात्कार

1. विद्यालय के प्रधानाचार्य या अध्यापक से किसी विषय पर साक्षात्कार लेना ।
2. विद्यालय में आए किसी अतिथि से साक्षात्कार लेना ।
3. पास-पड़ोस के किसी उद्योगपति, व्यापारी, लेखक, कवि आदि से साक्षात्कार लेना ।
4. किसी समाजसेवी कार्यकर्ता या राजनीतिक नेता से साक्षात्कार लेना ।
5. साक्षात्कार साहित्य एकत्रित करना ।

संपादकीय

1. समसामयिक घटनाओं पर समाचार पत्रों के संपादकीय एकत्रित करना ।
2. समसामयिक विषयों पर संपादकीय लिखना ।
3. किसी संपादक से भेंट करना ।

पुस्तक समीक्षा

1. समाचार पत्रों या पत्रिकाओं से पुस्तक समीक्षा पढ़ना ।
2. विद्यालय में उपलब्ध कहानी, उपन्यास, कविता आदि की पुस्तकों की समीक्षा करना ।
3. विद्यालय की पत्रिका के लिए किसी पुस्तक की समीक्षा लिखना ।
4. किसी समीक्षित पुस्तक पर अपनी समीक्षा द्वारा प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करना ।

अनुवाद

1. हिन्दी के निबन्धों का अंग्रेजी और अंग्रेजी के निबन्धों का हिन्दी में अनुवाद करना ।
2. संस्कृत निबन्धों का हिन्दी और हिन्दी निबन्धों का संस्कृत में अनुवाद करना ।

संदर्भ

1. हिन्दी शिक्षण की कुछ इकाइयाँ, भाग-1, भाग-2, एन. सी. ई. आर. टी. (1973) ।
2. हिन्दी शिक्षण में सृजनात्मक दत्त कार्य, शिक्षक महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान (1975) ।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० नगेन्द्र ।
4. अनुवाद विज्ञान, डा० भोलानाथ तिवारी ।
5. कोश कला विज्ञान, सुमित्र मंगेश कत्रे, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा, (1980) ।
6. कार्यालय सहायिका, केन्द्रीय हिन्दी सचिवालय परिषद्, xy 68, सरोजनीनगर, नई दिल्ली 110023.
7. माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण, एन० के० सिंह (1973) ।
8. केन्द्रीय माध्यमिक बोर्ड पाठ्य क्रम (1985-86) ।
9. व्यापक शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम, एन. सी. ई. आर. टी. (1986) ।
10. Hand book of Activities, NCERT (1986), Mimeograph.
11. National Seminar on Teacher Education, NCERT (1984), Mimeograph.
12. पेड़ की कहानी, डा० जय नारायण कौशिक, आर्य बुक डिपो, दिल्ली ।

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. मौलिक लेखन या रचना क्या है ? व्यक्ति और समाज मौलिक लेखन

से कैसे लाभान्वित होते हैं ? तर्क संगत उत्तर दें ।

2. रचना शिक्षण के मुख्य क्षेत्र कौन-कौन से हैं ? किन्हीं पाँच मुख्य क्षेत्रों का वर्णन करें ।
3. विषय, विधा और उद्देश्य के आधार पर निबन्ध कई प्रकार के हैं । निबन्ध के विभिन्न रूपों की चर्चा करते हुए बताएँ कि भावात्मक-निबन्ध लिखना सिखाने के लिए आप किस विधि को अपनाएँगे ?
4. छोटी कक्षाओं में चित्र वर्णन विधि से निबंध लिखना सिखाना अच्छा है या रूप रेखा विधि से ? युक्ति-युक्त उत्तर दें ।
5. विद्यार्थी स्तर पर पत्र लेखन सिखाने के क्या-क्या उद्देश्य हैं ? पत्र-लेखन सिखाने की श्रेष्ठ विधि कौन सी है ? अपना उत्तर उदाहरण देकर स्पष्ट करें ।
6. एकांकी, नाटक तथा संवादशिक्षण से क्या-क्या लाभ हैं ? सामान्य विद्यालय में नाटक की शिक्षा देने की कौन सी विधा श्रेष्ठ है और क्यों ?
7. 'काव्य प्रतिभा भले ही जन्म-जात वरदान है किन्तु अभ्यास का महत्व कविता लेखन में कम नहीं', इस कथन की समीक्षा करें । आप विद्यार्थियों को कविता लेखन के लिए कैसे प्रेरित करेंगे ?
8. 'रोजगार-उन्मुखी शिक्षा के लिए टिप्पण, सार लेखन, भाव विस्तार, रिपोर्टिंग, इंटरव्यू जैसी विधाओं का शिक्षण में महत्वपूर्ण स्थान है', इस तथ्य की समीक्षा कीजिए ।
9. + 2 स्तर पर कहानी, आत्मकथा, जीवनी तथा निबंध के क्षेत्र में विद्यार्थियों में किस प्रकार का व्यावहारिक कार्य करवाया जाए ? प्रत्येक कार्य उद्देश्य आधारित होना चाहिए ।
10. टिप्पणी लिखें—
 1. संपादकीय 2. दैनिक डायरी 3. निबंध लेखन की परिचर्चा विधि 4. रचना के सोपान 5. पत्र का प्रशस्ति खंड 6. 'कवि न होऊँ न चतुर कहाऊँ' 7. अनूदित साहित्य का महत्व 8. पुस्तक समीक्षा ।

अध्याय 12

लेखन की अशुद्धियाँ

I. शुद्ध लेखन का महत्त्व

शुद्ध लेखन एक कला है। इसके लिए बुद्धि और अभ्यास दोनों की ही आवश्यकता है। सुंदर लेख में लिखी गई अशुद्ध वर्तनी सुंदर साड़ी पर पड़े दाग के समान उसकी छवि को धूमिल कर देती है। जैसे चंद्रमा के प्रकाश को राहू ग्रसता है उसी प्रकार सुंदर लेख को अशुद्ध वर्तनी रूपी नाग डसता है। रचना के भाव कितने ही भव्य हों, वह कितनी ही सुंदर शैली में लिखी गई हो, वर्तनी की अशुद्धियाँ उस भाव और शैली को विषाक्त कर देती हैं। परीक्षक पर अशुद्ध लेखन की प्रतिक्रिया होती है और वह ऐसे परीक्षार्थी को कभी उत्तम कोटि में श्रेणीबद्ध नहीं कर सकता। अतः शुद्ध अक्षर विन्यास या अक्षरी या वर्तनी की शिक्षा का वही महत्त्व है जो बोलचाल में शुद्ध उच्चारण का। शुद्ध लेखन लेखक के चरित्र के संतुलन का परिचायक है। लेखन के महत्त्व को देखते हुए इसे भाषा शिक्षण का एक आवश्यक अंग स्वीकार किया गया है। भाषा शिक्षक को इसे इसी रूप में ग्रहण करना चाहिए।

II. लेखन की अशुद्धियों के कारण

लेखन की अशुद्धियों के अनेक कारण हैं। इन कारणों को हम निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं :—

1. व्यक्तिगत (बौद्धिक, शारीरिक)।
2. स्वभावगत।
3. सामाजिक कारण।
4. लिपिगत कारण।
5. व्याकरणिक।
6. शैक्षिक कारण।
7. शिक्षा नीति संबंधी या प्रशासनिक उदासीनता।

1. व्यक्तिगत कारण

(क) मानसिक

हर मनुष्य की अपनी बौद्धिक सीमाएँ हैं। कुशाग्र बुद्धि बालक वाचन के समय अक्षरों की बनावट, आपसी मिलावट, संयुक्त वर्णों की लिखावट, लृस्व-दीर्घ मात्राओं के योग आदि की ओर स्वतः ध्यान रखता है। उसकी शब्दों के लिखित रूप के प्रेक्षण की शक्ति पैनी होती है।

दूसरी ओर मंद बुद्धि बालक वाचन के समय लिखित वर्णों का अनावश्यक विपर्यय, आगम अथवा लोप करता है। ऐसा बच्चा स्वाभाविक रूप से अनजाने में लेखन की अशुद्धियाँ करता है।

(ख) शारीरिक

जिस बालक के आँख तथा कान रोगग्रस्त होंगे उसका वर्तनी की अशुद्धियाँ करना स्वाभाविक है। बच्चा वही लिखेगा जैसा वह देखेगा या सुनेगा। अशुद्ध पढ़ने वाला और अशुद्ध सुनने वाला अशुद्ध ही लिखेगा। उच्चारण और बोल-चाल की शिक्षा के अध्याय में इस विषय पर विस्तृत चर्चा हो चुकी है।

बालक के हाथ, उँगली, अंगूठा तथा स्नायुमंडल का गठन भी लेखन को प्रभावित करते हैं। वह लिखते समय वर्णों में बनने वाले वक्र, पाई, कोण आदि की बनावट ठीक नहीं बना पाता।

2. स्वभावगत कारण

कुछ बच्चों का स्वभाव भाषा और विशेषकर लेखन के प्रति उदासीनता और उपेक्षा का होता है। बार-बार अशुद्धियों की ओर ध्यान दिलाने पर भी वे बात को गंभीरता से नहीं लेते। वे शुद्ध लेखन के महत्त्व को नहीं समझते और काम चलाने मात्र या उत्तीर्ण होने मात्र का परिश्रम करते हैं।

3. सामाजिक कारण

सामान्यतः मानक भाषा तथा स्थानीय भाषा या बोली में सदा विवाद रहा है और रहेगा। मानक भाषा शिष्ट समाज की भाषा होती है। यह वैयाकरणों द्वारा प्रमाणित और राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त होती है। शिष्ट समाज के पास इसे सीखने-सिखाने का समय और सुविधा होती है। सामान्य व्यक्ति के पास न समय है, न सुविधा और न इसकी आवश्यकता। उसका उच्चारण त्वरा, प्रमाद, अज्ञान, उपेक्षा आदि के कारण मानक नहीं है। उच्चारण का प्रभाव लेखन पर पड़ता है। यदि आकृति में विकृति होगी तो उससे बनने वाले बिंब पर भी वह लक्षित होगी। ठीक आकृति और बिंब वाला सहसंबंध उच्चारण और

लेखन पर भी घटित होता है। हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान, पंजाब तथा उत्तर-प्रदेश के जिन भागों में स—श—ष की ध्वनि का अभेद है वहाँ विद्यार्थी 'शंकर' को 'संकर' लिखने में लज्जा अनुभव नहीं करता।

4. लिपिगत कारण

लिपि की जटिलता भी वर्तनी की अशुद्धि का महत्वपूर्ण कारण है। देवनागरी लिपि भी इस जटिलता से अछूती नहीं है। यहाँ हम संक्षेप में इस विषय पर चर्चा करेंगे।

(क) बनावट की दृष्टि से सूक्ष्म अन्तर वाले वर्ण

देवनागरी लिपि में ब—व, प—ष, फ—फ—क, म—भ—भू, ज—झ, ट—ढ—द, घ—घ, य—थ आदि ऐसे वर्ण हैं जिनके सूक्ष्म भेदों को समझने में कठिनाई होती है।

(ख) बनावट की दृष्टि से कठिन वर्ण

छ, ह, झ, ल, क्ष, ज्ञ, ऋ आदि ऐसे वर्ण हैं जिन्हें सीखने और लिखने में बच्चों को कठिनाई होती है।

(ग) संयुक्त वर्ण

वर्तनी की अशुद्धि में संयुक्त वर्ण मुख्य कारण बनते हैं। ह्र, द्र, दृ, द्र, छ, ह्र, ह्र, ह्र, छ, क्ष आदि वर्णों का भेद कर पाना सरल कार्य नहीं है।

स्वर रहित वर्ण में 'र' का योग ग्र, फ्र, भ्र, द्र, विधि से तथा स्वर-रहित 'र' का योग वर्ण से ऊपर होता है। बच्चों के लिए यह समझ पाना काफी कठिन है।

(घ) मात्रा का योग

हिन्दी वर्णों में मात्रा का योग वर्ण से पूर्व (कि), वर्ण से आगे (का), वर्ण के ऊपर (के), वर्ण के नीचे (कु) और कहीं-कहीं वर्ण के मध्य (रु) में भी होता है। इस पंचरंगी मेल को समझना बहुत सरल नहीं है।

(ङ) पंचम अक्षर

हिन्दी का पंचम अक्षर इ, ए, वू, न् तथा म् विकल्प से अनुस्वार से भी लिखा जाता है। किस वर्ण के पूर्व कौन सा पंचम अक्षर जुड़ेगा यह भ्रम का विषय बना रहता है।

लिपि की उपर्युक्त जटिलताएँ मात्र आलोचना के लिए नहीं अपितु वास्तविक कठिनाइयों की ओर ध्यान दिलाने के लिए बताई गई हैं।

5. व्याकरणिक कारण

व्याकरण के अधूरे ज्ञान के कारण शब्दरूपान्तर, लिंग, वचन, संधि, कारक, वाक्य संरचना आदि की अशुद्धियाँ होती हैं। इन बिन्दुओं का विस्तृत विवेचन अशुद्धियों को दूर करने के उपाय पर चर्चा करते समय किया जाएगा।

6. शैक्षिक कारण

उपर्युक्त अनेक आयामों को नियंत्रित करना कठिन है किन्तु शैक्षिक वातावरण को काफ़ी सीमा तक नियंत्रित किया जा सकता है। आइए, अशुद्ध वर्तनी के शैक्षिक कारणों पर विचार करें—

(क) लिपि का अधूरा ज्ञान

देखने में आता है कि माध्यमिक स्तर तक पहुँचते-पहुँचते भी विद्यार्थियों को लिपि का पूरा ज्ञान नहीं हो पाता। अनेक बार क्ष—त्र—ज्ञ, ड—ड़—ड, ध—ध, न्ह—ल आदि वर्णों के भेद का पता नहीं होता।

(ख) अभ्यास की कमी

आरंभिक कक्षाओं में अन्य विषयों के पाठ्यक्रम के भार के कारण लेखन अभ्यास को पूरा समय नहीं मिल पाता।

(ग) लेखन सामग्री

दोषपूर्ण लेखन सामग्री सुलेख के साथ-साथ वर्तनी या अक्षर विन्यास को भी प्रभावित करती है। पेंसिल, घटिया प्रकार के पेन, बाल पेन, कापी तथा स्याही भी अशुद्ध अक्षर विन्यास का कारण बनते हैं। इस बारे में लेखन की शिक्षा के अध्याय में पूरी जानकारी दी गई है।

(घ) लेखन सिखाने की दोषपूर्ण विधि

देवनागरी वर्णमाला ध्वनि के आधार पर क्रमबद्ध है। लेखन की शिक्षा के लिए इस क्रम को पुनः विभाजित करना चाहिए। इसकी जानकारी भी लेखन की शिक्षा वाले अध्याय में दी गई है।

(ड) लेखन अभ्यास योग्यता के निर्माण की उपेक्षा

सामान्यतः लेखन अभ्यास योग्यता का विकास शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों में पाठ्यक्रम का विषय नहीं बन पाया है। इसके प्रति उपेक्षा अक्षर विन्यास या अक्षरी के शुद्ध लेखन में बाधक है। इसकी विस्तृत चर्चा भी लेखन की शिक्षा के अध्याय में की गई है।

(च) स्वयं अध्यापकों की उदासीनता

स्वयं अध्यापक भी लेखन की अशुद्धता के प्रति उदासीन हैं। कक्षा में छात्रों की अधिक संख्या, पाठ्यक्रम का भार, उनका किसी न किसी बोली से संबंध, श्रुत लेख के लिए समय न देना आदि वर्तनी की अशुद्धियों का कारण बनते हैं।

(छ) अन्य विषय-अध्यापकों की उदासीनता

शुद्ध वर्तनी शिक्षण भाषा अध्यापक का एकमात्र दायित्व और अधिकार-क्षेत्र मान लिया जाता है। विज्ञान, सामाजिक ज्ञान आदि विषयों के अध्यापक बच्चों के कार्य का मूल्यांकन करते समय भाषा की अशुद्धियों की उपेक्षा करके अपने विषय को ही महत्व देते हैं। परिणामस्वरूप विद्यार्थी भी शुद्ध वर्तनी को महत्व नहीं देते।

(ज) पर्यवेक्षकों द्वारा उपेक्षा

विद्यालय का निरीक्षण करने वाले पर्यवेक्षक, निरीक्षक या शिक्षा अधिकारी लेखन की अशुद्धियों की उपेक्षा करते हैं। वे सामान्यतः प्रशासन संबंधी कागजात की जाँच पड़ताल में अधिक समय देते हैं। इसके लिए भाषा-निरीक्षकों या विषय-विशेषज्ञों की नियुक्ति का प्रावधान अभी भी नहीं है।

7. प्रशासनिक उदासीनता

नीति संबंधी या प्रशासनिक उदासीनता वर्तनी की एकरूपता बनाए रखने में आड़े आती है। उदाहरण के लिए हिन्दी में अंग्रेजी, उर्दू, फ़ारसी आदि भाषाओं के शब्दों को महत्वपूर्ण स्थान देने की नीति अपनाई जा रही है। आवश्यक शब्दों को ग्रहण करने में किसी उदारवादी को कोई आपत्ति नहीं है किन्तु इन शब्दों की वर्तनी की एकरूपता निश्चित कर देनी चाहिए। वरफ़—वरफ़, अंगरेजी—अंग्रेजी—अंग्रेजी, वापस—वापिस आदि शब्दों की द्विरूपी या बहुरूपी वर्तनी को मानक मूल्यांकन के समय भी अशुद्ध नहीं माना जाता।

इसी प्रकार सर्दी—सरदी, गरमी—गर्मी, उल्टा—उलटा, वे—वो, आदि

शब्दों की वर्तनी में विविधता है। एक प्रामाणिक कोश के माध्यम से इस ओर निश्चित निर्णय नहीं लिए गए हैं।

अपनी ही बोली के उच्चारण को मानक मान कर उस बोली के उच्चारण के अनुसार लिखना वर्तनी की अशुद्धि का कारण बनता है। केन्द्र सरकार की ओर से इस प्रवृत्ति पर भी अंकुश नहीं लगाया गया है।

III. वर्तनी संबंधी अशुद्धियाँ—एक विश्लेषण

वर्तमान पुस्तक के लेखक* ने पहली से बारहवीं कक्षा तक पढ़ने वाले एक हजार शहरी तथा ग्रामीण छात्र-छात्राओं की अभ्यास पुस्तिकाओं से वर्तनी की अशुद्धियों का विश्लेषण किया। दिल्ली के विभिन्न विद्यालयों में पढ़ने वाले ये छात्र-छात्राएँ दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश आदि सभी हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों से संबंधित थे। इसी सर्वेक्षण के आधार पर प्राप्त जानकारी संक्षेप में नीचे दी जा रही है। प्राप्त जानकारी को अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया गया है।

(क) स्वर संबंधी अशुद्धियाँ

1. (नीचे पहले कालम में अशुद्धि-प्रकार दर्शाया गया है। प्रथम क्रम पर शुद्ध वर्ण लिखा गया है। दूसरे क्रम पर वह वर्ण है जिसे भूल से पहले वर्ण के स्थान पर लिख दिया जाता है।)

अशुद्धि-प्रकार	शुद्ध	अशुद्ध
अ को आ	अपना	आपना।
	कहानी	काहानी।
अ को इ	अमृतसर	इमृतसर।
अ को ए	पहनना	पहेनना।
अ को व	कुँअर	कुँवर।
अ का लोप	कृपया	कृया।
2. आ संबंधी अशुद्धियाँ		
आ को अ	आसमान	असमान।
आ को आँ	घास	घाँस।
आ को वा	हलुआ	हलुवा।

* शुद्ध हिंदी लेखन, डा० जय नारायण कौशिक, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, दिल्ली (1986)।

- | | | |
|-------------------------|----------|------------|
| 3. इ संबंधी अशुद्धियाँ | शुद्ध | अशुद्ध |
| इ को ई | जाति | जाती । |
| इ को उ | छिपाना | छुपाना । |
| इ का लोप | कठिनाई | कठनाई । |
| 4. ई संबंधी अशुद्धियाँ | | |
| ई—इ | नीरोग | निरोग । |
| | श्रीमती | श्रीमति । |
| ई—ए | खींचना | खेंचना । |
| ई—यी | नई | नयी । |
| 5. उ संबंधी अशुद्धियाँ | | |
| उ—ऊ | शत्रु | शत्रू । |
| | साधु | साधू । |
| मात्रा विपर्यय | चंगुल | चुंगल । |
| मात्रा लोप | क्रुतुब | कुतब । |
| 6. ऊ संबंधी अशुद्धियाँ | | |
| ऊ—उ | ऊँचाई | उँचाई । |
| | पालतू | पालतु । |
| 7. ऋ संबंधी अशुद्धियाँ | | |
| ऋ—रि | ऋतु | रितु । |
| | अमृत | अमरित । |
| 8. ए संबंधी अशुद्धियाँ | | |
| ए—अ | एहसान | अहसान । |
| ए—इ | घेराव | धिराव । |
| ए—ऐ | एकता | ऐकता । |
| ए—ओ | लेटना | लोटना । |
| ए—ये | आए | आये । |
| ए—वे | हुए | हुवे । |
| ए का लोप | नेहरू | नहरू । |
| ए का आगम | सविनय | सविनेय । |
| 9. ऐ संबंधी अशुद्धियाँ | | |
| ऐ—इ | ऐतिहासिक | इतिहासिक । |
| ऐ—ए | डकैती | डकेती । |
| 10. ओ संबंधी अशुद्धियाँ | | |
| ओ—ऊ | झोंपड़ी | झूंपड़ी । |

ओ—औ	शुद्ध	अशुद्ध
ओ—वो	ओर (तरफ़)	और (तथा) ।
ओ किर्युय	धोओ	धोवो ।
11. औ संबंधी अशुद्धियाँ	महोदय	मोहदय ।
औ—उ	औलाद	उलाद ।
औ—ओ	औसत	ओसत ।
(ख) व्यंजन संबंधी अशुद्धियाँ	नौकर	नोकर ।
1. क संबंधी अशुद्धियाँ		
क—ख	तंबाकू	तंबाखू ।
क—क	कसाई	कसाई ।
क—क	अकल	अकल ।
क—ज	कक्षा	कज्ञा ।
क आगम	चखा	चक्खा ।
2. ख संबंधी अशुद्धियाँ		
ख—क	धोखा	धोका ।
ख—ख	खाना	खाना ।
3. ग संबंधी अशुद्धियाँ		
ग—क	दिमाग	दिमाक ।
ग—ग	दाग	दाग ।
ग—घ	गढ़ना	घड़ना ।
ग—ग	गवाला	गवाला ।
ग—ज	आरोग्य	आरोज्ञ ।
4. घ संबंधी अशुद्धियाँ		
घ—ग	घूँघट	घूँगट ।
5. च संबंधी अशुद्धियाँ		
च का लोप	मगरमच्छ	मगरमछ ।
	अनुच्छेद	अनुछेद ।
6. छ संबंधी अशुद्धियाँ		
छ—च	मछली	मचली ।
छ—छ	उच्छवास	उच्छवास ।
7. ज संबंधी अशुद्धियाँ		
ज—ज	जरा (तनिक)	जरा (बुढ़ापा) ।

	ज—झ	शुद्ध	अशुद्ध
	जु—ज	जहाज	झाज ।
	ज्ञ—ग्य	उज्ज्वल	उज्जवल ।
		ज्ञान	ग्यान ।
8. झ संबंधी अशुद्धियाँ	झ—ज	खीझना	खीजना ।
		झंझट	झंजट ।
		झूठा	जूठा ।
9. ढ संबंधी अशुद्धियाँ	ढ—ठ	उच्छिष्ट	उच्छिष्ठ ।
		भट्ठी	भट्ठी ।
10. ठ संबंधी अशुद्धियाँ	ठ—ट	श्रेष्ठ	श्रेष्ट ।
11. ड संबंधी अशुद्धियाँ	ड—ढ	गाड़ी	गाडी ।
	ड़—ढ	बड़	बढ ।
	ड़—र	चिड़िया	चिरिया ।
12. ढ/ड़ संबंधी अशुद्धियाँ	ढ—ड	ढूँढना	ढूँडना ।
	ढ—ढ	पढ़ना	पढना ।
13. ण संबंधी अशुद्धियाँ	ण—न	कारण	कारन ।
		हरियाणा	हरियाना ।
	ण—न्	पुण्य	पुन्य ।
		पेण्टर	पेन्टर ।
		झण्डा	झन्डा ।
14. त संबंधी अशुद्धियाँ	त—ट	जुतना	जुटना ।
	त—थ	भरत	भरथ ।
	तृ—त्रि	तृतीय	त्रितीय ।
	त्र—तर	त्रिभुज	तिरभुज ।
	त आगम	चौथा	चौत्था ।
15 थ संबंधी अशुद्धियाँ	थ—त	शपथ	शपत ।

	शुद्ध राजस्थान	अशुद्ध राजस्थान ।
16. द संबंधी अशुद्धियाँ		
द—ड	दण्ड	डंड ।
द—त	शहद	शहत ।
द—ध	उदाहरण	उधारण ।
द लोप	श्रद्धा	श्रधा ।
17. ध संबंधी अशुद्धियाँ		
ध—द	पौधा	पौदा ।
ध—ध्य	अंतर्धान	अंतर्धान ।
18. न संबंधी अशुद्धियाँ		
न—न्	गिनती	गिन्ती ।
न्—न	सांत्वना	सानत्वना ।
न—ण	खाना	खाणा ।
19. प संबंधी अशुद्धियाँ		
प—प्	पराधीन	प्राधीन ।
प—फ	तड़पना	तड़फना ।
प्—प	स्वप्न	स्वपन ।
20. फ/फ़ संबंधी अशुद्धियाँ		
फ—प	सफेद	सपेद ।
फ़—फ	काफी	काफी ।
21. ब संबंधी अशुद्धियाँ		
ब—प	बताशा	पताशा ।
ब—भ	बहाना	भाना ।
ब—व	बल्ब	बल्ब ।
22. भ संबंधी अशुद्धियाँ		
भ—ब	थंभ	थंब ।
23. म संबंधी अशुद्धियाँ		
म—ण	परिमाण	परिणाम ।
म—व	कोर्तिमान	कीर्तिमान ।
24. य संबंधी अशुद्धियाँ		
य—ऐ	जय	जऐ, जै ।
य—व	दीया	दीवा ।
यो—ई	अनुयायी	अनुयाई ।

य लोप	शुद्ध	अशुद्ध
य आगम	अध्ययन	अध्यन ।
25. र संबंधी अशुद्धियाँ	पूजनीय	पूज्यनीय ।
र—ऋ	जाग्रत	जागृत ।
र—इ	उर्दू	उड़दू ।
र—र	स्वर्ग	स्वरग ।
26. ल संबंधी अशुद्धियाँ		
ल—न	लखनऊ	नखलऊ ।
ल—ल्	जलसा	जल्सा ।
ल्—ल	कल्पना	कलपना ।
27. व संबंधी अशुद्धियाँ		
व—द	जिम्मावार	जिम्मेदार ।
व—व	वन	बन ।
वान—मान	गुणवान	गुणमान ।
व—व्	वयस्क	व्यस्क ।
व का लोप	स्वावलंबन	स्वालंबन ।
28. श संबंधी अशुद्धियाँ		
श—स	शुभ	सुभ ।
श्—श	ईश्वर	ईशवर ।
श् का लोप	दुश्शासन	दुशासन ।
29. ष संबंधी अशुद्धियाँ		
ष—क्ष	आकर्षण	आकर्क्षण ।
ष—श	विषाद	विशाद ।
30. स संबंधी अशुद्धियाँ		
स—स्	असमर्थ	अस्मर्थ ।
स्—स	परस्पर	परसपर ।
स का लोप	निस्संकोच	निसंकोच ।
स्त्र—स्त्र	सहस्र	सहस्त्र ।
31. ह संबंधी अशुद्धियाँ		
ह—न्ह	चिह्न	चिन्ह ।
ह्य—म्ह	ब्रह्म	ब्रम्ह ।
ह्व—व्ह	जिह्वा	जिव्हा ।
ह का लोप	सप्ताह	सप्ता ।

(ग) अयोगवाह संबंधी अशुद्धियाँ

- | | | |
|-------------------------------|--------------|---------------|
| 1. अनुस्वार संबंधी अशुद्धियाँ | शुद्ध | अशुद्ध |
| अनुस्वार—न् | चंडीगढ़ | चन्डीगढ़ । |
| | झंडा | झन्डा । |
| अनुस्वार—अनुनासिक | दिनांक | दिनाँक । |
| अनुस्वार—म् | संवेग | सम्भेग । |
| 2. अनुनासिक संबंधी अशुद्धियाँ | | |
| अनुनासिक—अनुस्वार | हँस (हँसना) | हंस (पक्षी) । |
| अनुनासिक लोप | नाँद (खुरली) | नाद (ध्वनि) । |
| अनुनासिक-स्थानापन्न | महँगाई | मँहगाई । |
| 3. विसर्ग संबंधी अशुद्धियाँ | | |
| विसर्ग लोप | अन्तःकरण | अन्तकरण । |
| | प्रातः | प्रात । |
| विसर्ग—र | अन्तः कथा | अन्तर कथा । |

(घ) व्याकरण नियम संबंधी अशुद्धियाँ

1. संधि संबंधी

अ को आ	अत्यधिक	अत्याधिक ।
	निरपराध	निरापराध ।
आ—अ	जन्माष्टमी	जन्मष्टमी ।
ई—इ	नीरोग	निरोग ।
उ—ऊ	दुरुपयोग	दुरूपयोग ।
ए—इ	नरेन्द्र	नरिन्द्र ।
ऐ—ए	सदैव	सदेव ।
त्—त्	महत्त्व	महत्व ।
न्—न	तन्मय	तनमय ।
ल का लोप	उल्लास	उलास ।
	पुल्लिग	पुलिग ।
श लोप	निश्शंक	निशंक ।
स लोप	निस्संदेह	निसदेह ।

2. वचन परिवर्तन संबंधी

इ को ई	नदियाँ	नदीयाँ ।
उ—ऊ	हिन्दुओं	हिन्दूओं ।
याँ—आँ	नदियाँ	नदिआँ ।
ये—ए	रूपये	रुपए ।

3. लिंग संबंधी	शुद्ध	अशुद्ध
इ को ई	धोबिन	धोबीन ।
	स्वामिनी	स्वामीनी ।
य का लोप	कवयित्री	कवित्री ।
आ को अ	साम्राज्ञी	सम्राज्ञी ।

4. प्रत्यय योग संबंधी		
आ को अ (इक)	व्यावहारिक	व्यवहारिक ।
इ को ई	उपयोगिता	उपयोगीता ।
ई—इ (ईय)	भारतीय	भारतिय ।
ऐ को इ (इक)	ऐतिहासिक	इतिहासिक ।
औ को ऊ (इक)	भौगोलिक	भूगोलिक ।

5. समास संबंधी		
इ को ई	खेतिहर	खेतीहर ।
योजक लोप	राम-कृष्ण	रामकृष्ण ।

(ङ) वाक्य संरचना संबंधी

बोली का प्रभाव वाक्य संरचना पर भी पड़ता है। यदि किसी व्यक्ति के भाषण को टेपरिकार्ड करें और फिर उन वाक्यों की संरचना का विश्लेषण करें तो हमें ज्ञात होगा कि वाक्य संरचना उतनी व्याकरण संगत नहीं है जितनी लिखते समय होती है। लेखन को सामान्यतः मौन भाषण का लिखित रूप कहा जाता है।

IV वर्तनी की अशुद्धियों को दूर करने के उपाय

वर्तनी संबंधी अशुद्धियों के कारण और अशुद्धियों के प्रकार की जानकारी के बाद इन अशुद्धियों को दूर करने के उपायों के विषय में वैज्ञानिक विधि अपनाई जा सकती है। नीचे इन्हीं उपायों पर व्योरेवार चर्चा की जाएगी।

1. व्यक्तिगत कारणों का उपचार

व्यक्तिगत कारणों पर प्रकाश डालते समय कहा गया है कि बुद्धि की मंदता और शारीरिक दोष वर्तनी की अशुद्धियों के कारण बनते हैं। यदि कोई बालक मंदबुद्धि है तो उसे मारपीट कर या डरा धमका कर हतोत्साहित नहीं करना चाहिए। उसकी मानसिक सीमाओं को देखकर सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए। इनके प्रति उत्तम नीति प्रताड़ना की बजाय लड़ाना है।

शारीरिक दोष का आभास होने पर बच्चे के अभिभावकों की सहायता से

समय रहते उसका उपचार कराना चाहिए। पढ़ाई लिखाई से पहले उत्तम स्वास्थ्य आवश्यक है।

2. स्वभाव का परिष्कार

शिक्षा का उद्देश्य स्वभाव का परिष्कार करना है। सौन्दर्य बोध से सुखि का विकास होता है। सौन्दर्यबोध के विकास से लेखन भी प्रभावित होता है। स्वभाव के परिष्कार से संवेगात्मक स्थिरता आती है। संवेगात्मक स्थिरता वर्तनी को प्रभावित करती है।

यदि पठन अभ्यास बालक के स्वभाव का अंग बन पाए तो वर्तनी की अशुद्धियाँ स्वतः ठीक हो जाएँगी क्योंकि पठन और शुद्ध लेखन का सह सम्बन्ध है। पठन से शब्द का मूर्तरूप मस्तिष्क में स्थापित होता है।

3. उच्चारण का परिष्कार

अशुद्ध उच्चारण के कारण होने वाली अशुद्धियों का निराकरण शुद्ध उच्चारण अभ्यास से कराया जाए। जैसे श—ष, क्त, प्त, त्र, र आदि के उच्चारण का अभ्यास।

4. सामाजिक जागरूकता

कई बार मुख्य स्थलों पर लगे सरकारी और व्यावसायिक विज्ञापन तथा नामपट्ट अशुद्ध वर्तनी में लिखे होते हैं। बहुत से लोग इसे मानक वर्तनी समझ कर उसी अशुद्धि को अपने लेखन में दोहराते हैं। सामाजिक जागरूकता से इस प्रकार की अशुद्धियों पर नियंत्रण रखा जा सकता है।

5. लिपि की जटिलता का उपचार

पहले संकेत दिया जा चुका है कि लिपि की जटिलता वर्तनी संबंधी अशुद्धियों का एक कारण है। इस समस्या को धैर्यपूर्वक क्रमिक अभ्यास से सुलझाया जा सकता है। इसके समाधान के लिए निम्नलिखित उपाय किए जाने चाहिए।

(क) लेखन आरंभ योग्यता के विकास पर बल

लेखन आरंभ योग्यता वर्तनी की अशुद्धियों को दूर करने का उपचारात्मक उपाय है। इसकी चर्चा पीछे लेखन की शिक्षा पर प्रकाश डालते समय की जा चुकी है।

(ख) दृष्टि भेद अभ्यास

दृष्टि भेद अभ्यास भी पठन आरम्भ योग्यता का अंग है। इस अभ्यास से

बनावट की दृष्टि से स्थूल और सूक्ष्म भेद वाले वर्णों की पहचान कराई जा सकती है। इस अभ्यास से जहाँ पठन सुगम होगा वहाँ वर्तनी की अशुद्धियाँ भी कम होंगी।

(ग) वर्ण अवयव विश्लेषण का अभ्यास

हिन्दी लिपि के लेखन की दृष्टि से कठिन वर्णों का अभ्यास उन वर्णों को छोटे खंडों या अवयवों में बाँट कर कराया जा सकता है। इस विषय पर लेखन आरंभ योग्यता अभ्यास के समय चर्चा की जा चुकी है।

(घ) संयुक्त वर्ण लेखन अभ्यास

संयुक्त वर्ण देवनागरी लिपि की विशेषता है। इनकी आवश्यकता शुद्ध उच्चारण के लिए अनुभव की गई। अध्यापक वर्णों की सूची तैयार करके व्यौरे-वार अभ्यास करा सकते हैं। उदाहरण के लिए “क” वर्ण को लीजिए। यह किन-किन वर्णों के साथ मिलता है इसका नमूना नीचे दिया गया है :—

क् + क = कक	पक्का।	क् + ख = कख	मक्खन।
क् + ट = कट	डाक्टर।	क् + त = कत	भक्त।
क् + म = कम	रक्मणी।	क् + य = कय	क्या।
क् + र = क्र	क्रम।	क् + ल = कल	क्लेश।
क् + व = कव	बवार।	क् + श = कश	नक्शा।
क् + ष = क्ष	क्षमा।	क् + स = क्स	अक्स।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि ‘क’ का योग हिन्दी में केवल 12 स्थितियों में ही होता है। हर वर्ण के साथ इसका योग नहीं होता। अन्य वर्णों के योग की सूचियाँ इसी प्रकार तैयार की जा सकती हैं। ऐसी सूचियाँ बच्चों की सहायता से भी बनाई जा सकती हैं। (पूर्ण विवरण के लिए देखिए लेखक की ‘शुद्ध हिन्दी लेखन,’ नामक पुस्तक)।

(ङ) मात्रा योग अभ्यास

लेखन आरंभ योग्यता और लेखन की शिक्षा पर चर्चा करते समय बताया जा चुका है कि हिन्दी में निम्नलिखित प्रकार से मात्राओं का योग वर्ण के साथ होता है —

- (क) पूर्व—जिस।
- (ख) आगे—गया।
- (ग) नीचे—कुछ।
- (घ) मध्य—रुपया।

(ङ) शिरो रेखा के ऊपर—सके ।

(च) शिरो रेखा के ऊपर तथा आगे—कहो ।

योग की इन स्थितियों को बच्चों के सामने स्पष्ट करना चाहिए । एक बार ये संकल्पनाएँ स्पष्ट हो जाने पर वर्तनी की अशुद्धियाँ दूर होती जाएँगी ।

(च) संयुक्त व्यंजन से पूर्व इ की मात्रा का योग

अर्धव्यंजन के कुछ उदाहरण ऐसे हैं जिनके साथ ह्रस्व “इ” की मात्रा का योग विशेष प्रकार से होता है। “इ” की मात्रा एक नहीं बल्कि दो व्यंजन पीछे भी चली जाती है। ऐसे शब्दों की सूची बच्चों के प्रयोग के लिए बनाई जा सकती है। जैसे—

मक्खियाँ अग्नि ।

मस्जिद पश्चिम ।

चिट्ठियाँ टिट्ठियाँ ।

पण्डित

(छ) रेफ (र्) का योग

‘र्’ से युक्त शब्दों के पठन और लेखन दोनों में भूल हो जाती है। र् जिस वर्ण पर जोड़ा जाता है उससे पहले बोला जाता है। जैसे—मर्मज्ञ । यहाँ ‘र्’ पहले “म” के बाद तथा दूसरे “म” से पहले है। अतः मर्मज्ञ उच्चारण होगा। इसी प्रकार जहाँ इसका उच्चारण होता है उसके अगले वर्ण की शीर्ष पाई पर इसका योग होगा। ऐसे शब्दों की सूची स्वयं विद्यार्थियों की सहायता से बनवाएँ। जैसे—

कर्क	मूर्ख	मार्ग	दीर्घ ।
खर्च	अर्जुन	निर्झर	चाट ।
कार्ड	कर्ण	बर्तन	अर्थ ।
दर्द	निर्धन	कर्नल	दर्पण आदि ।

यहाँ शब्दों में “र्” का योग दिखाने की स्थितियाँ दर्शाई गई हैं। यदि किसी शब्द में र् के बाद दो या दो से अधिक अर्ध वर्ण हों तो र् का योग पूर्ण वर्ण पर ही होगा जैसे—वत्स्यं । यहाँ र् त् से पूर्व उच्चरित होगा ।

(ज) र (ऱ) के योग की अशुद्धियाँ

शीर्षमध्य अर्ध पाई वाले वर्णों में (ट ड न ह आदि) इसका योग वर्ण के नीचे होता है। इन वर्णों को छाँटकर इस योग का अभ्यास कराना चाहिए जैसे—
टंक । ड्रामा । द्रष्टा । ह्रास आदि ।

अंत पाई वाले कर्ण (ग स आदि) तथा मध्य पाई वाले वर्ण (क फ आदि) में इसका योग “र” के रूप में होता है। जैसे—

ग्राम । पात्र ।
क्रम । फाक ।

(झ) र और ऋ में भ्रम

शीर्षमध्य अर्ध पाई तथा अंत पाई वाले वर्ण में “र” और “ऋ” के योग में भ्रम होता है। “र” वर्ण है जिसका रूप “र” बनता है और “ऋ” की मात्रा का रूप “ृ” बनता है इसका भेद नीचे दिए गए उदाहरणों से स्पष्ट किया जाएगा :—

(1) “ऋ” मात्रा वाले शब्द —

गृह । पृथक । वृथा । हृदय । शृंगार । सृष्टि । वृद्धि ।

(2) “र” युक्त शब्द —

ग्रह । त्रास । स्रष्टा । ब्रज ।

(ञ) पंचम—अक्षर नियम

(1) ड, ञ, ण, न, म क्रमशः कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग के पंचम अक्षर हैं। जिस समय ये व्यंजन स्वर विहीन होते हैं तो इनको विकल्प से अनुस्वार या वर्ण पर बिन्दी के रूप में लिखा जाता है। लेखन और प्रकाशन सुविधा के लिए विकल्प से अनुस्वार को प्रोत्साहन देना अच्छा है लेकिन भाषा के सीखने वाले को पंचम अक्षर नियम का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

नियम अनुसार प्रत्येक वर्ग के किसी वर्ण से पहले यदि स्वर विहीन पंचम वर्ण आए तो सवर्गी अर्थात् उसी वर्ग का पंचम वर्ण लगेगा अन्य का नहीं। नीचे इस बात को शुद्ध और अशुद्ध शब्दों के उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया है—

	शुद्ध		अशुद्ध
क. अङ्ग/	अङ्ग/	अंग	अण्ग
कङ्घा/	कङ्घा		कन्घा ।
शङ्ख/	शङ्ख/	शंख	शञ्ख ।
ख. पञ्जा/	पंजा		पन्जा ।
पञ्छी/	पंछी		पन्छी ।
पञ्जाब/	पंजाब		पन्जाब ।
ग. कण्ठ/	कंठ		कन्ठ ।

झण्डा/	झंडा	झन्डा ।
ठण्डा/	ठंडा	ठन्डा ।
घ. अन्न		अंन ।
आनन्द/	आनंद	आन्नद ।
ङ. कम्पन/	कंपन	कन्पन ।

(2) कुछ परिस्थितियों में एक ही पंचम वर्ण एकबार स्वर रहित तथा एक बार स्वर सहित निरंतर आता है । ऐसी स्थिति में वर्ण का विकल्प से अनुसार नहीं बनता । आधा वर्ण ही लिखा जाता है । यह बात नीचे उदाहरणों से स्पष्ट की गई है :—

शुद्ध	अशुद्ध
विषण्ण	विषण्ण ।
अन्न	अंन ।
गन्ना	गंना ।
अम्मा	अंमा ।

इन उदाहरणों में शब्द का अंतिम वर्ण स्वर सहित पंचम अक्षर है तथा अंतिम अक्षर से पूर्व उसी वर्ण का स्वर रहित पंचम अक्षर है । ऐसी स्थिति में स्वर रहित वर्ण को अनुस्वार या बिन्दी में बदलने की भूल नहीं करनी चाहिए ।

(3) स्पर्श व्यंजनों के अतिरिक्त भी यदि पदान्त “म्” के बाद कोई अन्य अन्तस्थ या ऊष्म वर्ण आए तो “म्” का नित्य अनुस्वार होता है । यथा :— सम् + रचना = संरचना ।

शुद्ध	अशुद्ध
संरचना	सन्रचना ।
संसार	सन्सार ।
संयोग	सन्योग ।
संहार	सन्हार ।

परन्तु यदि अपदांत (शब्द के मध्य में) “म्” के बाद अंतस्थ या अनुनासिक व्यंजन हो तो अनुस्वार का नियम लागू नहीं होता :—

शुद्ध	अशुद्ध
रम्य	रंय ।
सम्यक्	संयक् ।

(4) अनुस्वार संबंधी कुछ अन्य अशुद्धियाँ भी की जाती हैं । इनके कुछ उदाहरण नीचे दिए गए हैं :—

शुद्ध	अशुद्ध
सम्मुख	सन्मुख ।

संशय	सन्शय ।
सम्मान	सन्मान ।
हंस	हन्स ।
(5) कहीं-कहीं अनुस्वार और अनुनासिक में भी भ्रम होता है । यथा :—	
शुद्ध	अशुद्ध
भाति	भान्ति ।
दांत	दांत ।
हँसना	हंसना ।

6. व्याकरणिक अशुद्धियाँ

व्याकरण के ज्ञान के अभाववश वर्तनी की अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ होती हैं । इन अशुद्धियों का निराकरण नियमों की जानकारी देकर किया जा सकता है । यहाँ इन्हीं कुछ नियमों पर संक्षेप में चर्चा की जा रही है :—

क. लिंग परिवर्तन सम्बन्धी

(1) लिंग परिवर्तन के समय “इन” प्रत्यय जुड़ने पर जो स्त्रीलिंग रूप बनाया जाता है उससे अंत की दीर्घ “ई” बहुधा त्त्वस्व हो जाती है :—

धोबी	धोविन	(धोवीन नहीं) ।
स्वामी	स्वामिन	(स्वामीन नहीं) ।

(2) हिन्दी में स्त्रीलिंग के रूप कुछ स्थितियों में स्वतंत्र होते हैं, “ई” प्रत्यय लगा कर नहीं । यथा :—

सम्राट	साम्राज्ञी	(सम्राटी नहीं) ।
कवि	कवयित्री	(कवित्री नहीं) ।

ख. वचन परिवर्तन

एकवचन को बहुवचन बनाते समय अंत की दीर्घ ई तथा ऊ त्त्वस्व हो जाते हैं । यथा :—

(1) नदी	नदियाँ ।
बिन्दी	बिन्दियाँ ।
(2) भालू	भालुओं ।
हिन्दू	हिन्दुओं ।

ग. प्रत्यय योग

कुछ प्रत्ययों के योग से मूल शब्द में परिवर्तन आ जाता है । उदाहरण के

लिए “इक” प्रत्यय के योग में पूर्व स्वर को वृद्धि होती है :—

समाज (अ को आ)	सामाजिक ।
इतिहास (इ को ऐ)	ऐतिहासिक ।
भूगोल (ऊ का औ)	भौगोलिक ।
एक (ए को ऐ)	ऐकिक ।
उद्योग (उ को औ)	औद्योगिक ।

घ. संधि

दो शब्दों में संधि करते समय भी उनमें आने वाले परिवर्तन के प्रति सावधान रहने की आवश्यकता है। नीचे इसी प्रकार के कुछ उदाहरण दिए गए हैं :—

1. निर् + अपराध	= निरपराध ।
2. जन्म + अष्टमी	= जन्माष्टमी ।
3. महत् + त्व	= महन्त्व ।
4. निः + रोग	= नीरोग ।
5. निः + काम	= निष्काम ।

ङ. समास

दो शब्दों का सामासिक रूप बनने पर उनमें परिवर्तन हो जाता है। प्रथम शब्द के अंत की दीर्घ “ई” लृस्व “इ” में परिवर्तित हो जाती है। यथा—

मंत्री + मंडल	= मंत्रिमंडल ।
खेती + हर	= खेतिहर ।

शुद्ध वर्तनी के लिए इसी प्रकार अन्य परिवर्तनों के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता है।

7. शैक्षिक वातावरण में सुधार

वर्तनी की अशुद्धियों को दूर करने के लिए शैक्षिक वातावरण में सुधार करने की आवश्यकता है। यदि निम्नलिखित बिन्दुओं पर बल दिया जाए तो इस क्षेत्र में काफ़ी सुधार संभव हैं।

क. आरंभिक कक्षाओं में लेखन पर बल

आज पाठ्यक्रम के अधिक भार के कारण छोटी कक्षाओं में लेखन अभ्यास पर उतना समय नहीं लगाया जाता जितना पहले लगाया जाता था। लेखन के लिए समय सारणी में कम से कम एक घंटे का समय नित्य नियुक्त किया जाए।

ख. लेखन की वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग

जैसे पठन से पूर्व पठन आरंभ योग्यता पर बल दिया जाता है वैसे ही लेखन से पूर्व लेखन आरंभ योग्यता के विकास पर बल देने की आवश्यकता है। इस बात की चर्चा अन्यत्र भी हो चुकी है।

ग. श्रुतलेख पर बल

छोटी कक्षाओं में सप्ताह में तीन दिन श्रुतलेख दिया जाए और उसका मूल्यांकन भी अवश्य किया जाए। बच्चों में प्रतिस्पर्धा पैदा करने के लिए उन्हें अंक भी दिए जाएँ।

घ. श्रुतलेख सामग्री का निर्माण

अध्यापकों को ऐसी सामग्री का विशेष रूप से निर्माण करना चाहिए जो श्रुतलेख के लिए वैज्ञानिक विधि से बनी हो। उदाहरण के लिए उन शब्दों की सूचियाँ बनाई जाएँ जो अधिकतर अशुद्ध लिखे जाते हैं। लेखक ने स्वयं ऐसे तीन हजार शब्दों की सूची अपनी पुस्तक “शुद्ध हिन्दी लेखन” के अंत में दी है।

इसी प्रकार अ, आ, इ, उ आदि की अशुद्धियों को वर्गबद्ध किया जाए। एक दिन में केवल एक वर्ण की अशुद्धियों पर श्रुत लेख दिया जाए।

अशुद्ध वर्तनी वाले शब्दों को अलग से न देकर उनको वाक्यों में प्रयोग द्वारा दिया जाए। इन शब्दों को इस प्रकार वाक्यों में दें कि कोई उपयोगी अनुच्छेद बन सके। श्रुत लेख में इन्हीं अनुच्छेदों का प्रयोग किया जाए।

कक्षा में वर्तनी सुधारने संबंधी चाटों का स्थायी प्रदर्शन किया जाए।

ङ. अध्यापकों का सहयोग

अध्यापक पहले स्वयं अपनी वर्तनी के प्रति सचेत रहें। अन्य विषयों के अध्यापक भी इस दिशा में अपना उत्तरदायित्व समझें। प्रधानाध्यापक भी बच्चों की अभ्यास पुस्तिकाओं के निरीक्षण के लिए कुछ समय निकालें।

च. निरीक्षकों का सहयोग

निरीक्षक भी क्षेत्रीय, मंडलीय या अन्य किसी स्तर पर श्रुतलेख संबंधी प्रतियोगिताओं का आयोजन कराएँ और पुरस्कार आदि की व्यवस्था करें।

छ. नवीनतम प्रौद्योगिकी का उपयोग

आज कुछ विद्यालय सलाइड्स, वीडियो, ओवरहैड प्रोजेक्टर, दूरदर्शन

आदि साधनों का प्रयोग कर रहे हैं। वर्तनी की शिक्षा में इन मशीनों का प्रयोग क्रांतिकारी सिद्ध हो सकता है।

8. प्रशासनिक जागरूकता

प्रशासन को भी नीति संबंधी ऐसे निर्णय लेने चाहिए जिससे वर्तनी की द्विरूपता न रहे। सरकारी कागज़-पत्रों में वर्तनी संबंधी विषमताएँ होती हैं। कहीं 'नई' तो कहीं 'नयी', कहीं 'आए' कहीं 'आये' लिखा जाता है। आज विभिन्न स्तरों पर अनेक हिन्दी अधिकारी नियुक्त हैं। उन्हें भी हिन्दी वर्तनी की एकरूपता के प्रति अधिक सजग होना होगा।

अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों के स्थान, नाम आदि शब्दों को हिन्दी में लिखते समय अनेकरूपता बरती जाती है। विदेशी शक्तियाँ इन्हें हमारी भाषा के उपहास का साधन बनाती हैं। इसी प्रकार अंग्रेज़ी शब्दों को देवनागरी लिपि में लिखते समय भी विविधता दृष्टिगत होती है।

V. वर्तनी संशोधन की विधियाँ

वर्तनी संशोधन की वैज्ञानिक विधियाँ अपनाकर लेखन की अशुद्धियों को कम किया जा सकता है। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं :—

प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर की कक्षाओं में वर्ण, मात्रा-योग, संयुक्त व्यंजन आदि की अशुद्धियाँ होती हैं। छोटे बच्चे अपनी अशुद्धियों को स्वयं या आपस में शुद्ध नहीं कर सकते। इन कक्षाओं में अध्यापक पर वर्तनी शोधन का भार अधिक रहता है। बड़ी कक्षाओं में त्रुटियाँ वर्गीकृत की जा सकती हैं नीचे अशुद्धि शोधन की कुछ विधियाँ सुझाई गई हैं।

1. व्यक्तिगत जाँच

अध्यापक को हर विद्यार्थी की व्यक्तिगत अशुद्धियों पर ध्यान देना होगा। उत्तम विधि यही है कि अध्यापक शोधन करें और विद्यार्थी को अशुद्धि-स्थान बताते हुए वर्तनी ठीक करें। व्यक्तिगत संपर्क से विद्यार्थी को वर्तनी की भूल के स्थल का आभास होगा।

2. अशुद्धि शोधन की नियमित जाँच

अशुद्धि शोधन अनुवर्ती जाँच-पड़ताल के अभाव में अर्थहीन है। अध्यापक इस बात का निरीक्षण करें कि क्या विद्यार्थी ने अशुद्ध वर्तनी को शुद्ध करके लिखा है। मनोवैज्ञानिक आधार तो यह है कि विद्यार्थी पहले अशुद्ध वर्तनी को ठीक लिखे। फिर उस शब्द का वाक्य में भी प्रयोग करे।

3. सामूहिक जाँच

यदि श्रुतलेख, निबंध, पत्र आदि की सामग्री समान है तो उस सारी सामग्री या संभावित कठिन शब्दों को श्यामपट्ट पर भी लिखा जा सकता है। सभी विद्यार्थी श्यामपट्ट की सामग्री से अपनी वर्तनी की जाँच कर लें। यह आवश्यक नहीं कि सभी विद्यार्थी अपनी अशुद्धि का ठीक मिलान कर पाएँ। वे अशुद्धि शोधन में भी एक दूसरे की सहायता कर सकते हैं।

4. उच्च कक्षा के छात्रों का सहयोग

यदि विद्यालय में एक या दो ही अध्यापक हैं और विद्यार्थियों की संख्या अधिक है तो अशुद्धि शोधन में बड़ी कक्षा के विद्यार्थियों की सहायता ली जा सकती है। इस सहयोग से पूर्व यह अनिवार्य है कि उन विद्यार्थियों को पहले एक दो अभ्यास पुस्तिकाओं की जाँच करके कुछ प्रशिक्षण दे दिया जाए।

5. अशुद्धियों की तालिका

कापी या अभ्यास-पुस्तिका के अंतिम 15-20 पृष्ठ अशुद्धि शोधन के लिए छोड़ दिए जाएँ। विद्यार्थी अध्यापक द्वारा शुद्ध किए गए शब्द को इन पृष्ठों पर स्वयं अपने हाथ से लिखे और प्रतिदिन इन शब्दों को दृष्टि से गुजार ले। ये शब्द 150-200 से अधिक नहीं होते क्योंकि शिक्षा में एक आधारभूत लिखित शब्दावली का ही प्रयोग होता है।

यदि इन शब्दों को अकारादि क्रम से लिखवा दिया जाए तो अधिक अच्छा हो।

6. अशुद्धियों का वर्गीकरण

अध्यापक द्वारा निकाली गई अशुद्धियों को वर्गीकृत करके भी लिखा जा सकता है। उदाहरण के लिए 'आ', 'इ' संबंधी अशुद्धि एक-एक पृष्ठ पर अलग लिखी जा सकती हैं। यदि बाज़ार, आसमान, आवाज़, आज़ादी के स्थान पर कोई विद्यार्थी बजार, असमान, अवाज, अजादी लिखता है तो ये अशुद्धियाँ 'आ' संबंधी हुईं। विद्यार्थी को अपनी अशुद्धियों के प्रकार का आभास हो जाए तो वह अधिक सचेत हो कर लिखेगा।

7. विशेष अभ्यास माला का निर्माण

अध्यापक एक ही प्रकार की त्रुटि पर अभ्यास माला बना सकता है, "आ" संबंधी अशुद्धियों का अभ्यास नमूना* देखिए :—

* शुद्ध हिन्दी लेखन—डा० जय नारायण कौशिक, पृ० 11.

“आज्ञादी आसमान से नहीं टपकती। आज्ञादी बाज़ार में नहीं विकती। आज्ञादी के लिए सामाजिक आन्दोलन करना पड़ता है। कोई व्यावहारिक उपाय सोचना पड़ता है।”

यहाँ मोटे टाइप वाले शब्दों में बहुधा ‘आ’ संबंधी अशुद्धियाँ होती हैं। अतः सायास ऐसा अभ्यास बनाया गया है जिसमें ‘आ’ संबंधी शब्द अधिकाधिक हों।

इसी प्रकार व्याकरण संबंधी अशुद्धियों (संधि, समास, लिंग, वचन) के अभ्यासों का निर्माण किया जा सकता है।

3. उच्चारण अभ्यास

पहले भी संकेत दिया जा चुका है कि वर्तनी की अशुद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण अशुद्ध उच्चारण भी होता है। अतः ‘आ—ज्ञादी’ का उच्चारण खंडशः करवाया जाए। इस उपचारात्मक विधि से वर्तनी की अशुद्धियाँ कम होंगी।

वर्तनी की अशुद्धियाँ दूर करने के लिए सतत अभ्यास की आवश्यकता है। हर नई कक्षा के साथ कुछ नवीन शब्दावली का समावेश किया जाता है। इसके लिए निदानात्मक और उपचारात्मक दोनों विधियाँ अपनाते रहने की आवश्यकता है।

व्यावहारिक कार्य

1. प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्चतम माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की अभ्यास-पुस्तिकाओं से कक्षानुसार अशुद्ध शब्द छांटना।
2. उपर्युक्त अशुद्ध शब्दों के अशुद्धि-स्थल का विश्लेषण करना।
3. उपर्युक्त अशुद्धियों के विश्लेषण के आधार पर अशुद्धि का कारण ज्ञात करना।
4. अशुद्ध उच्चारण के आधार पर की गई अशुद्धियों की सूची बनाना।
5. लिपि के ज्ञान के अभाव के आधार पर की गई अशुद्धियों की सूची बनाना।
6. अशुद्ध उच्चारण के आधार पर की गई अशुद्धियों को दूर करने के लिए उपचारात्मक अभ्यास का निर्माण करना।
7. लिपि ज्ञान के अभाव के कारण की गई अशुद्धियों को दूर करने के लिए उपचारात्मक अभ्यासों का निर्माण करना।
8. कक्षा के विभिन्न विभागों, विद्यालय की विभिन्न कक्षाओं या निकट के क्षेत्र के विद्यालयों में श्रुतलेख प्रतियोगिताओं का आयोजन करना।
9. शिक्षा विभाग के सहयोग से वर्तनी की अशुद्धियों को दूर करने के लिए गोष्ठियों का आयोजन करना।
10. श्रुतलेख शब्दावली कोश का निर्माण करना।

संदर्भ

1. शुद्ध हिन्दी लेखन, डा० जय नारायण कौशिक, आर्य बुक डिपो, करोलबाग, दिल्ली (1986) ।
2. देवनागरी लिपि तथा हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली (1983) ।
3. लेखन बोधन पुस्तिका—भाग-1, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा (1977) ।
4. शुद्ध हिन्दी, डा० हरदेव बाहरी (1977).
5. देवनागरी लेखन तथा हिन्दी वर्तनी व्यवस्था, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा (1976) ।
6. सुचित्रा, एन० सी० ई० आर० टी० (1979) ।

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. 'अशुद्ध वर्तनी रहित लेखन, निरंतर लेखन और सावधानीपूर्वक पठन का परिणाम है', इस कथन की समीक्षा करें ।
2. लेखन की अशुद्धियों के क्या-क्या प्रमुख कारण हैं ? आप लेखन में वर्तनी की अशुद्धियाँ दूर करने के लिए क्या उपाय करेंगे ?
3. 'यदि लेखन की अशुद्धियों का वर्गीकरण करके अभ्यास कराया जाए तो अध्यापक और विद्यार्थी दोनों का श्रम बचेगा', इस कथन की समीक्षा करें तथा वर्तनी की प्रमुख अशुद्धियों का वर्गीकरण करें ।
4. श्रुतलेख सामग्री निर्माण का क्या आधार होना चाहिए ? विद्यार्थियों की वर्तनी शोधन के लिए आप कौन सी विधि को तुलनात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ समझते हैं ।
5. टिप्पणी लिखें—
 1. अनुस्वार तथा अनुनासिक संबंधी अशुद्धियाँ ।
 2. संयुक्त व्यंजन संबंधी अशुद्धियाँ ।
 3. देवनागरी लिपि में मात्राओं का योग ।
 4. पंचम अक्षर नियम ।
 5. 'इक' प्रत्यय योग संबंधी अशुद्धियाँ ।

अध्याय 13

गद्य शिक्षण

1. सामान्य परिचय

साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति की दृष्टि से वर्तमान युग को गद्य युग की संज्ञा देना सर्वथा समीचीन है। गत एक सौ वर्षों में तथा स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य में गद्य साहित्य की प्रचुर रचना हुई है। इन गद्य रचनाओं में विपुल विविधता विद्यमान है।

विज्ञान हो या राजनीति, वाणिज्य हो अथवा अर्थशास्त्र, सामाजिक ज्ञान हो या मनोविज्ञान, धर्म हो या नीतिशास्त्र, सभी गद्य के माध्यम से जनमानस तक पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हैं। व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय कार्य व्यापार गद्य के माध्यम से सम्पन्न हो रहे हैं।

गद्य शिक्षण की विधियों तथा गद्य के अंगों के बारे में जानकारी से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि गद्य क्या है ?

II. गद्य क्या है

गद्य शब्द संस्कृत की 'गद्' धातु से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है स्पष्ट कहना। जहाँ कविता में भाव को स्पष्ट न कहकर व्यंजना आदि से प्रकट किया जाता है वहाँ गद्य में भाव को स्पष्ट और सरल विधि से प्रकट किया जाता है।

संस्कृत के आचार्यों ने छंदहीन रचना को गद्य कहा है। विश्वनाथ के अनुसार छंद-बंध-हीन शब्दार्थ योजना को गद्य कहते हैं :—

वृत्तगंधोज्झितं गद्यम् ।

—साहित्य दर्पण, 6/330

दंडी ने कहा है कि सुबंत, तिङन्त पदसमुदाय में गण-मात्रा आदि के नियत-पाद का न होना गद्य है।

अपादः पदसंतानो गद्यम् ।

काव्यादर्श, 6/23

अंग्रेजी साहित्य में गद्य का पर्याय 'प्रोज़' शब्द है। प्रोज़ का अर्थ स्पष्ट करते हुए कोशकार लिखते हैं :—Prose—1. straight, direct, unadorned speech. 2. Language spoken or written, as in ordinary usage, without metre or rhyme. अर्थात् स्पष्ट तथा अनलंकृत भाषा में कही गई

बात अथवा छंदरहित रूप में मौखिक या लिखित रूप में सामान्य ढंग से कही गई बात गद्य है।

अरबी तथा उर्दू में गद्य को नस्र अर्थात् 'इबारत' या 'नज़्म का उल्टा' कहा गया है।

संक्षेप में सभी भाषाओं में गद्य को सामान्य भाषा में कही गई बात माना गया है। हिन्दी भाषा के वर्तमान गद्य को व्यापक अर्थ में लिया जा सकता है। यह केवल बौद्धिक, सूचनात्मक तथा नीरस रचना मात्र नहीं है अपितु इसमें भावात्मक, रसात्मक तथा सरस रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। गद्य शिक्षण के समय इन पक्षों की अनदेखी नहीं की जा सकती।

III. गद्य शिक्षण का महत्त्व

1. दैनिक जीवन में

पीछे गद्य की सामान्य जानकारी देते समय इसके उपयोग की व्यापकता पर संक्षेप में बताया जा चुका है। हमारे अनेक दैनंदन व्यापार गद्य के माध्यम से संपन्न होते हैं। विद्यालयों में गद्य-शिक्षण इन कार्यव्यापारों को कुशलतापूर्वक संपन्न करने में सहायक होता है।

2. व्याकरण सम्मत भाषा सीखने में

गद्य कवीनाम् निकषम् वर्दान्ति अर्थात् साहित्यकार की कसौटी गद्य मानी गई है। गद्यकार को व्याकरण के समस्त नियमों का पालन करते हुए लिखना पड़ता है। उसकी भाषा परिमार्जित और परिनिष्ठित होती है। विद्यार्थी जिस समय गद्य को पढ़ता है तो उसकी अपनी भाषा भी व्याकरण सम्मत हो जाती है।

3. गद्य की शैलियों की जानकारी के लिए

आज गद्य की नाटक, कहानी, निबंध, उपन्यास, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्टाज, आलोचना आदि अनेक विधाएँ हैं। गद्य शिक्षण से विद्यार्थी साहित्य की इन समस्त शैलियों से परिचित हो जाता है।

4 ज्ञानोपलब्धि साधन के रूप में

आज गद्य ज्ञानोपलब्धि का प्रमुख साधन है। सामाचार पत्र तथा पत्रिकाएँ ज्ञान-विज्ञान की बातें हमें गद्य के रूप में विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं।

5. भाषिक तत्वों की जानकारी के लिए

भाषा-तत्वों की जानकारी का सरल साधन गद्य है कविता नहीं। उच्चारण, बलाघात, वर्तनी, शब्द रूपान्तर, उपसर्ग, प्रत्यय, संधि, समास, शब्द भंडार, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, पदबंध तथा वाक्य संरचनाएँ आदि भाषिक तत्वों का ज्ञान गद्य के माध्यम से सुगमतापूर्वक दिया जा सकता है।

6. भावात्मक विकास के लिए

आज गद्य के क्षेत्र में इस प्रकार का प्रचुर साहित्य उपलब्ध है जिसके द्वारा छात्रों का भावात्मक विकास संभव है। संस्कारों का परिमार्जन गद्य के माध्यम से संभव है। सन् 1986 में घोषित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में विद्यार्थियों के भावात्मक विकास पर विशेष बल दिया गया है। विद्यालय में गद्य की विभिन्न विधाओं में सत् साहित्य पढ़ने के अवसर जुटाने की आवश्यकता है ताकि भावात्मक विकास संभव हो सके।

IV. गद्य शिक्षण के उद्देश्य

गद्य शिक्षण के समस्त प्रमुख उद्देश्य पीछे वाचन शिक्षण के उद्देश्यों के अधीन दिए जा चुके हैं। (देखिए वाचन-शिक्षा)।

गद्य की विभिन्न विधाओं के शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्यों का उल्लेख भी उन विधाओं की शिक्षण प्रणालियों का वर्णन करते समय किया जा चुका है यहाँ उनकी आवृत्ति अनावश्यक ही होगी।

V. गद्य की विभिन्न विधाएँ

सामान्यतः बारहवीं कक्षा तक गद्य की निम्नलिखित विधाओं का परिचय विद्यार्थियों को कराया जाता है :—

1. निबंध।
2. कहानी।
3. पत्र।
4. संवाद।
5. जीवनी।
6. आत्मकथा।
7. लघु नाटिका, एकांकी, नाटक।
8. संस्मरण।
9. रेखाचित्र।
10. उपन्यास।

इन सभी विधाओं के विषय में संबंधित अध्यायों के अतिरिक्त रचना की शिक्षा अध्याय में भी विस्तृत चर्चा की गई है।

VI. गद्य शिक्षण की विधियाँ

उद्देश्य आधारित शिक्षण हेतु साहित्य की प्रत्येक विधा को पढ़ाने के लिए उपयुक्त विधि का चुनाव आवश्यक है। यह विधि छात्रों के बौद्धिक स्तर, विषय वस्तु तथा उद्देश्य आदि को ध्यान में रखकर निश्चित की जाती है।

गद्य शिक्षण की मुख्य विधियाँ निम्नलिखित हैं :—

1. सूक्ष्म अध्ययन (इंटेंसिव स्टडी)
2. स्थूल अध्ययन या अतिरिक्त अध्ययन (एक्सटेंसिव स्टडी)

गद्य की इन विधियों का प्रयोग इन्हें विभिन्न अंगों में बाँटकर किया जा सकता है। गद्य शिक्षण के अंग नीचे दिए गए हैं :—

VII. गद्य शिक्षण के अंग

सूक्ष्म अध्ययन के लिए गद्य शिक्षण को तीन अंगों में बाँटा जा सकता है :—

1. वाचन
2. व्याख्या
3. विचार विश्लेषण।

नीचे गद्य शिक्षण के इन अंगों पर चर्चा की गई है और अगले पृष्ठ पर इन्हें चार्ट द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

1. वाचन

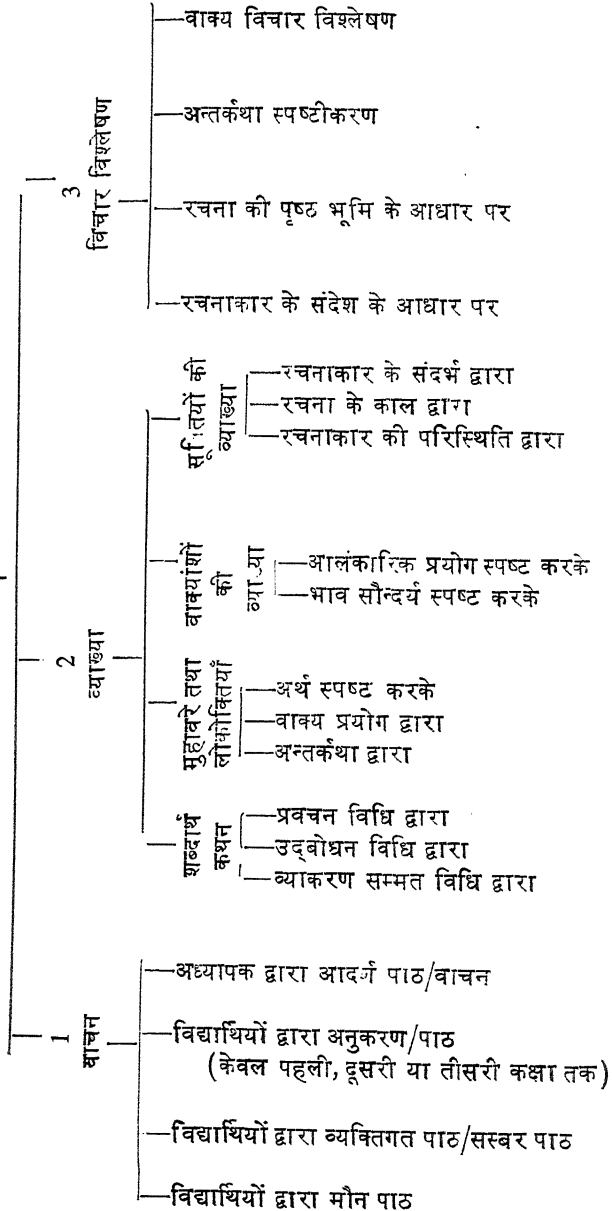
प्राथमिक कक्षाओं में वाचन कौशल के विकास के लिए वाचन का अभ्यास बहुत आवश्यक है। वाचन कौशल ही बड़ी कक्षाओं में स्वाध्याय का रूप धारण कर लेता है।

वाचन शिक्षण को निम्नलिखित सोपानों में विभाजित किया जा सकता है :—

वाचन के सोपान

- क. अध्यापक द्वारा आदर्श पाठ।
- ख. विद्यार्थियों द्वारा अनुकरण पाठ।
- ग. विद्यार्थियों द्वारा व्यक्तिगत पाठ।
- घ. विद्यार्थियों द्वारा मौन पाठ।

गद्य शिक्षण के अंग



क. अध्यापक द्वारा आदर्श पाठ

अध्यापक द्वारा आदर्श पाठ कई दृष्टियों से आवश्यक है। आदर्श पाठ के निम्नलिखित लाभ हैं :—

1. विद्यार्थी का पाठ्य सामग्री से सामान्य परिचय हो जाता है।
2. वह कठिन शब्दों का गृह उच्चारण ग्रहण करता है।
3. पढ़ने की उचित गति का ज्ञान होता है।
4. पठन सामग्री को सार्थक इकाइयों में बाँटकर पढ़ने का अभ्यास होता है।
5. उचित हाव-भाव तथा उचित भाव-भंगिमा में वाचन करने की क्रिया सीखता है।
6. पुस्तक से भय दूर होता है और स्वतः वाचन की पृष्ठभूमि तैयार होती है।

आदर्श पाठ या वाचन संबंधी विवादास्पद प्रश्न और उनका समाधान

आदर्श वाचन संबंधी कई विवादास्पद प्रश्न हैं। इन विवादों का वैज्ञानिक और शैक्षिक दृष्टि से समाधान होना अनिवार्य है। नीचे इस पर संक्षेप में चर्चा की गई है।

1. आदर्श वाचन किस कक्षा तक

अध्यापक किन कक्षाओं तक विद्यार्थियों के सम्मुख आदर्श वाचन करे? प्राथमिक कक्षाओं में वाचन-कौशल का विकास किया जाता है। इन कक्षाओं की समस्त पठन सामग्री सूक्ष्म अध्ययन के लिए होती है। इन कक्षाओं में विद्यार्थियों को वाचन की उचित गति, उचित स्वर, उचित आरोह-अवरोह, उचित वाचन मुद्रा तथा उचित हाव-भाव आदि का ज्ञान देने के लिए आदर्श वाचन की आवश्यकता स्वतः सिद्ध है।

बड़ी कक्षाओं में जो विद्यार्थी हिंदी को दूसरी भाषा के रूप में सीख रहे हों उनके लिए भी आदर्श वाचन की आवश्यकता है क्योंकि अधिकांश शब्द और ध्वनियाँ उनके लिए नई होती हैं।

2. किस-किस सामग्री का आदर्श वाचन किया जाए ?

गद्य शिक्षण में अध्यापक कई प्रकार की विधाओं से विद्यार्थियों को अवगत कराता है। सभी विधाओं के वाचन की अपनी-अपनी शैली होती है। सामान्य गद्य पाठ, कहानी, नाटक, संवाद आत्म-कथा, जीवनी आदि के वाचन के अपने-अपने ढंग हैं।

इस बात की चर्चा पहले की जा चुकी है कि प्राथमिक कक्षाओं में सभी

पाठों के आदर्श वाचन का औचित्य है। यदि अध्यापक अनुभव करे कि माध्यमिक तथा उच्च विद्यालयी कक्षाओं में इन विधाओं के नमूने देने की आवश्यकता है तो इन का आदर्श वाचन किया जाना चाहिए।

बड़ी कक्षाओं में गद्य की विषय सामग्री में लक्षणा तथा व्यंजना शक्ति का प्रयोग होने लगता है। गद्य में शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स आदि रसों का समावेश होता है। इन वर्णनों का आदर्श वाचन देना विषय के प्रति न्याय करना ही होगा।

स्पष्ट है कि आदर्श वाचन का आधार छोटी बड़ी कक्षा न होकर विषय सामग्री की प्रकृति ही स्वयं इसकी आवश्यकता सिद्ध करती है।

3. आदर्श वाचन पाठ के कितने अंश का ?

यह भी विवाद का प्रश्न है कि कक्षा के सम्मुख आदर्श वाचन गद्य के कुछ अंश का करें अथवा सम्पूर्ण पाठ का।

छोटी कक्षाओं में लगातार सम्पूर्ण अंश का पाठ करने से बच्चों की रुचि पाठ से हट जाती है। कक्षा में अनुशासनहीनता बढ़ती है। अतः सम्पूर्ण पाठ का एक ही समय में आदर्श वाचन उचित नहीं है। पाठ को विषय के विकास की दृष्टि से कुछ सोपानों में बाँट लेना अच्छा रहता है।

बड़ी कक्षाओं में सभी पाठों का आदर्श वाचन करना न तो संभव है और न आवश्यक। गहन अध्ययन के लिए निर्धारित पाठों का भाषा और भाव की दृष्टि से पूर्ण अथवा आंशिक वाचन करना ही यथेष्ट रहेगा।

उच्च कक्षाओं में पाठ के कुछ अंश का आदर्श वाचन करने के बाद शेष अंश विद्यार्थियों को स्वयं घर पर पढ़कर आने को कहा जा सकता है।

4. पाठ का उद्देश्य और आदर्श वाचन

किस पाठ का आदर्श वाचन करने की आवश्यकता है इसका संबंध पाठ के लिए निश्चित किए गए उद्देश्यों पर भी आश्रित है।

उदाहरण के लिए किसी कक्षा की पाठ्य पुस्तक में एक कहानी का पाठ है। उद्देश्य के आधार पर इसकी कई विधियाँ संभव हैं। अध्यापक चाहे तो इसका एक बार में सम्पूर्ण वाचन कर सकता है। वह इसके कुछ अंशों को पढ़कर विद्यार्थियों से प्रश्नों के उत्तर निकालने को कह सकता है। वह चाहे तो कहानी को व्यक्तिगत वाचन के रूप में पढ़वा सकता है। प्रश्न केवल यह है कि अध्यापक ने पाठ शिक्षण के क्या क्या उद्देश्य निश्चित किए हैं। यदि उच्चारण सुधारने, या भावानुकूल पढ़ने पर बल है तो आदर्श पाठ अवश्य करना चाहिए।

ख. अनुकरण वाचन

वाचन सीखने की आरंभिक अवस्थाओं में अनुकरण वाचन की बहुत आवश्यकता है। अनुकरण वाचन के समय संकोचशील स्वभाव के विद्यार्थी भी वाचन में सक्रिय भागीदार बन जाते हैं और उनको उच्चारण का अभ्यास भी हो जाता है।

पहली तथा दूसरी कक्षा तक अनुकरण पाठ उपयोगी रहता है। तीसरी कक्षा से इसका अभ्यास कम किया जा सकता है।

जिन विद्यार्थियों को हिंदी शिक्षण द्वितीय भाषा के रूप में करवाया जा रहा है। उन्हें भी अनुकरण वाचन की बहुत आवश्यकता है। ऐसे विद्यार्थियों को उच्चारण की दृष्टि से कठिन शब्दों के उच्चारण का सामूहिक अवसर भी दिया जाना चाहिए।

प्रौढ़ों को अनुकरण वाचन देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उनकी बौद्धिक चिन्तन प्रक्रिया विकसित अवस्था में होती है।

अनुकरण वाचन के समय प्रत्येक वाक्य को सार्थक इकाइयों में बाँट लेना चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि समस्त पाठ का अनुकरण वाचन करवाया जाए।

ग. व्यक्तिगत पाठ या सस्वर वाचन

विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों पर व्यक्तिगत वाचन के अभ्यास की आवश्यकता है। इससे विद्यार्थियों में शुद्ध वाचन करने की स्पर्धा की भावना जाग्रत होती है। विद्यार्थी वाचन के उद्देश्यों के प्रति सचेत हो जाता है।

व्यक्तिगत वाचन पहले उन विद्यार्थियों से करवाना चाहिए जिनका उच्चारण शुद्ध हो। ऐसा करने से कमजोर विद्यार्थियों को श्रवण का अतिरिक्त अवसर मिलता है।

हर वाचन में कम से कम चार-पाँच विद्यार्थियों से व्यक्तिगत वाचन करवाया जाए। इस प्रकार की व्यवस्था की जाए कि सप्ताह में हर विद्यार्थी को वाचन का अवसर मिले।

प्रत्येक विद्यार्थी को कम से कम एक या दो अनुच्छेद के वाचन का अवसर दिया जाए।

व्यक्तिगत वाचन के समय उच्चारण संबंधी अशुद्धियों का होना स्वाभाविक ही है। ऐसी अवस्था में विद्यार्थी का उपहास नहीं उड़ाया जाए। शेष विद्यार्थियों को भी इस ओर सचेत कर देना चाहिए।

अशुद्ध उच्चरित शब्दों का उच्चारण शुद्ध कराने के लिए इन उपायों को अपनाया जा सकता है :—

(1) विद्यार्थी सचेत होकर उस शब्द को स्वयं पुनः पढ़े।

(2) अन्य विद्यार्थी द्वारा उसका उच्चारण करवाया जाए ।

(3) अध्यापक स्वयं शुद्ध उच्चारण का नमूना प्रस्तुत करे ।

यथासंभव पहले दो उपायों को अपनाएँ तो अधिक उचित रहेगा ।

व्यक्तिगत पाठ के अतिरिक्त विद्यार्थी अभ्यास के लिए घर पर भी वाचन का कार्य कर सकते हैं ।

घ. विद्यार्थियों द्वारा मौन पाठ

1. मौन पाठ का महत्त्व

मौन पाठ से अभिप्राय है मुँह से बिना ध्वनि निकाले पढ़ना । मौन पाठ में वाचन के यांत्रिक पक्ष पर बल न होकर बौद्धिक पक्ष पर बल होता है ।

मौन पाठ वाचन का उच्च स्तर माना जाता है । इस क्रिया में वाचन की गति सामान्य वाचन से कई गुणा बढ़ जाती है । नेत्रों का केन्द्र बिन्दु वर्ण, शब्द या वाक्य मात्र न रहकर समूचा अनुच्छेद तक बन जाता है ।

मौन पाठ सामान्यतः उस सामग्री का किया जाता है जो विद्यार्थी पहले पढ़ चुका हो अथवा जो सामग्री गहन अध्ययन की न होकर द्रुतपाठ के लिए हो ।

मौन वाचन में पाठक विषय के मुख्य बिन्दुओं का अवलोकन उसी प्रकार करता है जैसे वाद्ययान का यात्री पहाड़ की मुख्य चोटियों को देख पाता है ।

2. मौन पाठ का उचित समय

मौन पाठ के विषय में एक विचारणीय प्रश्न यह है कि मौन पाठ किस समय और कितने काल के लिए करवाया जाए ?

पहली और दूसरी कक्षा में वाचन के यांत्रिक पक्ष पर बल होता है । यांत्रिक पक्ष के अभ्यास तथा उसके निरीक्षण के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी सस्वर पाठ करे । अतः इन दोनों कक्षाओं में मौन पाठ की आवश्यकता नहीं है ।

तीसरी कक्षा से विद्यार्थियों को मौन पाठ का अवसर दिया जाना चाहिए । आरंभिक कक्षाओं में तीन चार मिनट तक तथा बड़ी कक्षाओं में यह काल 8 से 10 मिनट तक बढ़ाया जा सकता है ।

3. मौन पाठ शिक्षण के पश्चात् या पूर्व ?

यह एक विवाद का विषय है कि मौन पाठ पाठ पढ़ाने के पश्चात् करवाया जाए अथवा पाठ पढ़ाने से पूर्व । इस विषय में दोनों पक्षों की अपनी-अपनी सम्मतियाँ हैं ।

4. पाठ पढ़ाने के बाद मौन पाठ से लाभ

पाठ की व्याख्या आदि करने के बाद मौन पाठ के निम्नलिखित लाभ हैं :—

- (1) विद्यार्थी पठन सामग्री से परिचित हो जाता है।
- (2) पठन सामग्री के भाव स्पष्ट हो जाते हैं।
- (3) प्रश्नों पर संतुलित प्रतिक्रिया अभिव्यक्त की जा सकती है।
- (4) पाठ पढ़ाने के बाद बचे शेष समय का उचित लाभ हो सकता है।

5. पाठ पढ़ाने से पूर्व मौन पाठ से लाभ

पाठ पढ़ाने से पूर्व मौन पाठ के निम्नलिखित लाभ हैं :—

- (1) प्रत्येक विद्यार्थी सक्रिय होकर पढ़ता है।
- (2) स्वयं चिन्तन की भावना जाग्रत होती है।
- (3) पठन के प्रति आत्मविश्वास जाग्रत होता है।
- (4) स्वाध्याय की प्रवृत्ति बन जाती है।

6. निष्कर्ष

‘मौनपाठ पढ़ाने से पूर्व अथवा बाद में’ इस प्रश्न का आधार पठन सामग्री को मानना चाहिए। यदि पठन सामग्री द्रुतपाठ के लिए है, भाव सरल है या पाठ को पहले कभी पढ़ा दिया गया है तो मौन पाठ पहले भी करवाया जा सकता है, किन्तु गहन विषय पर पहले ही मौन पाठ का अवसर देना समय का अपव्यय ही माना जाएगा। बहुत संभव है कि विद्यार्थी अध्यापन से पूर्व किसी बिन्दु पर गलत धारणा का निर्माण कर लें और बाद में उसका सुधार भी नहीं करें। कुछ भी हो मौन पाठ पुस्तकालय के अध्ययन की पृष्ठभूमि तैयार करता है। अतः इसका अभ्यास कक्षा और बच्चे के स्तर के अनुसार करवाना चाहिए।

2. व्याख्या

ऊपर वाचन से संबंधित विभिन्न पक्षों पर चर्चा की गई। वाचन के बाद गद्यांश की व्याख्या की जाती है। वाचन को यदि पठन का यांत्रिक या बाह्य-पक्ष मान लें तो व्याख्या गद्यांश का भाव पक्ष या आन्तरिक पक्ष है। पठन की परिभाषा के अनुसार यह केवल वर्णों को पहचानने मात्र की प्रक्रिया नहीं है अपितु यह शब्दों के पीछे निहित भावों को समझने की प्रक्रिया है। गद्यांश की व्याख्या करते समय मुख्यतः निम्नलिखित पक्षों को स्पष्ट करना होता है :—

क. शब्दों की व्याख्या।

ख. मुहावरों, लोकोक्तियों, वाक्यांशों तथा सूक्तियों की व्याख्या।

ग. वाक्यों की व्याख्या ।

क. शब्दों की व्याख्या

भाषा की पाठ्य पुस्तक की चर्चा करते समय इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि शब्दावली पाठ्य पुस्तक का महत्वपूर्ण अंग है । आरम्भिक कक्षाओं में पाठ्य पुस्तक की शब्दावली सीमित तथा उच्च कक्षाओं में यह विस्तृत होती जाती है । पाठ्य पुस्तक का एक उद्देश्य विद्यार्थी के शब्द भंडार का विकास भी होता है । शब्द भंडार का व्यवस्थित रूप से विकास तभी होगा जब शब्दों की व्याख्या विधिवत् की जाए । इस विषय को उचित संदर्भ में समझने के लिए इस पर नीचे अधिक चर्चा की जाती है ।

1. शब्दावली का वर्गीकरण

कठिन शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए पाठ्य पुस्तकों में प्रयुक्त शब्दावली का वर्गीकरण कई आधार पर किया जा सकता है । यथा—

शब्दार्थ स्पष्ट करने के लिए शब्दावली का वर्गीकरण

भाषा कौशलों के आधार पर	विकास के आधार पर	व्याकरणिक स्वरूप के आधार पर	शब्द की प्रकृति के आधार पर
1. श्रुत शब्दावली	1. तत्सम	1. संज्ञा	1. स्थूल भाव द्योतक
2. मौखिक शब्दावली	2. तद्भव	2. सर्वनाम	2. सूक्ष्म भाव-द्योतक
3. पठन शब्दावली	3. देशज	3. विशेषण	3. ध्वन्यात्मक
4. लिखित शब्दावली	4. बोलियाँ (आंचलिक)	4. क्रिया	
	5. आगत	5. क्रिया विशेषण	
	क. अरबी	6. मूल शब्द	
	ख. फ़ारसी	7. रूपान्तरित शब्द	
	ग. अंग्रेज़ी	क. संधि के आधार पर	
	घ. अन्य	ख. समास के आधार पर	
		ग. काल के आधार पर	
		घ. वचन के आधार पर	
		ङ. लिंग के आधार पर	
		च. प्रत्यय योग के आधार पर	
		छ. उपसर्ग योग के आधार पर	

क. भाषा कौशलों के आधार पर शब्दावली-वर्गीकरण

(1) श्रुत शब्दावली

श्रुत शब्दावली वह शब्दावली है जिसे सुनने पर विद्यार्थी उसका अर्थ ग्रहण कर सके। विद्यार्थी ऐसी शब्दावली से अपने पड़ोसी के समान परिचित होता है। प्रवेशिका, पहली पुस्तक आदि की शब्दावली के चयन का आधार श्रुत शब्दावली को बनाया जाता है।

(2) मौखिक या अभिव्यक्त शब्दावली

अभिव्यक्त शब्दावली वह शब्दावली है जिसका उपयोग विद्यार्थी मौखिक अभिव्यक्ति के समय करता है। प्राथमिक कक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों में इस प्रकार की शब्दावली का समावेश होता है। यह शब्दावली श्रुत शब्दावली से भी सीमित मात्रा में होती है। यह आवश्यक नहीं कि बालक जिस शब्दावली को सुनता है वह उसका अभिव्यक्ति में प्रयोग करता हो।

(3) पठन शब्दावली

पठन शब्दावली वह न्यूनतम शब्दावली है जिसकी जानकारी किसी विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। यह शब्दावली अर्थ की दृष्टि से कठिन होती है। ऐसी शब्दावली को समझाने के लिए उसकी संकल्पना का बोध कराना पड़ता है। विद्यार्थियों को कठिनाई से बचाने के लिए इसे स्तरित कर दिया जाता है। प्रत्येक कक्षा में इसे कुछ सौ शब्दों तक सीमित करने के अतिरिक्त प्रत्येक पृष्ठ के आधार पर भी इसे सीमाबद्ध किया जाता है। इसके अतिरिक्त अभ्यास के लिए हर पृष्ठ या पाठ में इसकी आवृत्ति की जाती है।

(4) लिखित शब्दावली

लिखित शब्दावली वह शब्दावली है जिसका उपयोग विद्यार्थी अपने लेखन कार्य के लिए करता है। यह शब्दावली सीमित होती है। बच्चे के पास श्रुत शब्दावली तो बहुत होती है लेकिन वह लेखन के समय उन सभी शब्दों को पुनः स्मरण नहीं कर पाता। लिखित शब्दावली अभिव्यक्त शब्दावली से भी कम होती है।

ख. विकास के आधार पर शब्दावली वर्गीकरण

भाषा-काल-क्रम और साहित्यिक आधार पर इस प्रकार की शब्दावली निम्नलिखित नामों से अभिहित की जाती है :—

(1) तत्सम शब्द

तत्सम शब्द वे शब्द हैं जो मूलतः संस्कृत भाषा से हिंदी में आए हैं। इन शब्दों का प्रयोग प्राथमिक कक्षा से ही आरंभ हो जाता है। कक्षा, आज्ञा, छात्र आदि तत्सम शब्द हमारी शिक्षा की अभिन्न शब्दावली हैं। बड़ी कक्षाओं में इस शब्दावली का प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है।

(2) तद्भव शब्द

तद्भव शब्दावली वह शब्दावली है जिसका विकास तत्सम शब्दों से हुआ है। यह शब्दावली अपेक्षाकृत कम कठिन है और इसका प्रयोग हमारी पाठ्य-पुस्तकों में खुलकर किया जाता है। हाथ, सर, कान आदि ऐसे ही शब्द हैं।

(3) देशज

देशज शब्द वे शब्द हैं जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत आदि के शब्दों से सिद्ध नहीं होती। इनका प्रयोग दैनिक व्यापार में होता है। पाठ्य पुस्तकों में ऐसे शब्द सीमित मात्रा में मिलते हैं। जैसे—डुगडुगी, लोटा आदि।

(4) बोली या आंचलिक शब्दावली

बोली या आंचलिक शब्दावली उन शब्दों का समूह है जो हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्रों की बोलियों में हैं। कवि और साहित्यकार (विशेषतः आंचलिक) इन शब्दों का प्रयोग चाहे अनचाहे पाठ्य पुस्तकों में कर बैठते हैं। जैसे—मोट, अलीक, मोथरा, खतोड़, गितवाड़ा आदि।

(5) आगत या विदेशी शब्दावली

ये शब्द ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक कारणों से लगभग गत एक हजार वर्षों से हमारे जीवन का अंग बन गए हैं और जिनके विदेशत्व पर हमें संदेह-सा होने लगता है। हमारी पाठ्य पुस्तकों में और विशेषतः उच्च कक्षाओं में ये शब्द विकीर्ण रूप में मिल जाते हैं। फ़ारसी, अरबी, अंग्रेजी, पुर्तगाली आदि अनेक भाषाओं के शब्द हमें अपने से लगते हैं। यथा—चिमटा, पेचक, सूरत, कोट, बटन आदि।

ग. व्याकरणिक स्वरूप के आधार पर शब्दावली का वर्गीकरण

पाठ्य पुस्तकों की शब्दावली का एक आधार उसका व्याकरणिक स्वरूप भी है। यथा—

1. सज्ञा।

2. सर्वनाम ।
3. विशेषण ।
4. क्रिया ।
5. क्रिया विशेषण ।
6. मूल शब्द ।
7. रूपान्तरित, उत्पन्न, व्युत्पन्न या निर्मित शब्द ।
8. संधि तथा समास निर्मित शब्द ।

घ शब्द की प्रकृति के आधार पर शब्दावली का वर्गीकरण

शब्द की प्रकृति के आधार पर भी शब्दावली का विभाजन किया जा सकता है । जैसे :—

1. स्थूल भाव द्योतक शब्द—चारपाई, कुर्सी आदि ।
2. सूक्ष्म भाव द्योतक शब्द—स्वागत, सम्मान आदि ।
3. ध्वन्यात्मक शब्द—कटकट, झमझम आदि ।

ङ. शब्द की शक्ति के आधार पर शब्दावली का वर्गीकरण

पाठ्य पुस्तकों में अभिधा के अतिरिक्त लक्षणा और व्यंजना में भी शब्दों का प्रयोग होता है । मुहावरे और लोकोक्तियाँ शब्द का अर्थ कुछ का कुछ कर देते हैं । जैसे—वह निरा गधा है । आप अक्ल की पुड़िया हैं । आप तो आप ही हैं । वाह रे मेरे सपूत !

निष्कर्ष

शब्दों के उपर्युक्त वर्गीकरण का संकेत देने का उद्देश्य है कि गद्यांश शिक्षण में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ स्पष्ट करते समय उन्हें उनकी मूल भावना या प्रकृति के अनुसार ग्रहण किया जाए ।

2. शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने की विधियाँ

पाठ्य पुस्तकों में प्रयुक्त नए शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए निम्न-लिखित विधियाँ अपनाई जा सकती हैं :—

शब्दार्थ स्पष्ट करने की विधियाँ

1	2	3
प्रवचन विधि	उद्बोधन विधि	व्याकरण सम्मत विधि
1. पर्यायवाची शब्द द्वारा	1. दृश्य विधान द्वारा	1. मूल शब्द निकालकर
2. परिभाषा द्वारा	2. अभिनय द्वारा	क. उपसर्ग हटाकर
3. अर्थ विस्तार द्वारा	3. कहानी द्वारा	ख. प्रत्यय हटाकर
4. अनुवाद द्वारा	4. वाक्य प्रयोग द्वारा	ग. संधि विच्छेद द्वारा
		घ. समास स्पष्ट करके
		ङ. काल, लिंग, वचन
		आदि आधार पर

1. प्रवचन विधि (टेलिंग मैथड)

प्रवचन विधि से अभिप्राय है कि शब्द के अर्थ को शब्दों के माध्यम से इस प्रकार बताना कि उसकी संकल्पना या बिम्ब स्पष्ट हो जाए। इस विधि से अर्थ स्पष्ट करने की कई उपविधियाँ हैं :—

(क) पर्यायवाची द्वारा

सागर — समुद्र ।

दिवाकर — सूर्य ।

अर्थ स्पष्ट करने के लिए दिया गया पर्यायवाची शब्द सरल होना चाहिए । कई बार अध्यापक ऐसे शब्द दे देते हैं जिनको वे भूल से सरल समझते हैं । यथा—विचित्र का अर्थ “अजीब” या खाड़ी का अर्थ “खलीज” बताना ।

(ख) परिभाषा द्वारा

कुछ शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए परिभाषा की आवश्यकता पड़ती है । परिभाषा कुछ शब्दों से लेकर दो तीन वाक्यों तक की हो सकती है । परिभाषाएँ विशेषकर पारिभाषिक शब्दावली या ऐसे शब्दों की देनी चाहिए जिनके पर्याय उपलब्ध नहीं हैं या जिन शब्दों की संकल्पना को स्पष्ट करने के लिए विस्तार की आवश्यकता है । यथा—खाड़ी—समुद्र का वह भाग जो तीन ओर स्थल से विरा हो ।

(ग) अर्थ विस्तार द्वारा

यदि शब्द की संकल्पना या बिम्ब को स्पष्ट करने के लिए अर्थ विस्तार

की आवश्यकता हो तो शब्द का अर्थ इस विधि द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। यथा—

सत्याग्रह—सत्य बात को मनवाने के लिए किया गया आग्रह। महात्मा गांधी ने पहले दक्षिणी अफ्रीका तथा फिर भारत में इसका प्रयोग अस्त्र के रूप में किया। नमक पर लगा कर हटवाने के लिए गांधी जी ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सत्याग्रह किया।

(घ) अनुवाद द्वारा

कुछ शब्द विदेशी भाषाओं के होते हुए भी ऐतिहासिक कारणों से हिंदी शब्दों से सरल और स्वाभाविक जान पड़ते हैं। ऐसे शब्दों का अर्थ अनुवाद द्वारा समझाया जा सकता है। यथा—

आयपत्र — बजट।

चिकित्सालय—अस्पताल (हॉस्पिटल)।

विशेष—प्रवचन विधि से अर्थ स्पष्ट करते समय विद्यार्थी का पक्ष निष्क्रिय तथा अध्यापक का सक्रिय रहता है। अतः इस विधि का प्रयोग बहुत आवश्यक होने पर ही किया जाए। सक्रिय विधियों का उपयोग सीखने के सिद्धान्त के अनुसार श्रेयस्कर है। नीचे सक्रिय विधियों के बारे में जानकारी दी जा रही है।

2. उद्बोधन विधि

इस विधि के अनुसार कठिन शब्द का अर्थ बताया नहीं जाता किन्तु विभिन्न क्रियाओं द्वारा छात्रों को उद्बुद्ध किया जाता है ताकि वे उस शब्द का अर्थ निकालने का स्वयं प्रयत्न करें। यह विधि स्वयं सीखने के सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें छात्र सक्रिय रहता है। इस विधि के कई उपभेद हैं। यथा—

(क) दृश्य विधान

किसी शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिए कोई दृश्य उपस्थित किया जाता है। यह दृश्य किसी वस्तु के वास्तविक रूप, उसका मॉडल, चित्र या रेखाचित्र आदि के रूप में हो सकता है।

यथा वायुयान का अर्थ स्पष्ट करने के लिए उपर्युक्त दृश्यों का प्रस्तुतीकरण कक्षा की सुविधा के अनुसार कराया जा सकता है।

इसी प्रकार “शिकारा”, “साधु”, “दूरदर्शन” आदि का अर्थ स्पष्ट किया जाना चाहिए।

(ख) अभिनय

आशीर्वाद, प्रार्थना, स्वागत, क्रोध, रौद्र, वीभत्स आदि शब्दों का अर्थ अभिनय से बताया जा सकता है ।

(ग) कहानियों द्वारा

कुछ शब्दों का अर्थ पौराणिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक आदि कहानियाँ सुनाकर स्पष्ट किया जा सकता है । यथा—

सत्यवादी—राजा हरिश्चंद्र की कहानी द्वारा ।

पितृभक्त—श्रवण कुमार की कहानी द्वारा ।

दानवीर—कर्ण की कहानी द्वारा ।

शहीद—भगतसिंह, चन्द्रशेखर, राजगुरु की कहानी द्वारा ।

देशभक्त—अब्दुल हमीद की जीवनी द्वारा ।

अध्यापक ये कहानियाँ सुनाकर पूछ सकता है कि ये किस प्रकार के व्यक्ति थे ? इस प्रकार की कहानियों से सत्य, पितृभक्ति, दानवीरता, शहीद जैसे शब्दों का विम्ब विद्यार्थी के मानसपटल पर अंकित हो जाता है ।

(घ) वाक्य प्रयोग द्वारा

कुछ शब्दों के अर्थ वाक्यों में प्रयोग करके समझाए जा सकते हैं । वाक्यांश मुहावरे, लोकोक्ति आदि का अर्थ इस प्रकार सरलता से ग्राह्य हो सकता है । यथा—

दूध में नहाया—रात की चाँदनी में ताजमहल दूध में नहाया-सा दीख पड़ रहा था ।

कान भरना—दासी मंथरा ने रानी कैकेयी के कान ऐसे भरे कि उसने श्रीराम को बनवास और श्री भरत को राजगद्दी देने का प्रस्ताव राजा दशरथ के सामने रख दिया ।

विशेष—अध्यापक को यह ध्यान रखना चाहिए कि उद्बोधन विधि का उपयोग प्रत्येक शब्द के लिए नहीं किया जा सकता । छोटी कक्षाओं में संकल्पनाओं को स्पष्ट करने के लिए उद्बोधन विधि का उपयोग लाभदायक है । बड़ी कक्षाओं में समय अभाव के कारण प्रवचन विधि का उपयोग उचित रहेगा ।

3. व्याकरण सम्मत (स्पष्टीकरण) विधि

इस विधि के अनुसार शब्द का अर्थ स्पष्ट करने लिए अधिकतर भाषा के व्याकरणिक पक्ष का आश्रय लिया जाता है । शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिए नीचे लिखी विधियाँ अपनाई जा सकती हैं :—

(क) मूल शब्द निकालना

बहुत से सरल शब्द रूपान्तर के कारण कठिन लगने लगते हैं। ऐसे शब्दों का मूल शब्द निकालवाना चाहिए। शब्दों का रूपान्तरण कई कारणों से होता है। उपसर्ग, प्रत्यय, संधि, समास, काल, लिंग, वचन परिवर्तन आदि से शब्द में परिवर्तन हो जाता है।

(1) उपसर्ग हटाकर

हिन्दी भाषा के अनेक शब्दों में उपसर्ग लगने से अर्थ बदल जाता है। ये उपसर्ग, संस्कृत, हिंदी तथा उर्दू आदि भाषाओं के हैं। हर उपसर्ग का कोई अर्थ होता है। कक्षा के स्तर के अनुसार उस उपसर्ग का अर्थ स्पष्ट करना चाहिए। जैसे—“अ” उपसर्ग लगने से शब्द का अर्थ विलोम हो सकता है। यथा—

समान—असमान।

नीचे कुछ शब्दों के साथ उपसर्ग लगाकर विषय को और स्पष्ट किया जा रहा है :—

संस्कृत उपसर्ग

उपसर्ग	रूपांतरित शब्द	मूल शब्द
अनु	अनुगमन	गमन
उप	उपमंत्री	मंत्री
निः	निस्वार्थ	स्वार्थ
परि	परिभ्रमण	भ्रमण
प्रति	प्रतिशत	शत
सु	सुविचार	विचार

हिंदी उपसर्ग

अ	अमानक	मानक
कु	कुदिन	दिन
दु	दुपहर	पहर
भर	भरपेट	पेट
प्रति	प्रतिदिन	दिन

उर्दू उपसर्ग

गैर	गैर हाज़िर	हाज़िर
बद	बदनाम	नाम
हम	हम सफ़र	सफ़र
हर	हर रोज़	रोज़

अंग्रेजी उपसर्ग

वाइस
सब

वाइस प्रेजिडेंट
सबएडीटर

प्रेजिडेंट
एडीटर

(2) प्रत्यय हटाकर

प्रत्यय हटाकर मूलशब्द निकलवाना बहुत ही रोचक क्रिया है। नीचे कुछ मुख्य प्रत्यय उदाहरण सहित दिए जाते हैं :—

आ—स्त्री प्रत्यय :—आदरणीय-आदरणीया, प्रिय-प्रिया।

इत—विशेषण प्रत्यय :—पुष्प-पुष्पित, हर्ष-हर्षित।

इक—विशेषण तथा संज्ञा प्रत्यय :—विज्ञान-वैज्ञानिक, दिन-दैनिक।

ज—जन्मा हुआ :—जल-जलज, पंक-पंकज।

त्व—संज्ञा प्रत्यय—सती-सतीत्व।

पन—बड़ा-बड़प्पन।

आना—जुर्म-जुर्माना, दस्त-दस्ताना।

इप्स—बुद्ध-बुद्धिप्स।

इस्ट—सोशिल-सोशलिस्ट।

(3) संधि-विच्छेद करके

संधि-विच्छेद द्वारा भी अर्थ स्पष्ट किया जाता है। यथा—

महोत्सव—महा + उत्सव।

विद्यालय—विद्या + आलय।

निष्कपट—निः + कपट।

सभी—सब + ही।

यही—यह + ही।

(4) समास स्पष्ट करके

समस्तपद का विश्लेषण करके अर्थ स्पष्ट किया जा सकता है। यथा—

सतसई—सात सौ (दोहों) का समूह।

चतुर्भुज—चार भुजाओं वाला (विष्णु)।

आमरण—मरण तक, मृत्युपर्यन्त।

अध्यापक को चाहिए कि वह किसी मानक व्याकरण का अध्ययन करें और विद्यार्थियों को भी उसे संदर्भ रूप में सुझाएँ।

3. शब्दों के अर्थ स्पष्ट करने संबंधी कुछ विचारणीय प्रश्न

अध्यापक के सम्मुख अर्थ स्पष्ट करने संबंधी कुछ विचारणीय प्रश्न होते हैं। इन पर चर्चा करना भी आवश्यक है।

(1) अर्थ स्पष्ट करने का उचित समय

कठिन शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने का कौन सा उचित समय है—वाचन से पूर्व, वाचन के समय अथवा वाचन के बाद ?

(2) वाचन से पूर्व

कुछ विद्वान पाठ में आने वाले कठिन शब्दों का अर्थ वाचन से पहले बताने के पक्ष में हैं। उनके अनुसार इस से पाठ की सामग्री और भाव सरलता से ग्रहण हो जाते हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह विचार उचित नहीं है। शब्द का अर्थ संदर्भ की दृष्टि से महत्त्व रखता है। शब्द का अर्थ रटा देना मात्र भाषा शिक्षण का उद्देश्य नहीं है।

कविता पढ़ाते समय कविता पढ़ाने से पूर्व कविता का भाव बताते हुए कुछ कठिन शब्दों का अर्थ प्रवचन विधि से बताने में कोई हानि नहीं है। किन्तु सारे पाठ के कठिन शब्द पहले लिखा देना उचित नहीं है।

(3) वाचन के समय

अन्य विद्वानों का विचार है कि कठिन शब्दों का अर्थ वाचन के समय बताना ही उपयुक्त है। वाचन के समय अर्थ बताने से शब्द का अर्थ संदर्भ के अनुसार स्पष्ट हो जाता है। लेखक का भाव पाठक को स्पष्ट हो जाता है।

वाचन के समय अर्थ स्पष्ट करने में यह कठिनाई होती है कि विद्यार्थी शब्द के अर्थ को पाठ का मुख्य उद्देश्य मान बैठता है। उसका ध्यान लेखक के मुख्य उद्देश्य या संदेश से हट जाता है। पाठ का प्रभाव रुक जाता है और पाठक पर वांछित प्रभाव नहीं पड़ पाता। छोटी कक्षाओं में विद्यार्थी शब्द का अर्थ लिखने में ही उलझ कर रह जाते हैं।

(4) वाचन के बाद

कुछ विद्वानों का कहना है कि वाचन के बाद अर्थ स्पष्ट करने का कोई लाभ नहीं। पढ़ने का मुख्य लक्ष्य लेखक के संदेश को ग्रहण करना है। यदि कठिन शब्दों के कारण यह नहीं हो पाया तो वाचन का क्या लाभ ?

(5) मध्यवर्ती मार्ग

यदि कठिन शब्दों के अर्थ स्पष्ट करने का मध्यवर्ती मार्ग अपनाया जाए तो उत्तम रहेगा। इसके अनुसार वाचन के समय कठिन शब्द का अर्थ स्पष्ट किया जाए। अध्यापक चाहे तो कठिन शब्द को श्यामपट्ट पर लिख मात्र दे। इसका अर्थ बिना लेखक के संदेश से दूर गए मौखिक रूप से समझा दिया जाए। छात्रों को विशेष रूप से हिदायत की जाए कि शब्द का अर्थ वाचन के बाद अपनी अभ्यास पुस्तिका में लिखें। अर्थ लिखने के लिए पाठ योजना में अलग से समय निर्धारित करें।

4. अर्थ व्याप्ति की सीमा

कठिन शब्द का अर्थ विद्यार्थी को किस सीमा तक बताया जाए ? उदाहरण के लिए आम शब्द के प्रयोग के आधार पर अनेक अर्थ हैं। आम का एक फल है, आम का आकार अर्ध विराम जैसा है, आम एक रंग है, आम का अर्थ “सामान्य” भी है आदि। शब्द संसार में रुचि उत्पन्न करने के लिए यदाकदा एक दो शब्दों पर विद्वत्तापूर्ण चर्चा की जा सकती है किन्तु अधिक विद्वत्ता बघारना भी उचित नहीं है। कक्षा की सीमा-रेखा में रहकर शब्द का अर्थ स्पष्ट किया जाए।

5. कठिन शब्द और कोश का संदर्भ

बड़ी कक्षाओं में शब्दों के अर्थ बताए जाएँ अथवा कोश का संदर्भ मात्र दिया जाए। कोश से कठिन शब्द का अर्थ देखना और उसे संदर्भ के अनुसार घटित करना स्वाध्याय में रुचि उत्पन्न करने का अच्छा अवसर प्रदान करता है। अध्यापक कुछ पाठों के कठिन शब्दों के अर्थ कोश से निकालने को कह सकता है। बारहवीं कक्षा तक हर विद्यार्थी को कोश से शब्द का अर्थ देखने का अभ्यास होना चाहिए।

विद्यार्थियों की कठिनाई और समय का ध्यान रखते हुए शब्दों के अर्थ कक्षा में भी बताए जाने चाहिए।

6. कक्षा-कोश तथा व्यक्तिगत कोश

हमारे देश में अभी कक्षा-कोश तथा व्यक्तिगत कोश का महत्व लगभग नहीं के समान है। हिंदी भाषाभाषी प्रान्त के विद्यार्थी समझते हैं कि उनकी मातृभाषा हिंदी है अतः उन्हें कोश की क्या आवश्यकता। वास्तव में कोई भी विद्वान् किसी भाषा के सभी शब्दों का ज्ञाता नहीं हो सकता। हर व्यक्ति को अपनी सीमाएँ हैं।

अतः कक्षा अध्यापक कक्षाके अनुसार कोश तैयार करवा सकते हैं। जागरूक विद्यार्थी अपना व्यक्तिगत कोश भी बना सकते हैं। कठिन शब्दों की सूची छोटे कार्डों पर बनाकर उन्हें अकारादि क्रम में लगाया जा सकता है। कापी के पृष्ठों को अकारादि क्रम से निश्चित करके भी छात्रोपयोगी कोश का निर्माण किया जा सकता है।

ख. मुहावरों, लोकोक्तियों, वाक्यांशों तथा सूक्तियों की व्याख्या

शब्दों की व्याख्या पर विचार करने के बाद यहाँ हम मुहावरों, लोकोक्तियों, वाक्यांशों तथा सूक्तियों की व्याख्या पर विचार करेंगे। सूक्ष्म अध्ययन के लिए नियत पुस्तकों में भाषा का यह पक्ष सोद्देश्य सँजोया होता है। अध्यापक को इन्हें परखना चाहिए। पाठमाला में मोतियों के समान पिरोए लोकोक्तियों और मुहावरों की व्याख्या बहुत आवश्यक है। उनमें भाषा का व्यंजनात्मक और लाक्षणिक पक्ष मिलता है। भाषा का साहित्यिक पक्ष उनके प्रयोग से मुखर हो उठता है। भाषा के इन प्रयोगों की व्याख्या निम्नलिखित विधि से की जा सकती है :—

(1) मुहावरों तथा लोकोक्तियों की व्याख्या

मुहावरा मुख्यतया एक चमत्कारी वाक्य खंड होता है। यथा—आँख लगना, सिर चढ़ना आदि। लोकोक्ति सामान्यतः एक चमत्कारपूर्ण वाक्य होता है। इसमें प्रायः कोई लोक प्रसिद्ध कथा या अनुभव सँजोया हुआ होता है। यथा—
धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का; घर का भेदी लंका ढावे आदि।

मुहावरे तथा लोकोक्ति का अर्थ स्पष्ट करने के लिए उनका वाक्य में प्रयोग किया जा सकता है। यदि इनके पीछे कोई प्रसिद्ध लोककथा या लोक-अनुभव है तो उसे भी स्पष्ट करना चाहिए। “घर का भेदी लंका ढावे” के लिए विभीषण द्वारा रावण वध का भेद आदि बताने की कथा समझाई जा सकती है। छात्रों की रुचि इस क्षेत्र में जाग्रत करने के लिए मुहावरा कोश, लोकोक्ति कोश आदि पढ़ने को कहा जा सकता है। आजकल लोकोक्ति-मुहावरों के श्रेष्ठ कोश उपलब्ध हैं। हर अच्छे कोश के अंत में इन्हें परिशिष्ट के रूप में भी दे दिया जाता है।

यदि कोई मुहावरा विदेशी पृष्ठभूमि या संदर्भ पर बना है तो उसका हिंदी पर्यायवाची ढूँढ निकाला जा सकता है। यथा—“टू कैरी कोल टू न्यूकेसल” का अनुवाद “उलटे बाँस बरेली को” किया जा सकता है। ‘न्यूकेसल’ में कोयलों की खान है तथा बरेली (बाँस बरेली) में बाँस की बहुतायत है। ‘न्यूकेसल’ में कोयला और ‘बरेली’ में बाँस ले जाने वाले को सभी मूर्ख ही कहेंगे।

मुहावरे और लोकोक्ति का अर्थ स्पष्ट करते समय उस गद्यांश में इनके प्रयोग की आवश्यकता और महत्व पर भी प्रकाश डालना चाहिए। क्योंकि कोई प्रयोग व्यर्थ में नहीं दिया जाता।

(2) वाक्यांशों की व्याख्या

गद्यांशों में अनेक ऐसे वाक्यांश होते हैं जिनका भाषा में आलंकारिक प्रयोग की दृष्टि से महत्व होता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों के मोटे टाइप के खंड को पढ़िए :—

1. चांदनी रात में ताजमहल को देखने का कुछ और ही मजा है।

2. फतेहपुर सीकरी के ऐतिहासिक भवन ऐसे लगते हैं मानो कारीगर उन्हें बनाकर अभी-अभी उतरे हैं।

‘कुछ और ही मजा है’ और ‘‘कारीगर इन्हें बनाकर अभी-अभी उतरे हैं’’ को पढ़कर छोड़ देना मात्र यथेष्ट नहीं लगता। इन वाक्यांशों की व्याख्या भी अनिवार्य है। न [तो ये मुहावरे ही हैं और न सामान्य वाक्य। ऐसे वाक्यों के व्यंजना भाव को समझाना चाहिए।

(3) सूक्तियों की व्याख्या

उत्तम उक्ति, उत्तम कथन या सुभाषित का साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान हैं। बहुधा यह किसी कवि तथा लेखक का अमर वचन होता है। यदि अध्यापक को सूक्ति के लेखक का पता हो तो उसकी रचना-काल तथा परिस्थिति आदि के संदर्भ में व्याख्या करनी चाहिए। यथा—ईसा मसीह की यह उक्ति—

“यदि अपनी आत्मा को बेच कर सारे विश्व का साम्राज्य भी पाया तो क्या पाया।” इस उक्ति में कितना चारित्रिक बल है। लक्ष्य प्राप्ति के लिए उत्तम साधन के प्रति कितना प्रगाढ़ विश्वास है। आत्मा की पवित्रता बनाए रखने के लिए बनावटी यश की कितनी उपेक्षा है। यह सूक्ति वाक्य अपने आप में संपूर्ण जीवन दर्शन है।

(4) लाक्षणिक भाव को स्पष्ट करना

लाक्षणिक प्रयोग प्राथमिक कक्षाओं की पठन सामग्री में कम किन्तु उच्च कक्षाओं में अधिक मिलता है। उदाहरण के लिए ‘हनुमान की पूँछ’ असामान्य या असाधारण लम्बाई का द्योतक है। इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिए मूल कथा को भी सुनाया जा सकता है।

3. वाक्यों की व्याख्या तथा विचार विश्लेषण

वाक्य भाषा की सबसे छोटी सार्थक इकाई मानी गई है। वाक्य जिस समय

मिश्रित या संयुक्त रूप में होता है तो इसे समझने में कठिनाई होती है। ऐसी अवस्था में वाक्य-खंड करके इसका अर्थ स्पष्ट करना चाहिए।

पढ़ाते समय वाक्य का अर्थ स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं :—

1. वाक्य को भावानुकूल पढ़ना

वाक्य को भावानुकूल पढ़ने से लेखक के हृदय का हर्ष-विषाद, कष्ट-पीड़ा, भय-आशंका आदि का भाव स्वतः स्पष्ट हो सकता है।

2. विराम चिह्नों का ध्यान रखते हुए पढ़ना

यदि विराम चिह्नों का ध्यान नहीं रखा जाता तो लेखक का सन्देश श्रोता के पास विकृत होकर पहुँचता है। यथा—

शिकारी ने दौड़ते हुए, शेर को मारा।

शिकारी ने, दौड़ते हुए शेर को मारा।

माँ ने, लेटे हुए बच्चे को दूध पिलाया।

माँ ने लेटे हुए, बच्चे को दूध पिलाया।

यहाँ उचित विराम के अभाव में एक ही वाक्य के दो अर्थ निकल सकते हैं।

3. वाक्य विच्छेद करना

मिश्रित तथा संयुक्त वाक्यों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए वाक्य का विच्छेद करना उपयुक्त है। उद्देश्य तथा विधेय का सहसंबंध जोड़ने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

4. अन्तर्कथा स्पष्ट करना

अन्तर्कथाएँ वाक्यों को बोझिल कर सकती हैं। हम यह अनुभव करते हैं कि कुछ लेखकों के लेख सरल तथा कुछ के कठिन होते हैं। कठिन या बोझिल सामग्री में लेखक स्थान-स्थान पर अन्तर्कथाओं का समावेश कर देते हैं। यथा :—

“वह ध्रुव के समान अटल, प्रह्लाद के समान निडर, अभिमन्यु के समान आज्ञाकारी तथा एकलव्य के समान गुरु में निष्ठा रखने वाला बालक है।”

इस वाक्य में एकाधिक अन्तर्कथाएँ हैं। इस वाक्य का अर्थ इन बालकों से संबंधित कथाओं को सुनाने से ही स्पष्ट हो सकता है अन्यथा नहीं।

5. रचना की पृष्ठभूमि स्पष्ट करना

रचना-काल, तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, पृष्ठ-

भूमि आदि स्पष्ट करने से भी वाक्य का अर्थ स्पष्ट किया जा सकता है।
यथा :—

“महात्मा तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस में न केवल तत्कालीन धार्मिक आस्थाओं का समन्वय है किन्तु जीवन का शायद ही कोई पक्ष हो जो उनकी लेखनी से बच पाया हो।”

उपर्युक्त वाक्य को स्पष्ट करने के लिए तत्कालीन पृष्ठभूमि को समझाने की आवश्यकता है। एक बहुपठित अध्यापक ही इसकी व्याख्या के प्रति न्याय कर सकता है।

व्यावहारिक कार्य

1. अपने राज्य की माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक कक्षाओं के लिए निर्धारित गद्य पाठ्य पुस्तकों की सूची बनाना।
2. कुछ प्रसिद्ध गद्य लेखकों की पुस्तकों की सूची बनाना।
3. गद्य शिक्षण से संबंधित अपने पुस्तकालय में प्राप्त पुस्तकों की सूची बनाना।
4. कक्षा के सम्मुख आदर्श वाचन का उदाहरण प्रस्तुत करना।
5. किसी पाठ्य पुस्तक के कठिन शब्दों का अकारादि क्रम से कोश तैयार करना।
6. कक्षा-कोश तैयार करना।
7. कोश क्रम को समझाने के लिए चार्ट अथवा अन्य सामग्री तैयार करवाना।
8. मूल शब्दों के आधार पर प्रत्यय और उपसर्ग लगाकर शब्दों के चार्ट या माडल बनवाना।
9. शब्द निर्माण के खेल आयोजित करना।
10. बच्चों की श्रुत, लिखित तथा उच्चरित शब्दावली की सूचियाँ तैयार करवाना।
11. तत्सम, तद्भव, देशज तथा विदेशी शब्दों की सूचियाँ तैयार करवाना।
12. संधि तथा समास से बने शब्दों की सूचियाँ बनवाना।
13. पाठ्य पुस्तकों से लोकोक्ति और मुहावरे-कोश तैयार करवाना।
14. लोकोक्तियों पर आधारित कहानियों का संग्रह करवाना।
15. पाठ्य पुस्तक के सुन्दर वाक्यांशों का संग्रह करवाना।
16. सूक्ति संग्रह तैयार करवाना।

संदर्भ

1. ईश्वर भाई पटेल कमेटी, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार (1978)।

2. दूसरी से दसवीं कक्षा तक का पाठ्यक्रम (एन. सी. ई. आर. टी.) (1976) ।
3. केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड पाठ्यक्रम (1985-86) ।
4. हिंदी शिक्षण विधि, डा० रघुनाथ सफ़ाया (1979) ।
5. हिंदी शिक्षण पद्धति, डा० वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा (1973) ।
6. माध्यमिक विद्यालयों में हिंदी शिक्षण, निरंजन कुमार सिंह (1973) ।
7. वेसिक हिंदी वोकेबुलरी, डा० जय नारायण कौशिक (1981) ।
8. प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयों के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या—रूप रेखा (एन. सी. ई. आर. टी.) (1986) ।
9. पाठयोजनाएँ, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर (1978) ।
10. भाषा संप्राप्ति मूल्यांकन, डा० के० जी० रस्तोगी ।
11. टीचर एज्युकेशन कैरिकुलम (ए फ़्रेम वर्क) (एन. सी. ई. आर. टी.) (1978) ।
12. पर्यावरण संबंधी शिक्षा, एन. सी. ई. आर. टी. (1981) ।
13. हिन्दी शब्द सागर, नागरी प्रचारिणी सभा ।
14. हरियाणवी हिन्दी कोश, डा० जय नारायण कौशिक, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़ (1985) ।

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. गद्य शिक्षण के कौन-कौन से उद्देश्य हैं ? गद्य शिक्षण की प्रमुख विधाओं का संक्षेप में वर्णन करें ।
2. गद्य शिक्षण के कौन-कौन से अंग हैं ? भाषायी विकास में इनका क्या योगदान है ?
3. आदर्श वाचन, अनुकरण वाचन तथा व्यक्तिगत वाचन के क्या लाभ हैं ? मौन पाठ आदर्श वाचन से पहले होना चाहिए या भाव विश्लेषण के बाद ? अपने उत्तर को तर्कसंगत बनाकर लिखें ।
4. शब्द का अर्थ स्पष्ट करने की कौन-कौन सी विधियाँ हैं ? उदाहरण सहित लिखें ।
5. गद्य शिक्षण में विचार विश्लेषण का क्या महत्व है ? कोई सार गंभीत अनुच्छेद लिख कर उसका विचार विश्लेषण करें ।
6. उपसर्ग, प्रत्यय, संधि तथा समासयुक्त पाँच-पाँच शब्द लें और उनका अर्थ स्पष्ट करें ।
7. गद्य की पाठ्य पुस्तकों में मुख्यतः किस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया जाता है ? प्रत्येक वर्ग की शब्दावली के पाँच-पाँच शब्द लिखें ।
8. टिप्पणी लिखें—1. मूल शब्द 2. शब्द निर्माण की विधियाँ 3. शब्द की अर्थ व्याप्ति 4. कक्षा कोश 5. आदर्श वाचन के गुण ।

अध्याय 14

कविता शिक्षण

I. सामान्य परिचय

भाषा शिक्षण में काव्य का विशेष महत्व है। काव्य के प्रणेता या रचयिता को संस्कृत साहित्य में अत्यंत महत्व दिया गया है। कवि किसी वस्तु या घटना को लोकोत्तर विधि से चित्रित करता है। वेदों में विश्वनियंता ब्रह्मा को कवि कहा गया है। आचार्य मम्मट कवि की सृष्टि को ब्रह्मा की सृष्टि से बढ़कर मानते हैं। ब्रह्मा की सृष्टि अन्य किसी नियम के अधीन रहने वाली है पर कवि की सृष्टि किसी के अधीन रहने वाली नहीं है। ब्रह्मा की सृष्टि में मधुर, काषाय, तिक्त, अम्ल, लवण एवं कटु केवल छः रस होते हैं जो सब को प्रिय नहीं होते, पर कवि की सृष्टि “नवरसा” एवं रुचिरा होने के कारण ब्रह्मा की सृष्टि से उत्कृष्टतर है अर्थात् कवि की सृष्टि शृंगारादि नौ रसों से युक्त होती है और वे सभी रस आनंदमय होते हैं।

सफल भाषा शिक्षक को यह जानना आवश्यक है कि कवि की सृष्टि अर्थात् कविता क्या है, जिससे कि वह कविता के मूल भाव को ग्रहण कर सके और उसी भाव को पूर्णता के साथ विद्यार्थी तक पहुँचा सके।

II. कविता क्या है ?

पूर्वी तथा पश्चिमी विद्वानों ने कविता की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से की है :—

क. पूर्वी विद्वानों का मत

1. शब्द एवं अर्थ का सहभाव ही काव्य है।
शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्—काव्यालंकार।
2. दोषरहित, गुणसहित तथा यथासंभव अलंकारयुक्त शब्द और अर्थ काव्य है—मम्मट।
3. रसात्मक वाक्य को कविता कहते हैं—विश्वनाथ।
4. रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य है।

रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्—रसगंगाधर ।

5. हृदय की मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती है उसे कविता कहते हैं—रामचंद्र शुक्ल ।

ख. पश्चिमी विद्वानों का मत

1. कविता छंदोमय रचना है—जानसन ।
2. कविता संगीतमय विचार है—कार्लाइल ।
3. कविता कल्पना की अभिव्यक्ति है—शैले ।
4. कविता उत्तमोत्तम शब्दों का उत्तमोत्तम विधान है—कौलरिज ।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कविता हृदय के उद्गारों को प्रकट करने का एक ऐसा सशक्त साधन है जो शब्दों में रमणीयता, सरलता तथा चमत्कार उत्पन्न करके श्रोता के मन को द्रवित कर देता है । इसके श्रवण अथवा पठन से अलौकिक आनंद की अनुभूति होती है ।

भाषा अध्यापक को चाहिए कि कविता शिक्षण के समय इसके शिक्षण के मुख्य उद्देश्यों को हर समय ध्यान में रखे ।

III. कविता शिक्षण के उद्देश्य

कविता शिक्षण के उद्देश्यों को सामान्यतया दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

1. सामान्य उद्देश्य ।
2. विशेष या विशिष्ट उद्देश्य ।

1. सामान्य उद्देश्य

1. तुकान्त सामग्री पढ़ने का अभ्यास कराना ।
2. कविता को सस्वर विधि से पढ़ना सिखाना ।
3. ताल तथा लय के साथ पढ़ना सिखाना ।
4. भावानुसार उचित आरोह, अवरोह के साथ पद्यांश पढ़ना सिखाना ।
5. व्यक्तिगत तथा संवेत स्वर में उचित हाव-भाव के साथ कविता पाठ करना सिखाना ।
6. कविता के प्रति रुचि उत्पन्न करना ।
7. कवि के मुख्य विचारों, भावों तथा कल्पना की सराहना करना सिखाना ।
8. छात्रों में सद्वृत्तियों का विकास करना ।
9. सात्त्विक भावनाओं का विकास करना ।
10. सौन्दर्यानुभूति की वृद्धि कराना ।

11. कल्पना शक्ति का विकास करना ।
12. विभिन्न काव्यशैलियों से परिचित कराना ।
13. कवि के संदेश को पहचानने की योग्यता का निर्माण करना ।
14. स्वयं छंद-बद्ध तथा छंद मुक्त कविता लिखने की शक्ति का विकास करना ।
15. काव्यानंद का रसास्वादन करने की योग्यता उत्पन्न करना ।

2. विशेष उद्देश्य

1. कविता विशेष की जानकारी देना ।
2. कवि विशेष की जानकारी देना ।
3. कविता में दिए गए संदेश की जानकारी देना ।
4. कविता के कलापक्ष तथा भावपक्ष के सौन्दर्य का बोध कराना ।
5. कविता में वर्णित नीति, उपदेश, धार्मिक विचार, देश भक्ति, वीरता, निर्भयता, प्राकृतिक सौन्दर्य, भक्ति, सत्य, मानवता, जीवन-दर्शन, व्यंग्य, हास्य आदि की अनुभूति कराना और आनंद की अनुभूति कराना ।

IV. काव्य के भेद

संस्कृत के आचार्यों ने काव्य विभाजन के कई आधार लिए हैं । भाषाध्यापक को इनकी सामान्य जानकारी होनी चाहिए ताकि शिक्षण के समय वह इनका ध्यान रखे । काव्य के प्रमुख भेद इस प्रकार हैं :—

काव्य के भेद			
1	2	3	4
छंद के आधार पर	स्वरूप के आधार पर	विषय के आधार पर	इंद्रियों की ग्राह्यता के आधार पर
<div style="display: flex; justify-content: space-around;"> <div>गद्य</div> <div>पद्य</div> </div>	क. महाकाव्य	क. ख्यात वृत्त	क. दृश्य काव्य
	ख. रूपक	ख. कल्पित	ख. श्रव्य काव्य
	ग. आख्यायिका	ग. कलाश्रित	
	घ. कथा	घ. शास्त्राश्रित	
	ङ. मुक्तक		

1. छंद के आधार पर

क. गद्य । ख. पद्य ।

रमणीयता के अभाव में पद्य भी काव्यीय गुण से रहित माना जाता था।

और सरलता के कारण गद्य को भी काव्य का रूप दिया जाता था ।

2. स्वरूप के आधार पर

स्वरूप विधान की दृष्टि से काव्य के पाँच प्रकार माने गए हैं :—

क. महाकाव्य ख. रूपक ग. आख्यायिका घ. कथा ङ. मुक्तक ।

3. विषय के आधार पर

विषय के आधार पर काव्य चार प्रकार का माना गया है :—

क. ख्यातवृत्त ख. कल्पित ग. कलाश्रित घ. शास्त्राश्रित ।

4. इन्द्रियों की ग्राह्यता के आधार पर

इन्द्रियों की ग्राह्यता के आधार पर काव्य के दो प्रकार किए गए हैं :—

क. दृश्यकाव्य ख. श्रव्य काव्य ।

V. कविता का वर्गीकरण

10+2 शिक्षा प्रणाली के अनुसार चयन की गई कविताओं में मुख्यतया निम्नलिखित प्रकार की कविताओं को सम्मिलित किया गया है :—

1. बालगीत ।

2. वर्णनात्मक गीत ।

3. साहित्यिक कविताएँ ।

I. बालगीत

प्राथमिक स्तर की कक्षाओं के लिए बहुधा बालगीतों का चयन किया जाता है । इन बालगीतों की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :—

क. गीतों के विषय जाने पहचाने होते हैं । यथा—खेल-कूद, भोजन, वस्त्र, पास-पड़ोस, पशु-पक्षी, हास्य-विनोद, परिवार के सदस्य तथा सगे संबंधी, प्रार्थना, उपदेश आदि ।

ख. गीतों की पंक्तियाँ छोटी तथा तुकांत होती हैं ।

ग. गीत अधिकतर चार से सोलह पंक्तियों के होते हैं ।

घ. शब्दावली जानी पहचानी होती है ।

ङ. गीतों में गति तथा लय होती है ।

च. गीतों को सामूहिक रूप से गाया जा सकता है ।

छ. गीतों को शीघ्र कंठस्थ किया जा सकता है ।

ज. गीतों में भावानुकूल अभिनय करने का गुण होता है ।

2. वर्णनात्मक गीत

कक्षा चतुर्थ से आठवीं तक वर्णनात्मक गीत अथवा कविताओं का चयन किया जाता है। इन कविताओं की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :—

क. कविताओं के वर्ण्य विषय नदी-नाले, पहाड़, वन, खेत-खलिहान, विभिन्न व्यवसाय आदि कुछ भी हो सकते हैं। आकाश पाताल से संबंधित विषय भी इसकी परिधि में आ जाते हैं।

ख. इन कविताओं में प्रमुखतः इतिवृत्तात्मकता की पुष्टि रहती है। इस स्तर पर कविताओं में कल्पना, व्यंग्य आदि की झलक भी मिलने लगती है।

ग. इनमें चरित्र के परिष्कार के लिए दया, करुणा, उत्साह, वीरत्व आदि तत्त्वों का समावेश होता है।

घ. इनकी शब्दावली में विषय की आवश्यकता के अनुसार नवीन शब्दों का समावेश किया जाता है।

ङ. कविता की पंक्ति लम्बी हो सकती है और तुक प्रत्येक पंक्ति के अंत में न होकर दूसरी और चौथी पंक्ति तक मिल सकती है।

च. वर्णनात्मक गीत मुख्यतः व्यक्तिगत रूप से गाए जाते हैं।

छ. यह आवश्यक नहीं कि सभी छात्र 20 से 40 पंक्तियों तक के इन गीतों को कंठस्थ कर सकें।

नवसाक्षरों तथा प्रौढ़ों के लिए लिखी गई पुस्तकों में उनके व्यवसाय से संबंधित वर्णनात्मक कविताओं का समावेश होना चाहिए। कविता का संदेश आशाजनक होना चाहिए। इनमें जीवन के निर्बल पक्षों की आलोचना की जा सकती है।

3. साहित्यिक कविताएँ

कक्षा नवमी से बारहवीं तक साहित्यिक कविताओं का समावेश पाठ्य-पुस्तकों में होने लगता है। कुछ स्थितियों में कविता की अलग से एक पुस्तक का चयन किया जाता है। इन कविताओं के चयन में हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों, काल की मुख्य प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि कवियों, साहित्य के मुख्य वादों तथा वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल लिखी गई कविताओं को भी स्थान दिया जाता है। इस प्रकार की कविताओं को निम्नलिखित उप विभागों में बाँटा जा सकता है :—

क. काल विभाजन के आधार पर

1. बोरगाथा कालीन कविता :—इस प्रकार की कविताएँ स्कूल स्तर पर बहुत कम होती हैं।

2. **भक्तिकालीन कविता** :—भक्ति काल की कविताओं का पाठ्य पुस्तकों में आधिक्य होता है। युग संदेश, चरित्र निर्माण, धर्म निरपेक्षता आदि भावों को बढ़ावा देने के यहाँ एकाधिक अवसर मिलते हैं। तुलसी, सूर, कबीर आदि कवियों की रचनाओं को प्रमुख स्थान दिया जाता है।
3. **रीतिकालीन कविता** :—इस प्रकार की कविताओं का चयन सीमित रूप से किया जाता है। शृंगार रस को सीमित रूप से प्रस्तुत किया जाता है। रीति कालीन कवियों की भक्ति संबंधी और उपदेशात्मक रचनाएँ ली जाती हैं।
4. **आधुनिक कविता** :—आधुनिककालीन कविता को पाठ्यपुस्तकों में यथेष्ट स्थान दिया जाता है। इन कविताओं को कई भागों में विभक्त किया जा सकता है। राष्ट्र प्रेम, देश भक्ति, सामाजिक चेतना, नवजागरण, गांधी—वाद आदि से संबंधित अनेक कविताएँ हमें उपलब्ध हैं।

ख. वादों के आधार पर

उच्च कक्षाओं में कविता का एक आधार विभिन्न वादों के अधीन लिखी जाने वाली रचनाएँ भी हो सकती हैं। यथा—

1. छायावाद—पंत, महादेवी, निराला जयशंकर प्रसाद।
2. रहस्यवाद—निराला, पंत, महादेवी वर्मा।
3. प्रगतिवाद—नागार्जुन, रांगेय राघव, शिवमंगलसिंह सुमन।
4. प्रयोगवाद—अज्ञेय, मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर।
5. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य धारा—माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण-शर्मा नवीन, भगवतीचरण वर्मा।
6. प्रेम और मस्ती का काव्य—हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी।
7. हास्य व्यंग्यात्मक काव्य—बेडव बनारसी, गोपाल प्रसाद व्यास, बरसाने लाल चतुर्वेदी, काका “हाथरसी”।
8. आज की कविता—अकविता, अतिकविता, विद्रोही पीढ़ी, क्रुद्ध पीढ़ी, भूखी पीढ़ी आदि।

कविता विभाजन के और भी कई आधार संभव हैं। यहाँ इस प्रकार के विभाजन को प्रासंगिक रूप से देने का अभिप्राय यह है कि इस प्रकार की कविताओं को पढ़ते समय देश, काल तथा परिस्थिति आदि के संदर्भ में उनकी व्याख्या की जाए।

VI. पाठ्य पुस्तकों के लिए कविता चयन के आधार

उच्च कक्षाओं के लिए साहित्यिक कविताओं का चयन करते समय निम्न-लिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

- क. कविताएँ बहुत अधिक मात्रा में न हों।
- ख. कुछ कविताओं को छोड़कर शेष कविताएँ बहुत लम्बी न हों।
- ग. महाकाव्य के प्रतिनिधि अंश ही चुने जाएँ।
- घ. प्रत्येक काल के प्रतिनिधि कवियों की प्रमुख कविताओं को पाठ्य-पुस्तक में स्थान दिया जाए।
- ङ. हिन्दी भाषा की विभिन्न बोलियों के कवियों की कविताएँ चुनी जाएँ। प्रदेश विशेष के लिए निर्धारित पाठ्य पुस्तकों में आंचलिक कवियों को स्थान दिया जाए।
- च. हिन्दी इतर कवियों तथा अंग्रेजी, रूसी आदि कवियों की कविताओं का अनुवाद दिया जा सकता है।
- छ. उर्दू के प्रतिनिधि कवियों की कविताओं को बानगी के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए। हिन्दी इतर कविताओं के कठिन शब्दों के अर्थ पादटिप्पणी में दिए जाने चाहिए।

VII. कविता शिक्षण के अंग

कविता शिक्षण बहुत महत्व का विषय है। इसके शिक्षण का अधिकारी वही व्यक्ति है जो इसके स्वरूप, महत्व, उद्देश्य आदि को समझता हो। भली प्रकार से पढ़ाने के लिए कविता शिक्षण पद्धति की जानकारी भी आवश्यक है। कविता शिक्षण के तीन प्रधान अंग हैं —

1. वाचन
2. व्याख्या
3. भाव विश्लेषण

नीचे कविता शिक्षण के इन्हीं तीनों अंगों पर प्रकाश डाला गया है। तथा अगले पृष्ठ पर इन्हें तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

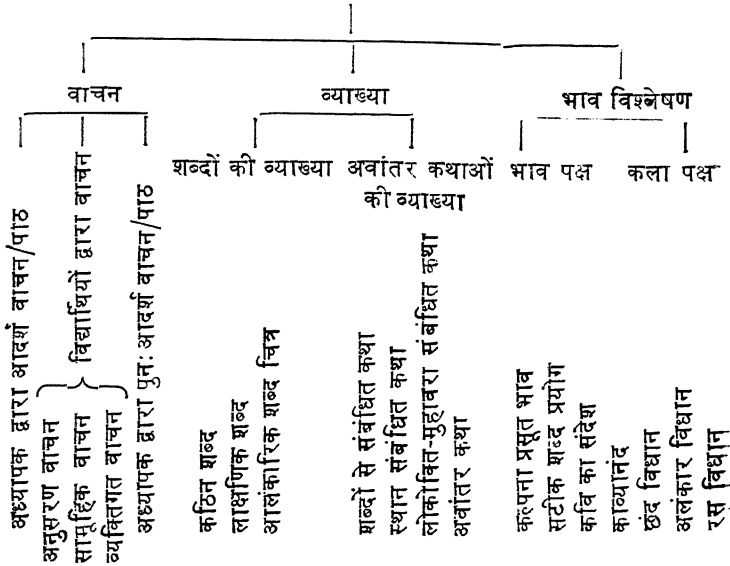
1. वाचन

गद्य शिक्षण के विषय में जानकारी देते समय वाचन के महत्व पर प्रकाश डाला जा चुका है। कविता शिक्षण में वाचन का महत्व और भी अधिक है।

वाचन का महत्व

कविता आरम्भ से ही श्रवण का विषय रहा है। राजदरबारों में कविता

कविता शिक्षण के अंग



सस्वर रूप से सुनाई जाती रही है। युद्धभूमि में वीरत्व का संचार करने के लिए भाट और चारण कविता गाकर ही सुनाते रहे हैं। प्रभाती गीत गा-गाकर साधुजन गृहस्थियों के निद्रा-मोह को भंग करते रहे हैं। मंदिरों में धार्मिक उत्सवों पर गाए जाने वाले गीत, पद, चौपाई आदि सहस्रों भक्तजनों को सच्चरित्र रहने की प्रेरणा देते रहे हैं।

आधुनिक युग में यही गीत, पद, चौपाई, कविता आदि पाठ्य पुस्तकों का विषय बन गए हैं। संक्षेप में वाचन के महत्त्व को निम्नलिखित बिंदुओं में दर्शाया जा सकता है :—

1. कविता में लय विधान होता है। कुछ कविताएँ छंदबद्ध होती हैं। दोहा, चौपाई, सबैया, सोरठा आदि को गाने का अपना विधान होता है। यदि इनको गाकर सुना दिया जाए तो विषय का प्रभाव स्थायी बन जाता है।
2. कविता भाव प्रधान होती है। यदि इसका पठन भावानुकूल किया जाए तो कवि के संदेश का सीधा प्रभाव श्रोता के हृदय पर पड़ता है। कविता श्रवण से श्रोता के संस्कारों का परिष्कार होता है।

कविता शिक्षण के समय अध्यापक तथा छात्र दोनों द्वारा कविता का वाचन किया जाना चाहिए।

2. अध्यापक द्वारा आदर्श वाचन

कविता की व्याख्या तथा भाव विश्लेषण से पूर्व अध्यापक द्वारा उसका आदर्श वाचन अनिवार्य है। आदर्श वाचन के समय विद्यार्थी अपनी पाठ्य-पुस्तकें नहीं खोलेंगे। वे मुख्यतः अध्यापक के भाव, अंग संचालन, आरोह-अवरोह, लय आदि की ओर ध्यान देंगे। यदि अध्यापक को कविता कंठस्थ हो तो अधिक अच्छा है।

आदर्श वाचन सम्पूर्ण कविता का होना चाहिए। बहुत लम्बी कविता का वाचन खंडशः हो सकता है।

कविता का आदर्श वाचन आवश्यकतानुसार दो-तीन बार किया जा सकता है।

यदि अध्यापक का कंठ बहुत अच्छा नहीं है तो किसी छात्र से भी कविता वाचन कराया जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर टेपरिकार्डर की सहायता भी ली जा सकती है।

कविता पाठ के लिए बहुत अधिक सुर-ताल साधने की आवश्यकता नहीं है। स्वर ऐसा हो जिसका निर्वाह सामान्य रूप से कक्षा में किया जा सके।

बहुत से प्रशिक्षणार्थी कविता वाचन में संकोच अनुभव करते हैं। यह एक बड़ी भूल है। वे पहले अपने सहपाठियों को कविता पाठ सुनाकर अपने संकोच का निवारण कर सकते हैं। उन्हें “करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान” की कहावत सदा याद रखनी चाहिए।

आदर्श वाचन या पाठ के समय से ही बच्चे का भरपूर मनोरंजन होना चाहिए।

3. विद्यार्थियों द्वारा वाचन

विद्यार्थियों द्वारा वाचन कई स्तर पर संभव है।

छोटी कक्षाओं में विद्यार्थी अध्यापक का अनुकरण व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से कर सकते हैं। अध्यापक पूरी या आधी पंक्ति का उच्चारण करें और विद्यार्थी बिना पुस्तक खोले या पुस्तक खोलकर उस अंश का सस्वर पाठ करे।

यदि विद्यार्थी पंक्तियों में बैठे हैं तो एक एक पंक्ति के विद्यार्थी सामूहिक रूप से कविता की एक-एक पंक्ति बोल सकते हैं। पंक्तियों का क्रम बदल कर कविता वाचन से छात्रों की रुचि बनी रहेगी। कक्षा को दो भागों में विभक्त करके भी कविता वाचन कराया जा सकता है।

बड़ी कक्षाओं में कविता के कुछ अंश का वाचन चार पाँच विद्यार्थियों से करवाया जा सकता है। सामूहिक पाठ का औचित्य बड़ी कक्षाओं में बहुत तर्क-संगत नहीं लगता।

व्यक्तिगत वाचन के समय यदि कोई विद्यार्थी लय-स्वर आदि की अशुद्धि करता है तो उसका निवारण करना चाहिए। इस समय विद्यार्थी को हतोत्साहित न करें, उसका उत्साहवर्धन करें।

यदि अध्यापक उचित समझे तो विद्यार्थियों के वाचन के बाद एक बार पुनः कविता का आदर्श वाचन करें ताकि जो विद्यार्थी वाचन की अशुद्धियाँ करते हैं वे भी अपने आप को सुधार सकें।

अंत में यहाँ कहा जा सकता है कि यह आवश्यक नहीं कि हर कविता के वाचन पर बार-बार अधिक बल दिया जाए। आरम्भिक कविताओं के वाचन पर विशेष बल देने से विद्यार्थी स्वतः ही अगली कविताओं के वाचन के लिए तैयार हो जाएँगे।

2. व्याख्या

बालगीत, वर्णनात्मक गीत आदि में सामान्यतया कठिन भाव या विचारों का स्थान नहीं होता। ये मुख्यतः गाने के लिए होते हैं। इस समय कविता की पंक्तियों की अक्षरशः व्याख्या की आवश्यकता नहीं होती। अनावश्यक व्याख्या से विद्यार्थी की कविता में रुचि कम हो जाती है और कविता की आत्मा का हनन होता है। ऐसी कविताओं में यदि कोई भावसौन्दर्य, शब्द-सौन्दर्य हो तो कविता के वाचन के बाद विद्यार्थी का ध्यान इस ओर दिलाया जा सकता है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि यदि विद्यार्थी को कविता के भावों और विचारों का ज्ञान नहीं हो तो वे उसके वाचन में क्या आनन्द लेंगे। इस समस्या के समाधान का एक मध्यवर्ती मार्ग यह हो सकता है कि कविता का वाचन आरम्भ करने से पूर्व कविता का मुख्य भाव तथा कठिन शब्दों के अर्थ इस प्रकार बातचीत के माध्यम से बता दिए जाएँ कि वह सामग्री विद्यार्थी को बोझिल न लगे और वह कविता के संदेश को ग्रहण करने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो जाए।

उच्च कक्षाओं में कविता की व्याख्या आवश्यक है क्योंकि विषय, भाव तथा भाषा गूढ़ होने लगती है। ऐसी अवस्था में व्याख्या की निम्नलिखित प्रणाली अपनाई जा सकती है :—

1. शब्दों की व्याख्या

विद्यार्थियों के लिए आरम्भिक स्तर के लिए चुनी गई कविताओं में कठिन शब्दों के लिए कोई स्थान नहीं है किन्तु दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि कविताओं के गलत चुनाव के कारण एक ही कविता में अनेक नए शब्द मिल

जाते हैं ।

यदि कठिन शब्द आ जाएँ तो उनकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है :—

1. कविता पढ़ाने से पूर्व उसका भावार्थ बताते समय कठिन शब्दों के अर्थ पर्यायवाची शब्द बताकर अथवा प्रवचन विधि से बता दिए जाएँ ।
2. कविता पढ़ाते समय कठिन शब्द के अर्थ प्रवचन विधि से बता दिए जाएँ और विद्यार्थी को संकेत दे दिया जाए कि इनके अर्थ कविता पढ़ाने के बाद लिखवा दिए जाएँगे ।
3. ब्रज, अवधी आदि के काल, कारक, सर्वनाम आदि को कविता पढ़ाने से पूर्व भी समझाया जा सकता है । इसी प्रकार र, ल, ड, ज, य आदि वर्णों का रूपान्तर कुछ उदाहरण देकर पहले ही समझाया जा सकता है । यथा—लड़ाई-लराई, लड़का-लरका, डाल-डार, योगी-जोगी आदि शब्द । ऐसा करने से कविता के भाव को निर्बाध रूप से ग्रहण किया जा सकेगा ।
4. प्रतीकात्मक (लाल-क्रोध के लिए), लाक्षणिक (जयचंद-गद्दार के लिए), आलंकारिक (चंद्रमुख-सुंदर मुख के लिए) शब्दों की व्याख्या कविता पढ़ाते समय ही करनी चाहिए । ऐसा करने से कवि के संदेश को श्रोता तक पहुँचाने में सुगमता रहती है । इस प्रकार के शब्दों, वाक्यांशों, वाक्य खंडों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों की व्याख्या भली प्रकार की जानी चाहिए ।
5. कविता में आई अवान्तर कथाओं की व्याख्या कक्षा के स्तर को ध्यान में रखकर करनी चाहिए । कथा की व्याख्या इस प्रकार की जाए कि कविता के रस परिपाक में वह साधक बने बाधक नहीं ।

3. भाव विश्लेषण तथा काव्य सौन्दर्य

1. भावपक्ष

किसी भी कविता के मुख्यतः दो पक्ष होते हैं—भावपक्ष और कलापक्ष । भावपक्ष कविता की आत्मा है । इसमें कवि का संदेश छिपा रहता है । इसके माध्यम से कवि श्रोता अथवा पाठक में उदात्त भावों का बीजारोपण करने की चेष्टा करता है । कविता के व्याख्याता को चाहिए कि वह इस भाव को पहचाने और इसे विद्यार्थियों तक निष्ठापूर्वक पहुँचाए ।

उच्च कक्षाओं के लिए निर्धारित साहित्यिक कविताओं में भावपक्ष को उभारने के विपुल अवसर मिलते हैं । कविता के प्रति रुचि जाग्रत करने, छात्रों में कवि के भावों से मिलती-जुलती कविता लिखने की भावना उत्पन्न करने

का यही उचित अवसर है। छात्रों को इस अवसर पर प्रेरित किया जा सकता है कि वे भी ऐसे दिव्य भाव की कल्पना करना सीखें और कविता के माध्यम से उन भावों को साकार रूप प्रदान करें।

2. कलापक्ष

कलापक्ष कविता का शृंगार है। कविता रूपी नायिका का शृंगार कवि सुंदर-सुंदर शब्दों के चयन, मार्मिक वाक्यांशों के संयोजन, रुणित-झुनित ध्वनि-विधान, सटीक तथा मोहक अलंकार योजना और भावानुकूल छंद-विधान का आलंबन लेकर करता है। यह आवश्यक नहीं कि सभी पाठक कविता रूपी नायिका के रंग-रूप की सराहना कर सकें। इसकी प्रशंसा करने के लिए सहृदय रसिक नायक की आवश्यकता होती है। व्याख्याता (अध्यापक) इस कार्य का भार अपने ऊपर लेकर उसके रूप का बखान करता है और विद्यार्थियों को एक नई दृष्टि प्रदान करता है।

काव्यानंद की स्थिति उसी समय उचित रूप से संभव है जबकि कवि, व्याख्याता तथा श्रोता समभाव या समान रागभाव को प्राप्त हो जाएँ। कविता के हर एक शब्द चयन की सटीकता समझाई जाए। कृष्ण के गुण और कर्म के आधार पर सैकड़ों नाम हैं। माधव, रसिक-बिहारी, गोविंद आदि शब्दों का औचित्य और इनका महत्त्व समझाया जाए।

ऊपर कविता शिक्षण के अंगों पर संक्षेप में चर्चा की गई। आगे कविता शिक्षण की विभिन्न प्रणालियों पर विचार किया जाएगा।

VIII कविता शिक्षण की प्रणालियाँ

कविता शिक्षण के समय कविता तथा कक्षा के स्तर आदि को ध्यान में रखकर आवश्यकता के अनुसार प्रणाली का चुनाव किया जाता है। नीचे इन्हीं प्रणालियों पर चर्चा की जा रही है।

काव्य शिक्षण की प्रणालियाँ

1	2	3	4	5
गीत तथा वाद्य प्रणाली	शब्दार्थ कथन या खंडान्वय प्रणाली	प्रश्नोत्तर प्रणाली	व्याख्या प्रणाली —व्यास प्रणाली —तुलनात्मक प्रणाली —समीक्षा प्रणाली	मिश्रित प्रणाली

कविता शिक्षण की प्रमुख प्रणालियाँ हैं :—

1. गीत तथा नाट्य प्रणाली ।
 2. शब्दार्थ कथन प्रणाली ।
 3. प्रश्नोत्तर या खण्डान्वय प्रणाली ।
 4. व्याख्या प्रणाली—व्यास प्रणाली, तुलनात्मक प्रणाली, समीक्षा प्रणाली ।
 5. मिश्रित प्रणाली ।
- आइए, हर प्रणाली पर संक्षेप में चर्चा करें ।

1. गीत तथा नाट्य प्रणाली

नर्सरी तथा प्राथमिक स्तर पर गीत तथा नाट्य प्रणाली कविता शिक्षण के लिए उपयोगी रहती है। इस स्तर पर पाठ्य पुस्तकों में ऐसी कविताओं का समावेश होता है जो व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से गाई जा सकती हैं। सामान्य तुक पर आधारित इन कविताओं के शिक्षण में कठिन शब्दों के अर्थ बताने तथा भावों की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। इन्हें बारम्बार सस्वर गाने का अपना ही आनन्द है जो अपने आप में पूर्ण रूप से उद्देश्य की पूर्ति करता है।

इस प्रणाली के अनुसार अध्यापक का आदर्श वाचन, विद्यार्थियों का अनुकरण वाचन, व्यक्तिगत वाचन, सामूहिक वाचन आदि कविता शिक्षण प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग बन जाते हैं।

कविता के भाव के अनुसार अंग-संचालन इस प्रणाली का महत्वपूर्ण पहलू है। छोटे बच्चे अनुकरण करने में बड़े सिद्धहस्त होते हैं। प्रेम, क्रोध, अनुनय-विनय, आदेश तथा अन्यान्य मानवीय भावों का अनुकरण उन्हें बहुत अच्छा लगता है। कविता शिक्षण के समय पहले अध्यापक को सचेत और सक्रिय होकर अंगसंचालन करना चाहिए। अध्यापक को यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि उनका अंगसंचालन शिष्ट और मर्यादित हो, उसे किसी भी प्रकार से हास्यास्पद नहीं बनने दिया जाए।

यदि कविता में पशु-पक्षी आदि पात्र हैं तो विद्यार्थी वैसी वेशभूषा, मुखौटे अथवा प्रतीक चिह्न पहनकर कविता का गायन कर सकते हैं।

कार्टून की पुस्तकें तथा दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले बच्चों के कार्यक्रम देखने से अध्यापक को बहुत सी नई बातें सीखने को मिल सकती हैं।

कई बार माध्यमिक तथा उच्च कक्षाओं में भी जानबूझकर कुछ सरल तथा संवादात्मक कविताएँ दे दी जाती हैं जिनको गीत तथा नाट्य प्रणाली के अनुसार सफलतापूर्वक पढ़ाया जा सकता है। इन कक्षाओं में ऐसी कविताओं के सामूहिक पाठ की आवश्यकता नहीं है।

2. शब्दार्थ कथन प्रणाली

शब्दार्थ कथन प्रणाली से कविता शिक्षण का अभिप्राय है कविता में आए कठिन शब्दों का अर्थ बताते हुए कविता पढ़ाना। प्रायः अध्यापक इसी प्रणाली का सहारा लेकर कविता पढ़ाते हैं।

कविता में आए कठिन शब्दों का अर्थ स्पष्ट करना कविता शिक्षण का एकमात्र उद्देश्य नहीं होता। गद्य शिक्षण में कठिन शब्दों के अर्थ ग्रहण तथा शब्द-भंडार में विकास पर मुख्य बल रहता है। कविता शिक्षण के पूर्व प्रासंगिक रूप से अथवा कविता शिक्षण के समय प्रवचन विधि से शब्द का अर्थ स्पष्ट करना चाहिए। कविता शिक्षण का मुख्य उद्देश्य भावानुभूति, सौन्दर्यानुभूति तथा कवि के संदेश को पाठक तक पहुँचाना है, शब्दार्थ के व्यूह में फँसाना नहीं। मात्र शब्दार्थ कथन से बच्चों में कविता के प्रति अरुचि उत्पन्न होने की संभावना रहती है।

3. प्रश्नोत्तर या खंडान्वय प्रणाली

कविता शिक्षण की इस प्रणाली के अनुसार निम्नलिखित विधियाँ अपनाई जाती हैं :—

1. अध्यापक छात्रों को पहले कविता पढ़ने को कहे और बाद में कविता में वर्णित विषय पर प्रश्न पूछे। अथवा
2. अध्यापक कविता का आदर्श वाचन करे और बिना व्याख्या किए कविता पर आधारित प्रश्न पूछे। अथवा
3. अध्यापक कविता का अर्थ करने के बाद छात्रों से कविता में वर्णित विषय पर अनेक प्रश्न पूछे। अथवा
4. कविता के एक खंड को पढ़ दिया जाए और उस पर आधारित प्रश्न पूछे जाएँ।

इस प्रणाली का मुख्य बल कविता में वर्णित विषय का बोध कराने पर है। कविता का भाव, अनुभूति तथा काव्य सौन्दर्यपक्ष गौण हो जाता है।

वर्णनात्मक तथा ज्ञानात्मक कोटि की लम्बी कविताओं में इस प्रणाली को अपनाया जा सकता है। उत्तम विधि तो यही है कि कविता की व्याख्या के बाद इस विधि को बोध प्रश्नों के रूप में अपनाया जाए।

कविता शिक्षण में प्रश्नोत्तर प्रणाली बहुत उत्तम कोटि की प्रणाली नहीं है। यह प्रणाली गद्य शिक्षण के अधिक निकट है। इसमें भावपक्ष पर कम और बुद्धिपक्ष पर अधिक बल है।

4. व्याख्या प्रणाली

व्याख्या प्रणाली से अभिप्राय है—कविता में आए कठिन शब्दों की समुचित व्याख्या, शब्द सौष्ठव, शब्दों को चुनने का औचित्य, शब्द लालित्य आदि पर प्रकाश डालना, भावों की व्याख्या, काव्य सौन्दर्य की प्रशंसा, कवि-संदेश की व्याख्या, कविता का रसास्वादन तथा छंद और अलंकार विधान की समीक्षा आदि ।

व्याख्या प्रणाली माध्यमिक तथा उच्च कक्षाओं के लिए बहुत उपयोगी है क्योंकि इन कक्षाओं तक पहुँचते-पहुँचते बालक मानसिक रूप से परिपक्व होने की अवस्था में होता है, उसके सामाजिक कार्य-व्यापारों में वृद्धि होने लगती है और वह जीवन की अनेकविधता को समझने लगता है । व्याख्याता को इस समय बालक के समाज, वातावरण, मानसिक तथा शैक्षिक पृष्ठभूमि आदि को ध्यान में रखकर कविता की व्याख्या करनी चाहिए । किसी प्रकार का व्यर्थ का पंडिताऊपन बधारना प्रलाप मात्र सिद्ध हो सकता है ।

व्याख्या प्रणाली को निम्नलिखित उप-विभागों में विभक्त किया जा सकता है :—

क. व्यास प्रणाली

व्यास प्रणाली के अनुसार कविता की व्याख्या इस विधि से की जाती है कि प्रत्येक शब्द, अवान्तर कथा आदि का विस्तार इस रोचक ढंग से हो कि श्रोता मंत्रमुग्ध होकर धुनता रहे । एक कथा से अन्य अवान्तर कथाएँ और उनसे निकलने वाली कथाएँ आरम्भ कर दी जाएँ । कथावाचक इस पद्धति को अपनाते हैं और थोड़े से कथांश को दिनों, सप्ताहों और महीनों तक घसीटते रहते हैं ।

उदाहरण के लिए ‘लक्ष्मण मूर्च्छा’ के प्रसंग को ही लीजिए । भक्त कवि तुलसीदास जी ने इस प्रसंग को इस प्रकार लिखा है :—

उहाँ राम लक्ष्मणहि निहारी ।

बोले वचन मनुज अनुसारी ॥

यहाँ ‘उहाँ’ शब्द की ही पूरी व्याख्या हो सकती है । कथा “इहाँ” चल रही थी । अयोध्या में हनुमानजी संजीवनी बूटी ले जाते हुए मार्ग में भरत के तीर द्वारा पीड़ित होकर अयोध्या के बाहर गिर पड़े हैं और लंका की कथा भरत को सुना रहे हैं । अतः “उहाँ” अर्थात् राम पर क्या बीत रही है इसका प्रसंग आगे बढ़ाने के लिए तुलसीदासजी ने “उहाँ” शब्द का प्रयोग किया ।

इसी प्रकार रामचंद्र जी के लिए “मनुज” के अनुसार शब्द कहना अपने आप में पूरी व्याख्या की आशा रखता है । आगे “पिता वचन मानत नहीं

ओहू,” “निज जननी के एक कुँआरा” आदि शब्द मनुष्य ही कह सकता है अवतार नहीं ।

उच्च कक्षाओं में एक दो कविता के कुछ अंशों की व्याख्या व्यास विधि से करना उचित रहेगा ताकि बाद में विद्यार्थी शेष कविता के भाग की व्याख्या स्वयं इस विधि से करने के अभ्यस्त हो जाएँ ।

ख. तुलनात्मक प्रणाली

इस प्रणाली के अनुसार कवि की एक रचना या उस द्वारा रचित एक भाव की तुलना देश-विदेश के कवियों की रचनाओं से की जाती है । उदाहरण के लिए बाल वर्णन, विरह वर्णन, युद्ध वर्णन आदि विषय विभिन्न कवियों ने अपने-अपने ढंग से किए हैं । इस प्रणाली के अनुसार व्याख्या करते समय आलोच्य कविता की तुलना अन्य कवियों की वर्णन शैलियों से की जाती है । वर्णन की आपसी समानता, भिन्नता, श्रेष्ठता आदि पर भी प्रकाश डाला जाता है ।

इस प्रकार की तुलना उच्च कक्षाओं के लिए उपयुक्त रहती है । अध्यापक को शिकायत रहती है कि उनके पास अधिक समय भी नहीं होता कि वह प्रत्येक कविता को इस विधि से पढ़ा सके । विद्यार्थियों की चिन्तन मनन की प्रक्रिया को जगाने के लिए कविता के कुछ अंशों की व्याख्या इस विधि से की जानी चाहिए ।

ग. समीक्षा प्रणाली

समीक्षा प्रणाली के अन्तर्गत कविता के भावपक्ष तथा कलापक्ष की शास्त्रीय समीक्षा की जाती है । कवि अथवा कविता का कौन सा पक्ष सुंदर है, कौन सा असुंदर, कौन सबल और कौन निर्बल आदि की परीक्षा करके विद्यार्थियों के सम्मुख एक बहुमुखी चित्र प्रस्तुत किया जाता है ।

समीक्षा प्रणाली अधिकांशतः विश्वविद्यालयी स्तर पर अपनाई जाती है । नवीन शिक्षा प्रणाली में विद्यालय में बारहवीं कक्षा सम्मिलित हो जाने के बाद यत्र तत्र इस समीक्षा प्रणाली को अपनाया जा सकता है । साहित्य में अतिरिक्त रुचि रखने वाले छात्र इस प्रकार के पठन से अवश्य लाभान्वित हो सकते हैं ।

5. मिश्रित प्रणाली

अध्यापकों तथा प्रशिक्षणार्थियों के समक्ष सदा यह प्रश्न बना रहता है कि वे कौन सी प्रणाली को अपने शिक्षण का माध्यम बनाएँ । इस प्रश्न का सहज

और स्वाभाविक उत्तर यही है कि शिक्षण से पूर्व व कविता के स्तर, विद्यार्थियों के पूर्वज्ञान तथा शिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण कर लें।

मोटे रूप से प्राथमिक स्तर पर बालगीत प्रणाली, माध्यमिक स्तर पर व्याख्या प्रणाली और उच्च कक्षाओं में तुलनात्मक और समीक्षा प्रणाली का पट दे सकते हैं।

IX. कविता शिक्षण के सोपान

कविता को सफलतापूर्वक पढ़ाने के लिए निम्नलिखित सोपानों को अपनाया जा सकता है :—

1. प्रस्तावना संबंधी प्रश्न—प्रस्तावना संबंधी जानकारी के लिए पाठक पाठयोजना संबंधी अध्याय के प्रस्तावना अंश को पढ़ें।

2. कवि तथा कविता के संबंध में सामान्य जानकारी :—कविता पढ़ाने से पूर्व कविता में आने वाले कुछ कठिन शब्दों का वाक्य में प्रयोग करते हुए उनका अर्थ प्रवचन विधि से स्पष्ट किया जा सकता है। कविता का भाव इस विधि से समझाया जाए कि बिना व्याख्या के विद्यार्थी कविता का आनन्द ले सकें।

3. अध्यापक द्वारा आदर्श वाचन—अध्यापक एक या एक से अधिक बार, पूरी कविता का या कविता को खंडों में विभक्त करके आदर्श वाचन प्रस्तुत करें।

4. छात्रों द्वारा अनुकरण पाठ—छोटी कक्षाओं में व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से अनुकरण पाठ कराया जाए।

5. अध्यापक द्वारा पुनः आदर्श वाचन—प्राथमिक कक्षाओं के स्तर पर।

6. व्याख्या—मुख्य स्थलों और भावों की व्याख्या की जाए तथा कठिन शब्दों के अर्थ प्रवचन विधि द्वारा बताए जाएँ।

7. व्याख्या के बाद पुनः अध्यापक द्वारा आदर्श वाचन—इस वाचन के समय विद्यार्थी कविता का अतिरिक्त रसास्वादन कर सकेंगे।

8. काव्य सौन्दर्य तथा बोध संबंधी प्रश्न।

9. कविता को कंठस्थ करना।

10. सृजनात्मक कार्य—कविता पर आधारित अन्य कविताओं की रचना (उच्चतर कक्षाओं के लिए)।

X. कविता में रुचि उत्पन्न करने के उपाय

कविता लिखने की शक्ति ईश्वर प्रदत्त मानी जाती है किन्तु अभ्यास द्वारा इसका विकास किया जा सकता है। कविता पढ़ाने वाले का दायित्व है कि वह विद्यार्थियों के समक्ष इस प्रकार के वातावरण का निर्माण करे कि विद्यार्थी कविता में रुचि लेने लगें। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं :—

1. अध्यापक के स्तर पर

1. स्वयं की रुचि कविता के क्षेत्र में जगाना ।
2. कवियों की कृतियों का अध्ययन करना ।
3. कवि सम्मेलनों में सम्मिलित होना ।
4. स्वयं कविता लिखने का अभ्यास करना ।
5. पत्र-पत्रिकाओं से छात्रों के स्तर की कविताएँ एकत्रित करना तथा उन्हें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना ।
6. छात्रों को तुकांत अथवा अतुकांत कविताएँ लिखने को प्रोत्साहित करना ।
7. कविता की श्रेष्ठ व्याख्या करने वाले विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देना ।

2. विद्यालय के स्तर पर

1. कवियों को आमंत्रित करना ।
2. वसंत, होली तथा अन्य अवसरों पर कवि-सम्मेलनों का आयोजन करना ।
3. विद्यालय तथा अन्तर्विद्यालय स्तर पर अन्त्याश्रयी, कविता पाठ तथा बाल-कवि सम्मेलनों का आयोजन करना ।
4. अच्छा कविता पाठ करने वाले छात्रों को सम्मानित करना ।
5. श्रेष्ठ कवियों के चित्र, उनकी जीवनी तथा कृतियों आदि का विद्यालय में प्रदर्शन करना ।

3. विद्यार्थी के स्तर पर

1. कविता का सस्वर वाचन करने का अभ्यास करना ।
2. कविता पाठ प्रतियोगिताओं में भाग लेना ।
3. अच्छी कविताओं का संग्रह करना ।
4. तुकांत अथवा अतुकांत कविताएँ लिखने का अभ्यास करना ।
5. पास पड़ोस में होने वाले कवि सम्मेलनों को सुनना ।
6. आकाशवाणी तथा दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले कवि सम्मेलनों को सुनना ।
7. रविवारीय परिशिष्टों में प्रकाशित बाल कविताओं को पढ़ना ।
8. पत्र-पत्रिकाओं के लिए कविता भेजना ।

4. पाठ्य पुस्तक निर्माता के स्तर पर

1. स्तर के अनुकूल कविताओं का चुनाव ।

2. कविता में आए कठिन शब्द, भाव, काव्य-सौन्दर्य आदि की उचित स्थान पर व्याख्या ।
3. पाठ्य पुस्तक में कवियों की जीवनी, कवि का जीवन दर्शन, वे परिस्थितियाँ जिनके कारण कवि ने कविता लिखनी आरम्भ की, को अंकित करना ।
4. कविता पढ़ाने के लिए अध्यापकों के मार्ग दर्शन हेतु उचित पठन संकेत देना ।
5. अभ्यास पुस्तिकाओं में कविता के विभिन्न पहलुओं के अभ्यास के लिए उचित स्थान देना ।
6. अध्यापक दर्शिकाओं में कविता पढ़ाने का उचित निर्देश देना ।

5. अभिभावक शिक्षकसंघ के स्तर पर

1. अपने क्षेत्र में कवि सम्मेलनों का आयोजन करना ।
2. तरुण या नवोदय बाल कवियों को विशेष अवसरों पर कविता लिखने की प्रेरणा देना और उन्हें पुरस्कृत करना ।
3. राज्य की साहित्य अकादमी के सहयोग से विद्यालय में कवि सम्मेलनों का आयोजन करना ।
4. पत्र-पत्रिकाओं में बाल कवियों की कविताएँ प्रकाशित करवाना ।

व्यावहारिक कार्य

1. देश-विदेश के विद्वानों तथा कवियों द्वारा की गई कविता की परिभाषाओं का संकलन करना ।

2. निम्नलिखित आधारों पर बालगीत, वर्णनात्मक गीत तथा साहित्यिक कविताओं का संकलन करना । प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी 15 से 20 कविताओं का संकलन पुस्तिकाकार में करें । प्रत्येक कोटि की कविताएँ प्रशिक्षणार्थियों को छोटे समुदायों में बाँट कर एकत्रित करने को दी जा सकती हैं—

क. बालगीत

- | | |
|--------------------|-----------------------|
| क. भोजन संबंधी । | ख. वस्त्र संबंधी । |
| ग. खेल संबंधी । | घ. पशु-पक्षी संबंधी । |
| ङ. कहानी संबंधी । | च. परिवार संबंधी । |
| छ. परीलोक संबंधी । | ज. प्रकृति संबंधी । |
| झ. सामान्य । | |

ख. वर्णनात्मक गीत या कविताएँ

- | | |
|------------------|------------------|
| क. भोजन संबंधी । | ख. आवास संबंधी । |
|------------------|------------------|

- | | |
|--------------------------------|---------------------------|
| ग. व्यवसाय संबंधी । | घ. कहानी संबंधी । |
| ङ. युद्ध संबंधी । | च. विभिन्न ऋतुओं संबंधी । |
| छ. महापुरुषों के जीवन संबंधी । | ज. भूगोल संबंधी । |
| झ. देश संबंधी । | ञ. प्रकृति संबंधी । |
| ट. परीलोक संबंधी । | ठ. वार्तालाप संबंधी । |
| ड. उत्सव संबंधी । | ढ. पौराणिक कथा संबंधी । |

नोट—कुछ विषयों पर प्रशिक्षणार्थी स्वयं भी कविताओं की रचना कर सकते हैं ।

ग. साहित्यिक कविताएँ

- क. महापुरुषों के जीवन संबंधी ।
- ख. धार्मिक कथाओं संबंधी ।
- ग. प्रकृति संबंधी ।
- घ. देश प्रेम तथा राष्ट्र संबंधी ।
- ङ. कला, नृत्य आदि संबंधी ।
- च. संस्कृति संबंधी ।
- छ. समाज संबंधी ।
- ज. राजनीति संबंधी ।
- झ. साहित्यिक कविताएँ ।
- ञ. उत्साह, क्रोध, भय, वीरता, दानशीलता, बलिदान, क्षमा आदि भाव से संबंधी ।
- ट. हास्य, विनोद, व्यंग्य संबंधी ।

3. अन्य कार्य

- क. क्षेत्रीय लोक-गीतों का संग्रह करना ।
- ख. क्षेत्रीय भाषा या बोली में छात्रोपयोगी गीत लिखना ।
- ग. विशेष अवसरों पर कवि सम्मेलनों अन्त्याक्षरी, भावगीत, लोकगीत आदि प्रतियोगिताओं का आयोजन करना ।
- घ. क्षेत्रीय, स्थानीय तथा राष्ट्रीय स्तर के कवियों से सम्बन्ध स्थापित करना ।
- ङ. दूरदर्शन, आकाशवाणी के लिए कविता शिक्षण के आदर्श पाठ लिखना ।
- च. कवि-जयन्ती का आयोजन करना ।
- छ. तुकांत शब्द, वाक्यांश तथा वाक्यों का संग्रह करना ।
- ज. पुस्तकालय में प्राप्त कविता की पुस्तकों की सूची बनाना ।
- झ. कविता के क्षेत्र में प्रकाशित नवीन पुस्तकों की सूची बनाना ।
- ञ. पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविता की पुस्तकों की समीक्षा पढ़ना ।
- ट. कविताओं की समीक्षा करना ।

- ठ. किसी भी एक कवि की समस्त रचनाएँ पढ़ना और उन पर अपनी सम्मति देना ।

संदर्भ

1. कक्षा तीन से पाँचवीं तक का पाठ्यक्रम ,एन. सी. ई. आर. टी., नई दिल्ली, (1976) ।
2. दस वर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम—एक रूपरेखा, एन. सी. ई. आर. टी., (1976) ।
3. छठी से आठवीं कक्षा तक का पाठ्यक्रम, एन.सी.ई.आर.टी., (1976) ।
4. केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड पाठ्यक्रम (1985-86) ।
5. ईश्वर भाई पटेल कमेटी की रिपोर्ट (1977) ।
6. हिंदी भाषा शिक्षण, डा० भोला नाथ तिवारी (1980) ।
7. माध्यमिक विद्यालयों में हिंदी शिक्षण, निरंजन कुमार सिंह, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर (1973) ।
8. हिंदी शिक्षण पद्धति, डा० वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना (1973) ।
9. भाषा संप्राप्ति मूल्यांकन, डा० कृष्ण गोपाल रस्तोगी, केन्द्रीय हिंदी संस्थान आगरा (1973) ।
10. हिंदी शिक्षण विधि, डा० रघुनाथ सफ़ाया (1984) ।

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. विद्यालयी स्तर पर कविता शिक्षण के कौन-कौन से उद्देश्य हैं ? इन उद्देश्यों में से आप किस उद्देश्य को सर्वोपरि मानते हैं ?
2. बालगीत, वर्णनात्मक गीत और साहित्यिक कविताओं में क्या अन्तर है ? उपर्युक्त नामों की सार्थकता की समीक्षा करें ।
3. कविता शिक्षण के प्रमुख अंग कौन से हैं ? इन सभी अंगों का संक्षेप में वर्णन करें ।
4. 'कविता का शब्दार्थ कथन उतना महत्त्व नहीं रखता जितना कवि के संदेश का पाठक तक संप्रेषण', इस कथन की समीक्षा करें ।
5. काव्य शिक्षण की कौन-कौन सी प्रमुख प्रणालियाँ हैं ? इन प्रणालियों के गुण-दोषों का विवेचन करें ।
6. पाठ्य पुस्तकों के लिए कविता चुनाव का क्या आधार होना चाहिए ? आप बच्चों में कविता के प्रति रुचि जाग्रत करने के लिए कौन से उपाय करेंगे ?

अध्याय 15

नाटक की शिक्षा

I सामान्य परिचय

नाटक शब्द संस्कृत 'नट्' धातु से बना है जिसके 'नाचना', 'अभिनय करना', 'अनुकरण करना' आदि अर्थ हैं।

भारत में नाट्यकला अति प्राचीन काल से है। देवताओं ने इसका निर्माण मनोरंजन के लिए किया था। शिव नटेश हैं और वे नृत्य मुद्रा में भी प्रदर्शित किए जाते हैं।

संस्कृत साहित्य में नाटक के अनेक भेद-उपभेद मिलते हैं। रूपक, उपरूपक, नाटिका आदि के अतिरिक्त प्रतिपाद्य विषय तथा नायक के आधार पर नाटकों के अनेक प्रकार हैं। यथा—नाटक, प्रकरण, भाण, ईहामृग, डिम, व्यायोग, अंक, समवकार, वीथी, प्रहसन आदि।

नाटक की कथावस्तु (प्रख्यात, उत्पाद्य, मिश्र), नायक-नायिका भेद (धीरोदात्त, धीरललित, स्वकीया, परकीया आदि), रस (शृंगार, वीर आदि), अंक विधान (5 से 10 तक) आदि पर संस्कृत के आचार्यों ने विस्तृत रूप से चर्चा की है। भरत मुनि, उद्भट, भट्ट लोल्लट, श्री शंकुक, भट्ट नायक जैसे नाट्य शास्त्रकारों की कृतियों के विषय में अध्यापक को जानकारी होना आवश्यक है जिससे कि नाटक पढ़ाते समय वह उसकी उचित समीक्षा कर सके।

आधुनिक हिंदी साहित्य में हिंदी नाटकों का अभ्युदय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काल में हुआ। उस काल में संस्कृत तथा अंग्रेजी भाषाओं के नाटकों का हिंदी अनुवाद भी किया गया।

द्विवेदी (आचार्य महावीर प्रसाद) युग में पौराणिक कथाओं के आधार पर नाटकों की रचना की गई। कुछ नाटक ऐतिहासिक तथा समसामयिक घटनाओं पर लिखे गए। फारसी रंगमंच के आधार पर रोमांचकारी तथा अलौकिक घटनाओं पर भी नाटकों की रचना हुई। कुछ नाटकों का अनुवाद भी किया गया।

छायावाद युग (प्रसाद काल) में जयशंकर प्रसाद के नाटक हिंदी साहित्य की अमर कृतियाँ हैं। श्री हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मी नारायण मिश्र आदि के नाटक भी

धर्चा का विषय रहे हैं। इस काल में एकांकी नाटकों की भी रचना हुई है।

छायावादोत्तर काल में उपेन्द्र नाथ अशक, विष्णु प्रभाकर, जगदीश चन्द्र माथुर, डा० लक्ष्मी नारायण लाल, मोहन राकेश आदि ने प्रसिद्ध नाटकों की रचना की है।

गीतिनाट्यों के अतिरिक्त एकांकी नाटक भी प्रचुर मात्रा में लिखे गए हैं।

आजकल आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के माध्यम से नाटक, एकांकी, प्रहसन आदि का प्रसारण होता रहता है। अनेक रंगमंच भी नाटकों का प्रदर्शन करते रहते हैं। ग्राम्य जीवन में स्वांग तथा नौटंकी का प्रभाव कम रहते हुए भी वह अभी प्राणहीन नहीं हुआ है।

II नाटक की शिक्षा का महत्त्व

नाटक का जीवन में बहुत महत्त्व है। मनुष्य स्वभावतः अनुकरणप्रिय प्राणी है। अभिनय देखने तथा अभिनय करते समय उसकी इस प्रवृत्ति को तुष्टि मिलती है।

अपनी आन्तरिक भावनाओं को प्रकट करने के लिए नाटक प्रभावशाली माध्यम है। इसके द्वारा मानव जीवन की अनेक विध आन्तरिक भावनाओं को अभिव्यक्ति मिलती है।

सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानवीय जीवन मूल्यों को मानव हृदय में स्थापित करने का नाटक सर्वोचित माध्यम है।

नाटक लोकरंजन का बहुत ही उपयुक्त माध्यम है।

शिक्षा के क्षेत्र में नाटक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न विषयों को रोचक ढंग से पढ़ाने के लिए नाटक का उपयोग किया जा सकता है। इतिहास, पुराण, भूगोल, यहाँ तक कि विज्ञान और गणित की दुरूह संकल्पनाएँ भी नाटक के माध्यम से सरलतापूर्वक स्पष्ट की जा सकती हैं। नाटक क्रियात्मक शिक्षा है।

पर्यावरण प्रदूषण, जनसंख्या की शिक्षा, वृक्षारोपण जैसे आधुनिक विषय हँसी-हँसी में नाटक, एकांकी के माध्यम से जनता तक पहुँचाए जा सकते हैं।

III नाटक शिक्षण के उद्देश्य

मुख्यतः नाटक शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :—

1. अनुकरण की प्रवृत्ति को शांत करना।
2. आत्म प्रदर्शन, आत्म प्रकाशन आदि का अवसर प्रदान करना।
3. समाज की सुखद और दुखद परिस्थितियों में मानसिक साझेदारी करना।

4. साहित्य की एक महत्वपूर्ण शैली से परिचय प्राप्त करना ।
 5. अभिनय द्वारा शुद्ध उच्चारण, प्रभावपूर्ण भावप्रकाशन तथा भाषा प्रयोग की योग्यता का विकास करना ।
 6. भावानुकूल बोलने, विभिन्न परिस्थितियों में शिष्टाचार का पालन करने आदि का अवसर प्रदान करना ।
 7. नायक के जीवन के माध्यम से चरित्र निर्माण करना ।
 8. युग सन्देश दर्शकों तक पहुँचाना ।
 9. शिष्ट मनोरंजन करना ।
 10. साहित्यिक, कलात्मक तथा सृजनात्मक वृत्तियों का विकास करना ।
- नाटक शिक्षण के समय अध्यापक को यह ध्यान रखना होगा कि नाटक के सामान्य तथा विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति इसके शिक्षण के समय होनी चाहिए ।

IV नाटक के प्रकार

कथ्य, काल, उद्देश्य, आकार, शैली आदि के आधार पर नाटकों को कई प्रकार के नामों से अभिहित किया जा सकता है । यथा —

1. ऐतिहासिक नाटक ।
2. पौराणिक नाटक ।
3. सांस्कृतिक नाटक ।
4. सामाजिक नाटक ।
5. राजनीतिक नाटक ।
6. काल्पनिक नाटक ।
7. मनोवैज्ञानिक नाटक ।
8. रोमानी नाटक ।
9. गीति नाटक ।
10. प्रतीकात्मक नाटक ।
11. एकांकी ।
12. लघु नाटिका ।
13. दुखांत नाटक ।
14. सुखांत नाटक ।
15. प्रसादांत नाटक ।

उपर्युक्त प्रकार के नाटकों की प्रवृत्तियों के विषय में भाषा अध्यापक को भारतीय साहित्य शास्त्र तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास संबंधी पुस्तकों का अनुशीलन करना चाहिए । वर्तमान पुस्तक का उद्देश्य सीमित है अतः यहाँ

संकेत मात्र देना ही उपयुक्त समझा गया ।

V. नाटक के अंग

मोटे तौर पर नाटक के निम्नलिखित अंग हैं:—

क. भारतीय आचार्यों के अनुसार

1. वस्तु 2. पात्र 3. रस 4. अभिनय 5. वृत्ति ।

ख. पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार

1. वस्तु 2. पात्र 3. कथोपकथन 4. देशकाल 5. शैली 6. उद्देश्य ।

नाटक के उपर्युक्त अंगों अथवा तत्वों को संक्षेप में देने का अभिप्राय यह है कि शिक्षण के समय कक्षा के स्तर के अनुसार इन सभी अंगों को ध्यान में रखा जाए । नाटक के इन तत्वों की कहीं भी उपेक्षा न हो ।

VI. नाटक शिक्षण की विधियाँ

नाटक शिक्षण की कई विधियाँ हैं । उद्देश्य, उपलब्ध साधन, कथ्य, कक्षा के स्तर आदि को ध्यान में रखकर इन विधियों का चुनाव किया जा सकता है । नाटक शिक्षण की विधियों को निम्नलिखित नाम दिए जा सकते हैं :—

1. आदर्श वाचन विधि 2. पात्रानुसार वाचन विधि 3. व्याख्या विधि 4. कक्षा अभिनय विधि 5. रंगमंच अभिनय विधि 6. यंत्र विधि 7. मिश्रित विधि ।

1. आदर्श वाचन विधि

आदर्श वाचन विधि के अनुसार अध्यापक समस्त नाटक, एकांकी, लघु-नाटिका आदि का वाचन कक्षा में स्वयं करता है ।

वाचक का स्वर भावानुकूल तथा पात्रानुकूल होता है । वह हर्ष-विषाद आदि भावों को सात्विक विधि से प्रकट करता है ।

इस विधि के अनुसार कठिन शब्दों तथा संदर्भों की व्याख्या नहीं की जाती । अध्यापक का मुख्य उद्देश्य नाटककार के कथ्य को प्रभावशाली ढंग से विद्यार्थियों तक पहुँचाना होता है ।

आदर्श वाचन के समय यह आवश्यक नहीं कि विद्यार्थी भी अपनी पुस्तक को खोलें ।

लघु नाटिका, एकांकी आदि का आदर्श वाचन एक या दो वादन में तथा लम्बे नाटक का एक सप्ताह में किया जाता है ।

हमारे विद्यालयों में अधिकांश अध्यापक इसी विधि को अपनाते हैं । इस विधि के अपने गुण-दोष हैं । यथा—

गुण—

1. यह व्ययसाध्य नहीं है तथा हर परिस्थिति में इसे अपनाया जा सकता है।
2. छात्रों को भावानुकूल तथा पात्रानुकूल वाचन सुनने का अवसर मिल जाता है।
3. लेखक का संदेश कम समय में समग्र रूप में पहुँचने से श्रोता पर वांछित प्रभाव पड़ता है।
4. नाटक शिक्षण का उद्देश्य कठिन शब्दों का अर्थ बताना, व्याख्या करना आदि नहीं अपितु श्रोता के भावों का परिष्कार करना है। इस पद्धति से इस लक्ष्य की पूर्ति होती है।
5. छोटी कक्षाओं के लिए यह विधि और भी उपयुक्त है क्योंकि यहाँ नाटक सरल और लघु होते हैं।

सीमाएँ—

1. छात्र सूक श्रोता रहते हैं।
2. शब्दों के अर्थ तथा संदर्भों की व्याख्या किए बिना कई बार श्रोता पर वांछित प्रभाव नहीं पड़ता।
3. हर अध्यापक आदर्श वाचन करने में सक्षम नहीं होता।
4. अभिनय के अभाव में देश तथा काल की झाँकी श्रोता तक नहीं पहुँच पाती।

यदि आदर्श वाचन से पूर्व नाटककार के जीवन, कृति आदि के विषय में सामान्य परिचय दे दिया जाए तो वाचन का वांछित प्रभाव अवश्य पड़ेगा। कठिन शब्दों के अर्थ, कठिन भावों की व्याख्या आदि का काम बाद में किया जा सकता है।

2. पात्रानुकूल वाचन विधि

छात्रों द्वारा पात्रानुकूल वाचन विधि से अभिप्राय है कि विद्यार्थी विभिन्न पात्रों के संवादों को भावानुकूल पढ़ें। यह वाचन अध्यापक के आदर्शवाचन के बाद हो तो अच्छा है। सम्पूर्ण पाठ का वाचन एक दिन में अथवा सम्पूर्ण नाटक का वाचन कुछ दिनों तक किया जा सकता है। ऐसा करते समय कथा की लम्बाई का ध्यान रखना चाहिए।

गुण—

1. छात्र पाठ के समय सक्रिय रहते हैं।
2. भावानुकूल वाचन का अभ्यास होता है।
3. कक्षा में कुछ नाटक देखने जैसा दृश्य उपस्थित हो जाता है।

4. अध्यापक को छात्रों के व्यक्तित्व को परखने का अवसर मिलता है।
5. नाटककार का संदेश हृदयांगम करने में सुगमता रहती है।
6. कक्षा की सामान्य परिस्थितियों में इस प्रणाली को अपनाया जा सकता है।

सीमाएँ—

1. छात्रों को कठिन शब्दों, भावों, संदर्भों का भाव पूरी तरह समझ में नहीं आ पाता।
2. यह आवश्यक नहीं कि छात्र पहली बार में भावानुकूल वाचन कर सकें।
3. कुछ विद्यार्थी स्त्रीपात्र, खलनायक आदि के संवादों को पढ़ने में संकोच अनुभव करते हैं।

यदि इस प्रणाली को आदर्श वाचन प्रणाली के बाद अपनाया जाए तो उपयुक्त रहेगा। संभवतः छात्रों को आरंभ के कुछ नाटकों को भावानुकूल पढ़ने में कठिनाई या संकोच हो लेकिन इस पद्धति द्वारा उनमें नाटक शिक्षण के उद्देश्यों की स्थापना की जा सकती है।

3. व्याख्या विधि

इस विधि के अनुसार नाटक शिक्षण गद्य शिक्षण की भाँति किया जाता है। अध्यापक स्वयं संवादों का वाचन करता है। कठिन शब्दों, भावों, विचारों आदि की व्याख्या करता है। वह बीच-बीच में बोध प्रश्न पूछता रहता है।

गुण—

1. उच्च कक्षाओं में नाटकों की भाषा और भाव कठिन होते हैं। उनमें कविता आदि भी होती है। ऐसी स्थिति में व्याख्या प्रणाली लाभप्रद रहती है।
2. नाटककार द्वारा नियोजित कथा का संदेश व्याख्या के बिना छात्रों तक भली प्रकार नहीं पहुँच पाता।
3. इस प्रकार के शिक्षण में नाटक के गुण-दोषों पर भी प्रकाश डाला जा सकता है।
4. उच्च कक्षाओं में नाटक की साहित्यिक विवेचना बहुत आवश्यक है।

सीमाएँ—

1. इस विधि से शिक्षण नीरस हो जाता है।
2. विद्यार्थी सक्रिय नहीं रहते।
3. नाटक शिक्षण का मुख्य उद्देश्य गौण रह जाता है और भाषा शिक्षण प्रमुख बन जाता है।

आदर्श वाचन तथा छात्रों द्वारा पात्रानुकूल वाचन के बाद इस प्रणाली को

नाटक के महत्वपूर्ण स्थलों के लिए अपनाया जा सकता है।

4. कक्षा अभिनय विधि

कक्षा अभिनय विधि से तात्पर्य है कि नाटक, एकांकी आदि का अभिनय कक्षा में किया जाए। यह आवश्यक नहीं कि छात्र पात्रों की वेशभूषा धारण करें। यह विधि पात्रानुकूल वाचन को समान है। अन्तर केवल इतना ही है कि वहाँ भावनुकूल वाचन पर ही बल होता है लेकिन इस विधि के अनुसार अंग-संचालन पर भी बल होता है।

यदि वैज्ञानिक साधनों का लाभ उठाएँ तो टेपरिकार्डर आदि की म्हायता ली जा सकती है। पर्दे के पीछे भी संवादों को पढ़ा जा सकता है और पात्र संवाद के अनुसार केवल अभिनय मात्र कर सकता है।

गुण—

1. कक्षा अभिनय से शिक्षण रोचक बन जाता है।
2. विद्यार्थियों को अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है तथा व्यक्तित्व का विकास होता है।
3. श्रोताओं को देश काल आदि का ज्ञान होता है।
4. नाटककार का संदेश ग्रहण करने में श्रोताओं को सुगमता रहती है।

सीमाएँ—

1. सभी विद्यालयों में इतनी सुविधाएँ नहीं हैं कि सभी नाटकों का अभिनय किया जा सके।
 2. सभी विद्यार्थी अभिनय करने के पात्र नहीं होते।
- प्रत्येक विद्यालय नाटक के कुछ खण्ड का शिक्षण कक्षा अभिनय प्रणाली से करवा सकते हैं। इसके लिए कुछ शिक्षण पूर्व तैयारी अवश्य करनी होगी।

5. रंगमंच अभिनय विधि

इस विधि के अनुसार छात्र नाटक के अभिनय की पूर्ण तैयारी करते हैं तथा साज-सज्जा के साथ अभिनय करते हैं।

गुण—

1. छात्रों को वास्तविक स्थिति के अनुसार अभिनय करने का अवसर मिलता है।
2. उन्हें रंगमंच की तैयारी, नाटक का संचालन, निर्देशन आदि करने के अभ्यास का अवसर मिलता है।
3. जिस उद्देश्य के लिए नाटक लिखा जाता है उसकी पूर्ति होती है।

सीमाएँ—

1. हमारे विद्यालयों में इतने साधन उपलब्ध नहीं हैं कि नाटक का अभिनय रंगमंच पर किया जा सके ।
2. अधिकांश नाटक अभिनय की दृष्टि से नहीं लिखे जाते अतः उनके अभिनय में कठिनाई होती है ।

यदि पूरे नाटक का अभिनय संभव न हो तो उसके कुछ खंड का अभिनय किया जा सकता है । नाटक में काट-छाँट कर उसको मंच के अनुकूल ढाला जा सकता है । उच्च कक्षाओं के छात्र छोटे बच्चों के मनोरंजन के लिए छोटी कक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों के नाटकों का अभिनय कर सकते हैं ।

6. यंत्र विधि

शिक्षा में प्रौद्योगिकी का प्रयोग नित्यप्रति बढ़ रहा है । एन० सी० ई०-आर० टी० के प्रौद्योगिकी संस्थान ने यंत्रों की सहायता से अनेक रोचक कार्यक्रम तैयार किए हैं । नाटक शिक्षण में यंत्र प्रणाली का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है । यंत्र विधि से अभिप्राय है नाटक शिक्षण में आधुनिक यंत्रों का प्रयोग ।

टेपरिकार्डर तथा ग्रामोफोन पर रिकार्ड किए गए नाटक तथा आकाशवाणी पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों का उपयोग इसके लिए किया जा सकता है । यद्यपि नाटक मुख्यतः देखने के लिए लिखा जाता है किन्तु इसके सुनने का भी श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव पड़ता है । सातवीं पंचवर्षीय योजना में शैक्षिक कार्यक्रमों के लिए आकाशवाणी पर अलग चैनल की व्यवस्था शिक्षा में प्रौद्योगिकी के प्रयोग में महत्वपूर्ण चरण माना जाएगा ।

अब देश में दूरदर्शन कार्यक्रम का भी विस्तार हो रहा है । इस पर विद्यार्थियों के लिए विशेष कार्यक्रमों का प्रसारण होने लगा है । अनौपचारिक शिक्षा के प्रचार में दूरदर्शन महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है । इस माध्यम से कुशल निर्देशकों के निर्देशन में नाटक शिक्षण संभव हो गया है ।

बालसेवी संस्थाएँ बालोपयोगी नाटकों पर फ़िल्म बनाकर एक प्रकार से नाटक शिक्षण का उपयोगी कार्य कर रही हैं । कुछ विद्यालयों के अपने प्रोजेक्टर भी हैं । शिक्षा विभाग भी चलते फिरते सिनेमा यंत्रों का उपयोग करके इस क्षेत्र में योगदान दे सकते हैं । अब तो अनेक विद्यालयों में वी० सी० आर० का प्रयोग होने लगा है । इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करते-करते यंत्र विधि के बिना शिक्षा के प्रचार की कोई कल्पना भी नहीं कर सकेगा ।

7. मिश्रित विधि

इस विधि के अनुसार अध्यापक उपर्युक्त विधियों के उपयोगी अंशों का चुनाव करता है तथा उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखते हुए नाटक शिक्षण करता है।

VII. नाटक शिक्षण की पाठ योजना

नाटक शिक्षण की पाठ योजना के लिए निम्नलिखित सोपान अपनाए जा सकते हैं :—

1. प्रस्तावना

प्रस्तावना कक्षा और छात्रों की अवस्था को ध्यान में रखकर तैयार करनी चाहिए। विषय से समवाय स्थापित करने के लिए प्रस्तावना संबंधी कुछ प्रश्न पूछे जा सकते हैं। बड़ी कक्षाओं के लिए प्रस्तावना में नाटककार के जीवन, उसकी कृतियों का सामान्य परिचय, प्रस्तुत नाटक का उद्देश्य, सार आदि भी सम्मिलित किए जा सकते हैं। आवश्यकतानुसार प्रस्तावना एक दो मिनट से लेकर काफ़ी लम्बी भी हो सकती है।

2. उद्देश्य कथन

प्रस्तावना संबंधी प्रश्नों तथा दी गई जानकारी के आधार पर उद्देश्य कथन इस प्रकार का हो कि वह स्वाभाविक लगे। छात्र उद्देश्य कथन के बाद नाटक की मुख्य कहानी को सुनने के लिए लालायित हो उठें।

यदि नाटक रंगमंच अभिनय विधि के अनुसार पढ़ाया जा रहा है तो सूत्रधार या अन्य पात्र मंच पर आकर या पर्दे के पीछे रहकर उद्देश्य कथन कर सकता है।

3. पाठ का विकास

कक्षा के स्तर तथा पाठ के उद्देश्यों के अनुसार इसका शिक्षण कई प्रकार से हो सकता है। यथा—

1. अध्यापक द्वारा आदर्श वाचन या साभिनय वाचन—यह वाचन नाटक के कुछ खंड से लेकर सम्पूर्ण पाठ का भी हो सकता है।
2. पात्रानुसार साभिनय वाचन—यह वाचन सम्पूर्ण पाठ का हो सकता है। कुछ विद्यार्थियों को पात्रों के संवाद बाँट दिए जाएँ और इस प्रकार सम्पूर्ण पाठ पढ़ाया जाए।
3. यदि पाठ का उद्देश्य व्याख्या है तो गद्य शिक्षण विधि से पाठ को

पढ़ाया जा सकता है। पाठ को छोटे सोपानों में बाँटकर कठिन भावों की व्याख्या की जा सकती है। हर सोपान के अन्त में बोधप्रश्न पूछे जा सकते हैं।

4. पुनरावृत्ति संबंधी प्रश्न

नाटक शिक्षण के अन्त में कुछ पुनरावृत्ति संबंधी प्रश्न भी किए जाने चाहिए। प्रश्नों की संख्या विषय सामग्री को ध्यान में रखकर निश्चित करनी चाहिए। इनमें पात्रों के प्रति प्रतिक्रिया संबंधी प्रश्नों को प्राथमिकता दी जाए।

5. मौन वाचन

भाव ग्रहण के अभ्यास तथा वाचन गति को बढ़ाने के लिए कुछ समय तक मौन वाचन भी करवाया जा सकता है।

6. गृह कार्य

गृहकार्य कई प्रकार का हो सकता है। यथा—

1. नाटक को परिवार के सदस्यों को सुनाना।
2. पात्र विशेष के संवादों को कंठस्थ करना।
3. स्थान तथा काल विशेष की वेश-भूषा आदि तैयार करना।
4. आकाशवाणी से नाटक सुनना तथा दूरदर्शन पर नाटक देखना।
5. नाटककार की जीवनी तथा उसकी अन्य कृतियों को पढ़ना।
6. किसी स्थिति विशेष पर संवाद लिखना।
7. नाटक का सार लिखना।
8. पात्रों के बारे में अपनी प्रतिक्रिया लिखना।
9. नाटक मंडली बनाना।
10. नाटकों में भाग लेना आदि-आदि।

विशेष—नाटक शिक्षण की पाठ योजना में सहायक सामग्री तथा उसके वर्णन को विशेष स्थान दिया जाना चाहिए।

व्यावहारिक कार्य

संकलन कार्य

1. देश-विदेश के विद्वानों द्वारा दी गई नाटक की परिभाषाएँ एकत्र करना।
2. वैदिक काल से आधुनिक काल तक नाटकों के क्रमिक विकास पर लेख लिखना।

3. नाटक के भेद-उपभेदों, अंगों तथा पात्रों के भेद आदि के विषय में लेख लिखना ।
4. काल, विषय, वाद आदि के आधार पर नाटककार तथा उनकी कृतियों की सूचियाँ बनाना ।
5. विभिन्न आयुवर्ग के छात्रों की आवश्यकता अनुसार नाटकों की सूचियाँ तैयार करना ।
6. पुस्तकालय में उपलब्ध नाटकों की लेखक, विषय तथा कालक्रम अनुसार सूचियाँ तैयार करना ।
2. **मौखिक अभिव्यक्ति संबंधी कार्य**
 1. संवाद वाचन, नाटक वाचन, भावानुकूल वाचन की प्रतियोगिताओं का आयोजन करना ।
 2. कंठस्थ संवादों को सुनाने की प्रतियोगिताओं का आयोजन करना ।
3. **लेखन अभिव्यक्ति संबंधी कार्य**
 1. नाटक का श्रुतलेख, अनुलेख आदि लिखना ।
 2. नाटक के प्रमुख स्थलों का संरह करना ।
 3. नाटक में आए मुहावरों, लोकोक्तियों, विशिष्ट वाक्यांशों की सूची बनाना ।
 4. नाटक के प्रमुख स्थलों की व्याख्या लिखना ।
 5. पात्रों के चरित्रों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया लिखना ।
 6. सामान्य संवाद लिखने का अभ्यास करना ।
 7. समसामयिक विषयों पर संवादात्मक लेख लिखना ।
 8. पठित नाटकों की समीक्षा करना ।
4. **अभिनय संबंधी कार्य**

विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार भावाभिनय सीखना । यथा—

 1. भावों का अभिनय—अनुनय-विनय, प्रार्थना, प्रेम, क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, स्पर्धा आदि ।
 2. स्थितियाँ—माता-पिता, संबंधी, मित्र, गुरुजन, कार्यालय, साक्षात्कार, लोक सम्पर्क आदि की स्थितियों का अभिनय (शिष्टाचार संबंधी) ।
 3. विभिन्न अवस्थाओं का अभिनय—बाल, किशोर, युवक, वृद्धजन आदि ।
 4. विद्यालय तथा उसके बाहर नाटकों में भाग लेना ।
 5. परिवार के सदस्यों तथा विद्यालय के अध्यापकों के क्रियाकलापों का अभिनय ।
5. **रंगमंच संबंधी कार्य**
 1. विभिन्न कालों, धर्मों, जातियों, देशों की वेश-भूषाओं की जानकारी

प्राप्त करना ।

2. उपर्युक्त वेश भूषाओं को तैयार करना ।
3. रंगमंच संबंधी आवश्यक वस्तुओं की सूची तैयार करना ।
4. विभिन्न प्रकार के रंगमंच की तैयारी में भाग लेना ।
5. रंगमंच निर्देशन में भाग लेना ।

6. स्थानीय वातावरण संबंधी कार्य

1. स्थानीय नाटककारों को आमंत्रित करना ।
2. स्थानीय नाटक मंडली, स्वाँग मंडली, रास मंडली आदि को आमंत्रित करना ।
3. स्थानीय समस्याओं पर समाज चेतना के लिए नाटक खेलना ।
4. क्षेत्रीय बोलियों में नाटक लिखना ।

संदर्भ

1. भारतीय साहित्य शास्त्र कोश, डा० राजवंश सहाय हीरा, बिहार, हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना (1973) ।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० नगेन्द्र (सं०) ।
3. भारतीय साहित्य कोश, धीरेन्द्र वर्मा (वि० सं० 2020) ।
4. केन्द्रीय शिक्षा बोर्ड पाठ्यक्रम, नई दिल्ली (1986-87) ।
5. माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण, निरंजन कुमार सिंह ।
6. हिन्दी शिक्षण विधि, डा० रघुनाथ सक्राया ।

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. नाटक शिक्षण के उद्देश्य क्या हैं ? आप इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए क्या व्यवस्था करेंगे ?
2. नाटक शिक्षण की कौन-कौन सी विधियाँ प्रचलित हैं ? इन विधियों के गुण दोषों की समीक्षा करें ।
3. नाटक शिक्षण के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आप विद्यार्थियों से किस प्रकार का व्यावहारिक कार्य करवाएँगे, संक्षेप में लिखें ।
4. टिप्पणी लिखें—

1. नाटक के अंग 2. पात्रानुकूल वाचन 3. कक्षा अभिनय 4. नाटक की पाठ योजना के सोपान ।

अध्याय 16

कहानी शिक्षण

I. सामान्य परिचय

कहानी गद्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। संस्कृतकाल से ही शिक्षा के क्षेत्र में कहानी के शैक्षिक पक्ष का उपयोग होता रहा है। संस्कृत साहित्य में कहानी के लिए निम्नलिखित शब्द प्रचलित रहे हैं :—

1. आख्यायिका ।
2. कथा ।
3. कथानिका ।
4. वृत्तांत ।

परिभाषा की दृष्टि से कहानी के लिए प्रयुक्त इन पर्यायवाची शब्दों में आचार्यों ने भेद-उपभेद किए हैं। कथा के दस उपभेद मिलते हैं। यथा— आख्यान, परिकथा, खंडकथा, सकल कथा, उपकथा, बृहत्कथा आदि।

कहानी के लिए गल्प, कथानक, बात, किस्सा आदि शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है।

II. कहानी शिक्षण का महत्व

विद्यालयों में कहानी शिक्षण का बहुत महत्व है। पंचतंत्र, हितोपदेश आदि कहानियों की पुस्तकों में जहाँ एक ओर विद्यार्थियों का मनोरंजन होता है वहाँ दूसरी ओर उनकी कल्पना शक्ति का विकास तथा ज्ञानवर्धन भी होता है।

कहानी के पात्रों के माध्यम से बच्चों में जीवन अनुभवों का विकास होता है। उनकी रचि का विस्तार जीवन के विभिन्न पक्षों में होने लगता है।

पात्रों के माध्यम से बालकों के चरित्र का निर्माण संभव है। कुछ वाक्य, उपदेश तथा वार्ताएँ बच्चों के हृदय और मस्तिष्क को इस प्रकार प्रभावित कर जते हैं कि वे जीवन भर उनके मार्ग-दर्शक प्रकाश स्तंभ का काम करते हैं।

कहानी पढ़ने से मनुष्य की सहज भावनाएँ यथा—जिज्ञासा, कौतूहल,

उत्सुकता आदि शान्त होती हैं ! पाठक को कहानी पढ़ना आरम्भ करने के बाद उसे पूरा पढ़े बिना चैन नहीं पड़ता ।

किसी जाति, देश तथा धर्म की चारित्रिक विशेषताएँ वहाँ की कहानियों के माध्यम से प्रकट होती हैं । आज भी धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक तथा लोक कथाओं की लोकप्रियता हमारे सम्मुख इसका एक ज्वलंत उदाहरण है ।

नित्य नवीन कहानियों का प्रकाशन इनके महत्त्व को स्वतः स्पष्ट करता है । सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक आदि शायद ही जीवन का कोई पक्ष हो जो आज कहानी के क्षेत्र से अछूता हो ।

III. कहानी शिक्षण के उद्देश्य

पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च कक्षाओं में कहानी शिक्षण के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

1. मनोरंजन ।
2. कल्पना शक्ति का विकास ।
3. जिज्ञासा शांत करना ।
4. जीवन के अनुभवों का विस्तार ।
5. चरित्र निर्माण ।
6. सामाजिक चिन्तन तथा आदर्श आदि से परिचय ।
7. धार्मिक तथा सांस्कृतिक पक्ष की चिरंतनता बनाए रखना ।
8. भाषायी तत्त्वों का विकास करना ।
9. साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा का परिचय देना ।
10. विभिन्न कथाकारों की शैली, जीवन दर्शन आदि से परिचय कराना ।
11. सृजनात्मक शक्ति का विकास ।
12. कथाकार, चित्रपटकथा लेखक, कथा समीक्षक आदि तैयार करना ।

IV. कहानी के प्रकार

आकार, कथानक, शैली, मनोभाव, उद्देश्य आदि की दृष्टि से कहानियों का विभाजन कई प्रकार से किया जा सकता है । यथा :—

1. बाल कथा ।
2. लघु कथा ।
3. परियों की कहानी ।
4. पशु-पक्षियों की कहानी ।
5. काल्पनिक कहानी ।
6. पौराणिक कहानी ।

7. सामाजिक कहानी ।
8. मनोवैज्ञानिक कहानी ।
9. वैज्ञानिक कहानी ।
10. हास्य-विनोद की कहानी ।
11. अतूदित कहानी ।
12. तत्वों की दृष्टि से :—
 - क. घटना प्रधान कहानी ।
 - ख. चरित्र प्रधान कहानी ।
 - ग. वातावरण प्रधान कहानी ।
 - घ. भाव प्रधान कहानी ।
13. शैली की दृष्टि से
 - क. वर्णनात्मक । ख. डायरीपरक । ग. पत्रात्मक । घ. आत्मकथा परक ।
 - ङ. संवादात्मक । च. रिपोर्ताज । छ. रेखा चित्र । ज. संस्मरण ।
 - झ. यात्रावृत्त ।
14. नई कहानी
 - क. अकहानी ख. सचेतन कहानी ग. आंचलिक कहानी घ. प्रगति-वादी कहानी
 - ङ. यथार्थवादी कहानी च. मूल्यवादी कहानी
 - छ. रोमानी कहानी

प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च कक्षाओं के लिए कहानी का चयन छात्रों के मानसिक विकास के अनुसार किया जाता है । उपर्युक्त विभाजन देने का अभिप्राय यह है कि कहानी शिक्षण के समय अध्यापक कहानी की मूल भावना, कथ्य, उद्देश्य आदि को प्रमुख रूप से ध्यान में रखें ।

कहानियों के उपर्युक्त विभाजन के विस्तार में जाने का यहाँ न समय है और न ही औचित्य । अध्यापक इस विषय की अधिक जानकारी के लिए हिंदी साहित्य का इतिहास के कहानी का विकास खंड का अध्ययन करें ।

V. कहानी शिक्षण की प्रणालियाँ

कहानी शिक्षण के लिए विद्यार्थियों की आयु, कक्षा के स्तर, कहानी के उद्देश्य आदि को ध्यान में रखकर कई विधियाँ अपनाई जा सकती हैं । कहानी शिक्षण की इन विधियों को निम्नलिखित नाम दिए जा सकते हैं :—

1. मौखिक कहानी कथन प्रणाली ।
2. चित्र प्रदर्शन प्रणाली ।
3. अधूरी कहानी पूर्ति प्रणाली ।
4. वाचन प्रणाली ।

5. गहन अध्ययन प्रणाली ।

1. मौखिक कहानी कथन प्रणाली

इस प्रणाली के अनुसार कहानी को मौखिक रूप से सुनाया जाता है। कहानी सुनाने की यह प्रणाली अति प्राचीन तथा स्वाभाविक है।

छोटी कक्षाओं के लिए यह प्रणाली अत्यंत उपयुक्त रहती है। बच्चों को छोटी-छोटी कहानियाँ सुनना बहुत अच्छा लगता है। श्रवणशक्ति के विकास के लिए यह प्रणाली बहुत उपयुक्त है।

माध्यमिक तथा उच्च कक्षाओं में भी इस विधि को किसी अंश तक अपनाया जा सकता है। पाठ्य पुस्तक की कहानी को पढ़ाने से पहले उसे संक्षेप में सुनाया भी जा सकता है।

लम्बी कहानी, नाटक तथा उपन्यास की कहानी को संक्षेप में बताया जा सकता है।

पात्रों के मनोभावों को अभिव्यक्त करने, उनकी विशेषताओं को स्पष्ट करने तथा कहानी को सार रूप में कह सकने के अभ्यास के लिए कहानी को मौखिक रूप से सुनाया जा सकता है।

मौखिक कहानी कथन की कुछ सीमाएँ भी हैं। घटना प्रधान कहानी उत्सुकतावश सुनी जाती है। वर्णन प्रधान, भाव प्रधान, मनोवैज्ञानिक कहानी का वर्णन मौखिक रूप से कर पाना कठिन काम है। ये कहानियाँ मुख्य रूप से पढ़ने के लिए ही लिखी जाती हैं। पाठ्यक्रम के विस्तार की दृष्टि से सभी कहानियों को सुना पाना भी कठिन है।

2. चित्र प्रदर्शन प्रणाली

इस प्रणाली के अनुसार कहानी को विभिन्न चित्रों के माध्यम से दिखाया जाता है। चित्रों का क्रम कहानी के विकास के अनुसार रखा जाता है।

इस प्रणाली के अनुसार निम्नलिखित विधियाँ अपनाई जा सकती हैं :—

क. पूर्व श्रुत कहानी के चित्र बालकों को दिखाए जाएँ और घटना संबंधी प्रश्न पूछकर कहानी का विकास किया जाए।

पूर्व प्राथमिक तथा प्राथमिक कक्षाओं के लिए यह विधि बहुत उपयुक्त रहती है। बालक पात्रों का स्थूल रूप देखकर चमत्कृत हो उठते हैं।

ख. नई कहानी को चित्रों के माध्यम से पढ़ाया जाए। बालकों से चित्र से संबंधित प्रश्न पूछे जाएँ तथा कहानी का विकास शनैः-शनैः किया जाए।

यह विधि भी पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक स्तर के लिए अनुकूल रहती

है। इससे बच्चों की कल्पना शक्ति का विकास होता है तथा उन्हें मौखिक अभिव्यक्ति का अवसर भी मिलता है।

ग. स्वतंत्र चित्र दिखाकर भी कहानी का निर्माण हो सकता है। इन चित्रों में सामान्य घटनाओं को प्रदर्शित किया जाता है। चित्रों से संवद्ध कोई प्रसिद्ध कथा नहीं होती। चित्र जीवन की विभिन्न घटनाओं से इस प्रकार जुड़े होते हैं कि विद्यार्थी उन्हें देखकर कहानी का निर्माण कर सकते हैं।

चित्र प्रदर्शन से कहानी पढ़ाने की यह विधि प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर तक उपयोगी रहती है। इससे बच्चों की कल्पना शक्ति का विकास होता है। उन्हें मौखिक अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है तथा उनकी सृजनात्मक शक्ति का भी विकास होता है।

इस विधि के अनुसार चित्रों का निर्माण स्थानीय वातावरण के अनुसार हो तो बहुत उपयोगी रहेगा।

3. अधूरी कहानी पूर्ति प्रणाली

इस प्रणाली के अनुसार अधूरी कहानी को पूर्ण करवाया जाता है। कहानी को पूरा करने के लिए निम्नलिखित विधियाँ अपनाई जाती हैं :—

क. कहानी का आरम्भ दो तीन वाक्यों अथवा एक अनुच्छेद से कर दिया जाता है। पात्रों का चुनाव, घटना क्रम, वातावरण का निर्माण, उद्देश्य आदि की बात पूर्ण रूप से विद्यार्थी पर छोड़ दी जाती है।

कहानी की यह प्रणाली उच्च कक्षाओं के लिए बहुत उपयोगी रहती है। कहानी की पूर्ति लिखकर या बोलकर की जा सकती है।

इस विधि से विद्यार्थी को आत्माभिव्यक्ति का अवसर मिलता है। उसे अपनी कल्पना की सृष्टि निर्माण करने का सुअवसर भी मिलता है। विद्यार्थी को अपने जीवन दर्शन तथा व्यक्तित्व के विकास के लिए उपयुक्त अवसर मिलता है। ऐसा अवसर प्रदान करने से विद्यार्थी को अपनी सृजनशक्ति को प्रदर्शित करने का स्वर्ण अवसर मिलता है।

ख. कहानी की सामान्य रूप रेखा देकर भी कहानी पूर्ण करने को कहा जा सकता है। रूपरेखा में कहानी के दिशा बोध का कोई संकेत नहीं दिया जाता। कुछ संकेतों के आधार पर कहानी का निर्माण करवाया जा सकता है।

यह कार्य उच्च कक्षाओं के विद्यार्थी रुचि से करते हैं।

ग. कहानी का केवल शीर्षक मात्र देकर भी कहानी लिखवाई जा सकती है। इसमें विद्यार्थी को कहानी का पूरा ताना-बाना बुनने का अवसर मिलता है। यह कार्य भी उच्च कक्षाओं के विद्यार्थी ही कर

सकते हैं ।

4. वाचन प्रणाली

वाचन प्रणाली के अनुसार विद्यार्थी पाठ्य पुस्तक में दी गई कहानी को वाचन विधि से सीखता है । वाचन प्रणाली की चर्चा पीछे गद्य शिक्षण में विस्तृत रूप से की गई है ।

संक्षेप में वाचन प्रणाली की निम्नलिखित विधियाँ हो सकती हैं :—

1. सम्पूर्ण कहानी को अध्यापक ही कक्षा में पढ़कर सुनाए ।
2. एक ही विद्यार्थी सारी कहानी को कक्षा में पढ़कर सुनाए ।
3. कई विद्यार्थी सारी कहानी को अंशतः पढ़-पढ़कर सुनाएँ ।
4. विद्यार्थी मौन रूप से कक्षा में कहानी पढ़ें ।
5. अध्यापक कहानी का कुछ भाग विद्यार्थियों के सामने पढ़े तथा कठिन शब्दों का अर्थ बताते हुए शेष भाग को इसी विधि से पढ़ने को कहें ।
6. यदि कहानी संवाद के रूप में है तो कुछ विद्यार्थी कहानी के पात्र बनकर अपने-अपने अंश को पढ़ें । संवाद के अतिरिक्त शेष भाग को एक अन्य विद्यार्थी पढ़ता रहे ।

कहानी शिक्षण की उपर्युक्त विधियाँ कहानी शिक्षण के उद्देश्य पर निर्भर करती हैं । अध्यापक को यह निर्णय करना होगा कि वह कहानी शिक्षण में अमुक दिन कौन से उद्देश्य को प्रमुखता देना चाहता है । एक ही कहानी कई विधियों से पढ़ाई जा सकती है ।

प्रशिक्षार्थियों को उद्देश्य के चुनाव में बड़ी कठिनाई होती है । वे अपने प्राध्यापक से इस विषय में निश्चित रूप से चर्चा करें । वे कहानी शिक्षण के इन भेद-उपभेदों की गुत्थी कहानी शिक्षण के उद्देश्य के आधार पर ही सुलझा सकते हैं ।

5. गहन अध्ययन प्रणाली

कहानी शिक्षण की गहन अध्ययन प्रणाली से अभिप्राय है कि कहानी में आए कठिन शब्द, नए विचार, मुहावरे, लोकोक्ति आदि की समुचित व्याख्या करते हुए कहानी को पढ़ना । इस प्रणाली के अनुसार कहानी की घटनाओं मात्र को समझ लेना काफी नहीं । कहानी के कथन, संदेश, उपदेश, निर्देश, कथाकार का दर्शन, उसका सम-सामायिक महत्त्व, कहानी की अन्य कहानियों के संदर्भ में साहित्यिक तुलना और समीक्षा के अन्यान्य पहलुओं पर भी विचार करना इसमें सम्मिलित है ।

यह प्रणाली भावप्रधान, मनोवैज्ञानिक, विचार प्रधान, साहित्यिक आदि

कहानियों के शिक्षण के लिए उपयुक्त रहती है। इस विधि से वही अध्यापक पढ़ा सकता है जिसका इस क्षेत्र में विस्तृत अध्ययन हो।

कहानी चाहे कोई भी हो उसके सुनाने के ढंग का श्रोता पर प्रभाव पड़ता है। नीचे कहानी सुनाने वाले शिक्षक के प्रमुख गुणों की चर्चा की जाती है।

VI. कहानी सुनाने वाले के गुण

श्रोता को प्रभावित करने के लिए कहानी शिक्षक में निम्नलिखित गुणों की अपेक्षा की जाती है :—

1. भाषा पर अधिकार।
2. कहानी में स्वयं की रुचि।
3. उचित हाव-भाव के साथ कहानी सुनाना।
4. बाल स्वभाव तथा मानव स्वभाव की परख।
5. अच्छी स्मरण शक्ति।
6. श्रोता के प्रति आत्मीयता।
7. विनोदी स्वभाव।
8. कहानी कथन के उद्देश्य के प्रति जागरूकता।

VII. कहानी शिक्षण के समय ध्यान रखने योग्य सुझाव

कहानी शिक्षण के समय अध्यापक को निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए :—

1. कहानी का उचित चुनाव

पाठ्य पुस्तक में दी गई कहानियाँ सामान्यतया बहुत सावधानीपूर्वक चुनी जाती हैं। इनमें विद्यार्थियों की आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता है। कई बार अध्यापक को अपने स्तर पर भी कहानियों का चुनाव करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में निम्नलिखित मार्गदर्शक बिन्दु ध्यान में रखने चाहिए :—

- क. कहानी रोचक हो।
- ख. कहानी विद्यार्थी की मानसिक अवस्था के अनुकूल हो।
- ग. कहानी की भाषा बोधगम्य हो।
- घ. कहानी में पात्रों की भरमार न हो।
- ङ. यथासम्भव घटनाएँ विश्वसनीय हों।
- च. कहानी न बहुत लम्बी हो और न बहुत छोटी।
- छ. कहानी यथासंभव नई हो।
- ज. कहानी उद्देश्य पूर्ण हो।

झ. कहानी से प्राप्त होने वाली सीख उपदेशात्मक नहीं हो अपितु घटनाओं के आधार पर श्रोता स्वयं निष्कर्ष निकाल सके।

ञ. कहानी श्रोता या पाठक के जीवन के किसी पक्ष से संबंधित हो।

2. उचित वातावरण का निर्माण

कहानी शिक्षण से पूर्व उचित वातावरण का निर्माण बहुत आवश्यक है। इसके लिए इन बातों का ध्यान रखना होगा :—

क. बच्चों के बैठने की उचित व्यवस्था।

ख. सहायक सामग्री के प्रदर्शन के लिए उचित व्यवस्था।

ग. यदि कहानी पढ़कर सुनानी है तो सभी विद्यार्थियों के पास पाठ्य-पुस्तकों की उपलब्धि।

घ. प्रस्तावना तथा उद्देश्य कथन द्वारा छात्रों में कहानी को सुनने की उत्कंठा जाग्रत करना।

3. कथन की उपयुक्त शैली

कहानी का चुनाव कितना भी अच्छा हो और वातावरण का निर्माण कितना भी ठीक हो यदि कहानी कथन की शैली उपयुक्त नहीं है तो कहानी नीरस हो जाएगी। कहानी सुनाते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है :—

क. कहानी सुनाने का उचित स्थान तथा बच्चों से समुचित दूरी।

ख. भावानुकूल हाव-भाव।

ग. वाणी का भावानुकूल आरोह-अवरोह।

घ. बीच-बीच में बच्चों से कहानी संबंधी एक दो प्रश्न पूछते रहना।

ङ. कहानी के उद्देश्य बिन्दुओं पर विशेष बल।

च. ऊब को दूर करने के लिए बीच-बीच में स्मित हास्य।

छ. कहानी कहने की उचित गति—सामान्यतः मन्द।

4. सहायक सामग्री का उचित निर्माण तथा उपयोग

पूर्व प्राथमिक तथा प्राथमिक स्तर पर कहानी के कथन में सहायक सामग्री का बहुत महत्त्व है। यह सामग्री मूल वस्तु, मॉडल, चित्र आदि किसी भी रूप में हो सकती है। सहायक सामग्री में निम्नलिखित गुण होने चाहिए :—

क. सहायक सामग्री संदर्भ के अनुकूल हो।

ख. इसका प्रदर्शन उचित समय पर किया जा सके।

ग. यह आवश्यकता से अधिक नहीं हो।

घ. स्थानीय साधनों से निर्मित हो तथा खर्चीली नहीं हो।

ङ. प्रदर्शित सामग्री का आकार न बहुत बड़ा, न छोटा हो। सभी छात्र इसे उचित दूरी से देख सकें।

च. छोटी आयु के बच्चों के लिए सामग्री में प्रयुक्त रंग आकर्षक हों।

छ. बच्चों का ध्यान विषय सामग्री की ओर अधिक तथा सहायक सामग्री की ओर केवल आवश्यक समय तक जाए।

नोट:—सहायक सामग्री की विशेष चर्चा श्रव्य और दृश्य सामग्री के अध्याय में की गई है।

VIII. कहानी शिक्षण के सोपान

कहानी शिक्षण के लिए इसे निम्नलिखित सोपानों में विभक्त किया जा सकता है :—

1. प्रस्तावना संबंधी प्रश्न।
2. उद्देश्य कथन।
3. कहानी कथन।

कहानी कथन की शैली कहानी के उद्देश्यों के अनुकूल अपनानी चाहिए। इसकी चर्चा पीछे कहानी शिक्षण प्रणालियों के समय की जा चुकी है। संक्षेप में कहानी कथन के ये उप सोपान निम्न प्रकार से हो सकते हैं :—

1. यदि कहानी मौखिक रूप से सुनाई जाए

- क. संपूर्ण कहानी को निरन्तर सुनाया जा सकता है।
- ख. कहानी को खंडों में बाँटकर सुनाया जा सकता है। प्रत्येक खंड के अंत में बोध प्रश्न पूछे जा सकते हैं।

2. यदि कहानी चित्रों के माध्यम से सुनाई जाए

- क. पहले क्रमानुसार चित्र दिखाएँ।
- ख. चित्रों से संबंधित प्रश्न पूछें।
- ग. अध्यापक स्वयं चित्र का वर्णन करें।
- घ. अध्यापक सहायक कथन के रूप में प्रश्न पूछें और आगे कहानी का विकास करें।
- ङ. बीच-बीच में बोध प्रश्न पूछे जाएँ।

3. यदि कहानी वाचन के रूप में सुनाई जाए

- क. अध्यापक द्वारा संपूर्ण कहानी का वाचन। या

ख. अध्यापक द्वारा कहानी का विभिन्न छोटे-छोटे खंडों में वाचन और उन पर बोधप्रश्न । या

ग. एक छात्र द्वारा संपूर्ण कहानी का वाचन । या

घ. कुछ छात्रों द्वारा छोटे-छोटे खंडों का वाचन और अध्यापक द्वारा उन पर बोध प्रश्न ।

(वास्तव में कहानी पढ़ाने की यह बहुत उपयुक्त विधि नहीं है । द्रुतगति के अध्यास के लिए यह विधि अपनाई जा सकती है)

4. यदि कहानी गहन अध्ययन के रूप में पढ़ाई जाए

भाव प्रधान, विचार प्रधान तथा मनोवैज्ञानिक कहानियाँ यदि गहन अध्ययन के रूप में पढ़ाई जाएँ तो वे शुद्ध गद्य शिक्षण का रूप ले लेती हैं । इसके लिए निम्नलिखित विधि अपनाई जा सकती है :—

क. अध्यापक द्वारा खंड विशेष का वाचन ।

ख. बठिन शब्दों के अर्थों का स्पष्टीकरण ।

ग. मुख्य भावों और विचारों का विश्लेषण ।

घ. बोध प्रश्न पृष्ठना ।

ङ. पुनरावृत्ति के प्रश्न—कक्षा और कथ्य की आवश्यकता अनुसार ।

च. मौन पाठ—(यदि कहानी गद्य के रूप में है) ।

छ. गृह कार्य—गृह कार्य कक्षा और विषय सामग्री के अनुसार कई रूप में हो सकता है । यथा :—

क. कहानी को घर पर पढ़कर आना ।

ख. कहानी को घर सुनाना ।

ग. कहानी से मिलती-जुलती अन्य कहानी पढ़ना ।

घ. कहानी का सार लिखना ।

ङ. कहानी से मिलती जुलती कहानी स्वयं लिखना ।

च. कहानी के किसी पात्र के चरित्र के विषय में टिप्पणी या प्रतिक्रिया लिखना ।

पाठक कहानी शिक्षण के पाठ योजना संबंधी संकेत पाठ योजना नामक अध्याय में पढ़ें ।

व्यावहारिक कार्य

1. कथा साहित्य के क्रमिक विकास पर लेख लिखना ।

2. विद्वानों द्वारा दी गई कहानी की परिभाषाओं का संग्रह करना ।

3. हिन्दी के प्रमुख कहानीकारों द्वारा लिखित कहानी-संग्रहों की सूची

तैयार करना ।

4. पुस्तकालय में उपलब्ध कहानी की पुस्तकों की सूची तैयार करना ।
5. विभिन्न शैलियों, वादों आदि से संबद्ध कहानीकारों के नाम तथा कृतियों की सूची तैयार करना ।
6. कहानी वाचन प्रतियोगिता आयोजन में भाग लेना ।
7. कहानी कथन प्रतियोगिता आयोजन में भाग लेना ।
8. कहानी लेखन प्रतियोगिता आयोजन में भाग लेना ।
9. स्थानीय बोली की लोक कथाओं का संग्रह ।
10. स्थानीय बोली की कहानी कथन प्रतियोगिता का आयोजन ।
11. कहानीकारों के जन्म दिन का आयोजन ।
12. स्थानीय तथा अन्य कहानीकारों को संस्थान में आमंत्रित करना ।
13. पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानी की पुस्तकों की समीक्षा पढ़ना ।
14. कहानी की पुस्तकों की समीक्षा करना ।
15. विद्यालय, महाविद्यालय में कहानी विशेषांक पत्रिका का प्रकाशन करना ।
16. चित्रपट की कथा की समीक्षा करना ।
17. आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि के लिए कहानी लिखना ।
18. कहानी शिक्षण से संबंधित आदर्श प्रदर्शन पाठों का आयोजन करना ।
19. शिक्षण-अभ्यास-विद्यालयों में कहानी शिक्षण संबंधी प्रदर्शन-पाठों का आयोजन करना ।
20. विद्यालय से संबद्ध विस्तार सेवा केन्द्रों के माध्यम से कहानी संबंधी कार्यक्रमों का आयोजन करना ।
21. कहानियों से संबंधित सहायक सामग्री का निर्माण करना ।
22. कहानी शिक्षण की विभिन्न शैलियों के आधार पर पाठ योजनाओं का निर्माण करना ।
23. कहानी मूल्यांकन संबंधी सामग्री का निर्माण करना ।
24. पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों की कतरन इकट्ठी करके एलबम तैयार करना ।
25. कहानीकारों के चित्रों का एलबम तैयार करना ।
26. किसी कहानी की पुस्तक को पढ़ना और उसकी कहानियों का वर्गीकरण करना ।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, डा० नरेन्द्र (1976) ।

2. भारतीय साहित्य कोश, डा० नगेन्द्र (1981) ।
3. हिंदी शिक्षण की कुछ इकाइयाँ, एन०सी०ई०आर०टी० (1973) ।
4. कक्षा दो से दसवी तक का पाठ्यक्रम, एन०सी०ई०आर०टी० ।
5. माध्यमिक विद्यालयों में हिंदी शिक्षण, निरंजन कुमार सिंह ।
6. हिंदी शिक्षण पद्धति, डा० वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा ।
7. हिंदी शिक्षण विधि, डा० रघुनाथ सफ़ाया ।

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. 'कहानी से जिज्ञासा की तृप्ति और कल्पना शक्ति का विकास होता है', इस कथन की समीक्षा करते हुए कहानी शिक्षण के उद्देश्यों पर प्रकाश डालें ।
2. 'कहानी को आकार, कथानक, शैली, उद्देश्य आदि के आधार पर कई रूपों में विभाजित किया जाता है' । इन रूपों की चर्चा करते हुए बताइए कि शिशु, किशोर और तरुण अवस्था के बच्चों को किस प्रकार की कहानियाँ पसंद हैं ?
3. कहानी शिक्षण की कौन-कौन-सी प्रणालियाँ हैं ? इन प्रणालियों की समीक्षा करें ।
4. कहानी सुनाने वाले में कौन-कौन से गुण होने चाहिए ? कहानी शिक्षण के समय आप किन बातों का विशेष ध्यान रखेंगे ?
5. टिप्पणी लिखें—
 1. कहानी शिक्षण के सोपान 2. कहानी शिक्षण का महत्त्व 3. कहानी के तत्व 4. नई कहानी 5. मनोवैज्ञानिक कहानी ।

अध्याय 17

उपन्यास की शिक्षा

I. उपन्यास क्या है ?

उपन्यास गद्य साहित्य की नव विकसित एक ऐसी विधा है जिसमें कोई लम्बी कथा दी जाती है। पश्चिम में इसका जन्म “पुनर्जागरण युग” में हुआ। इतालवी में इसे ‘नोवेला’ कहा जाता था। अंग्रेजी में इसे “नाविल” नाम दिया गया। जैसा कि शब्द से स्पष्ट है नाविल में कोई न कोई ऐसी नव्यता या नवीनता होती थी जो कल्पना प्रधान होने के कारण पाठकों का मन मोह लेती थी। इस प्रकार की लंबी कहानियाँ पाठकों को बहुत पसंद आईं और इस विधा का विकास तेजी से होने लगा।

जिस समय यूरोप में औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात हुआ तो उपन्यास की कहानियों में जटिलता आने लगी। व्यष्टि और समष्टि के संघर्ष ने ऐसी चिन्तन-धारा को जन्म दिया कि उससे जीवन का रंग प्रगाढ़ होता चला गया। उपन्यास यथार्थोन्मुखी होने लगा। जो लोग पश्चिम के संपर्क में आए उनके साहित्य पर भी इस का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

वर्तमान युग में उपन्यास गद्य साहित्य की वह सशक्त विधा मानी जाती है जिसकी कथा काल्पनिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक या पारिवारिक आदि कोई भी हो सकती है।

II. उपन्यास साहित्य का क्रमिक विकास

कुछ विद्वान् इस शब्द की व्युत्पत्ति उप (निकट) + न्यास (रखा हुआ) से मानते हैं किन्तु इस व्युत्पत्ति की संगति उपन्यास की प्रकृति से मेल नहीं खाती।

कादम्बरी (बाणभट्ट कृत) को भारत का पहला उपन्यास माना जाता है। स्वप्नवासवदत्ता, दशकुमारचरित, कादम्बरी आदि संस्कृत ग्रंथों में सामान्य-तया वे सभी तत्त्व मिलते हैं जो आधुनिक उपन्यास में परिलक्षित हुए।

भारतीय प्रेमाख्यान अरबों के माध्यम से योरोपीय देशों में पहुँचे जहाँ इन्होंने रोमांटिक कहानी, उपन्यास आदि का रूप लिया।

अंग्रेजों के भारत आगमन के साथ इन रोमांटिक कथाओं का प्रभाव बंगला साहित्य पर पड़ा, तदनंतर बंगला साहित्य का प्रभाव हिंदी पर पड़ा और इस तरह हिंदी साहित्य में उपन्यास साहित्य का अवतरण होने लगा।

लाला श्रीनिवास दास का परीक्षा गुरु (1882) अंग्रेजी ढंग का पहला मौलिक उपन्यास माना जाता है।

भारतेन्दुकाल में सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी, ऐयारी, जासूसी तथा रोमानी उपन्यास लिखे गए।

द्विवेदी युग में उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त ऐतिहासिक और मनोरंजन-प्रधान उपन्यास भी लिखे गए। कहीं-कहीं इन उपन्यासों का दृष्टिकोण सुधारवादी भी रहा।

छायावाद-युग में मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों ने सम-सामयिक समस्याओं को समेटा। इनमें पराधीनता, जमींदारी, पूंजीपति, किसान-शोषण, निर्धनता, दहेजप्रथा, अंधविश्वास आदि विषयों को प्रमुख स्थान दिया गया। गांधी जी के प्रभाव के कारण मानवतावादी दृष्टिकोण उनके उपन्यासों का विषय रहे।

छायावादोत्तर काल के उपन्यास मुख्यतया फ्रायड और मार्क्स की विचार-धारा, प्रयोगात्मक विशेषताओं और आधुनिकतावादी विचारधारा को ध्वनित करते हैं। इन उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक उपन्यास, सामाजिक चेतना के उपन्यास, प्रयोगशील उपन्यास आदि सम्मिलित हैं।

III. उपन्यास शिक्षण का महत्त्व

प्रत्येक उपन्यासकार अपनी कल्पना के संसार की रचना करता है। उसके इस काल्पनिक संसार में वर्तमान समाज की बुराइयों से छुटकारा पाकर एक नए सुखमय संसार में बसना होता है। उपन्यासकार उपन्यास के माध्यम से इसी संसार की रचना करता है और पाठक उसे पढ़कर कुछ समय के लिए उसमें विचरण करने लगता है।

उपन्यास जीवन और समाज की आलोचना है। कहानी में इस आलोचना का कम अवसर मिलता है किन्तु उपन्यास में लेखक अपनी आलोचना रूपी गदा के प्रहार दूर-दूर तक कर सकता है। जहाँ उसे रावणी सृष्टि मिलती है उसका वह विध्वंस करता है और जहाँ विभीषणी संसार का शान्त वातावरण मिलता है वहाँ कुछ समय विश्राम की साँस लेकर उसकी प्रशंसा करता है। पाठक भी लेखक के साथ तादात्म्य स्थापित करके आनंदित होता है।

उपन्यास के माध्यम से व्यक्तित्व में उदात्तता आती है। उपन्यासकार की सृष्टि महान है, उसका नायक महान है और इसके पढ़ने से चरित्र भी परिष्कृत होता है।

उपन्यास के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक चेतना जागृत होती है। उपन्यास की विषयवस्तु लम्बी होने के कारण उपन्यासकार को इन पहलुओं को उभारने का अच्छा अवसर मिलता है।

IV. उपन्यास शिक्षण के उद्देश्य

विद्यालयों में उपन्यास शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :—

1. साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा से परिचित कराना।
2. व्यक्तित्व का विकास और संस्कारों का परिष्कार करना।
3. कल्पनाशक्ति का विकास करना।
4. मनोरंजन करना।
5. कालविशेष की परिस्थितियों का चित्र उपस्थित करना।
6. जीवन और समाज की आलोचना करना सिखाना।
7. जीवन की आलोचना की सराहना करना सिखाना।
8. उपन्यास साहित्य में रचनात्मक योगदान देने के लिए लेखक तैयार करना।

V. उपन्यास के प्रमुख तत्व

उपन्यास की उचित समीक्षा उसके प्रमुख तत्वों के आधार पर ही की जाती है। अतः अध्यापक को इन तत्वों की जानकारी होनी चाहिए। उपन्यास के प्रमुख तत्व हैं :—

1. कथानक 2. चरित्र चित्रण 3. भाषा-शैली 4. देशकाल 5. उद्देश्य।

उपन्यास का कथानक और चरित्र चित्रण अन्योन्याश्रित होते हैं। इसके कथानक का विकास किसी घटना या चरित्र के माध्यम से ही होता है। उपन्यास के पात्रों का चरित्र चित्रण निगूढ़ तथा सूक्ष्म दोनों ही विधियों से किया जाता है। इसके पात्र ऐसे होने चाहिए जो अपनी लक्ष्य प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्पी हों।

देशकाल में किसी भी प्रकार की असंगति पाठक को खलती है। देशकाल का चित्रण हू-बहू होना चाहिए। उसमें आंचलिकता की छूट उभे और भी आकर्षक बना देती है।

आजकल अधिकाधिक उपन्यास वस्तुमुखी न होकर व्यक्तिवादी शैली को अपना रहे हैं। समीक्षक को देखना चाहिए कि व्यक्तिवादी शैली कहीं किस मत-विशेष के प्रचार का खिलौना तो नहीं बन गई है।

आज की औपन्यासिक दुनिया वादों में विभक्त है। हर उपन्यास अपने अखाड़े के उद्देश्यों को प्रतिफलित करने का प्रयत्न करता है। किसी सीमा तक विचार विशेष का प्रचार होना भी चाहिए किन्तु अति सीमातिक्रमण पाठकों को

असह्य होता है ।

V1. उपन्यास के प्रकार

विषय वस्तु, शैली आदि के आधार पर उपन्यास को मुख्यतः निम्नलिखित रूपों में विभक्त किया जा सकता है :—

- | | |
|-----------------|--------------------|
| 1. रोमानी | 2. तिलस्मी-ऐयारी |
| 3. जासूसी | 4. सामाजिक |
| 5. राजनीतिक | 6. ऐतिहासिक |
| 7. मनोवैज्ञानिक | 8. साम्यवादी |
| 9. प्रयोगवादी | 10. आधुनिकतावादी । |

अध्यापक को चाहिए कि वह शिक्षण से पूर्व यह निश्चय करे कि उपन्यास किस प्रकार का है । उपन्यास की समीक्षा उसके वर्ण्य विषय के आधार पर करनी चाहिए ।

VII. उपन्यास शिक्षण की विधियाँ

विद्यालय स्तर पर उपन्यास का पाठ्यक्रम में समावेश +2 शिक्षा प्रणाली के समय से माना जाएगा । यही कारण है कि अभी तक हिंदी शिक्षण पर लिखी गई पुस्तकों में इसकी शिक्षण विधि पर चर्चा नहीं हुई है । विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों के सम्मुख भी उपन्यास शिक्षण के मार्गदर्शक तत्व उपलब्ध नहीं हैं ।

अध्यापकों और शिक्षाशास्त्रियों के सम्मुख यह विचारणीय विषय है कि उपन्यास शिक्षण की कौन सी विधि अपनाई जाए और इसे किस नाम से अभिहित किया जाए ।

विश्वविद्यालय स्तर पर उपन्यास शिक्षण के लिए जो पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं उन्हें निम्नलिखित नाम दिए जा सकते हैं :—

1. कहानी कथन प्रणाली ।
2. व्याख्यान प्रणाली ।
3. समीक्षा प्रणाली ।
4. स्वाध्याय प्रणाली ।
5. मिश्रित प्रणाली ।

विद्यालय स्तर पर उपन्यास शिक्षण के समय कहानी कथन प्रणाली अपनाई जा सकती है । नीचे उपन्यास शिक्षण की इन प्रणालियों पर संक्षेप में विचार किया गया है :—

1. कहानी कथन प्रणाली

इस प्रणाली के अनुसार उपन्यास की कहानी को विस्तारपूर्वक विद्यार्थियों को सुना दिया जाता है। छात्रों के ज्ञान की परख के लिए कुछ प्रश्न पूछे जाते हैं। तदनन्तर छात्रों को उपन्यास की मूल कथा पढ़ने को कहा जाता है।

यह प्रणाली उपन्यास की कथा से सामान्य जानकारी करा देने मात्र के लिए तो उपयुक्त है लेकिन अध्यापक के दायित्व की इतिश्री इतने मात्र से नहीं हो जाती। कृति के साहित्यिक पक्ष का मूल्यांकन भी विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

2. व्याख्यान प्रणाली

व्याख्यान प्रणाली के अनुसार उपन्यास शिक्षण के समय कथा सुनाना मात्र अध्यापक का दायित्व नहीं होता। वह कथा के मुख्य बिन्दुओं की चर्चा भी करता चलता है। कहीं-कहीं वह अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करता है। वह उपन्यासकार के उद्देश्यों की ओर भी छात्रों का ध्यान आकृष्ट करता है।

यह प्रणाली कहानी कथन प्रणाली से श्रेष्ठ है। किंतु विद्यालय स्तर पर केवल व्याख्यान देने मात्र से काम नहीं चलता। विद्यार्थी को साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश कराने के लिए कृति के गुण-दोषों का विवेचन करना भी आवश्यक है। उपन्यासकार का जीवन दर्शन, उसकी अन्य कृतियों के साथ आलोच्य कृति की समीक्षा तथा साहित्य की अन्य कृतियों के साथ इसकी तुलना भी इस स्तर पर होनी चाहिए। अतः अकेली व्याख्यान प्रणाली भी श्रेष्ठ प्रणाली नहीं है।

3. समीक्षा प्रणाली

इस प्रणाली के अनुसार पहले उपन्यासकार के जीवन, उसके काल की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक अवस्था आदि के विषय में जानकारी दी जाती है। उपन्यासकार के जीवन दर्शन तथा आलोच्यकृति के लिखने की आवश्यकता के बारे में प्रकाश डाला जाता है। तदनन्तर कृति के विषय में सामान्य जानकारी दी जाती है। कृति के सबल और दुर्बल पक्षों पर भी प्रासंगिक रूप से प्रकाश डाला जाता है।

समीक्षा प्रणाली व्याख्यान प्रणाली के निकट होते हुए भी इसमें कृति की आलोचना तथा समीक्षा आदि पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है। इस विधि के अनुसार आवश्यक नहीं कि कहानी को आद्योपान्त सुना दिया जाए। पात्रों की चरित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कहानी आगे पीछे भी दोलायमान की जा सकती है।

कहानी समाप्त होते-होते श्रोता कृति के विभिन्न अंगों की सबलता और

दुर्बलता से परिचित हो जाता है। वह कृति का मूल्यांकन कर सकने में सक्षम हो जाता है।

इस प्रणाली के अनुसार शिक्षण के समय अध्यापक को ध्यान रखना होगा कि वह कहानी कथन के उद्देश्यों से भटक नहीं जाए। समीक्षा इतनी दुरूह न हो जाए कि श्रोता की रुचि ही औपन्यासिक दुनिया से हट जाए।

कठिन संदर्भों की व्याख्या, कृति के तत्वों का विवेचन कहानी की समीक्षा के बाद किया जा सकता है।

4. स्वाध्याय प्रणाली

उच्च कक्षाओं में स्वाध्याय प्रणाली से समय की बहुत बचत होती है। इस प्रणाली के अनुसार विद्यार्थी को उपन्यास के स्वाध्याय का पूर्ण अवसर दिया जाता है। वह अतिरिक्त समय में सुविधानुसार उपन्यास का वाचन करता है।

अध्यापक उसे उपन्यास के तत्वों के बारे में जानकारी देता है और विद्यार्थी को स्वयं उन तत्वों पर उपन्यास की समीक्षा लिखने का अवसर देता है।

अध्यापक कक्षा में पुनः अपनी समीक्षा प्रस्तुत करता है और विद्यार्थियों को निर्देश देता है कि वे शिक्षण में प्राप्त नए बिन्दुओं को अपनी समीक्षा में सम्मिलित कर लें।

5. मिश्रित प्रणाली

मिश्रित प्रणाली के अनुसार उपन्यास शिक्षण की उपर्युक्त समस्त प्रणालियों के श्रेष्ठ गुणों को अपनाया जाता है। इन गुणों को अपनाते समय छात्रों के बौद्धिक स्तर तथा पठन सामग्री स्तर का ध्यान रखना चाहिए।

VIII. उपन्यास शिक्षण के सोपान

सामान्यतया उपन्यास शिक्षण की आवश्यकता +2 की कक्षाओं से आरंभ होती है। इस समय विद्यार्थियों का बौद्धिक स्तर इतना हो जाता है कि उन्हें व्याख्यान तथा समीक्षा विधि से पढ़ाया जा सकता है। इस समय उपन्यास शिक्षण के लिए निम्नलिखित सोपान अपनाए जा सकते हैं :—

1. लेखक के जीवन, साहित्यसेवा, कृतिकाल के विषय में सामान्य जानकारी।
2. उपन्यास के काल तथा उद्देश्य के विषय में सामान्य जानकारी।
3. उपन्यास की कथा की जानकारी।

यह जानकारी कई रूपों में दी जा सकती है। यथा :—

क. नायक को केन्द्र बिन्दु मानकर।

ख. किसी मुख्य घटना को केन्द्र मानकर ।

ग. कथा तथा उप-कथा के माध्यम से ।

घ. पात्रों के चरित्र चित्रण के माध्यम से ।

4. मूल पाठ

मूल पाठ द्वारा जानकारी देते समय निम्नलिखित पद्धति अपनाई जा सकती है :—

क. छात्र समस्त उपन्यास को स्वयं पढ़ें तथा कठिन संदर्भों की व्याख्या अध्यापक से पूछें ।

ख. अध्यापक समस्त उपन्यास को द्रुत गति से कक्षा के सम्मुख पढ़कर सुनाए किंतु अध्यापक के पास सामान्यतः इतना समय नहीं होता कि वह कक्षा में समस्त पुस्तक पढ़ सके ।

ग. अध्यापक केवल उन्हीं संदर्भों की व्याख्या करे जो भाव की दृष्टि से कठिन, चरित्र चित्रण की दृष्टि से महत्वपूर्ण, कथोपकथन की दृष्टि से आदर्श तथा शैली की दृष्टि से नूतन हों ।

5. प्रतिक्रिया जानने संबंधी प्रश्न

उपर्युक्त सोपान के बाद छात्रों से पात्रों तथा घटनाओं पर उनकी प्रतिक्रिया जानने संबंधी प्रश्न पूछे जा सकते हैं ।

6. समीक्षात्मक प्रश्न ।

7. पात्रों का चरित्र-चित्रण लिखवाना ।

8. उपन्यास का समीक्षात्मक मूल्यांकन करवाना ।

व्यावहारिक कार्य

1. देश-विदेश के विद्वानों द्वारा दी गई उपन्यास शब्द की व्याख्या की सूची तैयार करना ।

2. उपन्यास के उद्भव और विकास पर लेख लिखना ।

3. विभिन्न उपन्यासकारों द्वारा लिखित उपन्यासों की सूची तैयार करना ।

4. अपने प्रिय उपन्यासकार के उपन्यासों की किसी कथा को संक्षेप में लिखना ।

5. किसी उपन्यासकार को आमंत्रित करना ।

6. प्रसिद्ध उपन्यासकारों की जयन्ती मनाना ।

संदर्भ

1. भारतीय साहित्य कोश, डा० नगेन्द्र, (1981) ।

2. हिंदी साहित्य कोश, धीरेन्द्र वर्मा (वि. सं. 2020) ।

3. ईश्वर भाई पटेल कमेटी रिपोर्ट (1978) ।
4. केन्द्रीय शिक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम (1986-88) ।

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. उपन्यास शिक्षण से बच्चों में किन गुणों का विकास होता है ? +2
स्तर पर आप किस प्रकार के उपन्यास का चुनाव विद्यार्थियों के पठन के लिए करेंगे और क्यों ?
2. उपन्यास के मुख्य तत्व कौन से हैं ? उद्देश्य प्राप्ति में इन तत्वों की क्या भूमिका है ?
3. उपन्यास शिक्षण की कौन-कौन सी प्रणालियाँ संभव हैं ? आप किस प्रणाली को अपनाना चाहेंगे और क्यों ?
4. टिप्पणी लिखें—
1. उपन्यास साहित्य का क्रमिक विकास 2. उपन्यास शिक्षण का महत्त्व
3. उपन्यास के प्रकार 4. उपन्यास शिक्षण के सोपान 5. उपन्यास और कहानी में अंतर ।

अध्याय 18

व्याकरण शिक्षण

I. सामान्य परिचय

विद्वानों का विचार है कि वेदों की रचना के बाद व्याकरण की रचना हुई। संसार का पहला व्याकरण कैसे बना, इसका वर्णन सायण ने ऋग्वेद-भाष्य के उपोद्घात में उद्धृत किया है :—

वाग्वै प्राच्य व्याकृतावदन् ते देवा इन्द्रमब्रुवन्निमां नो वाचं व्याकुर्वीत ।

सोऽब्रवीत् वरं वृणे ।

तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत् ।

तस्मादियं व्याकृता वाक् ।

प्राचीन भाषा पहले अव्याकृत थी—उसका कोई व्याकरण न था। फिर किसी समय देवजनों का एक शिष्ट-मंडल इन्द्र के पास पहुँचा और निवेदन किया कि हमारी भाषा का व्याकरण बनना चाहिए, सो आप बना देने की कृपा करें। इन्द्र ने भाषा का व्याकरण बनाया। अर्थात् प्रकृति-प्रत्यय आदि की कल्पना करके इसे अधिक सुबोध-सुन्दर बना दिया। तब से यह भाषा व्याकरण नियंत्रित है।

II. व्याकरण की परिभाषा

व्याकरण शब्द वि + आ उपसर्ग + कृ धातु + ल्युट प्रत्यय के योग से बना है। व्याकरण का अर्थ “व्याक्रियतेऽनेनेति व्याकरणम्” है अर्थात् जिस शास्त्र से भाषा व्याकृत की जाए, उसके पदों को तोड़कर प्रकृति-प्रत्यय आदि का ज्ञान-विधान किया जाए।

व्याकरण को शब्दानुशासन की संज्ञा भी दी जाती है। अनु का अर्थ “पश्चात्” अथवा “अनुसार”। परम्परा से जिस शब्द का जो रूप चला आ रहा है और जिसका जिस अर्थ में प्रयोग है व्याकरण उसी का अनुगमन करता है। भाषा का अनुगमन करने के कारण ही इसे “अनुशासन” की संज्ञा मिली।

कामता प्रसाद गुरु के अनुसार जिस शास्त्र में शब्दों के शुद्ध रूप और प्रयोग के नियमों का निरूपण होता है उसे व्याकरण कहते हैं। व्याकरण शब्द

का अर्थ है “भली भाँति समझना (वि+आ+करण)। व्याकरण में भाषा के नियम समझाए जाते हैं जो शिष्टजनों के द्वारा स्वीकृत शब्दों के रूपों और प्रयोगों में दिखाई देते हैं।

III. व्याकरण शिक्षण के लाभ

संक्षेप में व्याकरण शिक्षण के निम्नलिखित लाभ हैं :—

1. व्याकरण भाषा के नियमों का पता लगाकर इसके सिद्धांतों को स्थिर करता है।
2. व्याकरण से भाषा की रचना, शब्दों की व्युत्पत्ति, शब्दों का शुद्ध प्रयोग आदि के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।
3. किसी भाषा के पूर्ण ज्ञान के लिए व्याकरण का ज्ञान होना परम आवश्यक है।
4. व्याकरण ज्ञान के बिना उच्चारण शुद्ध नहीं होता। अतः अन्य शास्त्र न पढ़ने पर उतनी हानि नहीं होती जितनी व्याकरण न पढ़ने से। उच्चारण भेद के कारण अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

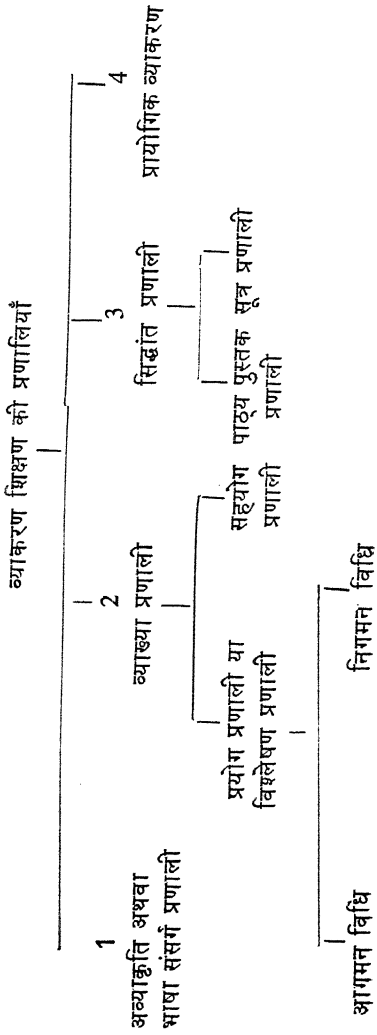
IV. व्याकरण का भाषा शिक्षण में स्थान

भाषा की शिक्षा में व्याकरण का उपयोग निम्नलिखित बातों के लिए किया जा सकता है :—

1. उच्चारण, अक्षर विन्यास, लिपि, शब्द रचना, अर्थ तथा वाक्य विन्यास की अशुद्धियाँ दूर करने के लिए।
2. भाषा के ध्वनि विचार, शब्द विचार, अर्थ विचार आदि के मूलभूत सिद्धांतों को समझने और समझाने के लिए।
3. तुलनात्मक विधि से अन्य भाषा सीखने के लिए।
4. भाषा के शुद्ध उपयोग के लिए।

V. व्याकरण शिक्षण की प्रणालियाँ

शिक्षा के क्षेत्र में व्याकरण शिक्षण की कई प्रणालियाँ प्रचलित हैं जिन्हें आगे तालिका में दिया गया है।



आइए, यहाँ इन्हीं प्रणालियों के विषय में चर्चा करें ।

1. अव्याकृति अथवा भाषा संसर्ग प्रणाली

इस प्रणाली का अनुमोदन करने वालों के अनुसार व्याकरण की शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है। मनुष्य संसर्ग तथा शिष्ट लोगों के सम्पर्क में रहकर भी शुद्ध भाषा का प्रयोग स्वाभाविक रूप से सीख लेता है। बालक बिना व्याकरण की औपचारिक शिक्षा के लिंग, वचन, काल, क्रिया आदि का शुद्ध प्रयोग सीख सकता है। अतः व्याकरण की औपचारिक शिक्षा देना व्यर्थ है।

उपर्युक्त तर्क को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि : —

(क) भाषा अथवा व्याकरण के सभी प्रयोग केवल संसर्ग मात्र से नहीं आ सकते। इसके लिए समय भी अधिक लगाना पड़ेगा।

(ख) उच्चारण, शब्द रचना तथा वाक्य विन्यास का ज्ञान व्याकरण की औपचारिक शिक्षा के बिना अधूरा रह जाता है।

व्याकरण शिक्षण को अंगीकार न करना अतिवादी दृष्टिकोण होगा। भाषा शिक्षण के लिए श्रवण, अभिभाषण आदि के कितने ही अवसर प्रदान किए जाएँ तथा पठन की कितनी ही सुनियोजित तथा सुव्यवस्थित सामग्री दी जाए, किसी न किसी स्तर पर व्याकरण का ज्ञान देना आवश्यक है।

2. व्याख्या प्रणाली

व्याकरण शिक्षण की व्याख्या प्रणाली को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है:—

क. प्रयोग प्रणाली अथवा विश्लेषण प्रणाली।

ख. सहयोग प्रणाली।

क. प्रयोग प्रणाली अथवा विश्लेषण प्रणाली :

इस प्रणाली के अनुसार पहले कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं। उदाहरणों के आधार पर नियम निकलवाए जाते हैं। उदाहरण से नियम की ओर जाने की प्रक्रिया में आगमन विधि (इंडक्टिव मैथड) काम में लाई जाती है। नियम ज्ञात हो जाने पर फिर उदाहरणों पर घटित करते समय निगमन विधि (डिडक्टिव मैथड) काम में लाई जाती है। इस विधि में शब्दों अथवा वाक्यों का विश्लेषण कराया जाता है। अतः इस विधि को विश्लेषण विधि (एनेलिटिकल मैथड) भी कहते हैं।

व्याकरण सिखाने की यह सबसे उत्तम विधि मानी जाती है। इस विधि

में उदाहरण से नियम, साधारण से विशेष, मूर्त से अमूर्त, ज्ञात से अज्ञात आदि शैक्षिक तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग किया जाता है।

माध्यमिक स्तर पर इस प्रणाली का प्रयोग बहुत ही उपयोगी रहता है।

ख. सहयोग प्रणाली :

इस प्रणाली के अनुसार व्याकरण के नियमों का ज्ञान किसी सूत्र या व्याकरण की पुस्तक के माध्यम से नहीं कराया जाता। पाठ्यपुस्तक पढ़ाते समय प्रसंगवश व्याकरण के नियमों का ज्ञान पठन सामग्री के आधार पर दे दिया जाता है। इसका यह लाभ होता है कि व्याकरण के नियमों को रटने की आवश्यकता नहीं पड़ती। व्यावहारिक ज्ञान द्वारा उपयोगी तथा आवश्यक बातों की जानकारी दे दी जाती है।

इस विधि की सबसे बड़ी सीमा यह है कि एक ही नियम अथवा सूत्र की जानकारी अनेक पाठों में विकीर्ण कर दी जाती है। छात्र को उन नियमों की जानकारी क्रमबद्ध रूप में नहीं मिल पाती। अभ्यास की भी कमी रह जाती है।

अच्छा रहेगा यदि प्रयोग विधि के बाद सहयोग विधि का उपयोग अभ्यास के लिए किया जाए। प्रयोग विधि से प्राप्त ज्ञान सहयोग विधि के समय अभ्यास का अवसर प्रदान करता है।

3. सिद्धांत प्रणाली

सिद्धांत प्रणाली सिद्धांत या नियम से आरम्भ होती है तथा नियम से उदाहरण की ओर जाती है। इस प्रणाली को दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

क. पाठ्य पुस्तक प्रणाली।

ख. सूत्र प्रणाली।

क. पाठ्यपुस्तक प्रणाली

विद्यालयों में बहुधा इसी प्रणाली का प्रचलन है। व्याकरण के नियमों को समझने के लिए व्याकरण की पाठ्यपुस्तक का सहारा लिया जाता है। आजकल इन पाठ्यपुस्तकों में सुधार भी किया गया है। अब नियम के स्थान पर उदाहरण दिए जाने लगे हैं। पुस्तकों को नीरस न रहने देने के लिए चित्रों, तालिकाओं आदि का सहारा भी लिया जाने लगा है। हर संभव प्रयत्न किया

जा रहा है कि व्याकरण की पाठ्यपुस्तक को सुगम, सरस तथा ग्राह्य बनाया जाए ।

ख. सूत्र प्रणाली

संक्षिप्तता कथन का प्राण है । प्राचीन काल में संस्कृत आचार्यों ने लेखन तथा पठन सामग्री के अभाव में संस्कृत व्याकरण के नियमों को सूत्र रूप में कहने की प्रणाली का विकास किया । व्याकरण के किसी भी नियम को न्यूनतम शब्दों में कह दिया जाता था जिससे कि विद्यार्थी उन्हें कंठस्थ कर सकें ।

अपने समय में यह प्रणाली उपयोगी रही । आज भी विद्वान् इस प्रणाली के महत्त्व को सर्वथा नकार नहीं पा रहे हैं । लेखन सामग्री तथा पठन सामग्री की उपलब्धि के कारण आज आगमन विधि द्वारा व्याकरण शिक्षण की परम्परा चल पड़ी है । कुछ अध्यापकों का आज भी मत है कि व्याकरण शिक्षण भले ही प्रयोग, संयोग, विश्लेषण आदि विधि से पढ़ाया जाए लेकिन फिर भी सूत्र को कंठस्थ करा देना जीवन भर के लिए उपयोगी रहेगा । छोटी आयु में रटित सूत्रों को बड़ी अवस्था में फलित करके घटित किया जा सकता है ।

4. प्रायोगिक व्याकरण

इस विधि द्वारा न तो विद्यार्थियों को व्याकरण के सूत्र बताए जाते हैं और न ही उदाहरणों द्वारा सूत्र निकालने का आग्रह है । प्रायोगिक व्याकरण का मुख्य उद्देश्य दिए गए उदाहरण के आधार पर भाषा के किसी अवयव (सर्वनाम, कारक-चिह्न, वचन परिवर्तन, लिंग परिवर्तन, पर्यायवाची शब्द, विराम चिह्न आदि) के कौशल का विकास मात्र अभ्यास द्वारा कराया जाता है ।

अंग्रेजी की पाठ्य पुस्तकों पर डेस्क बुक या डेस्क वर्क बुक बनाने का चलन था । इसके अनुसार हर पाठ पर कोई न कोई अभ्यास कराया जाता था क्योंकि पाठ्य पुस्तक के अभ्यास किसी कुशलता के विकास के लिए यथेष्ट नहीं थे । विद्यार्थी इस पुस्तक पर अभ्यासार्थ कुछ लिखने का काम करता था । इससे उमका काफी परिश्रम बचता था और संकेतों के आधार पर उन कौशलों का वह अभ्यास करता था । ऐसे अभ्यासों में उसे कम कठिनाई होती थी क्योंकि विषय सामग्री को उसने अपनी मूल पाठ्यपुस्तक में पहले ही पढ़ा होता था ।

अब हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों पर भी डेस्क वर्क बुक का निर्माण होने

लगा है। एन० सी० ई० आर० टी० ने प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर इस प्रकार का कार्य अपनी पुस्तकों पर किया है। इससे प्रायोगिक व्याकरण विधि को अपनाने में सुविधा भी हुई है। नीचे इसी प्रकार के कुछ उदाहरणों द्वारा विषय को स्पष्ट किया जाता है।

क. संरचना संबंधी अभ्यास

(1) मूल शब्द निकालना

छात्रों से मूल शब्द निकालने का अभ्यास कराते समय उन्हें कोई उदाहरण दे दिया जाता है। मूल शब्द से पूर्व उपसर्ग और वाद में प्रत्यय का योग होता है। छात्रों को उपसर्ग या प्रत्यय शब्द न बताकर उन्हें मूल शब्द निकालने को कहा जाता है। शब्द संरचना संबंधी उद्देश्य अध्यापक तक सीमित है, विद्यार्थियों को इसका आभास होना आवश्यक नहीं।

यहाँ एक उदाहरण से बात स्पष्ट की जाती है :—

निर्देश :—प्रत्येक पंक्ति में दाईं ओर लिखे शब्दों को पढ़कर उनका मूल शब्द बाईं ओर की खाली जगह में लिखो। उदाहरण देखो।

उदाहरण— संतोष	असंतोष, संतुष्ट, संतोषी।
.....	शिक्षित, शिक्षण, शिक्षक।
.....	उपयोगिता, उपयोगी, दुरुपयोग।
.....	चितित, निश्चित, चिंतामग्न।
.....	उदित, सर्वोदय, समुदय।

(2) शब्द निर्माण

इसी क्रम को दूसरी विधि से दोहराया जा सकता है। यथा :—

निर्देश :—बाईं ओर एक शब्द दिया हुआ है। इसके दाईं ओर रिक्त स्थान है। दिए गए उदाहरण के अनुसार इस शब्द से अन्य शब्दों का निर्माण करो :—

उदाहरण— निर्माण	निर्माता	निर्मित	निर्माणाधीन।
कवि

ख. कोश क्रम का ज्ञान

निर्देश :—नीचे कुछ शब्द दिए गए हैं। इन शब्दों को अकारादि क्रम से लगाओ। वर्णमाला के अनुसार पहले वर्ण से आरम्भ होने वाला शब्द पहले और इसी प्रकार वर्णक्रमानुसार शब्द को लिखें—

उदाहरण : अब, आम, इमली, ईख ।

1. आप, इस, अमरूद, ईश, ओला ।
2. औरत, ऐनक, एक, खरगोश, कमल ।
3. गमला, जल, छतरी ।

ग. तुलना संबंधी ज्ञान

निर्देश :—नीचे दिए गए वाक्यांश को पढ़ो । प्रत्येक वाक्यांश की खाली जगह में ऐसा शब्द लिखो जो उसमें वर्णित गुण के लिए प्रसिद्ध हो ।

उदाहरण—फूल

- की तरह कोमल ।
- के समान मीठा ।
- जैसा गहरा ।
- जैसा सफ़ेद ।
- के समान काला ।

इस उदाहरण द्वारा तुलना अलंकार का ज्ञान दिया गया है । छात्र को अलंकार शब्द के प्रति सजग नहीं किया गया है । यहाँ उसे स्वाभाविक रूप से सोचने का अवसर दिया गया है ।

VI. व्याकरण शिक्षण की पाठ योजना

व्याकरण शिक्षण की पाठ योजना का निर्माण पाठ के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए आगमन, निगमन, प्रयोग आदि प्रणालियों का सहारा लेकर निम्न-लिखित सोपानों के आधार पर किया जा सकता है :—

1. उद्देश्य

- (क) सामान्य—शुद्ध अभिव्यक्ति का अभ्यास ।
- (ख) विशिष्ट—कारकों का ज्ञान कराना ।

2. प्रस्तावना

किसी विद्यार्थी द्वारा मौखिक या लिखित रूप में की गई कारक संबंधी अशुद्धि को कक्षा में प्रस्तुत किया जा सकता है और अशुद्धि की ओर प्रश्नोत्तर माध्यम से छात्रों का ध्यान दिलाया जा सकता है । उनसे पूछा जाए कि व्याकरण की दृष्टि से यह अशुद्धि किस कोटि की कहलाती है ?

3. उद्देश्य कथन

आज हम कर्ता, कर्म आदि कारकों का शुद्ध प्रयोग करना सीखेंगे ।

4. पाठ का विकास

पाठ का विकास निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :—

- क. उदाहरण—पहले कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाएँ ।
- ख. तुलना तथा व्याख्या—फिर इन उदाहरणों में समान बातों की तुलना की जाए या विशिष्ट तथ्यों की ओर ध्यान दिलाकर उनकी व्याख्या की जाए ।
- ग. नियमीकरण अथवा निष्कर्ष—उदाहरणों के आधार पर कोई नियम निकलवाया जाए अथवा किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाए ।
- घ. प्रयोग तथा अभ्यास—नियम, निष्कर्ष अथवा परिभाषा का अभ्यास करवाया जाए ।

5. मूल्यांकन

अभ्यास कार्य के बाद पाठ का मूल्यांकन किया जाए ।

व्यावहारिक कार्य

1. विभिन्न कक्षाओं के विद्यार्थियों द्वारा मौखिक तथा लिखित अभिव्यक्ति के समय लिंग, वचन, क्रिया, कारक आदि की अशुद्धियों का सर्वेक्षण, सारणियन, नियमन आदि करना ।
2. क्षेत्रीय बोलियों तथा मानक हिन्दी की शब्द-रचना तथा वाक्य रचना का तुलनात्मक अध्ययन करना ।
3. मानक हिन्दी तथा क्षेत्रीय बोलियों में उच्चारण सम्बन्धी भेदों का तुलनात्मक अध्ययन करना ।
4. क्षेत्र विशेष में की जाने वाली वर्तनी संबंधी अशुद्धियों की सूची बनाना ।
5. मानक हिन्दी तथा क्षेत्रीय बोलियों के तुलनात्मक व्याकरण का निर्माण ।
6. मानक हिन्दी तथा बोली के शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन ।
7. एक ही कक्षा के दो विभागों में से पहले में आगमन तथा दूसरे में निगमन प्रणाली से पढ़ाना तथा परिणामों की तुलना करना ।
8. विद्यालय के पुस्तकालय में प्राप्त व्याकरण की पुस्तकों की सूची बनाना ।
9. व्याकरण संबंधी विषयों की पाठयोजनाएँ तैयार करना ।
10. किसी व्याकरण को आमंत्रित करना और व्याकरण की उपयोगिता पर वार्ता का आयोजन करना ।

सन्दर्भ

1. हिन्दी व्याकरण, श्री कामता प्रसाद गुरु ।
2. हिन्दी शब्दानुशासन, श्री किशोरीदास वाजपेयी ।
3. हिन्दी हरयाणवी उच्चारण भेद, डॉ० जय नारायण कौशिक ।
4. हरयाणवी प्रत्यय कोश, डॉ० जय नारायण कौशिक ।
5. हरयाणवी हिन्दी कोश (भूमिका), डॉ० जय नारायण कौशिक ।
6. पाठ योजनाएँ, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर (1978)।
7. माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण, निरंजन कुमार सिंह ।
8. A Basic Grammar of Modern Hindi, Central Hindi Directorate, New Delhi (1975).

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. व्याकरण शब्द से क्या तात्पर्य है ? भाषा शिक्षण में व्याकरण की शिक्षा का क्या महत्त्व है ? संक्षिप्त उत्तर दें ।
2. 'व्याकरण की शिक्षा अलग पाठ्य पुस्तक से न देकर सामान्य शिक्षण के समय देनी चाहिए,' इस कथन की समीक्षा करें ।
3. व्याकरण शिक्षण में आप आगमन प्रणाली और निगमन प्रणाली में से किमको अपनाना चाहेंगे और क्यों ?
4. व्याकरण शिक्षण प्रणालियों की समीक्षा करें ।
5. टिप्पणी लिखें —
 1. व्याकरण शिक्षण की भाषा संसर्ग प्रणाली ।
 2. अनुप्रयुक्त या व्यावहारिक व्याकरण शिक्षण प्रणाली ।
 3. 'यद्यपि बहुधाधीषे पठ पुत्र व्याकरणम्' ।
 4. सूत्र प्रणाली ।
 5. व्याकरण शिक्षण की पाठ योजना के सोपान ।

अध्याय 19

भाषा शिक्षण में वार्षिक योजना तथा इकाई योजना

I. योजना का महत्त्व

योजनावद्ध कार्य क्रमबद्ध होता है। योजना निर्माण के समय कार्य के उद्देश्य, उन्हें क्रियान्वित करने की विधियाँ, मार्ग में आने वाली संभावित बाधाओं तथा उनके निराकरण आदि के उपायों के बारे में पहले ही विस्तार से विचार किया जाता है। भाषा शिक्षण भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है, अतः इसके हर पक्ष के शिक्षण में योजना की आवश्यकता है।

II. भाषा शिक्षण की वार्षिक योजना

हमारे विद्यालयों में भाषा शिक्षण बच्चे की गति या उपलब्धि के व्यक्तिगत आधार पर न होकर सामान्यतः एक समूह विशेष को ध्यान में रख कर किया जाता है अर्थात् यह योजना कक्षा के सभी बच्चों के लिए समान होती है और वर्षभर के लिए निश्चित कर ली जाती है। इसके कारण हैं विद्यालय में सीमित अध्यापक संख्या, सीमित भौतिक तथा आर्थिक साधन आदि। किन्तु इन सीमाओं के रहते हुए भी योजनावद्ध कार्य अनेक बाधाओं को पाट सकता है यदि योजना किसी सुदृढ़ आधार पर टिकी हो।

III. योजना निर्माण के आधार

भाषा शिक्षण योजना के निर्माण में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

1. वर्षभर के लिए भाषा शिक्षण का पाठ्यक्रम।
2. पाठ्यक्रम के माध्यम से प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य।
3. भाषा शिक्षण के लिए अपनाई जाने वाली विधियाँ।
4. भाषा शिक्षण के लिए प्राप्त साधन।
5. मूल्यांकन विधि।

उपर्युक्त आधार पर सबसे पहले भाषा शिक्षण की पाठ्यचर्या का विभाजन करना चाहिए।

IV. पाठ्यचर्या विभाजन विधि

हमारे विद्यालयों में वर्ष भर में अनुमानतः 220 से 240 कार्य दिवसों में शिक्षण कार्य चलता है। शेष समय अवकाश या अन्य पाठ्यान्तर क्रियाओं में व्यतीत होता है। वार्षिक योजना के निर्माण के समय कार्य दिवसों को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए और तदनुसार वार्षिक और इकाई विभाजन करना चाहिए।

पाठ्यचर्या विभाजन विधि

सत्र के अनुसार विभाजन	पाठ्य पुस्तक के अनुसार विभाजन	भाषायी अवयवों या कौशलों के अनुसार विभाजन	विषय वस्तु की दृष्टि से सह संबंध
--------------------------	-------------------------------------	--	--

क. पाठ्यक्रम का सत्र के अनुसार विभाजन

विभिन्न राज्यों में वर्षभर के पाठ्यक्रम का विभाजन उसकी मूल्यांकन पद्धति के अनुसार किया जाता है।

सामान्यतः वर्ष में तीन या चार सावधिक परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। तीन या चार महीने के अन्त में ली जाने वाली परीक्षा को सावधिक परीक्षा या टर्मिनल टेस्ट कहते हैं और वर्ष के अन्त में ली जाने वाली परीक्षा को वार्षिक परीक्षा। सावधिक परीक्षाओं में उस अवधि विशेष में पढ़ाए गए पाठ्यक्रम का मूल्यांकन होता है और वार्षिक परीक्षा में सारे पाठ्यक्रम से प्रश्न पूछे जाते हैं।

यदि परीक्षा हर तीन या चार महीने के शिक्षण के बाद लेनी है तो वर्षभर के पाठ्यक्रम को इन्हीं अवधियों के अनुकूल विभाजित करना चाहिए। ऐसा करने से अध्यापक अपने शिक्षण की गति और शिक्षण विधि को तदनुकूल ढाल सकता है।

कुछ विद्यालयों में मासिक परीक्षाओं का आयोजन किया जाता है। ऐसी स्थिति में तीन-चार महीने के पाठ्यक्रम को महीनों के अनुसार भी बाँट लेना चाहिए।

कहीं-कहीं अध्यापक मासिक या साप्ताहिक डायरी लिखते हैं। इसका उद्देश्य भी यही होता है कि सावधिक पाठ्यक्रम को महीने अथवा सप्ताह के अनुसार किस प्रकार पढ़ाना है।

इसी मासिक या साप्ताहिक पाठ्यक्रम का दैनिक विभाजन किया जाता है। शिक्षण के समय अध्यापक इस ओर सचेत रहता है कि सत्र के अन्त में बच्चे में जिन अपेक्षित योग्यताओं का निर्माण करना है उनका विकास दैनिक, साप्ताहिक या मासिक पाठ्यचर्या विभाजन के माध्यम से क्रमिक रूप से हो रहा है।

ख. पाठ्यक्रम का पाठ्य पुस्तक के अनुसार विभाजन

नया सत्र आरम्भ होने से पूर्व भाषा शिक्षक को देखना चाहिए कि वर्ष-भर में कितनी पाठ्य पुस्तकें पढ़ानी हैं। उच्च कक्षाओं में गद्य, पद्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि की अलग-अलग पुस्तकें भी होती हैं। कई राज्यों में एक ही पाठ्य पुस्तक दो वर्ष के लिए नियत होती है। उसका कुछ खंड प्रथम वर्ष के लिए तथा शेष खंड अन्तिम वर्ष के लिए होता है।

भाषा अध्यापक को चाहिए कि वह अपने राज्य के शिक्षा बोर्ड के पाठ्य-क्रम को सावधानी से पढ़े और तदनुसार पाठ्यक्रम का वार्षिक विभाजन करे। साथ ही वे छात्र-छात्राओं को भी इन तथ्यों से अवगत कराएँ। कुछ अच्छे विद्यालय अपने विद्यार्थियों को विभाजित पाठ्यक्रम प्रकाशित रूप में वितरित करते हैं। पाठ्यक्रम विभाजन चार्ट के रूप में कक्षा के कमरे में लटकाया जा सकता है।

ग. पाठ्यक्रम का भाषायी अवयवों या कौशलों के अनुसार विभाजन

भाषा के लिखना, पढ़ना, सुनना, बोलना आदि मुख्य अवयव या कौशल हैं। शिक्षण के समय इन सभी अवयवों का सानुपातिक संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। कुछ भाषा अध्यापक केवल पढ़ने पर ही अधिक बल देते हैं तो दूसरे केवल लिखने पर। सुनना और बोलना भी भाषा के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। प्रजातंत्र में किसी की बात को धैर्यपूर्वक सुनना और अपनी बात को प्रभाव-शाली ढंग से प्रस्तुत करना एक अपेक्षित योग्यता है। वार्षिक कार्यक्रम का विभाजन करते समय इन सभी बातों का ध्यान रखना पड़ता है। भाषा अध्यापक को हर इकाई में इन पहलुओं पर नज़र रखनी चाहिए।

वर्ष भर में लिखवाए जाने वाले पत्र, प्रस्ताव, कहानी, अनुच्छेद, मौलिक-लेखन आदि का पूरा व्यौरा वार्षिक योजना का अंग होना चाहिए। लेखन कार्य में विभिन्न त्योहारों और ऋतुओं के साथ उनके सहसंबंध का भी ध्यान

रखना चाहिए। अवसर के अनुकूल लिखवाया गया विषय विद्यार्थी की आवश्यकता और रुचि के ढाँचे में ढल जाता है।

इसी प्रकार बोलने की शक्ति के विकास के लिए अवसर के अनुकूल वाद-विवाद, चर्चा-परिचर्चा, नाटक आदि का आयोजन करना चाहिए। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय महत्त्व के अवसरों पर विद्यार्थियों को बोलने का यथेष्ट अवसर मिलना चाहिए।

कुछ राज्यों में आकाशवाणी और दूरदर्शन के माध्यम से शिक्षण कार्य की अंशकालिक व्यवस्था है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में उत्तरोत्तर इस क्षेत्र में आशातीत प्रगति की संभावनाएँ हैं। शिक्षण के लिए आकाशवाणी और दूरदर्शन पर अलग से चैनल का प्रावधान है। इनसे के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र में औपचारिक और अनौपचारिक विधियाँ अपनाकर क्रांतिकारी प्रयोग होने वाले हैं। इक्कीसवीं सदी की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए बच्चों को श्रवण के अनेक साधन जुटाए जा रहे हैं। आकाशवाणी और दूरदर्शन इन कार्यक्रमों का विस्तृत वार्षिक ब्यौरा पुस्तिका या चार्ट आदि के माध्यम से प्रकाशित करते हैं। भाषा अध्यापक को चाहिए कि अपनी वार्षिक योजना के निर्माण के समय इन नवविकसित क्षेत्रों का लाभ उठाएँ। एन०सी०ई०आर०टी०, नई दिल्ली, ने शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान के माध्यम से इस दिशा में महत्वाकांक्षी योजना का निर्माण किया है। कुछ राज्यों में भी शैक्षिक प्रौद्योगिकी एकांश स्थापित हो चुके हैं।

घ. पाठ्यक्रम का विषय वस्तु की दृष्टि से अन्तः सहसम्बन्ध

एक ही कक्षा में कई पाठ्य पुस्तकें होने की स्थिति में एक ही विषय अनेक प्रकरणों में विकीर्ण होता है। उदाहरण के लिए रक्षाबंधन, दीपावली या स्वतंत्रता दिवस को ही लें। इन विषयों से संबंधित विषय वस्तु निबंध, कविता, नाटक, एकांकी अथवा अन्य किसी विधा से भी प्रस्तुत की जा सकती है। अध्यापक को चाहिए कि वह वर्ष के आरम्भ में समस्त पाठ्यक्रम का मंथन करे। एक ही विषय वस्तु से सम्बन्धित प्रकरणों को छाँटे और शिक्षण के समय उनका सन्दर्भ अवश्य दे जिससे कि विद्यार्थी उस विषय से सम्बन्धित विषय-वस्तु का समग्र रूप से ग्रहण कर सके।

बहुधा देखने में आता है कि पाठ्यपुस्तकों में पाठों की क्रमबद्धता समय, अवसर या ऋतु के अनुकूल नहीं होती है। बिन अवसर की बात फीकी भी लगती है। यदि दीपावली से सम्बन्धित पाठ पुस्तक की विषय सूची के अनुसार जनवरी के महीने में आता है तो इसे देसी महीने के अनुसार पढ़ाया जा सकता है। यदि त्योहार से सम्बन्धित पाठ त्योहार के आस-पास पढ़ाया जाए

तो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उसका प्रभाव अनुकूल रहेगा ।

विषय वस्तु का अन्तःसहसम्बन्ध स्थापित करते समय स्वाभाविकता का अवश्य ध्यान रखा जाए । ऐसा करते समय आवश्यक खींचतान न हो । यह अन्तःसहसम्बन्ध छात्रों को कठिनाई में डालने वाला नहीं हो । शिक्षण के समय भी मिलती-जुलती विषय वस्तु का सामान्य संकेत दिया जा सकता है । विद्यार्थी अपनी सुविधा और सामर्थ्य के अनुसार उसका लाभ उठा सकते हैं ।

V. भाषा शिक्षण की इकाई योजना

वार्षिक योजना का आधार छोटी-छोटी इकाइयाँ ही हैं । वार्षिक योजना के भव्य भवन का निर्माण तभी सम्भव है जब उसकी इकाई रूढ़ी एक-एक ईंट भली प्रकार से रची-पची हो । हर इकाई का उद्देश्य किसी विशेष ज्ञान या सूचना, कौशल, अभिव्यक्ति, अर्थग्रहण, अभिरुचि आदि का विकास करना होता है । हर इकाई के गठन में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इसके माध्यम से बच्चों में किन-किन अपेक्षित योग्यताओं का विकास होगा । एक ही इकाई के माध्यम से एक या एक से भी अधिक योग्यताओं का विकास हो सकता है ।

छोटी कक्षाओं में एक पाठ या कविता अपने आप में पूरी एक इकाई है । एक ही पाठ के माध्यम से पठन, पठन गति, उच्चारण, भावग्रहण करने की शक्ति, कठिन शब्दों का अर्थबोध आदि सम्भव है । इन सभी अपेक्षित योग्यताओं का विकास एक पाठ को पूर्ण इकाई मानकर करना चाहिए । इकाई के उद्देश्यों को लिखते समय इन सभी बिन्दुओं का समावेश करना चाहिए ।

एक ही विषय वस्तु से सम्बन्धित सामग्री यदि विभिन्न पाठों में विभाजित है तो उसे एक ही इकाई का अंग बनाकर पढ़ाना उचित होगा । इस आशय का संकेत ऊपर भी दिया जा चुका है ।

VI. इकाई के प्रकार :

विवेच्य सामग्री के अनुसार इकाई के कई प्रकार हैं :—

इकाई के प्रकार

1	2	3	4
विषय वस्तु पर आधारित इकाई	सामान्यीकरण इकाई	पर्यावरण आधारित इकाई	समाहित या समेकित इकाई

क. विषयवस्तु पर आधारित इकाई

एक ही इकाई का सामान्य आधार उसकी विषयवस्तु होती है। सामान्यतः एक ही प्रकार के विषयों को एक स्थान पर दिया जाता है। उदाहरण के लिए पाठ्य पुस्तक में जीवनी, आत्मकथा, निबंध (वर्णनात्मक, भावात्मक, मनोवैज्ञानिक) आदि एक ही इकाई के अधीन दिए जाते हैं। इससे एक ही प्रकार की विषयवस्तु के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने में सुविधा रहती है। इस प्रकार के विभाजन को प्रकरण इकाई भी कहते हैं।

ख. सामान्यीकरण इकाई

विद्यार्थियों की चिंतन-मनन, तर्क-वितर्क तथा निष्कर्ष निकालने की शक्ति के विकास के लिए आगमन विधि उत्तम मानी जाती है। इस विधि के लिए इकाई का गठन सामान्य नियमों, सूत्रों, सिद्धांतों अथवा निष्कर्षों को आधार बनाकर किया जाता है। पहले उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं। विद्यार्थी इन उदाहरणों के आधार पर स्वयं नियमों, सिद्धान्तों आदि का सामान्यीकरण करते हैं। व्याकरण शिक्षण में इस प्रकार की पद्धति उत्तम मानी जाती है।

ग. पर्यावरण आधारित इकाई

इकाई विभाजन का एक आधार पर्यावरण का पक्ष भी हो सकता है। पर्यावरण से अभिप्राय वह आवरण है जिससे हम मंडित हैं। यह सामाजिक, भौतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक अथवा प्राकृतिक सभी प्रकार का संभव है। उदाहरण के लिए हम पर्यावरण के प्रदूषण पक्ष को पढ़ाना चाहते हैं। प्रदूषण का कारण क्या है? यदि इस समस्या पर विचार करें तो वायु, जल, भूमि तथा आकाश सम्बन्धी प्रदूषण का कारण एक नहीं अनेक हैं।

ऐसी स्थिति में सामाजिक, भौतिक, आर्थिक आदि सभी समस्याओं पर विचार करना होगा। उपर्युक्त सभी पहलुओं पर समग्र दृष्टि से विचार करके हम विद्यार्थियों तक इस समस्या के निदान तथा उपचार के पक्षों पर अपनी बात पहुँचा सकते हैं।

घ. समाहित या समेकित इकाई

समाहित, या समेकित, या समेकिक इकाई के आधार पर पाठ्यक्रम का विभाजन आजकल चर्चा का विषय है। पाठ्यक्रम और पुस्तकों का भार कम करने के लिए इकाई निर्माण का यह आधार बहुत उपयोगी है।

उदाहरण के लिए मानव की मूलभूत आवश्यकताओं को लें। भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा मनोरंजन हमारी महत्वपूर्ण आवश्यकताएँ हैं। बच्चे की आवश्यकता तथा रुचि के अनुसार इन सभी आवश्यकताओं की इकाइयाँ खुलते चक्र के समान विस्तृत होती जाती हैं। जैसे ये सभी आवश्यकताएँ पहले परिवार के सम्बन्ध में, उत्तरोत्तर पड़ोस, गाँव, नगर, जिला, राज्य, देश तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इकाई का आधार बन सकती हैं। विद्यार्थी की क्षमता के अनुसार इन विषयों से सम्बन्धित उतनी ही विषयवस्तु ली जाए जो सरलता से ग्राह्य हो।

केन्द्र शासित प्रदेश दिल्ली के राज्य-शिक्षा संस्थान के प्राथमिक पाठ्यचर्या-नवीकरण प्रकोष्ठ ने समाहित शिक्षा पद्धति पर प्राथमिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया है। एन०सी०ई०आर०टी० के अनौपचारिक शिक्षा प्रकोष्ठ ने भी समाहित पद्धति के आधार पर माध्यमिक स्तर की पुस्तकों का निर्माण किया है। प्राथमिक स्तर की इन पुस्तकों का इकाई निर्माण आधार जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ हैं तथा माध्यमिक स्तर की पाठ्य पुस्तकों की इकाई का आधार विषयपरक है।

VII. दैनिक इकाई या दैनिक पाठ योजना

दैनिक इकाई या दैनिक पाठ योजना का वही महत्त्व है जो सप्ताह के निर्माण में एक दिन का, महीने के निर्माण में सप्ताह का, या वर्ष के निर्माण में हर महीने का। वर्ष का राशिचक्र भले ही षड् ऋतुओं—वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर—से गुजरता है और ऋतु भेद को सभी अनुभव करते हैं लेकिन इन भेद-उपभेदों के बीच निर्माण तो वर्ष का ही होता है। ठीक इसी प्रकार पाठ्य पुस्तक, व्याकरण, लेखन आदि शिक्षण के माध्यम से विद्यार्थी के ज्ञान, कौशल, बोध, अभिव्यक्ति, सौंदर्यप्रियता, मौलिक रचना शक्ति, अभिरुचि एवं अभिवृत्ति आदि द्वारा बच्चे की भाषा का विकास करना है।

दैनिक इकाई या दैनिक पाठ योजना के निर्माण के समय यह स्मरण रखना होगा कि इस दिन का शिक्षण भाषायी विकास के किस पहलू को पुष्ट करेगा। इस शिक्षण में अध्यापक किस प्रक्रिया को अपनाएगा तथा विद्यार्थी से कौन-कौन सी क्रियाएँ अपेक्षित हैं। शिक्षण एक तरफ़ा मार्ग नहीं है जिसमें केवल अध्यापक ही सक्रिय रहता है। शिक्षण बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें विद्यार्थी का सक्रिय रहना भी कम महत्त्व का नहीं है।

शिक्षण विधि के अतिरिक्त अध्यापक को यह भी स्पष्ट कर लेना चाहिए कि वह किस सहायक सामग्री की सहायता से विषय की सूक्ष्म संकल्पनाओं को स्पष्ट करेगा। यदि कठिन शब्दों या लोकोक्ति-मुहावरों का अर्थ स्पष्ट करना

है तो किन सूत्रों को अपनाया जाएगा। शिक्षण से पूर्व अध्यापक जितना ही विषय के बारे में स्पष्ट होगा उतनी ही सहजता के साथ वह विद्यार्थियों को पढ़ा सकेगा।

शिक्षण के साथ-साथ वह मूल्यांकन की किन-किन क्रियाओं को अपनाएगा? मूल्यांकन के लिए कितना समय दिया जाएगा? गृह-कार्य किस प्रकार का होगा आदि बातों पर भी पूर्व विचार करना चाहिए।

संक्षेप में दैनिक इकाई योजना या दैनिक पाठ योजना के निर्माण में निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान एकाग्र करना चाहिए :—

1. शिक्षण के उद्देश्य

- (क) सामान्य।
- (ख) विशिष्ट या व्यवहारगत।

2. विषय वस्तु या पठन सामग्री

3. शिक्षण प्रक्रिया

- (क) अध्यापक क्रियाएँ।
- (ख) छात्र क्रियाएँ।

4. सहायक सामग्री

5. मूल्यांकन

- (क) खण्ड मूल्यांकन।
- (ख) समय मूल्यांकन।

6. गृह कार्य

- (क) पाठ सम्बन्धी।
- (ख) विकासात्मक।

पाठ योजना से संबंधित विस्तृत जानकारी शिक्षण अभ्यास तथा पाठ-योजना अभ्यास में दी गई है। पाठक उस सामग्री को भी पढ़ें।

व्यावहारिक कार्य

1. समग्र पाठ्यक्रम का विश्लेषणात्मक दृष्टि से अध्ययन करना।
2. भाषा के पाठ्यक्रम का विश्लेषणात्मक दृष्टि से अध्ययन करना।
3. अध्यापक द्वारा पढ़ाई जाने वाली कक्षा से एक स्तर ऊपर तथा एक स्तर नीचे के पाठ्यक्रम का विश्लेषणात्मक दृष्टि से अध्ययन करना।

4. इकाई योजना संबंधी अन्य साहित्य का अध्ययन करना ।
5. शैक्षिक वर्ष के आरम्भ में पाठ्यक्रम का विभाजन करना ।
6. विद्यालय के समस्त भाषा-शिक्षकों के सहयोग से इकाइयों के विभाजन पर चर्चा करना ।
7. पाठ्यक्रम निर्माताओं को आमंत्रित करना ।
8. गत वर्ष के अनुभवों के आधार पर पुनः इकाई योजना बनाना ।
9. इकाई योजना के आधार को विद्यार्थियों के समक्ष स्पष्ट करना ।
10. इकाई योजना का कक्षा-कक्ष में प्रदर्शन करना ।

संदर्भ

1. माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण, निरंजन कुमार सिंह ।
2. पाठ योजनाएँ—राजस्थान हिन्दी ग्रंथ एकादमी (1978) ।
3. हिन्दी भाषा और साहित्य शिक्षण, शर्मा तथा नागौरी ।
4. भाषा सुमन भाग 1, 2, 3 (अनौपचारिक शिक्षा प्रकोष्ठ) एन०सी० ई० आर० टी० (1986) ।
5. परिचायिका, राज्य प्राथमिक पाठ्यक्रम नवीकरण प्रकोष्ठ (एस०सी० ई० आर० टी०) कश्मीरी गेट, दिल्ली (1984) ।
6. Teacher Education Curriculum—A Frame Work, N. C. E. R. T. (1978).

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. 'योजनाबद्ध कार्यक्रम क्रमबद्ध होता है', भाषा शिक्षण के संदर्भ में इस कथन की समीक्षा कीजिए ।
2. भाषा शिक्षण की वार्षिक योजना बनाने समय आप किन-किन बातों का विशेष ध्यान रखेंगे ? संक्षेप में लिखें ।
3. भाषा पाठ्यक्रम विभाजन किस आधार पर करना चाहिए । अपने उत्तर की पुष्टि करें ।
4. दैनिक इकाई या दैनिक पाठयोजना का क्या उद्देश्य है ? पाठ योजना को अपनी दैनिक डायरी में आप कैसे अंकित करेंगे ?
5. टिप्पणी लिखें—
 1. सत्र के अनुसार पाठ्यचर्या विभाजन ।
 2. पाठ्यक्रम का विषय वस्तु की दृष्टि से अंतः सहसंबंध ।
 3. समाहित या समेकित इकाई ।
 4. इकाई योजना का महत्त्व ।

अध्याय 20

गृह-कार्य

I. गृह-कार्य—एक सामान्य परिचय

सामान्यतः गृहकार्य उस कार्य को कहते हैं जो विद्यालय के पाठ्यक्रम से संबंधित होता है और जिसे कक्षा अध्यापक विद्यार्थियों को घर पर पूरा करके लाने के लिए देता है। यह कार्य कई प्रकार का हो सकता है। पढ़े हुए पाठ के अतिरिक्त आगामी पाठ पढ़ना भी गृह कार्य का विषय बन सकता है। इस कार्य का निरीक्षण अध्यापक अगले दिन या सुविधा अनुसार किसी भी दिन व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप से कर सकता है।

गृह कार्य से छात्रों में कुछ विशेष आदतों का विकास होता है। जैसे—घर पर नियमित रूप से स्वाध्याय करने का अभ्यास, स्वयं चिंतन-मनन की शक्ति का विकास, अतिरिक्त समय का सदुपयोग, विद्यालय और घर के वातावरण की समीपता, अभिभावकों का बच्चे की शिक्षा में योगदान, घर पर अपने से छोटों को सिखाने और बड़ों से सीखने की इच्छा की पूर्ति आदि-आदि।

गुरुकुल प्रणाली में विद्यार्थी हर समय गुरु के सान्निध्य में रहता था। वह अपना नया पाठ दिन में तीन-चार बार भी ले सकता था। अपनी बुद्धि के अनुसार अपनी पठन गति निश्चित कर सकता था। उसे आवश्यकता पड़ने पर कठिन विषय को अनेक बार पूछने की स्वतंत्रता थी। कक्षा में छात्रों की संख्या कम होने के कारण उसका अध्यापक से सीधा संपर्क था। वह कक्षा का मात्र रोल नंबर न होकर अपने आप में महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व था। परीक्षाएँ बहुधा मौखिक थीं और विद्यार्थियों को अपना पाठ एकांत में रटना पड़ता था। छात्रावास में या किसी वृक्ष के नीचे बैठकर रटना ही गृह कार्य था।

अब स्थिति भिन्न है। आज भीड़भरी कक्षा में अध्यापक विद्यार्थियों को पाठ के सामान्य संकेत देकर याद करने या लिखने के लिए कुछ कार्य देता है। जो विद्यालय जितना अधिक गृह-कार्य दे उसका तथाकथित स्तर जितना ही ऊँचा माना जाता है। आज विद्यार्थी के घर का वातावरण अर्थ, शिक्षा, स्थानाभाव तथा अभिभावकों की व्यस्तता के कारण गृहकार्य के बहुत अनुकूल नहीं है। वह गृह कार्य न रहकर ग्रह कार्य हो गया है, जो विद्यार्थी और उनके अभिभावकों को “ग्रह” की तरह ग्रसता है। ऐसी परिस्थिति में इस अनिवार्य

तथा अवांछित भार से कैसे निपटा जाए, यह प्रश्नवाचक चिह्न शिक्षा के क्षेत्र में रत सभी विद्वानों की चिंता का विषय बना हुआ है।

विद्यार्थी एक है, विद्यालय के विषय अनेक हैं। शहरों के विद्यालय दो-दो पालियों में लगते हैं तथा गाँवों के बच्चों का बहुत सा समय दूर-दूर के स्कूलों में आते जाते नष्ट हो रहा है। दूरदर्शन का प्रलोभन हर मायंकाल और अवकाश के दिन हर घर में कलह का कारण बनता है। हमें इन सभी समस्याओं के बीच कोई मध्यवर्ती मार्ग खोज निकालना है।

II. भाषा शिक्षण में गृह-कार्य

गृह कार्य की अनिवार्यता को वर्तमान परिस्थितियों में नकारा नहीं जा सकता। हिन्दी शिक्षण में इसकी आवश्यकता और आगे भी बनी रहेगी चाहे इसका स्वरूप कोई भी हो। कारण स्पष्ट है। भाषा हर क्षण का अभ्यास है। इसके अभ्यास को विद्यालय की दीवारों तक सीमित नहीं किया जा सकता। शिक्षा का व्यावहारिक पक्ष समाज है। स्पष्ट है हमें गृह कार्य की परिभाषा को लिखित कागज-पेंसिल के दायरे से मुक्त कराना होगा।

III. गृह-कार्य का स्वरूप-नियोजन

गृह कार्य की अनिवार्यता स्वीकार करने के बाद इसके स्वरूप नियोजन पर विचार करना चाहिए। गृह कार्य का स्वरूप सदा एक हो ही नहीं सकता और न ही होना चाहिए। कक्षा का स्तर, बालक की रुचि तथा आवश्यकता, उसकी योग्यता तथा कार्यक्षमता, शिक्षा के उद्देश्य, विद्यालय तथा घर का वातावरण ऐसे बिन्दु हैं जिनका विचार गृह कार्य देने से पूर्व करना चाहिए।

भाषा शिक्षण का उद्देश्य ज्ञानार्जन के अतिरिक्त सद्बृत्ति, अभिरुचि, चिंतन-मनन तथा रचनात्मक शक्ति आदि का विकास करना भी है। गृह-कार्य का इन बिन्दुओं से सीधा संबंध है। गृह कार्य का स्वरूप उसी समय निरूपित हो सकता है जब इन पहलुओं पर विचार किया जाए। साथ ही इस बात का ध्यान रखा जाए कि गृह कार्य बालक के मनोरंजन में आड़े न आए। संभव हो तो वह उसके मनोरंजन का साधन बने।

नीचे प्राथमिक तथा उच्च स्तर पर दिए जाने वाले गृहकार्य के स्वरूप पर विवेचन किया जाएगा। यहाँ गृहकार्य का स्वरूप विवेचन करते समय भाषा शिक्षण के विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखा गया है। गृहकार्य का संबंध पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक तथा पाठ्य सहगामी या पाठ्यांतर क्रियाओं से जोड़ा गया है।

गृह-कार्य का स्वरूप

1	पठन आधारित गृह-कार्य	<ul style="list-style-type: none"> — समाज उपयोगी उत्पादन कार्य के लिए पठन — अतिरिक्त पठन — कविता पठन — पढ़ाए जाने वाले पाठ को घर पर पढ़ कर आना — पठित पाठ को घर पढ़ना
2	लेखन संबंधी गृह-कार्य	<ul style="list-style-type: none"> — सद्बृत्ति विकास संबंधी कार्य — समाज उपयोगी लेखन कार्य — सृजनात्मक लेखन कार्य — शब्द निर्माण संबंधी कार्य — शुद्ध लेखन संबंधी कार्य — लेखन गति संबंधी कार्य — घर पर सुलेख लिखना
3	मौखिक अभिव्यक्ति संबंधी गृह-कार्य	<ul style="list-style-type: none"> — अन्त्याश्रयी में भाग लेना — नाटक मंडली में भाग लेना — आकाशवाणी-दूरदर्शन के कार्यक्रम में भाग लेना — भाषण प्रतियोगिता में भाग लेना — कविता सुनाना — कहानी सुनाना
4	श्रवण संबंधी गृह-कार्य	<ul style="list-style-type: none"> — नाटक आदि देखना — दूरदर्शन के कार्यक्रम सुनना — आकाशवाणी के कार्यक्रम सुनना — सामाजिक सभा के कार्यक्रम सुनना — धार्मिक कथा, सत्संग आदि सुनना

1. पठन संबंधी गृह-कार्य

(1) कक्षा में पढ़ाए गए पाठ को घर पर पढ़ना	स्तर		
	प्राथमिक	माध्यमिक	उच्च/उच्च-तम मा०
(क) मौन वाचन सहित ।		✓	✓
(ख) मुखर वाचन सहित ।	✓	✓	
(ग) द्रुत पठन के रूप में ।		✓	✓
(घ) गहन अध्ययन के रूप में ।		✓	✓
(ङ) शुद्ध वाचन की दृष्टि से ।	✓	✓	✓
(च) भावानुकूल वाचन ।		✓	✓
(छ) उचित गति की दृष्टि से ।		✓	✓
(ज) घर के किसी सदस्य को मुखर वाचन सहित पढ़ कर सुनाना ।	✓	✓	
(झ) अपनी मित्र मंडली में मुखर वाचन सहित पढ़कर सुनाना ।	✓	✓	
(ञ) कठिन भाव या विचार का अर्थ स्पष्ट करने के लिए पढ़ना ।		✓	✓
(ट) कठिन शब्दों को वाक्य में प्रयोग की दृष्टि से पढ़ना ।	✓	✓	
(ठ) मुहावरों को वाक्य में प्रयोग की दृष्टि से पढ़ना ।	✓	✓	✓
(ड) सौन्दर्य बोध की दृष्टि से पढ़ना ।			✓
(ढ) भाव सौन्दर्य की दृष्टि से पढ़ना ।			✓

	प्राथमिक	माध्यमिक	उच्च/उच्च- तम मा०
(ण) शैली की प्रशंसा के लिए पढ़ना ।			✓
(त) सारांश के लिए पढ़ना ।		✓	✓
(थ) केन्द्रीय भाव या विचार ग्रहण के लिए पढ़ना ।	✓	✓	✓
(द) जीवन मूल्य ग्रहण करने के लिए पढ़ना ।		✓	✓
(ध) मनोरंजन के लिए पढ़ना ।	✓	✓	✓
(न) समय का सदुपयोग करने के लिए पढ़ना ।	✓	✓	✓
(प) साहित्यिक रस के लिए पढ़ना ।		✓	✓
(2) कक्षा में पढ़ाए जाने वाले पाठ को घर पर पढ़ना			
(क) नए विषय से परिचित होने के लिए पढ़ना ।	✓	✓	✓
(ख) कठिन शब्दों को छाँटने के लिए पढ़ना ।	✓	✓	✓
(ग) काठिन्य निवारण के लिए पढ़ना ।		✓	✓
(घ) पठन गति बढ़ाने के लिए पढ़ना ।	✓	✓	
(ङ) अध्यापक से प्रशंसा प्राप्त करने के लिए पढ़ना ।	✓	✓	✓
(3) कविता पठन			
(क) पठित कविता घर पर पढ़ना ।			
1. मुखर रूप में ।	✓	✓	✓
2. सस्वर ।	✓	✓	✓
3. एकांत में ।		✓	✓
4. परिवार के सदस्यों			

	प्राथमिक	माध्यमिक	उच्च/उच्च- तम मा०
के सम्मुख ।	✓	✓	✓
5. मित्र मंडली में ।	✓	✓	✓
(ख) कविता प्रतियोगिता में कविता पाठ ।		✓	✓
(ग) सांस्कृतिक, धार्मिक या अन्य सामाजिक महत्त्व के अवसर पर कविता पाठ ।		✓	✓
(घ) सृजनात्मक काव्य पाठ ।			✓
(4) अतिरिक्त पठन			
(क) पठित विषय से संबंधित अन्य सामग्री पढ़ना ।		✓	✓
(ख) कहानी पढ़ना ।	✓	✓	✓
(ग) निबन्ध पढ़ना ।		✓	✓
(घ) नाटक पढ़ना ।		✓	✓
(ङ) उपन्यास पढ़ना ।		✓	✓
(च) कविता पढ़ना ।	✓	✓	✓
(छ) किसी विशेष विधा के बारे में विशेष पठन ।			✓
(ज) आसपास के नामपट्ट आदि पढ़ना ।	✓	✓	
(झ) पुस्तकालय में स्वाध्याय करना ।		✓	✓
(ञ) धार्मिक, पौराणिक आदि कहानियाँ पढ़ना ।		✓	✓
(5) समाज उपयोगी उत्पादन कार्य के लिए पढ़ना			
(क) निरक्षर लोगों के लिए चिट्ठी, समाचार पत्र आदि पढ़ना ।		✓	✓
(ख) नेत्रहीनों के लिए समाचार पत्र पढ़ना ।		✓	✓

	प्राथमिक	माध्यमिक	उच्च/उच्च- तम मा०
(ग) नेत्रहीनों के लिए उनकी पाठ्यपुस्तक पढ़कर सुनाना ।		✓	✓
(घ) सभाओं में विशेष सूचना या रिपोर्ट आदि पढ़ना ।			✓
(ङ) टेपरेकार्डिंग के लिए नाटक आदि का अंश पात्रानुकूल पढ़ना ।			✓
(च) आकाशवाणी पर बालोप-योगी समाचार पढ़ना ।			✓
(छ) दूरदर्शन के लिए बालोप-योगी समाचार पढ़ना ।			✓
(ज) आकाशवाणी और दूर-दर्शन पर सृजनात्मक पठन ।			✓
(झ) समसामयिक महत्त्व के विषयों से सम्बन्धित लेख-संग्रह ।		✓	✓

2. लेखन संबंधी गृह-कार्य का स्वरूप

(1) सुलेख सम्बन्धी गृह-कार्य

(क) सुलेख-अभ्यास पुस्तिका के पृष्ठ का कुछ अंश या पूरा पृष्ठ लिखना ।	✓	
(ख) तस्ती पर एक पंक्ति या समस्त तस्ती लिखना ।	✓	
(ग) समाचार पत्रों, पत्रिकाओं आदि से मोटे शीर्षक के अंश निकालकर अनुलेख लिखना ।		✓
(घ) देवनागरी लिपि को कलात्मक ढंग से		✓

	प्राथमिक	माध्यमिक	उच्च/उच्च- तम मा०
लिखना ।		✓	✓
(ड.) अपने क्षेत्र के नामपट्टों को कलात्मक दृष्टि से परखना और उनका अनुलेख लिखना ।		✓	✓
(च) अपना नामपट्ट लिखना ।		✓	✓
(छ) कलात्मक ढंग से लिखे देवनागरी लिपि के नमूने एकत्रित करना ।		✓	✓
(ज) लेखन की दृष्टि से लिपि-सौन्दर्य का तुलनात्मक अध्ययन करना ।		✓	✓
(2) लेखन गति सम्बन्धी गृह-कार्य			
(क) पठित अंश से कापी पर एक पृष्ठ लिखना ।	✓	✓	
(ख) अपनी इच्छा से एक पृष्ठ लिखना ।	✓	✓	
(ग) घर पर श्रुतलेख लिखना ।	✓	✓	
(घ) आकाशवाणी के समाचार सुन कर लिखना ।			✓
(ड.) किसी के भाषण को लिखना ।			✓
(च) पास-पड़ोस की किसी सभा की कार्यवाही को लिखना ।			✓
(छ) किसी के लिए पत्र लिखना .		✓	✓
(ज) भाषण के मुख्य अंश लिखना या नोट लेना ।			✓
(3) शुद्ध लेखन-गृह-कार्य			
(क) पठित अंश का कुछ भाग			

	प्राथमिक	माध्यमिक	उच्च/उच्च- तम मा०
लिखना ।	✓		
(ख) अभ्यास पुस्तिका में पाई गई वर्तनी की अशुद्धियों को वाक्य में प्रयोग करके लिखना ।	✓	✓	
(ग) अशुद्धि का कारण जानना । यथा —			
1. ह्रस्व दीर्घ मात्रा भ्रम ।	✓	✓	
2. संयुक्त व्यंजन भ्रम ।	✓	✓	
3. वर्ण में मात्रा के योग का भ्रम ।	✓	✓	✓
4. रेफ योग की अशुद्धि ।	✓	✓	✓
5. पंचम अक्षर सिद्धान्त भ्रम ।		✓	✓
6. हिन्दी में प्रयुक्त बिन्दी का भ्रम । यथा—ड़, ढ, क, ख, ग, ज, फ़ ।		✓	✓
7. अनुस्वार-अनुनासिक भ्रम ।	✓	✓	✓
8. स-ष-श का भ्रम ।	✓	✓	✓
9. वर्ण विपर्यय ।		✓	✓
10. अनावश्यक वर्ण आगम ।		✓	✓
(घ) अपने से छोटी कक्षाओं के बच्चों की अभ्यास-पुस्तिकाओं की वर्तनी की दृष्टि से जाँच ।		✓	✓
(ङ) बहुधा अशुद्ध लिखे जाने वाले शब्दों का वर्तनी कोश बनाना ।		✓	✓
(च) शुद्ध हिन्दी लेखन संबंधी			

	प्राथमिक	माध्यमिक	उच्च/उच्च- तम मा०
पुस्तकों का स्वाध्याय ।	✓	✓	✓
(4) शब्द निर्माण संबंधी गृह-कार्य			
(क) दिए गए वर्णों से शब्द निर्माण			
1. दो वर्ण वाले शब्द (मात्रा रहित) ।	✓	✓	
2. तीन वर्ण वाले शब्द (मात्रा रहित) ।	✓	✓	
3. चार वर्णों वाले शब्द (मात्रा रहित) ।	✓	✓	
4. केवल स्वरों से निर्मित शब्द ।	✓	✓	
5. केवल आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ की मात्राओं के योग से शब्दों का निर्माण ।	✓	✓	
6. पंचम अक्षर वाले शब्दों का निर्माण ।		✓	✓
7. संयुक्त व्यंजन वाले शब्दों का निर्माण ।	✓	✓	✓
8. उपसर्ग की सहायता से शब्द निर्माण ।		✓	✓
9. प्रत्यय की सहायता से शब्द निर्माण ।		✓	✓
10. संधि की सहायता से शब्द निर्माण ।		✓	✓
11. समास की सहायता से शब्द निर्माण ।		✓	✓
12. मूल शब्द निकालना ।		✓	✓
13. शब्द पहली का निर्माण ।			✓

	प्राथमिक	माध्यमिक	उच्च/उच्च- तम मा०
करना !		✓	✓
(घ) महापुरुषों की जीवनी संबंधी निबंध लिखना।		✓	✓
(ङ) सद्बृत्तियों से संबंधित संकलन तैयार करना ।		✓	✓
(च) सार्वजनिक स्थानों, पूजा स्थलों आदि पर सुन्दर लेख में प्रेरणाप्रद वाक्य लिखना ।			✓
(छ) नैतिकता संबंधी निबंध प्रतियोगिताओं में भाग लेना ।		✓	✓
3. मौखिक अभिव्यक्ति संबंधी गृह-कार्य का स्वरूप			
(क) घर के सदस्यों को पठित कहानी सुनाना ।	✓	✓	✓
(ख) मित्रों को कहानी सुनाना ।	✓	✓	✓
(ग) घर के सदस्यों को कविता सुनाना ।	✓	✓	✓
(घ) कवि गोष्ठियों में कविता सुनाना ।		✓	✓
(ङ) सभाओं में गीत आदि सुनाना ।		✓	✓
(च) समसामयिक विषयों से संबंधित भाषण प्रति-योगिताओं में भाग लेना ।		✓	✓
(छ) आकाशवाणी के कार्य-क्रमों में भाग लेना ।		✓	✓
(ज) दूरदर्शन के कार्यक्रमों में भाग लेना ।		✓	✓
(झ) नाटक में अभिनय करना ।	✓	✓	✓

	प्राथमिक	माध्यमिक	उच्च/उच्च- तम मा०
(अ) अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता में भाग लेना ।	✓	✓	✓
(ट) यात्रा आदि के संस्मरण सुनाना ।	✓	✓	✓
(ठ) वाद विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेना ।	✓	✓	✓
(ड) टेलीफोन पर संयत भाषा में बात करना ।		✓	✓
4. श्रवण संबंधी गृह-कार्य			
(क) छोटे बड़ों की बातों को धैर्यपूर्वक सुनना ।	✓	✓	✓
(ख) सुनने के शिष्टाचार का पालन करना ।	✓	✓	✓
(ग) किसी के द्वारा सुनाई जा रही कहानी-चुटकुले आदि के बीच में न बोलना ।	✓	✓	✓
(घ) धार्मिक सत्संग की कथा, प्रवचन आदि को मनोयोग पूर्वक सुनना ।	✓	✓	✓
(ङ) दो व्यक्तियों की बातचीत के बीच अवांछित रूप से न बोलना ।	✓	✓	✓
(च) प्रवचन आदि में ग्रहणशीलता की स्थिति बनाए रखना ।	✓	✓	✓
(छ) आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों को सुनना ।	✓	✓	✓
(ज) दूरदर्शन से प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों को मनोयोगपूर्वक सुनना ।	✓	✓	✓
(झ) नाटक आदि देखना और सुनना ।	✓	✓	✓

श्रवण, पठन, अभिव्यक्ति संबंधी कौशलों के विकास की जानकारी तथा गृह संबंधी कार्य के लिए पाठक इन कौशलों से संबंधित अध्याय पढ़ें ।

IV. गृहकार्य के संशोधन, निरीक्षण तथा मूल्यांकन की विधियाँ

ऊपर गृहकार्य से संबंधित विभिन्न आयामों पर विचार किया गया । इस विचार विमर्श का मुख्य उद्देश्य यह था कि गृहकार्य केवल वही न समझा जाए जो पाठ्यपुस्तकों पर आधारित हो । पाठ्यपुस्तक-लेखक अध्यापकों के लिए विस्तृत ज्ञान को सीमित पृष्ठों में ऐसा आधार प्रस्तुत करता है कि वे इस माध्यम से विद्यार्थियों को सुसंबद्ध रूप से ज्ञान दे सकें । अध्यापक गृह कार्य के माध्यम से विद्यार्थियों को ऐसे अवसर प्रदान करता है कि वे व्यावहारिक जीवन में उस ज्ञान को परख सकें तथा उससे लाभान्वित हो सकें ।

गृहकार्य के रूप में प्रदत्त सभी कार्यों का अध्यापक न तो संशोधन कर सकता है और न ही उसका निरीक्षण तथा मूल्यांकन कर सकता है । उसके लिए यह संभव ही नहीं है । इस समस्या से सुलझने के लिए उसे कोई मध्यवर्ती मार्ग अपनाना होगा । उसे ऐसी विधियों या तकनीकों का आश्रय लेना होगा जिससे कि विद्यार्थी यह अनुभव न करें कि अध्यापक उनके द्वारा किए गए गृहकार्य की उपेक्षा कर रहा है और अध्यापक के लिए भी यह कार्य भार-स्वरूप न बने । बालक रेशम के कीड़े की तरह गृहकार्य के अम्बार में अपने आप को फँसा अनुभव न करे । कोई मध्यवर्ती मार्ग दोनों के लिए श्रेयस्कर होगा जो नीचे सुझाई गई विधियों के अनुसार हो सकता है ।

1. मौखिक चर्चा

ऊपर कहा जा चुका है कि सभी गृहकार्य लिखित रूप में नहीं दिया जाता । श्रवण, पठन तथा बोलचाल या मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के रूप में दिए गए गृहकार्य पर कक्षा में मौखिक प्रश्न पूछे जाने चाहिए । इस कार्य को विद्यार्थियों ने अपनी सुविधा के अनुसार विभिन्न प्रकार से संपन्न किया होगा । कक्षा में इन विषयों पर चर्चा करने से सभी विद्यार्थियों के अनुभवों का आदान-प्रदान होगा । कार्य को विधिवत् संपन्न करने वाले विद्यार्थी अपने आप को उपेक्षित न समझ कर गौरवान्वित अनुभव करेंगे । जिन विद्यार्थियों ने किसी कारणवश काम नहीं किया हो उन्हें भी चर्चा के समय कार्य में भागीदार बनने का अवसर मिलेगा ।

जिन विद्यार्थियों ने कार्य को विधिवत् संपन्न किया हो उनको साधुवाद देना चाहिए और कार्य संपन्न न करने वालों को प्रोत्साहन देना चाहिए कि वे

भी साधुवाद के पात्र बनना सीखें ।

2. लिखित कार्य की जाँच

लिखित कार्य गृहकार्य का अनिवार्य अंग है । इससे विद्यार्थियों को लेखन अभ्यास का अवसर मिलता है । अभिभावक भी अनुभव करते हैं कि विद्यार्थी स्कूल के काम में रुचि ले रहा है और निरीक्षकों को भी अध्यापक और विद्यार्थियों के परिश्रम का अनुमान होता है । लिखित काम की जाँच के लिए निम्नलिखित विधियाँ अपनाई जा सकती हैं :—

क. सामूहिक जाँच

इस विधि के अनुसार अध्यापक लिखित कार्य का गहन संशोधन नहीं करता । सभी विद्यार्थी अपने-अपने स्थान पर खड़े हो जाते हैं और अध्यापक सरसरी नज़र से कार्य पर नज़र डालता है और अपने हस्ताक्षर करता है । कापी पर जाँच की गई के स्थान पर केवल 'अवलोकित' शब्द लिख देता है ।

इस विधि को अधिक उपयोगी बनाने और प्रतिस्पर्धा का भाव जगाने के लिए अध्यापक मूल्यांकन के रूप में अंक भी प्रदान कर सकता है । अंकों के अतिरिक्त क, ख, ग आदि श्रेणी भी अंकित की जा सकती है । अंक देने या श्रेणी विभाजन के समय विद्यार्थियों का लेख और कार्य संपन्न करने का स्तर विशेष रूप से ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

इस सामूहिक जाँच में 5 से 10 मिनट का समय लगता है । जिन विद्यार्थियों ने कार्य संपन्न किया है उन्हें विशेष रूप से प्रसन्नता होती है और दूसरे विद्यार्थियों को अनुभव होता है कि प्रदत्त कार्य की जाँच होती है और कार्य नहीं करने वाले अध्यापक की निगाह से बच नहीं सकते । नियमित गृहकार्य करने वाले विद्यार्थियों को आंतरिक मूल्यांकन के समय अतिरिक्त अंक दिए जाने चाहिए ।

ख. व्यक्तिगत जाँच

गृहकार्य की व्यक्तिगत जाँच भी होनी चाहिए । इस जाँच के समय वर्तनी, विषय की क्रमबद्धता, सुसंबद्धता, वाक्य गठन, अनुच्छेद विभाजन, शब्दों के उचित प्रयोग आदि की ओर विद्यार्थी का व्यक्तिगत रूप से ध्यान आकृष्ट करना पड़ता है । अध्यापक का एक सकेत विद्यार्थी के लिए जीवन भर अच्छे संगी का काम देता है । विद्यार्थी की अनुपस्थिति में अध्यापक उसकी अभ्यास-पुस्तिका को कितना ही लाल स्याही से रंगे उसका वह प्रभाव

नहीं पड़ सकता जो व्यक्तिगत जाँच के समय संकेतमात्र और सहानुभूतिपूर्वक दिए गए मार्गदर्शन का। सप्ताह में एक दिन व्यक्तिगत जाँच के लिए निश्चित करना चाहिए। ऐसा करने से अध्यापक को बच्चों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ज्ञान होगा और अपनी अध्यापन विधि को संस्कारित करने का अवसर मिलेगा।

3. निरीक्षण या प्रेक्षण

निरीक्षण या प्रेक्षण को हमारी शिक्षा पद्धति में वह स्थान प्राप्त नहीं है जो इसे मिलना चाहिए। प्रेक्षण में विद्यार्थी के व्यवहार पर निगाह रखी जाती है। विद्यार्थी इस बात के प्रति सचेष्ट नहीं होता कि उसके कार्य-व्यापार का मूल्यांकन किया जा रहा है। छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थियों पर इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है। यदि अध्यापक का स्वरूप समाज सेवी भी है और वह अपने क्षेत्र में साहित्यिक, सामाजिक या धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन करता है तो विद्यार्थियों को इनमें सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया जाए और वहाँ उनके व्यवहार का प्रेक्षण किया जाए। आंतरिक मूल्यांकन में प्रेक्षित व्यवहार को उचित स्थान दिया जाना चाहिए।

व्यावहारिक कार्य

1. भाषा शिक्षण की पुस्तकों के उस अंश का गहन अध्ययन करना जिसमें गृहकार्य पर प्रकाश डाला गया है।
2. विद्यार्थियों से गृहकार्य के स्वरूप पर चर्चा करना।
3. विद्यार्थियों से गृहकार्य को संपन्न करने में आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों पर चर्चा करना।
4. अभिभावकों से गृहकार्य के संबंध में आने वाली कठिनाइयों पर चर्चा करना।
5. भाषा के विभिन्न आयामों पर दिए जाने वाले गृहकार्य का कक्षा-नुसार व्यौरा तैयार करना।

संदर्भ

1. शुद्ध हिन्दी लेखन, डा० जय नारायण कौशिक।
2. भाषा संप्राप्ति मूल्यांकन, डा० के० जी० रस्तोगी।
3. वैज्ञानिक शैक्षिक पर्यवेक्षण, डा० जय नारायण कौशिक (1971)।
4. Encyclopaedia of Educational Research, (Fourth Edition).

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. शिक्षण में गृहकार्य से क्या अभिप्राय है ? क्या आप छात्र-छात्राओं को गृहकार्य देने के पक्ष में हैं ? अपने कथन की पुष्टि तर्कसहित करें ।
2. भाषायी कौशलों के विकास के लिए आप विद्यार्थियों को किस प्रकार का गृहकार्य देना चाहेंगे ? उदाहरण सहित लिखें ।
3. आप गृहकार्य संशोधन की कौनसी विधि अपनाएँगे और क्यों ? तर्कसंगत उत्तर दें ।
4. टिप्पणी लिखें—
 1. अतिरिक्त पठन और गृहकार्य ।
 2. समाज उपयोगी उत्पादन आधारित गृहकार्य ।
 3. सृजनात्मक लेखन संबंधी गृहकार्य ।
 4. गृहकार्य और अभिभावक ।

परीक्षा तथा मूल्यांकन

I. सामान्य परिचय

परीक्षा अथवा परीक्षण शब्द का प्रयोग अत्यंत प्राचीन काल से भारत में होता रहा है। सामान्यतया इसका अर्थ इम्तहान, जाँच-पड़ताल, निरीक्षण, समीक्षा, गुण-दोष, सत्यासत्य, योग्यता आदि के निर्णय के रूप में किया जाता है।

परीक्षा के मूल में “ईक्ष” धातु है जिसका अर्थ इम्तहान, जाँच या परख और जाँच पड़ताल के विविध प्रकार हैं।

आजकल परीक्षा के स्थान पर मूल्यांकन, मापन आदि शब्दों का प्रयोग भी होने लगा है। शैक्षिक दृष्टि से इन तीन शब्दों के अर्थ में कुछ न कुछ भेद है।

II. परीक्षा की परिभाषा

परीक्षा विषय विशेष अथवा कक्षा के समस्त विषयों में अर्जित ज्ञान को अंकों के माध्यम से जाँचने की वह विद्यालयी पद्धति है जिसका प्रयोग छात्रों के प्रवेश चयन, श्रेणी विभाजन, वर्गीकरण, अगली कक्षा में पदोन्नति आदि के लिए किया जाता है। इस कार्य के लिए अधिकांशतः अध्यापक निर्मित प्रश्न-पत्रों का प्रयोग किया जाता है। परीक्षा सावधिक, त्रैमासिक, अर्ध-वार्षिक अथवा वार्षिक किसी भी रूप में ली जा सकती है। परीक्षा में मुख्य रूप से छात्र के ज्ञानात्मक क्षेत्र का परीक्षण होता है। इसमें बहुधा भावात्मक क्षेत्र उपेक्षित रहता है।

III. मूल्यांकन की परिभाषा

पाश्चात्य परीक्षा पद्धति को अपनाने से पूर्व भारत में मूल्यांकन प्रणाली ही ऋषिकुल तथा गुरुकुलों में प्रचलित थी। विद्यार्थी वर्षों तक रात-दिन आचार्य के सम्पर्क में रहते थे। वे विभिन्न अवसरों पर उनके न केवल ज्ञानात्मक अपितु भावात्मक तथा मनोप्रेरित क्षेत्रों का निरन्तर मूल्यांकन करते रहते थे।

वे वांछित योग्यता की उपलब्धि होने पर गुरु का आशीर्वाद पाकर विदा लेते थे ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह अनुभव किया जाने लगा है कि ज्ञानात्मक परीक्षण एकांगी है । अच्छे अंक प्राप्त कर लेने पर तथा अंकों के आधार पर ऊँचे पदासीन होने पर भी बहुत से लोग पद के अयोग्य होते हैं । अतः परीक्षा का स्थान मूल्यांकन को मिलना चाहिए ।

मूल्यांकन विद्यार्थी के ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मनोप्रेरित (साइकोजेनिक) क्षेत्र को परखने के लिए निरन्तर चलती रहने वाली वह प्रक्रिया है जिसमें मानक तथा अमानक परीक्षा-साधनों का प्रयोग करते हुए निदानात्मक तथा उपचारात्मक पद्धति अपनाकर विद्यार्थी के गुण-दोषों का वर्णन किया जाता है । इस पद्धति के अनुसार विद्यार्थी के भावी चलन के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है । परशुराम को कर्ण के क्षत्रियत्व का परिचय इसी आधार पर मिल गया था कि वह कीट द्वारा दंशित होने और रुधिर बहने पर भी इसलिए विचलित नहीं हुआ कि कहीं उसकी जंघा हिलने से गुरु की निद्रा भंग न हो जाए ।

मूल्यांकन का क्षेत्र परीक्षा से विस्तृत है । परीक्षा या मापन केवल यह बता सकता है कि किसी विशेष समय परीक्षार्थी की बौद्धिक क्षमता की स्थिति क्या है । मूल्यांकन में परीक्षार्थी की स्थिति विशेष के अतिरिक्त उस स्थिति का कारण और उसके सुधारने के उपायों पर भी विचार किया जाता है ।

मूल्यांकन उद्देश्य आधारित होता है । मूल्यांकन के लिए ऐसी विधियों का प्रयोग किया जाता है जिसका हर बिन्दु किसी न किसी उद्देश्य की जाँच करता है । भाषा के मूल्यांकन के लिए भी इस प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

IV. भाषा के कौशलों का मूल्यांकन

ऊपर इस बात का संकेत दिया गया है कि मूल्यांकन उद्देश्य प्रेरित होता है । भाषा के विभिन्न कौशलों—सुनना-बोलना, लिखना-पढ़ना—के मूल्यांकन के समय भी इन बातों का ध्यान रखना होगा । नीचे इन्हीं पहलुओं के विषय में चर्चा की जाएगी ।

क. सुनने की योग्यता का मूल्यांकन

सुनने की योग्यता के मूल्यांकन के लिए निम्नलिखित श्रुतसामग्री का प्रयोग किया जा सकता है :—

श्रुत सामग्री

- | | |
|--|-------------------|
| 1. सस्वर वाचन । | 2. वार्तालाप । |
| 3. वाद-विवाद । | 4. प्रवचन । |
| 5. भाषण । | 6. आदेश-निर्देश । |
| 7. कविता । | 8. कहानी । |
| 9. आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से प्रसारित कार्यक्रम । | |
| 10. टेप पर रिकार्ड की गई सामग्री । | |

सुनने की योग्यता के मूल्यांकन के समय बालक में हुए निम्नलिखित परिवर्तनों की ओर ध्यान देना चाहिए :—

1. क्या वह ध्यानपूर्वक सुनता है ?
2. क्या वह सुनने के शिष्टाचार का पालन करता है ?
3. क्या वह मनोयोगपूर्वक सुनता है ?
4. क्या वह ग्रहणशीलता की स्थिति बनाए रखता है ?
5. क्या वह शब्दों, मुहावरों आदि का प्रसंगानुकूल अर्थग्रहण करता है ?
6. क्या वह बलाघात व अनुताप के उतार-चढ़ाव के अनुसार अर्थ ग्रहण कर सकता है ?
7. क्या वह श्रुत सामग्री के विषय, महत्वपूर्ण विचारों, भावों तथा तथ्यों को समझता है ?
8. क्या वह श्रुत सामग्री के सारांश या केन्द्रीय भावों को ग्रहण कर सकता है ?
9. क्या वह वक्ता के मनोभावों को समझ सकता है ?
10. क्या वह श्रुत सामग्री के सुन्दर स्थलों को पहचान सकता है ?
11. क्या वह श्रुत सामग्री में प्रयुक्त छन्द, अलंकार तथा मूर्त-अमूर्त विधानों को पहचान सकता है ?
12. क्या वह भाषा एवं शैली की दृष्टि से साहित्यिक अंशों की तुलना कर सकता है ?

सुनकर अर्थ ग्रहण करने की योग्यता का मूल्यांकन हमारे विद्यालयों में नहीं के समान है। यही कारण है कि बालसभा, विद्यालय के उत्सव, पास-पड़ोस के उत्सव, राजनीतिक भाषणों आदि का श्रोताओं पर वांछित प्रभाव नहीं पड़ पा रहा है। विद्यालयों का दायित्व है कि वे भाषा के इन महत्वपूर्ण गुणों की ओर विद्यार्थियों का ध्यान आकृष्ट कराएँ। विद्यार्थियों के प्रमाण पत्र में संचयी वृत्त पत्र (Cumulative Record Card), घटना वृत्त (Anecdotal Record), प्रेक्षण (Observation) तथा प्रश्नावली (Ques-

tionnaire) आदि की सहायता से इस योग्यता का अंकन किया जाए।

सुनने की इस योग्यता का मूल्यांकन केवल प्राथमिक, माध्यमिक अथवा किसी उच्च कक्षा विशेष से आरंभ नहीं होना चाहिए। यह प्रत्येक कक्षा के प्रतिदिन के कार्यक्रम में वर्षों तक सम्मिलित किया जाना चाहिए तभी हम अच्छे सभासदों का निर्माण कर सकते हैं।

ख. मौखिक अभिव्यक्ति की योग्यता का मूल्यांकन

मौखिक अभिव्यक्ति की आवश्यकता, महत्व, विकास आदि पर पहले अन्य अध्याय में विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। अध्यापक अधिकांशतः इसके मूल्यांकन के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं। इसका एक मुख्य कारण यह है कि अध्यापक यह नहीं समझ पाता कि वह अभिव्यक्ति के किन पक्षों का मूल्यांकन करे? वह इसकी मूल्यांकन विधियों से सामान्यतया अपरिचित है।

किसी भी विषय का मूल्यांकन उद्देश्य आधारित होता है। मौखिक अभिव्यक्ति का मूल्यांकन करते समय विद्यार्थी के निम्नलिखित गुणों का मूल्यांकन होना चाहिए :—

1. क्या वह सुश्रव्य वाणी में बोल सकता है ?
2. क्या वह प्रसंगानुसार उचित गति के साथ बोल सकता है ?
3. क्या वह शुद्ध उच्चारण, उचित बलाघात और अनुतान के उतार चढ़ाव के अनुसार बोल सकता है ?
4. क्या वह उचित विराम या उचित प्रवाह के साथ बोल सकता है ?
5. क्या वह व्याकरण सम्मत भाषा का प्रयोग कर सकता है ?
6. क्या वह प्रसंगानुकूल उचित शब्दों, मुहावरों और सूक्तियों का प्रयोग कर सकता है ?
7. क्या वह क्रमबद्धता, सुसम्बद्धता का ध्यान रखता है ?
8. क्या वह विषय की एकता को बनाए रखता है ?
9. क्या वह उचित हावभाव के साथ बोल सकता है ?
10. क्या वह मौखिक अभिव्यक्ति के शिष्टाचार का पालन करना है ?
11. क्या वह भावानुकूलन ढंग से विचारों को प्रकट कर सकता है ?
12. क्या वह विचारों को अपनी भाषा में व्यक्त कर सकता है ?

मौखिक अभिव्यक्ति का मूल्यांकन प्राथमिक कक्षा से उच्च कक्षाओं तक निरन्तर चलता रहना चाहिए। इससे विद्यार्थियों को साक्षात्कार के समय सफलता प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।

कक्षा सभा, बालसभा, वाद-विवाद, परिचर्चा, उत्सवों के अवसर पर

सार्वजनिक भाषण, नाटक आदि ऐसे अवसर हैं जिस समय हमें इस योग्यता के मूल्यांकन के अवसर प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार के मूल्यांकन को भी संचयीवृत्त पत्र में अंकित करने की आवश्यकता है।

यदि मूल्यांकनकर्ता एक से अधिक हैं तो प्रत्येक गुण के परीक्षण के लिए अंकों को निश्चित करना चाहिए।

(ग) पढ़कर अर्थग्रहण करने की योग्यता का मूल्यांकन

हमारे विद्यालयों में अधिकतर पढ़कर अर्थ ग्रहण करने की शक्ति के मूल्यांकन पर ही अधिक बल है। हमारी परीक्षा प्रणाली इसके लिए अनेक अवसर प्रदान करती है। अनुभव के आधार पर यह प्रतीत होता है कि यह मूल्यांकन भी अधिकतर उद्देश्य आधारित नहीं होता। परिणामतः मूल्यांकन का वांछित फल नहीं मिल पाता। इस योग्यता के मूल्यांकन के लिए विद्यार्थी के निम्नलिखित पक्षों की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए :—

1. क्या वह शुद्ध उच्चारण, बलाघात व अनुतान के उतार-चढ़ाव के साथ पढ़ सकता है ?
2. क्या वह मनोयोगपूर्वक पढ़ सकता है ?
3. क्या वह ग्रहणशीलता की स्थिति बनाए रखता है ?
4. क्या वह भावानुरूप सस्वर वाचन कर सकता है ?
5. क्या वह शब्दों, मुहावरों तथा उक्तियों का प्रसंगानुकूल भाव ग्रहण कर सकता है ?
6. क्या वह महत्त्वपूर्ण विचारों, भावों, तथ्यों का चयन कर सकता है ?
7. क्या वह पठित सामग्री का सारांश तथा केन्द्रीय भाव ग्रहण कर सकता है ?
8. क्या वह लेखक के मनोभावों को समझ सकता है ?
9. क्या वह भावपक्ष की दृष्टि से सुन्दर स्थलों को पहचान सकता है ?
10. क्या वह छन्द, अलंकार, प्रस्तुत-अप्रस्तुत तथा मूर्त-अमूर्त विधानों को पहचान सकता है ?
11. क्या वह लेखक की भाषा तथा शैली को पहचान कर उसकी प्रशंसा कर सकता है ?
12. क्या वह साहित्यिक शैलियों की श्रेष्ठता की परस्पर तुलना कर सकता है ?

गद्य-पद्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि की पुस्तकों के माध्यम से इस शक्ति के विकास के अनेक अवसर मिलते हैं। हमें इस पठित सामग्री का

उचित लाभ उठाना चाहिए।

पठित सामग्री की अर्थग्रहण कुशलता के मूल्यांकन के लिए मौखिक तथा लिखित दोनों प्रकार की परीक्षाओं का प्रयोग किया जा सकता है।

किस कुशलता को किस कक्षा में कितना महत्त्व दिया जाए यह मूल्यांकन-कर्ता पर ही निर्भर करेगा। यदि मूल्यांकन मौखिक है तथा एक से अधिक व्यक्ति मूल्यांकन का कार्य कर रहे हैं तो कुशलता के महत्त्वानुसार अंक विभाजन करना उचित रहेगा।

(घ) लिखित अभिव्यक्ति की योग्यता का मूल्यांकन

लिखित अभिव्यक्ति का हमारी परीक्षा पद्धति में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि परीक्षा तथा लिखित परीक्षा को पर्यायवाची मान लिया जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। किन्तु इतना होने पर भी अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अधिकांश विद्यार्थियों की लेखन अभिव्यक्ति संतोषजनक नहीं है। इस असंतोषजनक स्थिति का प्रमुख कारण यह है कि हमारे मूल्यांकन के मापदण्ड बहुधा दोषपूर्ण होते हैं। जिन पक्षों का मूल्यांकन होना चाहिए वे उपेक्षित रह जाते हैं। मूल्यांकनकर्ता लिखित अभिव्यक्ति के मुख्य उद्देश्यों को सम्मुख रख कर प्रश्न पत्र का निर्माण नहीं करते तथा परीक्षक भी इनके प्रति उदासीन भाव से कार्य लेते हैं।

विद्यार्थी की लिखित अभिव्यक्ति का मूल्यांकन करते समय निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखना चाहिए :—

1. क्या वह सुपाठ्य लेख लिख सकता है ?
2. क्या वह उचित गति से लिख सकता है ?
3. क्या वह शुद्ध वर्तनी के साथ लिख सकता है ?
4. क्या वह विराम चिह्नों का ध्यान रख कर लिख सकता है ?
5. क्या वह यथोचित अनुच्छेदों का निर्माण करता है ?
6. क्या वह व्याकरण सम्मत भाषा का प्रयोग करता है ?
7. क्या वह प्रसंगानुकूल उचित शब्दों, मुहावरों, लोकोत्तियों का प्रयोग करता है ?
8. क्या वह क्रमबद्धता बनाए रखता है ?
9. क्या वह विषय तथा अभिव्यक्ति के अनुकूल शैली का प्रयोग करता है ?
10. क्या वह लेखन में मौलिक शैली का उपयोग करता है ?
11. क्या वह लेखन में उपयुक्त विधा का प्रयोग करता है ?
12. क्या वह सृजनात्मक तथा रचनात्मक लेखन कर सकता है ?

लिखित अभिव्यक्ति के मूल्यांकन के लिए अनुच्छेद लेखन, निबंध लेखन, कहानी लेखन, पत्र लेखन, सारांश लेखन आदि विधियाँ अपनाई जा सकती हैं। इनका वर्णन रचना की शिक्षा अध्याय में विस्तार से किया गया है।

यदि मूल्यांकनकर्ता एक से अधिक हैं तो लेखन के विभिन्न बिन्दुओं पर कितना बल देना है इसका निर्णय पहले ही कर लेना चाहिए। किस बिन्दु को कितना महत्त्व दिया जाए यह विद्यार्थियों के स्तर तथा मूल्यांकन के उद्देश्यों पर आश्रित है।

पाठक भाषा के उपर्युक्त कौशलों के मूल्यांकन के संदर्भ में तत्संबंधी अध्याय भी पढ़ें।

व्यावहारिक कार्य

1. भाषा के निम्नलिखित कौशलों की सूची कक्षानुसार तैयार करना।
(क) सुनने की योग्यता संबंधी कुशलताएँ।
(ख) मौखिक अभिव्यक्ति की योग्यता संबंधी कुशलताएँ।
(ग) पढ़कर अर्थ ग्रहण करने की योग्यता संबंधी कुशलताएँ।
(घ) लिखित अभिव्यक्ति की योग्यता संबंधी कुशलताएँ।
2. भाषा के उपर्युक्त चारों कौशलों के मूल्यांकन संबंधी प्रश्न पत्र, प्रश्नावली, संचयी पत्र आदि का निर्माण करना।
3. भाषा के उपर्युक्त कौशलों के विकास के अभाव के कारणों और उनके निवारण के उपाय खोजना।
4. भाषा के चारों कौशलों का कक्षानुसार न्यूनतम स्तर (एम० एल० सी०) निर्धारित करना।
5. नैतिक पक्ष मूल्यांकन सामग्री का निर्माण करना।
6. मूल्यांकन संबंधी पुस्तकों की सूची बनाना।

संदर्भ

1. रस्तोगी, कृष्ण गोपाल—भाषा सम्प्राप्ति मूल्यांकन।
2. व्यापक शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम (1986), नई शिक्षा नीति के संदर्भ में, राज्य शिक्षा संस्थान, रूप नगर, दिल्ली-7.
3. Minimum Learning Continuum—NCERT, New Delhi (1979).
4. National Educational Policy—A frame work (1986), NCERT, New Delhi.

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. परीक्षा तथा मूल्यांकन का क्या सहसंबंध है ?
2. सुनने की योग्यता का मूल्यांकन आप किस सामग्री को आधार बनाकर करेंगे, और कैसे ?
3. सुनने की योग्यता के मूल्यांकन बिन्दु कौन-कौन से हैं ? यदि इस योग्यता का मूल्यांकन एक ही साथ एक से अधिक परीक्षक करें तो एकरूपता बरतने के लिए आप क्या नीति अपनाएँगे ?
4. मौखिक अभिव्यक्ति का मूल्यांकन करते समय आप किन उद्देश्यों को सम्मुख रखकर प्रश्नपत्र का निर्माण करेंगे ? उदाहरण सहित लिखें ।
5. पढ़कर अर्थग्रहण करने की योग्यता का मूल्यांकन आप किस आधार पर करेंगे । इस परीक्षण के लिए आप व्यक्तिगत परीक्षा लेना चाहेंगे या सामूहिक तथा क्यों ?
6. आज लिखित परीक्षा को ही विश्वसनीय परीक्षा माना जाता है । भाषा संबंधी लिखित कौशल के परीक्षण के लिए आप किस प्रकार के वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का निर्माण करेंगे ? पाँच प्रश्न नमूने के रूप में बनाएँ ।

अध्याय 22

शिक्षण अभ्यास, पाठ योजना तथा उसका मूल्यांकन

I. शिक्षण अभ्यास क्या है ?

शिक्षण अभ्यास शिक्षक-प्रशिक्षक के मार्गदर्शन में प्रशिक्षणार्थी द्वारा किया गया वह विकासात्मक अभ्यास है जिसके द्वारा प्रशिक्षणार्थी अध्यापन के विभिन्न सिद्धांतों को व्यवहार की कसौटी पर परखता हुआ शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु स्वयं के व्यक्तित्व में ऐसे कौशलों का विकास करता है जिससे कि वह सफल शिक्षक बन सके।

वास्तव में शिक्षण अभ्यास के समय प्रशिक्षणार्थी के लिए एक प्रयोगशाला का निर्माण किया जाता है जहाँ वह शिक्षण बिन्दुओं की शल्य चिकित्सा करता है। प्रशिक्षक पर्यवेक्षक के रूप में उसके सबल और निर्बल बिन्दुओं का लेखा-जोखा रखता है तथा पारस्परिक विचारों के आदान-प्रदान करने के बाद भावी उप-चार (शिक्षण) को अधिकाधिक सफल बनाने का प्रयत्न करता है।

शिक्षण अभ्यास को Students teaching, Pre-Service Teaching, Directed Teaching, Clinical Teaching, Supervised Students Teaching, Apprentice Teaching आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है जो इसके उपर्युक्त लक्षणों को ही प्रतिबिम्बित करते हैं।

II. शिक्षण अभ्यास के उद्देश्य

शिक्षण अभ्यास की आवश्यकता तथा महत्त्व को देखते हुए मुख्य रूप से इसके निम्नलिखित उद्देश्य निश्चित किए जा सकते हैं :—

1. प्रशिक्षणार्थी को शिक्षण सिद्धांतों का व्यवहार में प्रयोग करने का अवसर देना।
2. अनुभवी प्रशिक्षक की देखरेख में शिक्षण संबंधी अनेक विद्यालयी अनुभव प्रदान करना।
3. शिक्षण की आरंभिक कुशलताओं का विकास कराना।
4. प्रशिक्षणार्थियों में शिक्षण के क्षेत्र में निजी शिक्षा-दर्शन के विकास का

अवसर देना ।

5. उन समस्त संभाव्य परिस्थितियों को अनुभव आलोक में लाना जिन्हें वह वास्तविक कार्यक्षेत्र के समय अनुभव करेगा ।
6. प्रशिक्षणार्थी को स्कूल पाठ्यचर्या, विद्यालय की भौतिक आवश्यकताओं, विद्यार्थियों की दैनिक कठिनाइयों तथा पाठ्यचर्या सहगामी पाठ्यक्रम आदि से अवगत कराना ।
7. सतत शिक्षण अभ्यास (ब्लॉक टीचिंग) के समय विद्यालय से संबंधित निकायों यथा—शिक्षा विभाग, विद्यालय समुदाय तथा अन्य शिक्षासेवी समाज से अवगत कराना ।
8. शिक्षण इकाइयों के आधार पर पाठ योजना बनाना, सहायक सामग्री तैयार कराना तथा नियोजित विधि से पढ़ाने का अवसर उपलब्ध कराना ।
9. स्वयं के शिक्षण का मूल्यांकन करने तथा उसे उत्तरोत्तर सफल बनाने का अवसर देना ।
10. योग्य अध्यापकों का निर्माण करना ।

III. भाषा शिक्षण की पाठ योजना

शिक्षण अभ्यास संबंधी ऊपर की सामान्य चर्चा से स्पष्ट है कि इस अभ्यास का लक्ष्य सफल शिक्षकों का निर्माण करना है । भाषा शिक्षक का कर्तव्य है कि वह उपर्युक्त उद्देश्यों का प्रतिपादन भाषा संबंधी पाठ योजना में करे ।

भाषा शिक्षण की कोई एक पाठ योजना संभव नहीं है । भाषा के विभिन्न कौशलों—सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना, व्याकरण शिक्षण, साहित्य की विभिन्न विधाओं—गद्य, पद्य, नाटक, एकांकी, कहानी, उपन्यास, निबंध, जीवनी, आत्मकथा, यात्रा, रेखा-चित्र, पत्र, डायरी आदि के लिए अलग-अलग प्रकार की पाठयोजनाओं की आवश्यकता है ।

अध्यापक को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पाठ योजना साधन मात्र है, साध्य नहीं है । पाठ योजना की रूढ़िबद्ध लीक से ऊपर उठकर प्रतिपाद्य विषय को विद्यार्थियों तक पहुँचाना अध्यापक का मुख्य उद्देश्य है ।

आरंभिक शिक्षण काल में प्रशिक्षणार्थियों के लिए पाठयोजना के महत्वपूर्ण बिन्दुओं के बारे में जानकारी देना आवश्यक है । जैसे बाईसिकल सीखते समय बालक के कद के अनुसार बाईसिकल, समतल भूमि, दिन का उचित समय, आरंभिक निर्देश तथा सहारे की आवश्यकता पड़ती है और भूल होने पर चेतावनी भी दी जाती है उसी प्रकार प्रशिक्षणार्थी को पाठयोजना, सहायक सामग्री, प्रशिक्षक के आवश्यक दिशा निर्देश की आवश्यकता है । नीचे पाठ योजना के मुख्य तत्व

और उसके सोपानों की चर्चा की जाती है।

IV. पाठ योजना के अंग

पाठयोजना के कई अंग हैं। इनको उसी क्रम से रखना चाहिए जिस क्रम से इन्हें कक्षा के सम्मुख प्रस्तुत किया जाना है। पाठ योजना के मुख्य अंग हैं :—

1. पाठ के उद्देश्य।
2. उद्देश्य की पूर्ति के लिए पाठ्य सामग्री।
3. शिक्षण पद्धतियाँ और प्रयुक्त उपकरण।
4. बोध प्रश्न, मूल्यांकन आदि।

पाठ योजना की पहले ही भली प्रकार तैयारी कर लेने से अध्यापन कार्य व्यवस्थित करने तथा संभावित कठिनाइयों का पहले से निराकरण करने में सहायता मिलती है।

नीचे पाठ योजना के प्रमुख अंगों और उपांगों के विषय में विस्तारपूर्वक जानकारी दी जा रही है। पाठ योजना के इस क्रम में आवश्यकता अनुसार परिवर्तन भी किया जा सकता है।

1. सामान्य जानकारी

(क) विद्यालय का नाम.....। विद्यालय के नाम से उसकी स्थिति, पास-पड़ोस का परिसर, सामाजिक और भौतिक स्थिति का आभास मिलता है। शिक्षण के समय विद्यालय के परिसर का संदर्भ विद्यार्थियों की पाठ के प्रति आत्मीयता और उनकी प्रेक्षण शक्ति के विकास में सहायक होता है।

(ख) कक्षा तथा विद्यार्थियों की औसत आयु.....। कक्षा तथा औसत आयु विद्यार्थियों के सामान्य बौद्धिक स्तर का संकेत देते हैं। इनसे उनकी रुचि, व्यवहार आदि का अनुमान लगता है।

(ग) विद्यार्थियों की संख्या.....। विद्यार्थियों की संख्या के अनुमान से उनके बैठने की व्यवस्था, क्रियात्मक कार्य के समय कार्य विभाजन तथा क्रियात्मक कार्य के लिए आवश्यक सामान जुटाने में सहायता मिलती है।

(घ) विषय.....। विषय लिखने से प्रशिक्षणार्थी अपने कार्य क्षेत्र के प्रति सचेत रहता है तथा पर्यवेक्षक को मूल्यांकन के लिए संकेत मिलता है।

(ङ) प्रकरण....। प्रकरण लिखकर प्रशिक्षणार्थी अपने कार्य की सीमा को अभिव्यक्त करता है। समस्त विषय एक समय में नहीं पढ़ाया जा सकता। प्रकरण लिखने से उस दिन या उस वादन के शिक्षण-उद्देश्यों का पूर्व अनुमान लगाया जा सकता है। निरीक्षक भी उचित संदर्भ में कार्य का मूल्यांकन कर सकता है।

(च) पूर्वज्ञान....। प्रशिक्षणार्थी के लिए विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान की जानकारी

होना अत्यन्त आवश्यक है। कक्षा प्राथमिक हो या माध्यमिक अथवा उच्चतम-माध्यमिक, पूर्वज्ञान की जानकारी के अभाव में सुनियोजित पठन सामग्री असफल हो सकती है। भाषायी, व्याकरणिक तथा साहित्यिक पक्षों के अध्यापन के समय पूर्वज्ञान तथा वर्तमान ज्ञान का अन्योन्याश्रित संबंध होता है। पूर्वज्ञान के आधार पर विषय प्रवेश, उद्देश्य कथन आदि में सुविधा रहने के अतिरिक्त पाठ को रोचक बनाया जा सकता है तथा पूर्व पठित ज्ञान का संदर्भ देकर सरल और बोधगम्य भी।

2. उद्देश्य

सामान्यतया पाठ के दो प्रकार के उद्देश्य निश्चित किए जाते हैं— सामान्य तथा विशिष्ट।

(1) सामान्य उद्देश्य

भाषा शिक्षण के सामान्य उद्देश्य कई प्रकार के हो सकते हैं। यथा :—

1. शब्दावली की वृद्धि या विकास करना।
2. वाचन का अभ्यास कराना।
3. छात्रों का उच्चारण शुद्ध करना।
4. सूक्ष्म भावों और विचारों को समझने की शक्ति का विकास कराना।
5. पाठ के अभ्यास प्रश्नों को हल करने की योग्यता का विकास कराना।
6. पाठ में दिए गए चित्र अथवा अन्य दृश्य सामग्री का उचित प्रयोग करना सिखाना।
7. मौखिक अभिव्यक्ति का विकास करना।
8. साहित्य की विधाओं या विधा विशेष के बारे में जानकारी देना।
9. कल्पना शक्ति का विकास करना।
10. सौन्दर्य बोध कराना।
11. मनोरंजन कराना।
12. जीवन मूल्यों का विकास करना आदि।

(2) विशिष्ट उद्देश्य

प्रशिक्षणार्थी विशिष्ट उद्देश्यों को निश्चित करने के बाद अध्यापन के समय उन्हें आंशिक या पूर्ण रूप से प्राप्त करने के लिए वचनबद्ध हो जाता है। उसकी पाठ योजना, पाठ का विकास, बोध प्रश्न, सहायक सामग्री तथा मूल्यांकन विधि इन्हीं उद्देश्यों की उपलब्धि के लिए केन्द्रित रहती है। निरीक्षक भी यह जानने को उत्सुक रहता है कि क्या प्रशिक्षणार्थी अपने उद्देश्यों की पूर्ति में

सफल हो पाया ।

यह आवश्यक नहीं कि पाठ में एकाधिक विशिष्ट उद्देश्य हों । 40-45 मिनट के एक वादन में एक या दो विशिष्ट उद्देश्य निश्चित किए जा सकते हैं ।

स्वभावतः विशिष्ट उद्देश्य उस दिन के मुख्य शिक्षण बिन्दु होंगे । ये विशिष्ट उद्देश्य वादन विशेष के लिए चुने गए प्रकरण से संबंधित भी होंगे । यथा :—

- (1) अमुक व्यक्ति, स्थान, घटना आदि की जानकारी देना ।
- (2) अमुक कहानी, नाटक या उपन्यास के अंश या पात्र विशेष के बारे में जानकारी देना ।
- (3) अमुक कवि का संदेश, कविता का भाव विद्यार्थियों तक पहुँचाना ।
- (4) साहित्य की अमुक विधा से छात्रों को अवगत कराना ।
- (5) व्याकरण के अमुक खंड या उपखंड का ज्ञान देना ।
- (6) अमुक निबंध, पाठ का सार, कविता का भाव, रचना की आलोचना, यात्रा-वर्णन, आत्म अनुभव या प्रतिक्रिया आदि लिखवाना ।
- (7) भावानुकूल, उचित आरोह-अवरोह के साथ पद्यांश, गद्यांश, संवाद, वार्ता या नाटक आदि को पढ़वाना ।
- (8) पठित पद्य, गद्य, कहानी या नाटक आदि के भाव को मौखिक रूप से अभिव्यक्त कर सकना आदि-आदि ।

प्रशिक्षणार्थियों को सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई भी विशिष्ट उद्देश्य सामान्य बनाया जा सकता है और सामान्य उद्देश्य विशिष्ट । अंतर केवल इतना ही रहेगा कि अध्यापन तथा मूल्यांकन के समय उस दिन उस बिंदु पर अधिक बल देना है । उदाहरण के लिए शब्द भंडार का विकास, वाचन की शुद्धि अथवा पठन गति छोटी कक्षाओं में विशिष्ट उद्देश्य भी बन सकते हैं और बड़ी कक्षाओं में सामान्य उद्देश्य । इसी प्रकार बड़ी कक्षाओं में वार्ता, संवाद, नाटक आदि वाचन की दृष्टि से सामान्य और विशिष्ट दोनों ही प्रकार के उद्देश्य बन सकते हैं ।

हमें सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि 40-45 मिनट के वादन में उद्देश्यों का अम्बार नहीं लगाना है । जिस तरह एक कारीगर छोटी सी लकड़ी पर सुन्दर सी खुदाई करता है या कशीदाकार छोटा सा सुन्दर फूल उभारता है उसी प्रकार प्रशिक्षणार्थी जो भी उद्देश्य निश्चित करे वह बच्चों के हृदय और मस्तिष्क पर भली प्रकार अंकित करे । निरीक्षक को भी मूल्यांकन के समय इन्हीं बातों का ध्यान रखना चाहिए । पाठ के उद्देश्यों को समझे बिना निरीक्षण करना ऊसर भूमि पर वर्षा के समान व्यर्थ रहेगा ।

(3) उद्देश्य लिखने की विधि

पाठ योजना में उद्देश्य किस प्रकार से लिखें इस पर विद्वानों के विचार दो प्रकार के हैं। अतः इस बारे में संक्षिप्त चर्चा समीचीन रहेगी। पहले पक्ष के विद्वानों का मत है कि उद्देश्य कथन सामान्य विधि से ही लिखे जाएँ जबकि दूसरा पक्ष व्यवहारगत उद्देश्य लिखने पर बल देता है। इन दोनों ही पक्षों पर नीचे विचार किया गया है।

(क) सामान्य विधि

इस विधि के अनुसार उद्देश्यों का स्पष्टीकरण उदाहरण स्वरूप इस प्रकार किया जाता है :—

1. संज्ञा का ज्ञान देना।
2. महात्मा गांधी के जीवन के विषय में बताना।
3. अमुक कहानी की जानकारी देना।
4. कवि का सन्देश विद्यार्थी तक पहुँचाना।
5. कल्पना शक्ति का विकास करना।
6. स्थापत्य कला की सौन्दर्य अनुभूति कराना आदि।

उपर्युक्त प्रकार से उद्देश्यों की स्पष्टीकरण विधि में प्रशिक्षणार्थी का बल किसी सूचना को विद्यार्थी तक पहुँचाना मात्र लगता है। स्वाभावतः उसकी शिक्षण विधि भी अपने लक्ष्यों के अनुकूल ही होगी। उद्देश्य संख्या एक से चार तक में यह बात स्पष्ट है। उद्देश्य संख्या पाँच तथा छः अनुभूति पक्ष से संबन्धित हैं। वह इन पक्षों को भी शब्दजाल, सहायक सामग्री, श्रव्य-दृश्य सामग्री की सहायता से विद्यार्थियों तक प्रेषित कर सकता है।

इस विधि में अध्यापक का पक्ष सक्रिय है। वह अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत है किन्तु यह आवश्यक नहीं कि अध्यापन विधि में विद्यार्थी का योगदान सक्रिय रूप से हो। यह भी आवश्यक नहीं कि मूल्यांकन के समय वह उपर्युक्त बिंदुओं का मूल्यांकन करे क्योंकि प्रशिक्षणार्थी का काम पाठ को पढ़ाना मात्र था। उसने पाठ पढ़ा दिया और उसके कार्य की इतिश्री हो गई। किन्तु व्यवहारगत उद्देश्य इससे प्रभावी कदम है। इसमें अध्यापक की प्रतिबद्धता बढ़ जाती है।

(ख) व्यवहारगत उद्देश्य लेखन विधि

इस विधि के अनुसार पाठ के उद्देश्यों को व्यवहारगत रूप से प्रकट किया जाता है अर्थात् विद्यार्थी पाठ के बाद पठित सामग्री का व्यावहारिक उपयोग कर सकेगा। यथा :—

1. पाठ के अन्त में विद्यार्थी संज्ञा शब्दों को छाँट सकेगा ।
2. पाठ के अंत में विद्यार्थी महात्मा गांधी के जीवन से संबंधित अमुक अंश को लिखित या मौखिक रूप में प्रकट कर सकेगा ।
3. पाठ के अन्त में विद्यार्थी अमुक कहानी को लिखित या मौखिक रूप में प्रकट कर सकेगा ।
4. पाठ के अंत में विद्यार्थी कवि का संदेश लिखित या मौखिक रूप में प्रकट कर सकेगा ।

उद्देश्य प्रकट करने की इस विधि से स्पष्ट है कि पाठ के अंत में प्राप्त ज्ञान के मूल्यांकन पर अधिक बल है । स्वभावतः प्रशिक्षणार्थी के अध्यापन की विधि, सहायक सामग्री, मूल्यांकन उपकरण भी उद्देश्यों के अनुसार ही निर्मित किए जाएँगे ।

व्यवहारगत रूप से उद्देश्यों को प्रकट करने की विधि को उन विषयों में सफलतापूर्वक अपनाया जा सकता है जिनमें विद्यार्थी अपने प्राप्त अनुभव के आधार पर पहले क्रियात्मक कार्य करता है तथा पुनः उसका प्रदर्शन भी कर सकता है । गणित, विज्ञान, भूगोल आदि में उद्देश्य स्पष्ट करने की यह विधि स्वतः स्पष्ट है ।

अब प्रश्न है कि क्या इस विधि को भाषा शिक्षण के लिए पूर्ण रूप से अपनाया जा सकता है ? वास्तव में यह एक विचारणीय प्रश्न है । सामान्य विधि के अधीन निर्दिष्ट पहले तीन या चार उद्देश्यों का मूल्यांकन पाठ के अंत में किया जा सकता है । अतः इन्हें व्यवहारगत रूप में प्रकट करने में कोई कठिनाई नहीं है । उद्देश्य संख्या चार (आंशिक रूप से), पाँच तथा छः ऐसे उद्देश्य हैं जिनका मूल्यांकन पाठ के अंत में संभवतः हम वस्तुनिष्ठ विधि से नहीं कर पाएँ क्योंकि इनका संबंध अनुभूति पक्ष से है । कुछ विद्वान् संभवतः यह कह सकते हैं कि बच्चों के मुख भाव या मुद्रा (फ़ेसियल एक्सप्रेसशन) आदि से अपने उद्देश्यों की प्राप्ति की झलक पा सकते हैं लेकिन जिस समय तक हम मूल्यांकन के पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ उपकरणों का निर्माण नहीं कर लेते इस प्रकार से व्यवहारगत उद्देश्य लेखन बहुत उचित नहीं जान पड़ता । भाषा शिक्षण के क्षेत्र में कार्य करने वाले विद्वान् इस समस्या का समाधान अवश्य करें ।

निष्कर्षतः व्यवहारगत रूप से उद्देश्य स्पष्ट करने की विधि उत्तम है किन्तु भाषा के समस्त पक्षों पर यह लागू हो यह अनिवार्य नहीं । प्रशिक्षणार्थी निरीक्षक से विचारों का आदान-प्रदान करके ही इसे यथा अवसर अपनाएँ ।

3. सहायक सामग्री

सहायक सामग्री अध्यापक के लिए महत्त्वपूर्ण शस्त्र है । प्राथमिक कक्षाओं में

इसके उपयोग का और भी अधिक औचित्य है क्योंकि विद्यार्थी स्थूल माध्यमों से सरलता पूर्वक ज्ञान प्राप्त करता है। बालक स्थूल वस्तुओं को देखकर, स्पर्श करके, या चखकर उनकी संकल्पना को ग्रहण करता है। जिस वस्तु की संकल्पना देनी है वह यथासंभव वास्तविक, मॉडल या चित्र के रूप में हो तो अच्छा है। उत्तरोत्तर कक्षाओं में सहायक सामग्री का उपयोग कम कर दिया जाता है क्योंकि विद्यार्थी में सूक्ष्म संकल्पनाओं को शब्दों के माध्यम द्वारा ग्रहण करने की क्षमता का विकास होने लगता है।

कक्षा में सामान्य उपकरण—श्यामपट्ट, झाड़न, चाक आदि के अतिरिक्त बहुत ही आवश्यक, कम खर्चीली, वातावरण के साधनों से ही उपलब्ध सहायक-सामग्री का उपयोग करना चाहिए। इनके अतिरिक्त पाठ्य पुस्तक में दिए गए चित्र, उनका परिवर्धित रूप, मॉडल आदि भी काम में लाए जा सकते हैं।

पाठ योजना में सहायक सामग्री को क्यों, कब, कैसे, किस क्रम से प्रयोग करना है आदि प्रश्नों पर भली प्रकार विचार करना चाहिए और पाठ योजना में उचित स्थान पर इसका विवरण देना चाहिए। यह ध्यान रहे कि सहायक सामग्री का प्रदर्शन इतने समय के लिए करें जितना आवश्यक हो अन्यथा बच्चों का ध्यान बँटता है। सहायक सामग्री के बारे में विस्तृत जानकारी श्रव्य-दृश्य सामग्री के अध्ययन में दी गई है। पाठक अतिरिक्त जानकारी के लिए उस अध्याय को पढ़ें।

4. पाठ योजना में प्रयुक्त मुख्य शिक्षण सिद्धांत

शिक्षण अभ्यास के लिए भेजने से पूर्व प्रशिक्षणार्थी को शिक्षण में प्रयुक्त मुख्य सिद्धांतों के बारे में जानकारी देना परम आवश्यक है। इन सिद्धांतों को शिक्षण के समय व्यवहार में लाने की आवश्यकता होती है। कुछ मुख्य शिक्षण सिद्धांत हैं:—

1. रुचि का सिद्धांत।
2. क्रियाशीलता का सिद्धांत।
3. वैयक्तिक भिन्नता का सिद्धांत।
4. चयन, विभाजन और पुनरावृत्ति का सिद्धांत।
5. शिक्षण सूत्रों (सरल से जटिल, ज्ञात से अज्ञात, विशिष्ट से सामान्य, मूर्त से अमूर्त आदि की ओर) के प्रयोग आदि का सिद्धांत।

पाठ योजना के विभिन्न चरणों में इन सिद्धांतों का प्रयोग तथा यत्र-तत्र इनके उपयोग का संकेत प्रशिक्षणार्थी के आलोचनात्मक दृष्टिकोण का परिचायक होता है।

भाषा शिक्षण सिद्धांतों के बारे में अधिक जानकारी के लिए पाठक भाषा

शिक्षण सिद्धांत संबंधी अध्याय पढ़ें।

5. प्रस्तावना

प्रस्तावना का पाठ योजना में शीर्षस्थ स्थान है। प्रस्तावना जितनी स्वाभाविक होगी विद्यार्थी प्राप्तव्य ज्ञान को उतने ही स्वाभाविक रूप से ग्रहण करने में सक्षम होगा।

शिक्षण के समय पाठ की प्रस्तावना उपलब्ध साधनों के अनुसार वास्तविक वस्तु, मॉडल, चित्र, प्रश्नोत्तर या पूर्व पठित पाठ के बोध प्रश्नों द्वारा की जा सकती है। यदि प्रशिक्षणार्थी मिश्रित विधि को अपनाता है तो इसका संकेत भी पाठ योजना में करना चाहिए तथा अमुक विधि के अपनाने के औचित्य का स्पष्टीकरण भी देना चाहिए।

6. उद्देश्य कथन

प्रस्तावना संबंधी प्रश्नों के समय जब प्रशिक्षणार्थी अनुभव करे कि पाठ में दी जाने वाली जानकारी से अधिकांश विद्यार्थी अनभिज्ञ हैं और वे वास्तव में इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए लालायित हैं तो तुरंत अपने उद्देश्य का कथन करना चाहिए कि आज हम इसी विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। प्रस्तावना का अन्तिम प्रश्न समस्यात्मक होगा तो स्वभावतः उद्देश्य कथन का महत्त्व बढ़ जाएगा।

7. पठन सामग्री या विषय वस्तु

पाठ योजना में पठन सामग्री या विषय सामग्री को लिखने की दो विधियाँ हैं। प्राथमिक स्तर पर गद्य अथवा पद्य के पूर्ण अंश को पाठ योजना का अंग मान कर लिख दिया जाता है।

दूसरी विधि यह है कि पाठ्य पुस्तक का पृष्ठ तथा गद्यांश या पद्यांश के पहले और अन्त के शब्द उद्धरण चिह्नों में लिख दिए जाते हैं।

व्याकरण, निबंध, कहानी, नाटक आदि की सामग्री को आवश्यकता के अनुसार प्रस्तुत किया जा सकता है। उत्तम तो यह है कि निरीक्षक प्रशिक्षणार्थी की इच्छा पर कुछ बातें छोड़ दे क्योंकि पाठ योजना साधन मात्र है साध्य नहीं।

8. पाठ का विकास

पाठ का विकास पाठ योजना में निर्दिष्ट उद्देश्यों के अनुसार ही किया जाता है। अच्छा रहेगा यदि पाठ को सोपानों में विभाजित कर लिया जाए। हर सोपान की समाप्ति पर बोध प्रश्न किए जाएँ।

9. श्यामपट्ट कार्य

श्यामपट्ट कार्य को पाठ योजना के अंग के रूप में उचित स्थान दिया जाता है। पाठ में आए कठिन शब्द, मुहावरे, पाठ का व्याकरणिक पक्ष आदि पाठ योजना के एक भाग में लिखना हितकर है। ऐसा करने से अध्यापक की बचन-बढ़ता हो जाती है। लेखन सामग्री एक बार कलम से गुजर जाती है और निरीक्षक को कार्य के मूल्यांकन करने तथा प्रशिक्षणार्थी का लेख जाँचने का भी अवसर मिल जाता है। यह ध्यान रहे, यथासंभव बच्चों से श्यामपट्ट कार्य पाठ के बीच में न कराएँ। कठिन शब्दों के अर्थ पाठ पढ़ाने के बाद लिखें अन्यथा पाठ के भाव का तारतम्य भंग होता है।

10. आवृत्ति

पाठ समाप्त होने पर पाठ पर आधारित पुनरावृत्ति के प्रश्न किए जाते हैं। कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों को पाठ योजना में स्थान मिलना चाहिए। पुनरावृत्ति के प्रश्न प्रशिक्षणार्थी की अध्यापन पद्धति और विद्यार्थियों की ग्रहणशीलता दोनों का ही मूल्यांकन करते हैं। पुनरावृत्ति से पूर्व खंड आवृत्ति भी कराई जा सकती है।

11. मूल्यांकन

पाठ के लिए निर्धारित विशिष्ट उद्देश्यों का मूल्यांकन अनिवार्य है। मूल्यांकन मौखिक या लिखित या दोनों प्रकार का हो सकता है। सोपान के अंत की खंड आवृत्ति के प्रश्न तथा पाठ की पुनरावृत्ति के प्रश्न दोनों ही मूल्यांकन का ही अंग हैं। प्रशिक्षणार्थी पाँच से सात मिनट की अवधि का वस्तुनिष्ठ प्रश्न-पत्र भी बना सकता है। उत्तरों का मूल्यांकन विद्यार्थियों की सहायता से तत्काल भी कराया जा सकता है। प्रशिक्षणार्थी इस कार्य को बाद में स्वयं भी कर सकता है। प्रशिक्षणार्थी को ध्यान रखना चाहिए कि प्रश्न पत्र उद्देश्य आधारित हो। यह मूल्यांकन करने की दृष्टि से सरल हो और अधिक अंकों का नहीं हो। चालीस मिनट के शिक्षण के मूल्यांकन के लिए पाँच-सात मिनट का समय काफी है।

12. गृह कार्य

भाषा के पाठ में कई प्रकार का गृह कार्य दिया जा सकता है। कक्षा में पढ़े पाठ का घर पर वाचन, लेखन, परिवार के सदस्यों को पठित कहानी आदि सुनाना, पाठ से संबंधित चित्र एकत्रित करना, लेखक की अन्य कृतियाँ पढ़ना, मौलिक लेखन करना, पास-पड़ोस का सर्वेक्षण करके पाठ आधारित क्रियात्मक कार्य करना आदि के रूप में कक्षा के स्तर के अनुसार गृहकार्य दिया जा सकता

है। गृहकार्य बोझिल न होकर रुचिकर और मनोरंजक हो तथा विकासात्मक हो। गृह कार्य के विषय में विस्तृत जानकारी गृह कार्य संबंधी अध्याय में दी गई है, पाठक उसे अवश्य पढ़ें।

13. समय विभाजन

प्रशिक्षणार्थी को एक वादन में सामान्यतः 40-45 मिनट कक्षा में पढ़ाना पड़ता है। इस अवधि में उसे पाठयोजना की विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। पाठ के कई पड़ाव हैं। प्रशिक्षणार्थी को अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रस्तावना, पठन सामग्री, लेखन, वाचन, आवृत्ति, मूल्यांकन आदि के लिए पूर्व नियोजित विधि से कार्य विभाजन करना चाहिए। उदाहरण के लिए प्रस्तावना, मूल्यांकन के लिए पाँच-पाँच मिनट देने के बाद 30 मिनट बच जाते हैं। शेष तीस मिनट का समय भी पाठ की आवश्यकता के अनुसार विभाजित किया जा सकता है। इस कार्य विभाजन से निरीक्षक को भी सुविधा रहती है। निरीक्षक किस समय निरीक्षण के लिए आया, उस समय कितना कार्य हो चुका था, प्रशिक्षणार्थी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किस गति से बढ़ रहा है आदि का उसे पता लग सकता है। समय विभाजन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि आवश्यकता के अनुसार इसमें फेर बदल भी किया जा सकता है।

पाठ योजना के समय विभाजन को दो प्रकार से लिखा जा सकता है। एक तो प्रस्तावना, सोपान, आवृत्ति आदि अंशों के सम्मुख तथा दूसरे पाठ योजना के सबसे नीचे के खंड में। यदि इसमें भी कठिनाई हो तो प्रशिक्षणार्थी पाठ योजना का समय विभाजन अपने मानसिक स्तर पर कर सकता है।

14. पाठ विकास की प्रक्रिया

पाठ के विकास की प्रक्रिया के विषय में प्रशिक्षणार्थी को स्वयं स्पष्ट होना चाहिए। अध्यापन त्रिकोणात्मक प्रक्रिया है। अध्यापन के समय अध्यापक अपना कार्य करता है। विद्यार्थी निर्देशों का पालन करता है। इन्हीं निर्देशों के पालन में उसकी मानसिक प्रक्रियाएँ होती रहती हैं। इन्हीं मानसिक प्रक्रियाओं के माध्यम से बालक के व्यवहार में परिवर्तन आता है। बालक के व्यवहार में वांछित परिवर्तन करना ही शिक्षण का उद्देश्य है। यही कारण है कि पाठयोजना के निर्माण के समय प्रशिक्षणार्थी को पहले से सुनिश्चित करना होगा कि—

- (क) पाठ में उसे कब और कितना कार्य करना है।
- (ख) विद्यार्थी को कब और कितना कार्य करना है।
- (ग) प्रशिक्षणार्थी और विद्यार्थी के कार्य विद्यार्थी की मानसिक प्रक्रिया पर क्या प्रभाव डालेंगे और वे उद्देश्यों की प्राप्ति में किस प्रकार

सहायक होंगे।

यदि संभव हो तो प्रशिक्षणार्थी इस त्रिकोणात्मक व्यवहार की प्रक्रिया को संक्षेप में प्रत्येक सोपान के अंत में लिख दे। ऐसा करने से निरीक्षक का कार्य सरल हो जाता है और प्रशिक्षणार्थी की वचनबद्धता बनी रहती है।

V. शिक्षण अभ्यास के चरण

एन० सी० ई० आर० टी० द्वारा प्रकाशित अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या—एक रूपरेखा (Teacher Education Curriculum—A Frame work) में शिक्षण अभ्यास के कार्यक्रम को तीन चरणों में विभाजित किया है। भाषा शिक्षण के कार्यक्रम को इस पुस्तिका में समुचित स्थान दिया गया है। आइए, इन चरणों पर संक्षेप में चर्चा करें।

1. शिक्षण अभ्यास की पूर्व तैयारी

शिक्षण अभ्यास के प्रथम चरण यानी शिक्षण अभ्यास की पूर्व तैयारी (Pre-Practice Teaching Preparation) में पाठ्यक्रम का विश्लेषण करने, लघु तथा पूर्ण पाठ योजना तैयार करने, लगभग वास्तविक स्थितियों (Micro Teaching) में इन पाठ योजनाओं का अभ्यास करने, निरीक्षक तथा सहपाठियों की देखरेख में अपने निर्बल शिक्षण पक्ष को दूर करने, प्रशिक्षक द्वारा किए गए संदर्शन पाठों को देखने आदि पर विशेष बल दिया गया है। प्रशिक्षणार्थी इस समय आवश्यकता के अनुसार 5 से 10 तक लघु तथा पूर्ण पाठ योजनाओं के निर्माण का अभ्यास कर सकता है। ये पाठ योजनाएँ भाषा, व्याकरण तथा साहित्य के विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिएँ। इन लघु पाठ योजनाओं के निर्माण के अभ्यास के समय विभिन्न कक्षाओं के शिक्षण की पाठ योजनाएँ बनानी चाहिएँ।

2. वास्तविक शिक्षण अभ्यास

शिक्षण अभ्यास के दूसरे चरण यानी वास्तविक शिक्षण अभ्यास (Actual practice of Teaching) के समय भाषा शिक्षण की कम से कम पाँच पाठ योजनाएँ तैयार करने और उन्हें कक्षा की वास्तविक परिस्थितियों में पढ़ाने पर बल दिया जाए। साथ ही शिक्षण अभ्यास के पाठों की संख्या की बजाय पाठ के गुण या स्तर पर अधिक ध्यान दिया जाए।

3. अध्यापन संबंधी व्यावहारिक कार्य

शिक्षण अभ्यास के तीसरे चरण में अर्थात् अध्यापन संबंधी व्यावहारिक

प्रायोगिक, क्रियात्मक कार्य (Related Practical Work) के समय विषय संबंधी सहायक सामग्री के निर्माण करने, परीक्षण सामग्री तैयार करने तथा परीक्षण करने आदि पर बल देना चाहिए। यह कार्य भी आदि से अंत तक निरीक्षक की देख-रेख में होता है। व्यावहारिक कार्य में भाषा के विकास संबंधी खेल, चार्ट, मॉडल आदि के निर्माण का अभ्यास कराना चाहिए।

ऊपर संक्षेप में शिक्षण अभ्यास, उसके उद्देश्य, पाठ योजना के मुख्य संकेत, शिक्षण अभ्यास की विधि आदि पर चर्चा की गई। प्रशिक्षणार्थी सदा ध्यान रखे कि जहाँ वह अपनी सूझबूझ से कार्य करना चाहे वहाँ वह इस लोक से कुछ हटकर भी अपने प्रयोग में स्वतंत्र है।

VI. पाठ योजना के संकेत

भाषा शिक्षण में पाठ योजना का कोई एक ही नमूना बनाना शिक्षण के उद्देश्यों के प्रति अन्याय होगा। मोटे रूप से पाठ योजना के मुख्य अंग समान होते हुए भी उसके उपांगों में समानता नहीं हो सकती। यदि सभी प्रकार पाठ योजनाएँ बनानी हों तो अलग से एक पुस्तक की आवश्यकता पड़ेगी।

पुस्तक में संकेतित स्थानों पर विभिन्न विषयों के शिक्षण की पाठ योजनाओं के संकेत दिए गए हैं। पाठक इन पाठयोजनाओं को उसी अध्याय में देखें।

यथा :—

1. निबंध लिखने की पाठ योजना	अध्याय 11.
2. पत्र लिखने की पाठ योजना	अध्याय 11.
3. संवाद लिखने की पाठ योजना	अध्याय 11.
4. एकांकी शिक्षण की पाठ योजना	अध्याय 11.
5. पदान्वय की पाठ योजना	अध्याय 11.
6. गद्य शिक्षण	अध्याय 13.
7. कविता शिक्षण	अध्याय 14.
8. नाटक शिक्षण	अध्याय 15.
9. कहानी शिक्षण	अध्याय 16.
10. उपन्यास शिक्षण	अध्याय 17.
11. व्याकरण शिक्षण	अध्याय 18.
12. दैनिक पाठ योजना	अध्याय 19.

VII. शिक्षण पर्यवेक्षण तथा मूल्यांकन

कोठारी आयोग ने उचित ही कहा है कि शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए पर्यवेक्षण रीढ़ के समान है। पूर्व सेवाकालीन शिक्षण प्रशिक्षण तथा

सेवाकालीन शिक्षण का वैज्ञानिक विधि से किया गया पर्यवेक्षण तथा मूल्यांकन अध्यापक के व्यक्तित्व का निरंतर विकास करता है।

वैज्ञानिक विधि से पर्यवेक्षण करने के लिए पर्यवेक्षक के पास कोई ऐसी अनुसूची अवश्य होनी चाहिए जिसकी सहायता से वह शिक्षक के शिक्षण कार्य का तटस्थ तथा वस्तुनिष्ठ विधि से अंकन या मूल्यांकन कर सके।

शिक्षण पर्यवेक्षण के इस कार्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

1. सेवाकालीन (In Service) शिक्षकों के शिक्षण का पर्यवेक्षण।
2. पूर्व सेवाकालीन प्रशिक्षणार्थियों (Teacher-Trainee) के शिक्षण का पर्यवेक्षण।

1. सेवाकालीन शिक्षकों के शिक्षण का पर्यवेक्षण

सेवाकालीन शिक्षक का उत्तरदायित्व प्रशिक्षणार्थी के शिक्षण से सर्वथा भिन्न है। प्रशिक्षणार्थी पढ़ाने की कला सीखने के लिए पढ़ाता है जबकि प्रशिक्षित अध्यापक के पास पहले ही अध्यापन कुशलता का प्रमाण पत्र है। प्रशिक्षणार्थी पाठ्यक्रम या पाठ्यपुस्तक का अंश मात्र पढ़ाता है जबकि नियमित अध्यापक पाठ्यक्रम को नियमित रूप से व्यवस्थित ढंग से पढ़ाता है। नियमित अध्यापक के शिक्षण का पर्यवेक्षण तथा मूल्यांकन अपने आप में एक कला है।

वर्तमान पंक्तियों के लेखक ने प्रधानाध्यापक के पद पर कार्य करते समय अपने सहयोगी अध्यापकों के शिक्षण का मूल्यांकन करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रयोग किए। लेखक का उद्देश्य था कि अध्यापकों के शिक्षण का मूल्यांकन तटस्थ तथा वस्तुनिष्ठ विधि से किया जाए। पर्यवेक्षक के मूल्यांकन के साथ अध्यापक स्वयं भी अपने शिक्षण का मूल्यांकन करें। अंत में वे इस योग्य हो जाएँ कि उन्हें अन्य द्वारा पर्यवेक्षण या मूल्यांकन की आवश्यकता अनुभव न हो।

इस कार्य के लिए लेखक ने शैक्षणिक पर्यवेक्षण अनुसूची (Instructional Supervision Schedule)¹ का निर्माण किया। इस अनुसूची का नमूना यहाँ दिया जा रहा है।

वैज्ञानिक शैक्षणिक पर्यवेक्षण योजना

“शिक्षा स्तर को सुधारने के लिए पर्यवेक्षण रीढ़ के समान है।

—शिक्षा आयोग (64-66) अध्याय 10. 44 पृष्ठ 264

प्रधानाध्यापक/प्रधानाध्यापिकाओं के प्रयोग के लिए

वैज्ञानिक शैक्षणिक पर्यवेक्षण अनुसूची में शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर जिन महत्वपूर्ण पहलुओं पर अध्यापक/अध्यापिकाओं का ध्यानाकर्षण

कराया गया है वे अति महत्व के हैं। यदि प्रथम पर्यवेक्षण के समय शिक्षकों का ध्यान इस ओर नहीं हो तो वे इसे अपनी आलोचना मात्र न समझें। पर्यवेक्षण का उद्देश्य शिक्षकों की कठिनाइयों में हाथ बँटवाकर शिक्षा स्तर में सुधार करना है।

(डा० जय नारायण कौशिक)

एम० ए०, एम० एड०

प्रधानाध्यापक

शैक्षणिक पर्यवेक्षण अनुसूची

(INSTRUCTIONAL SUPERVISION SCHEDULE)

तीन बार प्रयोग के लिए

खंड—क

भाग (1) सामान्य जानकारी (उ० मा०/माध्यमिक/प्राथमिक विद्यालय.....)

- (1) अध्यापक का नाम श्री/श्रीमती/कुमारी.....
- (2) योग्यता.....(3) आयु.....
- (4) पर्यवेक्षण तिथि (1).....(2).....(3).....
- (5) अध्यापक द्वारा पढ़ाए जाने वाले विषय—(उपस्थिति चिह्न ✓ लगाएँ) हिन्दी, गणित, अंग्रेजी, सामान्य ज्ञान, सा० विज्ञान, गृह विज्ञान, संस्कृत, कला, अन्य.....।
- (6) कक्षा के कमरे की दशा—पक्का, शैड, तंग, खुला; वायु, प्रकाश, पंखे, डैस्क, फर्श, कुर्सी, मेज, श्यामपट्ट। (उपस्थिति चिह्न ✓ लगाएँ)।

भाग (2) अध्यापक डायरी—(निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न के लिए एक अंक नियत है, नहीं के लिए शून्य तथा हाँ के लिए एक) (उपस्थिति चिह्न ✓ लगाएँ)

1. क्या डायरी नियमित लिखी है ?

पहला पर्यवेक्षण	अंक	दूसरा पर्यवेक्षण	अंक	तीसरा पर्यवेक्षण	अंक
हाँ नहीं		हाँ नहीं		हाँ नहीं	

(डायरी के विभागों का प्रयोग)	पहला पर्यवेक्षण	अंक	दूसरा पर्यवेक्षण	अंक	तीसरा पर्यवेक्षण	अंक
2. डायरी में पाठ्यक्रम विभाजन है ?	हाँ नहीं		हाँ नहीं		हाँ नहीं	
3. डायरी में समय विभाग-चक्र लिखा है ?	हाँ नहीं		हाँ नहीं		हाँ नहीं	
4. पिछड़े छात्रों के लिए विशेष प्रयत्न	हाँ नहीं		हाँ नहीं		हाँ नहीं	
5. छात्रों को पुस्तकालय से दी जाने वाली पुस्तकों	हाँ नहीं		हाँ नहीं		हाँ नहीं	
6. अभिभावकों से मिलना	हाँ नहीं		हाँ नहीं		हाँ नहीं	
7. विषय पर पढ़ी गई अन्य पुस्तकों का व्यौरा	हाँ नहीं		हाँ नहीं		हाँ नहीं	
8. आवधिक टेस्ट के अंक	हाँ नहीं		हाँ नहीं		हाँ नहीं	
9. डायरी साफ सुथरी है ।	हाँ नहीं		हाँ नहीं		हाँ नहीं	
10. क्या वर्तमान सप्ताह की डायरी लिखी है	हाँ नहीं		हाँ नहीं		हाँ नहीं	
11. क्या पाठ डायरी के अनुसार है ?	हाँ नहीं		हाँ नहीं		हाँ नहीं	
12. क्या पाठ पाठ्यक्रम के अनुसार है ?	हाँ नहीं		हाँ नहीं		हाँ नहीं	

योग

प्राप्तांक.....

.....

.....

पर्यवेक्षित विषय :—विज्ञान, गणित, सामाजिक ज्ञान. हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, अन्य.....

भाग (3) सामान्य जानकारी

(1) पर्यवेक्षण क्रम-तिथिवार (1).....(2).....(3).....	
(2) कक्षा.....कुल छात्र (1).....(2).....(3).....	
(3) पुस्तक का नाम (1).....(2).....	
प्रथम पर्यवेक्षण	पाठ संख्या.....पृष्ठ.....
दूसरा पर्यवेक्षण	पाठ संख्या.....पृष्ठ.....
तीसरा पर्यवेक्षण	पाठ संख्या.....पृष्ठ.....

पर्यवेक्षण सूची

पर्यवेक्षित विषय.....

खंड—ख

सूचना :—निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न के उत्तर को पाँच विभागों में मूल्यांकित करना है। यथा :—नहीं, आंशिक, संतोषजनक, अधिक संतोषजनक तथा अत्यधिक संतोषजनक। नहीं के लिए शून्य, आंशिक के लिए 1. संतोषजनक के लिए 2. अधिक संतोषजनक के लिए 3. तथा अत्यधिक संतोषजनक के लिए 4 अंक नियत हैं। सही उत्तर पर उपस्थिति चिह्न ($\sqrt{\quad}$) लगाएँ और फिर मूल्य को प्रत्येक पर्यवेक्षण के लिए दिए गए अंक के स्थान में भरें।

भाग (1) सामान्य शिक्षण

क्रम संख्या	उद्देश्य	मूल्यांकन	प्राप्त अंक 1 2 3
1.	शिक्षक विषय के विशिष्ट उद्देश्यों को ध्यान में रखकर पाठ योजना बनाता है।	0 1 2 3 4	
2.	विषय को प्रभावशाली बनाने के लिए वह सहायक सामग्री का प्रयोग करता है।	0 1 2 3 4	
3.	श्यामपट्ट का प्रयोग भली भाँति करता है।	0 1 2 3 4	

क्रम संख्या	उद्देश्य	मूल्यांकन	प्राप्त अंक
			1 2 3
4.	शिक्षण कार्य में वह अयोग्य, सामान्य तथा योग्य विद्यार्थियों को ध्यान में रखता है।	0 1 2 3 4	
5.	विषय का यथासम्भव दैनिक जीवन से समन्वय किया जाता है।	0 1 2 3 4	
6.	छात्रों में विषय संबंधी गुणों का विकास किया जाता है।	0 1 2 3 4	
7.	छात्रों के विषय संबंधी शब्दकोष-वृद्धि की ओर ध्यान दिया जाता है।	0 1 2 3 4	
8.	छात्र पाठ तथा उसके भावों को भली प्रकार समझते हैं।	0 1 2 3 4	
9.	छात्र प्राप्त ज्ञान को उपयोग में लाना जानते हैं।	0 1 2 3 4	
10.	क्या छात्र विषय के उपकरण तथा मान-चित्र, चित्र, विज्ञान-उपकरण आदि से परिचित हैं ?	0 1 2 3 4	

भाग (2) लिखित कार्य

11.	प्रत्येक पाठ के अन्त में दिए गए अभ्यास के प्रश्नों को लिखवाया गया है।	0 1 2 3 4	
12.	छात्रों ने गृह कार्य नियमित रूप से किया है।	0 1 2 3 4	
13.	गृह कार्य का निर्दिष्ट समय में भली प्रकार संशोधन किया है।	0 1 2 3 4	
14.	क्या छात्रों ने विषय के चित्र, आकृति ठीक ढंग से बनाई हैं ?	0 1 2 3 4	

भाग (3) पाठ्यान्तर क्रियाएँ

क्रम संख्या	उद्देश्य	मूल्यांकन	प्राप्त अंक 1 2 3
15.	क्या पाठशाला में विषय-क्लब अथवा अन्य प्रोजेक्ट चालू हैं ?	0 1 2 3 4	
16.	क्या अध्यापक तथा छात्रों ने विषय के चार्ट प्रयोग हेतु कमरे में लगाए हैं ?	0 1 2 3 4	
17.	क्या निकट के वातावरण का विषय संबंधी ज्ञान कराया गया है ?	0 1 2 3 4	
18.	विषय संबंधी पुस्तकालय की पुस्तकों को पढ़ाया है ?	0 1 2 3 4	
19.	छात्रों को क्रियात्मक कार्यों का अवसर दिया गया है ?	0 1 2 3 4	
20.	विषय का सामान्य प्रभाव	0 1 2 3 4	

प्राप्तांक.....

कुल अंक 80

खंड—ग

सांख्यिक मूल्यांकन STATISTICAL EVALUATION

	प्रथम टैस्ट	दूसरा टैस्ट	तीसरा टैस्ट	मूल्यांकन	अंक 1 2 3
1. मध्यमान अंक (Mean Point)				0 1 2 3 4	
2. मध्यका अंक (Median)				0 1 2 3 4	
3. मानक विचलन (Standard Deviation)					

प्राप्तांकों का कुल योग—

कुल अंक 8 8 8

	प्रथम मूल्यांकन	दूसरा मूल्यांकन	तीसरा मूल्यांकन
अध्यापक डायरी—12			
पाठ्य विषय —80			
सांख्यिक —8			
कुल —100			
प्राप्तांक			
	100	100	100

खंड - घ

उपर्युक्त सभी सामग्री पढ़ ली गई।

प्रथम पर्यवेक्षण दिनांक..... प्रथम पर्यवेक्षण दिनांक.....

हस्ताक्षर पर्यवेक्षित अध्यापक..... हस्ताक्षर पर्यवेक्षक.....

दूसरा पर्यवेक्षण दिनांक..... दूसरा पर्यवेक्षण दिनांक.....

हस्ताक्षर पर्यवेक्षित अध्यापक..... हस्ताक्षर पर्यवेक्षक.....

तीसरा पर्यवेक्षण दिनांक..... तीसरा पर्यवेक्षण दिनांक.....

हस्ताक्षर पर्यवेक्षित अध्यापक..... हस्ताक्षर पर्यवेक्षक.....

(5) पर्यवेक्षक समस्त पर्यवेक्षित विभाग संबंधी सुझाव व्यौरेवार अलग कागज पर अध्यापक को दें तथा अध्यापक द्वारा अनुभव की गई कठिनाइयाँ अलग कागज पर प्राप्त करें तथा कठिनाइयों के निराकरण का व्यौरा रखें।

अनुसूची का 'क' खंड तीन भागों में बाँटा गया।

पहले भाग में अध्यापक के विषय में सामान्य जानकारी अंकित की गई है।

दूसरे भाग में अध्यापक की डायरी के विषय में जानकारी एकत्रित की गई।

इस भाग में 12 बिंदु हैं। हर बिंदु के लिए एक अंक नियत किया गया। तीसरे भाग में पर्यवेक्षित विषय के संबंध में जानकारी अंकित की गई।

अनुसूची का 'ख' खंड शिक्षण के वास्तविक पक्ष से संबंधित है। इस अनुसूची को 20 उप विभागों में विभाजित किया गया है। हर विभाग को पाँच-बिंदु क्रम निर्धारण मापनी (Five Point Rating Scale) में बाँटा गया है। इस प्रकार 20 विभागों के पाँच बिंदुओं के हिसाब से 80 अंक बने। पाठक अधिक विस्तार के लिए अनुसूची को ध्यानपूर्वक पढ़ें और समझें।

अनुसूची का 'ग' खंड सांख्यिक मूल्यांकन के लिए है। इस भाग के लिए 8 अंक नियत हैं। यदि कक्षा में विषय संबंधी टेस्ट में विद्यार्थियों ने उत्तरोत्तर वृद्धि की है तो उसी के आधार पर अंक प्रदान किए जाएँ।

इस अनुसूची के अनुसार कुल सौ अंकों पर अध्यापक के शिक्षण कार्य का

मूल्यांकन किया गया। पर्यवेक्षक ने अध्यापकों को निर्देश दिया कि वे भी इन्हीं बिंदुओं पर अपने कार्य का मूल्यांकन करें। बाद में पर्यवेक्षक द्वारा प्रदत्त अंकों तथा स्वयं अध्यापक द्वारा प्रदत्त अंकों की तुलना की गई। दोनों अंकों में ४-10 प्रतिशत का अन्तर पाया गया जो बड़ा स्वाभाविक है। स्वमूल्यांकन से अध्यापकों में शिक्षण के उद्देश्यों के बारे में जागरूकता बढ़ी और शिक्षण में सुधार पाया गया।

शिक्षण पर्यवेक्षण तथा मूल्यांकन का कार्य पर्यवेक्षण के बाद संपन्न नहीं हो जाता। इसके लिए अनुवर्ती कार्य की आवश्यकता है। अनुसूची के 'घ' खंड में अनुवर्ती कार्य का प्रावधान है। मूल्यांकन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। हर अध्यापक के शिक्षण कार्य का वर्ष में कम से कम तीन बार मूल्यांकन होना चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए इस अनुसूची के अनुसार अध्यापक के शिक्षण कार्य का तीन बार मूल्यांकन किया गया।

पर्यवेक्षण को प्रजातांत्रिक और व्यावहारिक जामा देने के लिए अध्यापकों से व्यक्तिगत चर्चाएँ की गईं और उनकी कठिनाइयों का निवारण किया गया।

सेवाकालीन अध्यापकों के शिक्षण का मूल्यांकन करने के लिए निर्मित यह अनुसूची मार्ग निर्देशन मात्र के लिए है। अनुभवी पर्यवेक्षक इसी आधार पर अन्य अनुसूची का निर्माण कर सकते हैं। इस अनुसूची को मानकीकृत भी किया जा सकता है जिसकी देश में बहुत आवश्यकता है।

2. पूर्व सेवाकालीन प्रशिक्षणार्थियों के शिक्षण का पर्यवेक्षण

पूर्व सेवाकालीन प्रशिक्षणार्थी अथवा छात्र अध्यापकों के शिक्षण-कार्य का पर्यवेक्षण तथा मूल्यांकन बहुत ही संवेदनशील क्षेत्र है। मूल्यांकन में अंक प्रदत्त करते समय अति कंजूसी तथा अति उदारता दोनों ही प्रशिक्षणार्थी के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती हैं। अंकों में कंजूसी बरतने से प्रशिक्षणार्थी में शिक्षण व्यवसाय के प्रति अरुचि उत्पन्न हो सकती है तथा अति उदारता प्रमाद को जन्म दे सकती है। अतः प्रारंभ के शिक्षण के मूल्यांकन में मध्यवर्ती मार्ग श्रेष्ठ है।

अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं में छात्र-अध्यापकों के शिक्षण कार्य के मूल्यांकन की कई प्रथाएँ प्रचलित हैं। कुछ संस्थाओं में पर्यवेक्षक पाठयोजना का अभ्यास पंजिका पर अपनी टिप्पणी लिख देते हैं। ये टिप्पणियाँ सामान्यतः व्यवस्थित ढंग से नहीं लिखी जातीं। टिप्पणी में संकेतिक निर्देशन तटस्थ तथा वस्तुनिष्ठ भी नहीं होते। पर्यवेक्षक पाठ का मूल्यांकन समग्र दृष्टि से नहीं कर पाता। ये टिप्पणियाँ पर्यवेक्षक की इच्छा पर निर्भर करती हैं।

शिक्षण मूल्यांकन में तटस्थता, वस्तुनिष्ठता तथा समग्रता लाने के

लिए किसी निश्चित अनुसूची का होना आवश्यक है। यह अनुसूची ऐसी होनी चाहिए जिसमें शिक्षण के सभी पक्ष सम्मिलित हों। शिक्षण विषय का शिक्षण मात्र नहीं है। शिक्षण एक बहुभायामी प्रक्रिया है। इसमें कक्षा की सामान्य व्यवस्था से लेकर विषय की प्रस्तावना, प्रस्तुतीकरण विधि, शिक्षण विधि, प्रश्न रचना, बच्चों का सक्रिय सहभागी होना, श्यामपट्ट कार्य, सहायक सामग्री का उचित प्रयोग तथा शिक्षक का निजी व्यक्तित्व सभी कुछ सम्मिलित है। पर्यवेक्षक या मूल्यांकनकर्ता का इन सभी बिंदुओं की ओर ध्यान जाना आवश्यक है। यह तभी संभव है जब किसी निश्चित अनुसूची पर शिक्षण कार्य का मूल्यांकन हो। इसके लिए पर्यवेक्षण की निर्देशात्मक अनुसूची का प्रयोग करना चाहिए।

(क) निर्देशात्मक पर्यवेक्षण अनुसूची

निर्देशात्मक पर्यवेक्षण अनुसूची शिक्षण-मूल्यांकन की वह अनुसूची है जिसमें छात्र-अध्यापक के शिक्षण का मूल्यांकन शिक्षण से संबंधित विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखकर विशिष्ट बिंदुओं पर किया जाता है। इसके अनुसार पर्यवेक्षक सब निर्बल पक्षों की समालोचना के साथ-साथ निश्चित दिशा-निर्देश भी देता है। इस प्रकार की अनुसूची का एक नमूना नीचे दिया जा रहा है।

निर्देशात्मक पर्यवेक्षण अनुसूची

संकेत—पर्यवेक्षक अन्य आवश्यक सुझाव रिक्त स्थान में लिखें—

1. पाठ योजना अभ्यास पंजिका

1. सुंदर लेख लिखें।
2. शीर्षक तथा उपशीर्षक को मोटे अक्षरों में लिखें तथा उन्हें रेखांकित करें।
3. बाईं ओर उचित हाशिया छोड़ें।
4. पाठ योजना बहुत संक्षिप्त/विस्तृत न लिखें।
5. पाठ योजना में वर्तनी की अशुद्धियों की ओर ध्यान दें।

2. कक्षा की सामान्य व्यवस्था

1. बच्चों के बैठने की स्थिति में सुधार की आवश्यकता है।
2. सहायक सामग्री तथा श्यामपट्ट को ऐसे रखें जिससे सभी बच्चे सुविधापूर्वक देख सकें।
3. कक्षा की सफाई की ओर ध्यान दें।
4. कक्षा में प्रकाश व्यवस्था की ओर ध्यान दें। खिड़कियाँ और दरवाजे

खुले रखें ।

5. कक्षा की सामान्य व्यवस्था संतोषजक नहीं है/है ।

3. उद्देश्य कथन

- (1) पाठ के लिए निश्चित उद्देश्य स्पष्ट/अस्पष्ट/व्यावहारिक/अव्यावहारिक हैं ।
- (2) उद्देश्य कथन की भाषा/स्पष्ट/अस्पष्ट है ।
- (3) शिक्षण विधि और बोध प्रश्नों का संबंध उद्देश्यों के अनुकूल नहीं है/है ।
- (4) उद्देश्य व्यावहारिक विधि से लिखे गए हैं/नहीं लिखे गए हैं ।
- (5) पाठ के उद्देश्य प्राप्य नहीं हैं/हैं ।

4. पाठ की प्रस्तावना

- (1) प्रस्तावना बहुत लंबी है/छोटी है/समुचित है ।
- (2) प्रस्तावना के प्रश्न उद्बोधक नहीं हैं/हैं ।
- (3) प्रस्तावना छात्र-छात्राओं के बौद्धिक स्तर के अनुकूल नहीं थी/थी ।
- (4) प्रस्तावना नीरस थी । इसे उपयुक्त बनाने के लिए सहायक सामग्री का प्रयोग करें ।
- (5) प्रस्तावना का अंतिम प्रश्न समस्यात्मक नहीं था/था ।

5. विषय सामग्री

- (1) विषय सामग्री नियत समय के लिए अपर्याप्त/पर्याप्त थी ।
- (2) विषय सामग्री ज्ञानवर्धक नहीं थी/थी ।
- (3) विषय सामग्री को उचित सोपानों में नहीं बाँटा गया था/बाँटा गया था ।
- (4) विषय सामग्री में कुछ तथ्य भ्रामक/अस्पष्ट/गलत थे ।
- (5) विषय सामग्री का संबंध पाठ्यक्रम की निश्चित सारणी के अनुकूल नहीं था/था ।

6. शिक्षण विधि/पाठ का विकास

- (1) प्रत्येक सोपान के पश्चात् बोध प्रश्न नहीं पूछे गए/पूछे गए ।
- (2) आदर्श वाचन/अनुकरण वाचन/व्यक्तिगत वाचन के समय कठिन शब्दों के अर्थ न पूछें ।
- (3) वाचन संबंधी अशुद्धियाँ पहले अन्य छात्र-छात्राओं से पूछें । आवश्यक-

कता पड़ने पर ही स्वयं शुद्ध करें।

- (4) शिक्षण विधि विषय सामग्री के अनुसार नहीं अपनाई गई/अपनाई गई।
- (5) पाठ को योजना के अनुसार नहीं पढ़ाया गया/पढ़ाया गया।
- (6) शिक्षण विधि फलागम के अनुकूल नहीं थी/थी।
- (7) अध्यापक का अपने विषय पर अधिकार नहीं था/था।

7. प्रश्न रचना

- (1) प्रश्न रचना में सुधार करें।
- (2) प्रश्न विचार उत्तेजक नहीं थे/थे।
- (3) प्रश्न बहुत लम्बे थे/छोटे थे/उचित थे।
- (4) प्रश्न का उत्तर हाँ/नहीं में न माँगें।
- (5) प्रश्न सारी कक्षा से पूछें फिर एक बच्चे से उसका उत्तर देने को कहें।
- (6) अधिक से अधिक बच्चों से प्रश्न नहीं पूछे गए/पूछे गए।
- (7) पुनरावृत्ति के प्रश्न कम थे/यथेष्ट थे।
- (8) विद्यार्थियों के उत्तर संतोषजनक नहीं थे/थे।
- (9) वस्तुनिष्ठ प्रश्न नहीं पूछे गए/पूछे गए।
- (10) योग्यता विस्तार संबंधी प्रश्न नहीं पूछे गए/पूछे गए।

8. पाठ में छात्र-छात्राओं का प्रतिभागत्व

- (1) सभी छात्र-छात्राएँ पाठ में रुचि नहीं ले रहे थे/ले रहे थे।
- (2) छात्र-छात्राओं से अतिरिक्त जानकारी संबंधी प्रश्न नहीं पूछे गए/पूछे गए।
- (3) उच्छृंखल छात्र-छात्राओं से व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाकर नहीं निपटा गया/निपटा गया।
- (4) कमजोर बच्चों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया/दिया गया।
- (5) पूरे वादन में सीखने का वातावरण सक्रिय नहीं बना रहा/बना रहा।

9. श्यामपट्ट कार्य

- (1) श्यामपट्ट कार्य कार्यक्रम की योजना के अनुसार नहीं किया गया/किया गया।
- (2) अपने लेख में सुधार करें/लेख संतोषजनक था।
- (3) श्यामपट्ट लेखन में वर्तनी की अशुद्धियाँ थीं/नहीं थीं।

- (4) लेख के अक्षर न बहुत छोटे हों और न बहुत बड़े ।
- (5) श्यामपट्ट पर लिखते समय बोलकर लिखें और छात्र-छात्राओं की ओर पीठ न करें ।

10. सहायक सामग्री

- (1) सहायक सामग्री का आकार छोटा था/बड़ा था/उचित था ।
- (2) सहायक सामग्री अनुपयोगी/अवांछित/उपयोगी थी ।
- (3) सहायक सामग्री का उपयोग उचित समय पर नहीं किया गया/किया गया ।
- (4) सहायक सामग्री का उपयोग नहीं किया गया/किया गया ।
- (5) सहायक सामग्री बहुत महँगी/वातावरण की सामग्री से निर्मित/स्व-निर्मित थी । इसमें बनावटीपन था/स्वाभाविक थी । यह मौलिक नहीं थी/मौलिक थी ।

11. अध्यापक की भाषा का स्तर

- (1) स्वयं के उच्चारण को सुधारें ।
- (2) प्रत्येक शब्द का उच्चारण स्पष्ट करें ।
- (3) बोलने का स्तर धीमा/अति कर्कश/अति ऊँचा न हो ।
- (4) बोलने की गति धीमी/अधिक तेज/समुचित थी ।
- (5) शब्दावली का प्रयोग कक्षा के स्तर के अनुकूल नहीं था/था ।
- (6) भावाभिव्यक्ति अस्पष्ट/स्पष्ट थी ।

12. शिक्षक का व्यक्तित्व

- (1) छात्र-प्रशिक्षणार्थी की वेशभूषा शिक्षकोचित नहीं थी/थी ।
- (2) बोलने का ढंग प्रभावशाली नहीं था/था ।
- (3) कक्षा में चलने-फिरने का ढंग ठीक नहीं था/था ।
- (4) विद्यार्थियों के प्रति व्यवहार उग्र/अधिक विनम्र/शिक्षकोचित था ।
- (5) शिक्षण प्रभावशाली, प्रेरणाप्रद नहीं था/था ।

पर्यवेक्षक के हस्ताक्षर
तिथि.....

ऊपर दी गई अनुसूची एक पाठ के पर्यवेक्षण का नमूना मात्र है । प्रशिक्षणार्थी के सभी पाठ इसी अनुसूची के आधार पर जाँचे जाएँ । इस अनुसूची को पाठयोजना अभ्यास पंजिका के रूप में प्रकाशित किया जा सकता है । पर्यवेक्षण के बाद यह पंजिका प्रशिक्षणार्थी के पास रहनी चाहिए ताकि वह निर्देशों के

अनुसार अपने शिक्षण में सुधार कर सके।

पर्यवेक्षक उपर्युक्त बिंदुओं के आधार पर समग्र शिक्षण का मूल्यांकन क, ख, ग, घ, ङ आदि श्रेणियों में भी कर सकता है। ऐसा करने से प्रशिक्षणार्थी के शिक्षण में होने वाले क्रमिक विकास का आभास मिलता रहेगा तथा प्रशिक्षणार्थियों की वैयक्तिक भिन्नता की पहचान भी हो सकेगी।

प्रशिक्षणार्थी अपने सहपाठियों के शिक्षण का पर्यवेक्षण इसी अनुसूची के अनुसार कर सकते हैं। यह अनुसूची उनके लिए एक ओर शिक्षण के समय पर्यवेक्षित बिंदुओं को प्रकाश में लाएगी तो दूसरी ओर निर्देशन का कार्य भी करेगी।

(ख) मानकीकृत शिक्षण पर्यवेक्षण अनुसूची

छात्र-अध्यापक-अध्यापिकाओं के शिक्षण अभ्यास का मूल्यांकन करने के लिए मानकीकृत पर्यवेक्षण अनुसूची का प्रयोग किया जा सकता है। मानकीकृत अनुसूची को शिक्षण से संबंधित विभिन्न कौशलों में विभक्त किया जाना चाहिए जैसा कि इसमें पूर्व निर्देशात्मक पर्यवेक्षण अनुसूची के बारह बिंदुओं को दर्शाया गया है। इन सभी बिंदुओं का संबंध सफल शिक्षण कला से है।

शिक्षण के प्रत्येक कौशल का उपविभागों में भी विभाजन करना चाहिए। निर्देशात्मक पर्यवेक्षण अनुसूची में हर कौशल के उपविभागों की ओर संकेत किया जा चुका है। मानकीकृत अनुसूची के आधार पर यदि प्रत्येक कौशल का मूल्यांकन पाँच बिंदु क्रम निर्धारण मापनी (Five Point Rating Scale) पर किया जाए तो कुल 60 अंक बनते हैं। इस अनुसूची के आधार पर प्रशिक्षणार्थी के शिक्षण का मूल्यांकन करने से शिक्षण कला में होने वाले क्रमिक विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। मानकीकृत शिक्षण पर्यवेक्षण अनुसूची का नमूना नीचे दिया गया है :—

मानकीकृत शिक्षण पर्यवेक्षण अनुसूची

सामान्य जानकारी (इस भाग को प्रशिक्षणार्थी स्वयं भरे)

- (1) विद्यालय का नाम.....।
- (2). छात्र अध्यापक का नाम.....।
- (3) शैक्षणिक योग्यता.....।
- (4) शिक्षण अभ्यास पाठ का क्रम 1, 2, 3, 4,.....आदि।
- (5) पढ़ाई जाने वाली कक्षा.....।
- (6) विषय.....उप विषय.....।
- (7) पढ़ाने की तिथि.....।
- (8) अन्य जानकारी.....।

अनुसूची

सूचना—नीचे दिए गए प्रत्येक कौशल का मूल्यांकन पाँच अंकों के आधार पर करना है। निम्नकोटि के लिए एक, सामान्य संतोषजनक के लिए दो, संतोषजनक के लिए तीन, अधिक संतोषजनक के लिए चार तथा अत्यधिक संतोषजनक के लिए पाँच अंक नियत हैं। आप अपने मूल्यांकन के अनुसार संबंधित बिंदु पर उपस्थित चिह्न (✓) लगाएँ और फिर उस अंक को आगे दिए गए रिक्त स्थान में भरें। अंत में प्रदत्त अंकों का योग करें।

क्रम सं०	अध्यापन कौशल	मूल्यांकन/अंक	प्राप्तांक
1.	पाठयोजना अभ्यास पंजिका का स्तर	1 2 3 4 5	
2.	कक्षा की सामान्य व्यवस्था का स्तर	1 2 3 4 5	
3.	पाठ की प्रस्तावना विधि का स्तर	1 2 3 4 5	
4.	पाठ के उद्देश्य कथन की विधि	1 2 3 4 5	
5.	विषय सामग्री की व्यवस्था का स्तर	1 2 3 4 5	
6.	शिक्षण विधि का स्तर	1 2 3 4 5	
7.	प्रश्न रचना का स्तर	1 2 3 4 5	
8.	पाठ में विद्यार्थियों की भागेदारी	1 2 3 4 5	
9.	श्यामपट्ट कार्य का स्तर	1 2 3 4 5	
10.	सहायक सामग्री का स्तर	1 2 3 4 5	
11.	अध्यापक की भाषा का स्तर	1 2 3 4 5	
12.	शिक्षक का व्यक्तित्व	1 2 3 4 5	

कुल अंक=60

प्रदत्त अंक=

पर्यवेक्षक के हस्ताक्षर

तिथि.....

उपर्युक्त अनुसूची का प्रयोग एक से अधिक बार भी किया जा सकता है। प्राप्तांक खंड के सम्मुख पहला मूल्यांकन, दूसरा मूल्यांकन तीसरा, मूल्यांकन आदि लिख दिया जाए। एक ही अनुसूची पर एक से अधिक बार मूल्यांकन का यह लाभ होगा कि प्रशिक्षणार्थी के शिक्षण में होने वाले विकास का तुल-

नात्मक अध्ययन संभव हो जाएगा। यदि प्रशिक्षणार्थी के प्रशिक्षण में किसी बिंदु विशेष पर विकास के चिह्न दृष्टिगत नहीं होते तो उस अभाव क्षेत्र पर व्यक्तिगत रूप से चर्चा की जाए ताकि अवरोध रोका जा सके।

इसी अनुसूची के आधार पर पर्यवेक्षक के अंकों के सम्मुख प्रशिक्षणार्थी स्वयं अपना मूल्यांकन करके अंक लिख सकता है। पर्यवेक्षक तथा प्रशिक्षणार्थी आपसी चर्चा करके अपने-अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट कर सकते हैं। इस प्रकार से किया गया पर्यवेक्षण वास्तव में प्रजातांत्रिक पर्यवेक्षण कहलाएगा। पर्यवेक्षण का उद्देश्य छिद्रावेक्षण नहीं अपितु सुधारात्मक और विकासात्मक शिक्षण की ओर ले जाना है।

व्यावहारिक कार्य

1. पाठ योजना संबंधी साहित्य का सर्वेक्षण।
2. गत वर्षों की पाठयोजनाओं का अवलोकन।
3. पाठयोजना के विभिन्न अंगों का माइक्रोटीचिंग विधि के अनुसार अभ्यास।
4. भाषा के विभिन्न अवयवों पर आधारित पाठयोजनाओं का निर्माण।
5. प्रदर्शन पाठ का प्रेक्षण।
6. कक्षा अध्यापक द्वारा दिए जाने वाले पाठ का प्रेक्षण।
7. प्रशिक्षणार्थी द्वारा प्रदर्शन पाठ देना।
8. प्रदर्शन पाठों पर टिप्पणी लिखना।
9. शिक्षण अभ्यास करना।
10. शिक्षण अभ्यास संबंधी अपने विचार लेखनीबद्ध करना।
11. शिक्षण अभ्यास के समय अनुभव की गई कठिनाइयों पर सामूहिक चर्चा करना।
12. पर्यवेक्षण की मानकीकृत अनुसूची निर्माण में पर्यवेक्षक को सहयोग देना।

संदर्भ

1. Report of the Review Committee on the Curriculum For the Ten Year School, Ministry of Education and Welfare, N. Delhi (1978).
2. Seminar-cum-workshop on student teaching in primary teacher Education Institution, Department of Teacher

Education, NCERT (Mimeographed) (1975).

3. Teacher Education Curriculum—A Framework, N.C.E.-R.T. (1973).
4. National Policy on Education (1986), Ministry of Human Resource and Development, Department of Education, N. Delhi (1986).
5. पाठयोजनाएँ, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर (1978)।
6. वैज्ञानिक शैक्षणिक पर्यवेक्षण प्रायोजना, डा० जय नारायण कौशिक, (1971) (मिमियोग्राफ्ड)।
7. शिक्षा आयोग—(1964-66)।

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. 'शिक्षण अभ्यास के माध्यम से प्रशिक्षणार्थियों में उन गुणों का विकास कराया जाता है जिनकी एक सफल अध्यापक में अपेक्षा है,' इस कथन की समीक्षा करें।
2. भाषा शिक्षण की पाठयोजना के कौन से मुख्य अंग हैं? सभी अंगों की महत्ता और सार्थकता पर प्रकाश डालें।
3. पाठयोजना में व्यावहारिक उद्देश्य लेखन से क्या अभिप्राय है? कविता, कहानी तथा निबंध शिक्षण के उद्देश्य व्यावहारिक विधि से लिखकर दिखाएँ।
4. 'सहायक सामग्री सूक्ष्म को स्थूल, अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष तथा कठिन संकल्पना को ग्राह्य बना देती है', इस कथन की समीक्षा करते हुए भाषा शिक्षण में सहायक सामग्री के महत्त्व पर प्रकार डालें।
5. टिप्पणी लिखें—
 1. शिक्षण अभ्यास के चरण।
 2. शिक्षण पर्यवेक्षण अनुसूची।
 3. पाठयोजना के निरीक्षण के महत्त्वपूर्ण पक्ष।
 4. श्यामपट्ट कार्य।

पुस्तकालय

I पुस्तकालय—एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

आज पुस्तकालय के बिना अच्छे विद्यालय की कल्पना नहीं की जा सकती। यह विचित्र संयोग है कि जिन दिनों लिखित और पठित सामग्रों का एकांत अभाव था उन दिनों भी पुस्तकालयों का आज से अधिक महत्व था। दृग्गोचर विद्यार्थी कनिष्ठ कक्षाओं के लिए पुस्तकों की पांडुलिपियाँ तैयार करते थे। शुद्ध पांडुलिपियाँ तैयार करना उनके पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग था। पठन-सामग्री या पांडुलिपियों के अभाववश पुस्तकों को लाल, पीले, गेरुए वस्त्रों में आवेष्टित करके ऊपर से डोरी बाँध दी जाती थी। पुस्तक को धूलि, कीट, जल, तेल आदि से बचाने के लिए हर पुस्तक का अलग से वेष्टन बाँधा जाता था। पुस्तक की सुरक्षा के लिए उसे मूर्ख के हाथ से बचाया जाता था।

हर गुरु गृह-पाठशाला का अपना पुस्तकालय या ग्रंथ आगार था। शिक्षा-केन्द्रों के अतिरिक्त राज-दरबारों में भी पुस्तकों के रखरखाव को संरक्षण प्राप्त था। भारत में अनेक राजा भी विद्या-व्यसनी हुए हैं। वहाँ पुस्तकों के अतिरिक्त सुन्दर चित्र, राज-आदेशों की प्रतियाँ आदि भी सुरक्षित रखी जाती थीं।

विदेशी आक्रमणों के कारण भारत के ग्रंथागारों को भारी क्षति उठानी पड़ी। अनेक धर्मांध बाह्य आक्रमणकारी बादशाहों ने नालंदा जैसे बहुमूल्य ग्रंथागारों को यह कहकर भस्मसात् करा दिया कि यदि इन पुस्तकों में वही ज्ञान है जो उनकी अपनी धर्म पुस्तकों में है तो इन पुस्तकों की आवश्यकता नहीं है और यदि इनमें उनके धर्म से विरुद्ध बातें हैं तो भी इनकी आवश्यकता नहीं है, अतः इन्हें जला डाला जाए। दासता का वह काल भारत के ग्रंथागारों के लिए अंधकार युग की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है।

अरब और पश्चिमी देशों में भी पुस्तकालय राजदरबारों के संरक्षण में फले-फूले हैं। कुछ पुस्तकालय व्यक्तिगत प्रयत्नों के प्रयास से भी पनपे हैं।

स्वतंत्रता के बाद देश ने नई करवट ली और पुस्तकालयों की पुनःस्थापना का बीड़ा उठाया गया। सबसे पहले 1953 ई० में माध्यमिक शिक्षा आयोग

(मुद्रालियर आयोग) ने विद्यालय पुस्तकालय के महत्त्व की ओर पुनः अधिकृत रूप से ध्यान आकर्षित किया। 1957 ई० में पुस्तकालय सलाहकार समिति का गठन किया गया। इस कमेटी ने देशभर में पुस्तकालयों का जाल बिछा देने की सिफारिश की। कमेटी की सिफारिश के अनुसार दिल्ली में राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में प्रादेशिक पुस्तकालय और प्रत्येक राज्य में एक केन्द्रीय पुस्तकालय स्थापित करने की सलाह दी। कमेटी ने पंचायत स्तर पर पुस्तकालय की स्थापना और उन्हें छात्रों के अतिरिक्त प्रौढ़ों, नवसाक्षरों, शिक्षित वयस्कों आदि के लिए उपलब्ध कराने पर भी बल दिया।

शिक्षा आयोग (1964-66) ने पुस्तकालयों की महत्ता को स्वीकारते हुए इन्हें विद्यालय का अनिवार्य अंग बनाने पर बल दिया। आयोग के अनुसार दूरस्थ ग्रामीण विद्यालय के लिए भी निकटवर्ती पड़ोसी पुस्तकालय सेवाएँ उपलब्ध होनी चाहिए। इस आयोग ने सिफारिश की कि विद्यार्थी, पुस्तकालय तथा विद्वानों की दूरी को पाटा जाए ताकि विद्यार्थी मनोरंजन, आत्माभिव्यक्ति, आत्म विकास, आत्म प्रकाश और अपनी जिज्ञासा की तृप्ति के लिए पढ़ सकें।

भारत की नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अनुसार औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के प्रसार-प्रचार के लिए स्थान स्थान पर साधन केन्द्रों (रिसोर्स सेण्टर) स्थापित करने की योजना है, जहाँ नवसाक्षरों तथा प्रौढ़ों के लिए उनकी आवश्यकता के अनुसार पठन सामग्री उपलब्ध हो सके। यह सामग्री छोटी-छोटी सचित्र पुस्तकों के रूप में माड्यूल (कार्यमाप), कैप्सूल आदि के रूप में उपलब्ध होगी। एन० सी० ई० आर० टी० ने इस प्रकार के साहित्य के पैकेज राज्य शिक्षा संस्थानों और एस. सी. ई. आर. टी. के सहयोग से तैयार किए हैं। ये साधन केन्द्र पाठकों की सुविधा के अनुसार हर समय पढ़ने के लिए उपलब्ध होंगे। सातवीं पंचवर्षीय योजना से पुस्तकालयों के विस्तार में एक नए क्रांतिकारी युग का आरंभ हुआ है। राष्ट्रीय आय का शिक्षा पर होने वाला खर्च तीन प्रतिशत से बढ़ाकर छः प्रतिशत कर देने के संकल्प से पुस्तकालयों की स्थिति में सुधार की विपुल संभावनाएँ हैं।

II. पुस्तकालय का महत्त्व और आवश्यकता

जैसा पहले संकेत दिया गया है कि पुस्तकालय का महत्त्व अति प्राचीन काल में ही स्थापित हो चुका था। आरम्भ में ताड़-पत्रों पर लिखे गए ग्रंथों को सुरक्षित रखना कितना कठिन कार्य रहा होगा। अंग्रेजी के लाइब्रेरी शब्द के मूल में भी लूब शब्द (Lubh) ही है जिसका अर्थ है पत्ता, छाल या पेड़ का गूदा। गड़वाली बोली में पत्ते को 'लाभ' कहते हैं। यह शब्द विवेचन इस बात की

और संकेत करता है कि बहुत पुराने समय में पुस्तकें पत्तों, छाल आदि पर लिखी जाती थीं और उनके सुरक्षा पूर्वक संग्रह करने के स्थान को लाइब्रेरी कहते थे।

आज पुस्तकालय पुस्तकों का संग्रह मात्र नहीं है। यह विद्यालय और समाज की ऐसी केंद्रीय धुरी है जहाँ समाज का सामूहिक अनुभव और चिंतन समय और दूरी की सीमा लाँघ कर हमारे मार्गदर्शन के लिए व्यवस्थित रूप में हर समय उपलब्ध है। आज पुस्तकालय में मात्र पुस्तकें ही नहीं अपितु मानचित्रावलियाँ, फ़िल्म, टेप, स्लाइड आदि भी हैं। संक्षेप में हम पुस्तकालय के महत्त्व को निम्नलिखित आधारों पर सिद्ध कर सकते हैं :—

1. अध्यापक वर्ग के लिए

आज ज्ञान विज्ञान का इतना विस्तार हो चुका है कि उसे एक बार दिमाग में समेटना असंभव है। कक्षा में जाने से पूर्व अध्यापक को अपने विषय से सम्बन्धित तैयारी करनी पड़ती है। वह अपने विषय का समर्थन अनेक विद्वानों के मतों के आधार पर करता है। पाठ्य पुस्तकों की पुरानी सामग्री को नवीनतम रखने के लिए अतिरिक्त साधन जुटाने पड़ते हैं। इस कार्य के लिए अपने आप को सुसज्जित करने के लिए पुस्तकालय ही एक मात्र सरल और सुगम साधन है। स्वाध्याय से प्रमाद न करने वाला अध्यापक ही सफल अध्यापक बन सकता है। पुस्तकालय एक ऐसा सागर है जिसमें अवगाहन से अध्यापक रूपी गोताखोर को अमूल्य ज्ञान-मोती उपलब्ध हो सकते हैं।

पुस्तकालय की पुस्तकों का ज्ञाता अध्यापक ही विद्यार्थियों को उचित पुस्तकों के चुनाव का निर्देशन दे सकता है। अतः अध्यापक को चाहिए कि वह पुस्तकालय में अपने विषय संबंधी पुस्तकों से स्वयं अवगत हो।

2. विद्यार्थियों के लिए

क. अतिरिक्त पठन का अवसर

सामान्यतया विद्यार्थी को पठन के नाम पर केवल पाठ्य पुस्तक ही उपलब्ध होती है। वह पुस्तक जगत के विस्तृत संसार से परिचित नहीं हो पाता। पुस्तकालय उसे इस संसार में अवगाहन करने का सुअवसर प्रदान करता है। यहाँ उसे अतिरिक्त पठन का सुअवसर प्राप्त होता है।

ख. ज्ञान की संपूर्ति

अध्यापक द्वारा प्रदत्त ज्ञान सीमित और एकांगी होता है। विद्यार्थी का संपर्क भी अध्यापक के साथ सीमित समय के लिए होता है। पुस्तकालय में स्वाध्याय उसके ज्ञान की पूर्ति करता है तथा अध्यापक की अनुपस्थिति में भी

उसे ज्ञानार्जन का अवसर प्राप्त होता है।

ग. स्वाध्याय की प्रवृत्ति

अन्य द्वारा सुनी गई बात विस्मृत होने की संभावना रहती है। स्वयं खोजा गया ज्ञान चिरस्थायी होता है और उसे व्यावहारिक जीवन में उपयोग में लाया जा सकता है। पुस्तकालय विद्यार्थी को यह अवसर प्रदान करता है।

घ. जिज्ञासा शांत करने का साधन

बालक की अनेक जिज्ञासाएँ होती हैं। अभिभावक और अध्यापक उसके अनेक प्रश्नों की अनुसूची कर देते हैं। पुस्तकालय उसकी जिज्ञासाओं को शांत करने का सहज साधन है।

ङ. व्यक्तित्व में संतुलन

स्वाध्याय से “स्व” का निर्माण होता है। विद्यार्थी के व्यक्तिगत दर्शन का विकास होता है। उसका व्यक्तित्व विकसित होता है। विभिन्न विचारधाराओं के ज्ञान से उसके व्यक्तित्व में संतुलन आता है।

च. बहुआयामी व्यक्तित्व

अच्छा पाठक ही योग्य वक्ता और श्रेष्ठ लेखक बनता है। पुस्तकालय विद्यार्थी के व्यक्तित्व को बहुआयामी बनाने में योगदान देता है।

छ. रुचि का परिष्कार

बहु पठित व्यक्ति की रुचि का परिष्कार होता है। विभिन्न विषयों में रुचि होने के कारण विद्यार्थी को स्वयं भी इस बात का आभास होने लगता है कि उसकी रुचि विशेष रूप से किस ओर है। अपनी रुचि के अनुसार व्यवसाय चुनना जीवन में सफलता की कुंजी है। पुस्तकालय उसकी रुचि के विकास में सहायक होता है।

ज. अभावग्रस्तों की सहायता

समाज के अभावग्रस्त और पिछड़े वर्ग के बच्चों के पास पुस्तकों का अभाव रहता है। हर व्यक्ति हर पुस्तक खरीद भी नहीं सकता। पुस्तकालय की पुस्तक सभी की धरोहर है। सभी वर्ग के बालक इसका लाभ उठा सकते हैं।

झ. समय का सदुपयोग

पुस्तकालय में स्वाध्याय समय का सबसे अच्छा सदुपयोग है। व्यर्थ के व्यसनों में समय नष्ट करने से अच्छा है पुस्तकालय में श्रेष्ठ साहित्य का अध्ययन किया जाए।

ञा. विश्वसनीय ज्ञान की उपलब्धि

विद्यालय में उपलब्ध अनेक प्रकार के कोश तथा विश्वकोश संदर्भ-सामग्री के रूप में काम आते हैं। बिना संदर्भ सामग्री के लेखन कार्य में प्रामाणिकता नहीं आ सकती। पुस्तकालय विश्वसनीय ज्ञान के आगार हैं।

3. पाठान्तर क्रियाओं में सहायता के लिए

पुस्तकालय जहाँ पाठ्यक्रम के ज्ञान की संपूर्ति में सहायक है वहाँ पाठान्तर क्रियाकलापों के लिए भी प्राणदायिनी शक्ति का काम करता है। विद्यालय में समय समय पर वाद-विवाद, नाटक, कविता, समूहगान, लोकगीत, कहानी आदि की प्रतियोगिताओं की सफलता के लिए पुस्तकालय ज्ञान-साधन-केन्द्र का काम करता है।

पुस्तकालय क्रियात्मक कार्यों को सम्पन्न करने में सहयोगी बनता है। कविता, कहानी, सूक्ति आदि का संकलन पुस्तकालय के अभाव में असंभव है। संक्षेप में पुस्तकालय समाज उपयोगी उत्पादन कार्यों में सक्रिय योगदान देता है।

4. सामाजिक उपयोग के लिए

पुस्तकालय मात्र विद्यालय, विश्वविद्यालय या अध्यापकों की वपौती नहीं है। समाज का सामान्य नागरिक भी इसका लाभ उठा सकता है। नवीन शिक्षा नीति (1986) के अनुसार हर क्षेत्र में ऐसे साधन केन्द्रों "रिसोर्स सेंटर" के खोलने की व्यवस्था है जहाँ प्रौढ़, नवसाक्षर तथा अपने व्यवसाय की उन्नति में रुचि रखने वाले सभी व्यक्ति पुस्तकों का लाभ उठा सकेंगे। पुस्तकालय केवल पुस्तकों तक ही सीमित नहीं रहेगा अपितु वहाँ फ़िल्म, स्लाइड, टेप आदि भी उपलब्ध होंगे। इन पुस्तकालयों का लाभ अभिभावक भी उठा सकेंगे। आज आवश्यकता है अंग्रेजी शासकों द्वारा विद्यालय और समाज के बीच खींची गई दीवार को गिराने की ताकि विद्यालय और समाज समरसता को प्राप्त हो सकें। अभिभावकों के लिए पुस्तकालय सुलभ कराना इस क्षेत्र में भारी योगदान दे सकता है।

III. पुस्तकालय संगठन

एक सुसंगठित और सुव्यवस्थित पुस्तकालय ज्ञान के प्रचार-प्रसार के अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकता है। पुस्तक भंडार और पुस्तकालय में निश्चित रूप से आकाश-पाताल का अन्तर है। विद्यालयों में बढ़ती हुई विद्यार्थियों की संख्या और पुस्तकों के प्रकाशन पर बढ़ते हुए खर्च को देखते हुए इसके संगठन का महत्व और भी बढ़ गया है। पुस्तकालय संगठन के समय भारतीय पुस्तकालय अध्यक्ष डा० शियाली रामरत्न रंगनाथम् के इन सूत्रों का सदा ध्यान रखना चाहिए :—

1. पुस्तकें उपयोग के लिए हैं।
2. प्रत्येक पाठक के लिए हैं।
3. प्रत्येक पुस्तक के लिए पाठक है।
4. पाठक का समय बचाओ।
5. पुस्तकालय एक विकासशील संगठन है।

एक सुसंगठित पुस्तकालय संगठन के लिए निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए—

1. पुस्तकालय अध्यक्ष

विद्यालय पुस्तकालय में खर्च किए जाने वाले बजट का उचित लाभ तभी संभव है जब उसमें एक योग्य संचालक की नियुक्ति हो। एक योग्य पुस्तकालय अध्यक्ष में निम्नलिखित योग्यताएँ होनी अनिवार्य हैं :—

क. अपने व्यवसाय में प्रशिक्षण

प्रशिक्षित व्यक्ति ही पुस्तकालय का संचालन आदर्श विधि से कर सकता है। उसे संगठन, प्रशासन, विद्यालय के क्रिया कलाप, बाल मनोविज्ञान आदि का ज्ञान होना चाहिए। वह पुस्तकालय की प्रक्रियाओं जैसे—ग्रंथ चयन, क्रयादेश, वर्गीकरण, सूचीकरण, संदर्भ सेवा आदि से परिचित होना चाहिए।

ख. शैक्षिक दक्षता

पुस्तकालय का संचालक एक अध्यापक का रूप धारण कर लेता है। उसे विद्यालय में पढ़ाए जाने वाले विषय, विद्यालय की पाठ्यचर्या, पाठान्तर क्रियाकलापों से परिचित होना चाहिए। उसे इन सभी विषयों से सम्बन्धित सन्दर्भ ग्रंथों का भी ज्ञान होना चाहिए।

ग. शिक्षण पद्धतियों की जानकारी

पुस्तकालय संचालक को नवीनतम शिक्षण पद्धतियों की जानकारी होनी चाहिए ताकि पुस्तकों खरीदते समय वह उचित पुस्तकों का चयन कर सके और अध्यापकों को उचित पुस्तक पढ़ने के लिए दे सके ।

घ. बच्चों के प्रति उचित व्यवहार

पुस्तकालय संचालक का विद्यार्थियों के प्रति ऐसा सहानुभूतिपरक सरल व्यवहार होना चाहिए कि वे स्वयं ही पुस्तकालय की ओर आकर्षित हों । साथ ही साथ उसे अनुशासनप्रिय भी होना चाहिए ।

ङ. स्टाफ के प्रति सदाशयपूर्ण व्यवहार

स्टाफ के सदस्यों के प्रति उसका व्यवहार सदाशयपूर्ण होना चाहिए क्योंकि आपसी सहयोग से ही कार्य की सिद्धि होती है ।

2. पुस्तकालय भवन

पुस्तकालय भवन हवादार, प्रकाशयुक्त, नमी रहित तथा शांत स्थान पर होना चाहिए । इसकी स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि पुस्तकालय के वादन में विद्यार्थी सरलता से यहाँ आ जा सकें ।

भवन में पुस्तकालय अध्यक्ष के बैठने का उचित स्थान, सामग्री रखने की उचित व्यवस्था तथा कुर्सी, मेज आदि रखने का खुला स्थान होना चाहिए । इसमें केवल एक निकास द्वार हो जहाँ से पुस्तकालय-सहायक विद्यार्थियों पर नजर रख सके ।

भवन में पुस्तकालय की कार्ड सूची का कैबिनेट, श्रव्य-दृश्य सामग्री का कैबिनेट, पत्र-पत्रिकाओं के रैक, मानचित्रावली स्टैंड आदि की उचित व्यवस्था होनी चाहिए ।

भवन की व्यवस्था इस प्रकार की हो कि आवश्यकता पढ़ने पर इसे गोष्ठी-कक्ष में परिवर्तित किया जा सके । यदि आवश्यकता हो तो यहाँ फ़िल्मों का प्रदर्शन भी हो सके ।

भवन की आंतरिक दीवारें इस प्रकार की हों कि इन पर प्रसिद्ध साहित्य-कारों के चित्र प्रदर्शित किए जा सकें तथा समय-समय पर यहाँ चित्रों की प्रदर्शनी भी लगाई जा सके । इसकी छत बहुत ऊँची होनी चाहिए ताकि गर्मी-सर्दी का प्रभाव कम पड़े ।

3. पुस्तकालय उपस्कर तथा उपकरण

पुस्तकालय की सामग्री छात्र-छात्राओं की वय के अनुकूल होनी चाहिए। कुर्सी-मेज आदि आरामदेह और आकर्षक होनी चाहिए। उपकरण लकड़ी, धातु या प्लास्टिक आदि के भी हो सकते हैं। रैक, सूची-पत्रक-कैबिनेट, पत्रिका-स्टैंड, समाचारपत्र स्टैंड आदि ऐसे आकार के हों कि औसत दर्जे के विद्यार्थी को भी इनका प्रयोग करने में कठिनाई न हो।

4. पुस्तकालय समिति

पुस्तकालय अध्यक्ष कितना भी प्रशिक्षित तथा कुशल क्यों न हो स्टाफ़ के सह-योग के बिना वह लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकता। पुस्तकालय के विधिवत् संचालन के लिए एक समिति का होना अनिवार्य है। इस समिति में विद्यालय के प्रधान के अतिरिक्त सभी विषयों के एक-एक अध्यापक सम्मिलित किए जाने चाहिए। वित्तीय अनुशासन, ऋय आदि से संबंधित निर्णय लेने में इस समिति का सहयोग अवश्य लेना चाहिए। पुस्तकालय के नियम निर्माण का अधिकार भी इस समिति को होना चाहिए।

समिति को अधिक उदार और प्रजातांत्रिक बनाने के लिए विद्यार्थियों को भी इसमें सम्मिलित किया जाना चाहिए।

5. विद्यालय पुस्तकालय में मौलिक संग्रह

किसी भी अच्छे पुस्तकालय में कुछ मौलिक पुस्तकों का संग्रह अवश्य होना चाहिए। इनके अभाव में अध्यापकों और विद्यार्थियों को कठिनाई हो सकती है। पुस्तकालय के लिए निम्नलिखित सामग्री का चयन अवश्य किया जाए :—

क. पाठ्यचर्या समृद्धि सामग्री

पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त पाठ्यचर्या की समृद्धि के लिए उससे संबद्ध संपूरक सामग्री भी होनी चाहिए। जैसे—जीवन चरित्र, यात्रा-भ्रमण, विभिन्न देशों और उनके निवासियों का वर्णन, ऐतिहासिक घटनाएँ, वैज्ञानिक आविष्कार आदि। इन पुस्तकों का प्रयोग विद्यार्थी पूरक सामग्री के रूप में कर सकते हैं।

ख. साहित्यिक गौरव ग्रंथ

गौरव ग्रंथों में महान लेखकों की महान कृतियाँ, अभिनंदन ग्रंथ, ज्ञान कोश, विश्वकोश सम्मिलित किए जाते हैं। आजकल इस प्रकार के साहित्य के बालो-पयोगी संस्करण भी उपलब्ध हैं।

ग. मनोरंजनात्मक पाठ्य सामग्री

पठन का मुख्य उद्देश्य ज्ञान-वृद्धि के साथ-साथ मनोरंजन होता है। विद्यार्थी कथा साहित्य को बहुत पसंद करते हैं। भावात्मक, कल्पना प्रसूत, साहसपूर्ण और जोखिम से भरी दुनिया उन्हें पसंद है। इस प्रकार का स्वस्थ साहित्य आज विपुल मात्रा में उपलब्ध है।

घ. संदर्भ ग्रंथ

हिन्दी साहित्य कोश, भारतीय साहित्य कोश, भारतीय साहित्य शास्त्र-कोश, भारतीय इतिहास कोश, पौराणिक कोश आदि ऐसे कोश हैं जिनकी सहायता से पाठ्य पुस्तकों की अन्तर्कथाएँ स्पष्ट करने में बड़ी सहायता मिलती है। हिन्दी से हिन्दी कोश, हिन्दी-संस्कृत कोश, संस्कृत-हिन्दी कोश, हिन्दी अंग्रेजी तथा अंग्रेजी हिन्दी कोश, विभिन्न बोलियों के कोश अनेक शब्दों के अर्थ स्पष्ट करने में बहुत सहायक मिद्ध होते हैं। ज्ञान कोश, विश्व कोश, चरित्र कोश, मानचित्रावलियाँ भी संदर्भ ग्रंथों के अच्छे उदाहरण हैं। पुस्तकालय का संगठन करते समय इनका क्रय अवश्य होना चाहिए।

ङ. व्यक्तित्व उत्थान सामग्री

बालकों के नैतिक, सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय चरित्र आदि पक्ष के विकास के लिए पुस्तकालय में सत् साहित्य का होना आवश्यक है। भारत जैसे प्रजा-तांत्रिक, धर्म निरपेक्ष राज्य में इस प्रकार के साहित्य के पठन पाठन की और भी अधिक आवश्यकता है। आजकल स्वस्थ यौन भावना के विकास के लिए यौन संबंधी पुस्तकों को भी आधारभूत पठन सामग्री में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

च. शिक्षण शास्त्र संबंधी साहित्य

शिक्षा और शिक्षण के क्षेत्र में नित्य नवीन अनुसंधान हो रहे हैं। शोध-प्रबंध प्रकाशित होने लगे हैं। नवीन शिक्षण पद्धतियों का विकास हो रहा है। शिक्षा की नई नीति संबंधी समीक्षात्मक पुस्तकें भी उपलब्ध हैं। इस साहित्य का अध्यापकों द्वारा गहन अध्ययन तभी हो सकता है जब ये पुस्तकालय में सहज सुलभ हों।

छ. अन्य सामग्री

उपर्युक्त साहित्य के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार की सामग्री की व्यवस्था भी पुस्तकालय में होनी चाहिए। जैसे—

1. पत्र-पत्रिकाएं

जहाँ पाठ्य पुस्तक में प्राचीन ज्ञान को व्यौरेवार प्रस्तुत किया जाता है वहाँ पत्र-पत्रिकाओं में नित्य नवीन ज्ञान उपलब्ध होता है। इनकी भाषा सरल और बोधगम्य होती है। इस सामग्री का पठन द्रुत पठन के रूप में किया जाता है। इनके माध्यम से बच्चे में सम-सामयिक घटनाओं के प्रति रुचि बनी रहती है और पर्यावरणीय जागरूकता आती है। साक्षात्कार आदि के लिए इस सामग्री का पठन और भी आवश्यक है। हर पुस्तकालय में शिशु, किशोर और तरुण आयु वर्ग की पत्रिकाओं के अतिरिक्त विभिन्न विद्यालयी विषयों से संबंधित पत्रिकाओं की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

2. बुलेटिन तथा सभाचार पत्र बोर्ड

आजकल सरकार तथा अनेक अभिकरणों द्वारा समय-समय पर बुलेटिन का प्रकाशन किया जाता है। इनका संबंध विभिन्न रोजगारों, औद्योगिक संस्थाओं, पर्यटन ब्यूरो, सामाजिक और शैक्षणिक संस्थाओं से होता है। इस प्रकार के बुलेटिनों का प्रदर्शन विशेष बुलेटिन बोर्डों पर किया जाता है। इनके अतिरिक्त विशेष अवसरों पर विशेष घटनाओं से संबंधित समाचार और चित्रों को कतरण के रूप में बुलेटिन बोर्डों पर लगाया जाता है। ऐसा करने से सैकड़ों पाठक थोड़े समय में उस सामग्री से लाभान्वित हो सकते हैं।

3. चित्रमय और लेखा-चित्रीय सामग्री

विद्यार्थियों का ध्यान विशिष्ट पुस्तकों की ओर आकृष्ट करने के लिए पुस्तक आवरणों को बुलेटिन बोर्ड पर अस्थायी रूप से प्रदर्शित किया जाता है। इस सामग्री में चित्र, चार्ट आदि भी सम्मिलित किए जा सकते हैं।

4. श्रव्य-दृश्य सामग्री

आज विज्ञान के युग में श्रव्य-दृश्य सामग्री सहज रूप से उपलब्ध है। सरकार की ओर से इनसेट के माध्यम से विद्यालयों में टी. वी. पर नियंत्रित रूप से शिक्षण की योजनाएँ बनाई गई हैं। विद्यालय के पुस्तकालय में चलचित्र, फिल्में, फ़िल्म स्ट्रिप, स्लाइड, रेकार्ड, टेप, रेडियो, वी. सी. आर. आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। इनके रख-रखाव तथा मरम्मत के लिए विद्यालय व समाज उपयोगी उत्पादक कार्य के अध्यापक को विशेष रूप से प्रशिक्षित होना चाहिए।

IV. पुस्तक चयन के आधार

पुस्तकालय में हर प्रकार की पुस्तकें सम्मिलित नहीं की जा सकतीं। पुस्तकों के चुनाव में पुस्तकालय द्वारा पूरे किए जाने वाले उद्देश्यों का ध्यान रखना चाहिए। मोटे रूप में पुस्तकों के चयन के समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

1. पुस्तकें विद्यालय के शैक्षणिक कार्यों से संबंधित हों।
2. पुस्तकें ज्ञानवर्धक तथा मनोरंजक हों।
3. पुस्तकों की भाषा सरल हो।
4. पुस्तकें विभिन्न वय-वर्ग के विद्यार्थियों की आवश्यकता को पूरा करने वाली हों।
5. पुस्तकें बहुत महँगी नहीं हों।
6. पुस्तकों में रंग बिरंगे चित्र हों।
7. पुस्तक में दी गई सूचना प्रामाणिक हो।
8. भाषा और वर्तनी की अशुद्धियाँ न हों।
9. पुस्तक की बनावट, जिल्द, टाईटिल कवर आकर्षक हों।
10. पुस्तकें बच्चे के व्यक्तित्व के विकास में सहायक हों जिन्हें पढ़कर बच्चों में स्वस्थ मनोवृत्ति का विकास हो।

V. बच्चों को पठन अभिरुचि

ऊपर पुस्तकों के चयन में इस बात का संकेत दिया जा चुका है कि पुस्तक बच्चों की अभिरुचि के अनुकूल हों। सर्वेक्षण के आधार पर विभिन्न वय-वर्गों के बच्चों की अभिरुचियाँ नीचे दी जा रही हैं :—

क. 3 से 5 वर्ष

पशु, पक्षी, फल, सब्जों, जल-जीव, वस्त्र आदि के रंगीन चित्र। परी तथा अद्भुत आकार के रंगीन चित्र।

ख. 6 से 9 वर्ष

परियों की कथा, पौराणिक बाल कथाएँ, कल्पनाप्रसूत कहानियाँ, पहेलियाँ, प्रकृति के विषय में जिज्ञासा भरी बातें आदि।

ग. 10 से 13 वर्ष

यात्रा, भ्रमण, देश-विदेश के बच्चों का रहन-सहन, वैज्ञानिक आविष्कार, वीरगाथाएँ, साहस और पराक्रम भरी गाथाएँ।

घ. 14 से 16 वर्ष

विज्ञान, जीवन चरित्र, इतिहास, यात्रा-वर्णन, विभिन्न देशों की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति, सामाजिक विज्ञान, पाठ्य पुस्तकें, कविता, नाटक, निबंध,

महान व्यक्तियों की जीवनी, धार्मिक पुस्तकें, खेल-कूद, नीतिपरक कथाएँ, देश भक्त आदि की कहानियाँ।

इस सामग्री के अतिरिक्त पुस्तकालय में मौलिक सामग्री का संग्रह भी होना चाहिए। कुछ विद्यार्थी मौलिक संग्रह में भी रुचि रखते हैं। मौलिक संग्रह संबंधी साहित्य के विषय में पुस्तकालय संगठन की चर्चा करते समय बताया जा चुका है।

ड. 17 से 19 वर्ष

विभिन्न प्रकार के व्यवसाय, व्यवसायों संबंधी आवश्यक योग्यताएँ, राज-नीतिक गठन, नेताओं की जीवनी, साहसिक संदर्भ, वैज्ञानिक आविष्कार, उच्च शिक्षा प्राप्त करने के केन्द्र, समसामयिक घटनाएँ, प्रतियोगिताओं संबंधी साहित्य आदि।

VI. वाचनालय

वाचनालय पुस्तकालय का ही अभिन्न अंग है। जहाँ पुस्तकालय में पुस्तकों का अधिक्य होता है वहाँ वाचनालय में पत्र-पत्रिकाओं की विशेष व्यवस्था की जाती है। अधिकतर पुस्तकालय के मध्य भाग में लगी मेज-कुर्सियों का उपयोग वाचनालय के लिए किया जाता है। यदि वाचनालय के लिए अलग व्यवस्था हो तो वह आदर्श स्थिति होगी।

वाचनालय में दैनिक समाचार, साप्ताहिक-पाक्षिक या मासिक आदि पत्रिकाओं की व्यवस्था होती है। विद्यार्थियों की जानकारी के लिए वाचनालय में आने वाली पत्रिकाओं की सूची लगा देनी चाहिए। उनकी प्रकाशन तिथि या प्रकाशन दिन का व्यौरा लिखना भी अच्छा रहता है। यह सूची ऐसे स्थान पर लगानी चाहिए जहाँ उसे विद्यार्थी सुगमता से देख सकें। वाचनालय में नियमावली का भी प्रदर्शन होना चाहिए। वनमहोत्सव, बाल दिवस, अध्यापक दिवस, हिन्दी दिवस, संयुक्त राष्ट्र दिवस आदि अवसरों पर प्रकाशित विशेष पेम्फ्लिट, चार्ट, इशितहार, बुलेटिन आदि को प्रदर्शित करने का वाचनालय हर प्रकार से उचित स्थान है।

वाचनालय के लिए पत्र-पत्रिकाओं का चुनाव पुस्तकालय समिति के सदस्यों द्वारा ही होना चाहिए। यह ध्यान रहे कि अश्लील चित्र और अश्लील साहित्य का प्रवेश वाचनालय में न हो। सामग्री के प्रदर्शन से पूर्व पुस्तकालय अध्यक्ष का यह कर्तव्य है कि वह एक नज़र में पत्रिका का अवलोकन कर ले।

नई पत्रिकाएँ किसी भी स्थिति में स्टाफ़ के किसी सदस्य के नाम जारी न की जाएँ। पुरानी पत्रिकाओं की मासिक या वार्षिक जिल्दबंदी भी करवाई जा सकती है। ऐसा करने से धारावाहिक रूप में छपने वाली कथाओं,

उपन्यासों का अच्छा संग्रह एकत्रित हो जाता है।

पत्र-पत्रिकाओं के रख रखाव के लिए स्टैंड, रैक या अलमारियों की विशेष व्यवस्था होनी चाहिए। इस बात का ध्यान रखा जाए कि विद्यार्थी पत्रिकाओं से चित्र आदि की कतरनें न काटें। यदि कतरने लगाना आवश्यक हो तो पत्रिकाओं की अतिरिक्त प्रति मँगाने की व्यवस्था करें।

VII. भाषा कक्ष

स्थान तथा साधनों के अभाव के कारण अभी तक भाषा कक्ष की कल्पना विद्यालय में मूर्त रूप नहीं ले पाई। भाषा कक्ष के पीछे मूल भावना यह है कि इसमें स्थायी रूप से भाषा शिक्षण संबंधी चार्टों का प्रदर्शन किया जाए। व्याकरण शिक्षण संबंधी सहायक सामग्री का उचित प्रावधान हो। भाषा की समस्त पाठ्य पुस्तकें तथा संदर्भ पुस्तकें यहाँ हर समय उपलब्ध हों। इसके एक कोने में कक्षा के स्तर के अनुसार पुस्तकें तथा पत्रिकाएँ उपलब्ध हों ताकि अध्यापक और विद्यार्थी प्रमादवश स्वाध्याय की उपेक्षा न कर सकें। दोनों के समय का अधिक से अधिक सदुपयोग हो सके और भाषा शिक्षण के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।

वास्तव में भाषा कक्ष एक बहु उद्देशीय कक्ष है। यह भाषा कक्ष के अतिरिक्त वाचनालय भी है और पुस्तकालय भी। फ़िल्म दिखाने का सभागार भी है और प्रदर्शनी कक्ष भी। यह क्रियात्मक कार्य करने के लिए वर्कशॉप भी है और भाषा प्रयोगशाला भी। यह गोष्ठी कक्ष भी है और आवश्यकता पड़ने पर सभा कक्ष भी।

भाषा कक्ष की साज-सज्जा आकर्षक, सुरक्षिपूर्ण और माहिमा मंडित होनी चाहिए। इसके उपस्कार और उपकरण आवश्यकता के अनुसार होने चाहिए। यदि इस कक्ष को साउंड प्रूफ बनाया जा सके तो और भी अच्छा रहे। भाषा कक्ष में वायु, प्रकाश, बिजली आदि की उचित व्यवस्था होनी चाहिए ताकि फ़िल्म आदि प्रदर्शन में सुविधा रहे।

भाषा कक्ष की दीवारों पर साहित्यकारों के चित्र संक्षिप्त जीवनी सहित लगे होने चाहिए। कवियों, उपन्यासकारों, नाटककारों की कृतियों के चार्ट, काल क्रम अथवा वादों या मुख्य प्रवृत्तियों के आधार पर वर्गीकृत करके प्रदर्शित किए जा सकते हैं।

ध्वनि अवयवों के मॉडल, उच्चारण स्थान संबंधी चार्ट, कवियों तथा लेखकों के कविता पाठ या भाषणों के टेप, भाषा कक्ष की अमूल्य धरोहर मानी जानी चाहिए।

VIII. भाषा अध्यापक और उसकी पुस्तकालय संबंधी भूमिका

भाषा अध्यापक की पुस्तकालय के प्रति रुचि जाग्रत करने की विशेष भूमिका है। विद्यार्थी किसी भी विषय की पुस्तक पढ़ें मूलतः वह पठन ही है। पठन में रुचि जाग्रत करना तथा रुचि को स्थायी रूप देना भाषा अध्यापक का दायित्व है। प्रज्वलित दीपक ही दूसरे दीपक को प्रकाशित कर सकता है। अतः यह आवश्यक है कि भाषा अध्यापक स्वयं पठनशील प्रवृत्ति का हो। उसे पुस्तकालय की समस्त पुस्तकों के बारे में सामान्य तथा विशिष्ट पुस्तकों के बारे में पूरी जानकारी हो।

यदि कक्षा में शिक्षण के समय भाषा अध्यापक अतिरिक्त पठन के लिए पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तकों तथा उनके अध्यायों आदि का संदर्भ देगा तो स्वभावतः विद्यार्थी उस सामग्री को पढ़ना पसंद करेंगे। जैसे गोताखोर को विभिन्न स्थानों पर जल की गहराइयों का ज्ञान होता है, तथा किस सतह पर किस प्रकार के जल-जन्तु मिलते हैं, उन जल-जन्तुओं का क्या स्वभाव है आदि का ज्ञान होता है उसी प्रकार भाषा अध्यापक को अनेक अलमारियों, रैकों आदि में रखी पुस्तकों का ज्ञान होना चाहिए। मनुष्य स्वभाव से प्रमादी भी होता है। उसे कोई पुस्तक सहज उपलब्ध नहीं हुई तो वह मैदान छोड़ भागेगा। ऐसी स्थिति में गुरु ही उसके मार्ग को प्रशस्त कर सकता है।

पुस्तकालय और पुस्तकों में रुचि जाग्रत करने के लिए भाषा अध्यापक निम्नलिखित कार्य-कलाप कर सकता है :—

1. पुस्तक सूची तैयार कराना।
2. नाटक, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं के आधार पर पुस्तकों और लेखकों की सूचियाँ तैयार कराना।
3. पुस्तकों की समीक्षा कराना।
4. विशेष जयन्तियों के अवसर पर लेखकों कवियों आदि की कृतियों की प्रदर्शनी लगवाना।
5. साहित्यकारों के चित्रों के चार्ट बनवाना तथा सूक्ति-दोहे आदि के चार्ट बनवाना।
6. जीवित साहित्यकारों को विद्यालय में आमंत्रित करना और उनकी कृतियाँ पढ़ने को प्रेरित करना।
7. कविता पाठ, एकांकी, कहानी, लोकगीत, अंत्याक्षरी आदि की प्रतियोगिताओं का आयोजन करना तथा तत्संबंधी साहित्य का पुस्तकालय में उपलब्ध सामग्री से संदर्भ देना।
8. विशेष विषयों पर वाद-विवाद, संभाषण, चर्चा आदि का आयोजन करना और तत्संबंधी साहित्य का पुस्तकालय में उपलब्ध सामग्री का

संदर्भ देना ।

9. पुस्तकालय अध्यक्ष के सहयोग से बच्चों को छोटे समूहों में बाँट कर पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तकों का व्यौरेवार परिचय देना ।
10. भित्ति पत्रिका, हस्तलिखित पत्रिका तैयार करना और उनकी प्रतियों की जिल्दबंदी कराकर पुस्तकालय में रखना तथा पुरानी हस्तलिखित पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना ।
11. बच्चों द्वारा पठित पुस्तकों का व्यौरा रखवाना ।
12. मूल्यांकन के समय बहुपठित विद्यार्थियों को अतिरिक्त अंक देना या पुरस्कार की व्यवस्था करना ।

व्यावहारिक कार्य

1. वाचनालय की पत्रिकाओं की सूची बनवाना तथा उनके संपादकों, प्रकाशन-अवधि, प्रकाशन संस्थान तथा मूल्य का विवरण लिखवाना ।
2. पुस्तकों की विषय के अनुसार सूचियाँ बनवाना ।
3. पुस्तकों के लेखकों की सूची कोशक्रम से तैयार करवाना ।
4. कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता आदि की पुस्तकों की सूची बनवाना ।
5. संदर्भ ग्रंथों की सूची बनवाना ।
6. संदर्भ ग्रंथों में बाँछित सामग्री खोजने की कला से परिचित कराना ।
7. साहित्यकारों के चित्र बनवाना ।
8. विशेष जयंतियों के अवसर पर बुलेटिन बोर्डों पर कतरन लगवाना ।
9. वाचनालय तथा पुस्तकालय के महत्त्व से संबंधित सूक्तियों की सूचियाँ तैयार करवाना ।
10. पुस्तकों की समीक्षा लिखवाना ।
11. समाचार पत्रों से दैनिक समाचार लिखवाना ।
12. प्रार्थना सभा के समय मुख्य समाचार पढ़वाना ।
13. पुस्तकालय में उपलब्ध श्रव्य-दृश्य साधनों की सूची तैयार करवाना ।
14. प्रदर्शनियों का आयोजन करना ।

संदर्भ

1. विद्यालय पुस्तकालय, प्रभु नारायण गौड़—बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना (1977) ।
2. शिक्षा आयोग (1964-66) ।
3. शिक्षा कोश, आत्मानंद मिश्र, ग्रंथम—रामबाग, कानपुर (उ० प्र०) (1977) ।

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. 'पुस्तकालय के बिना अच्छे विद्यालय की कल्पना नहीं की जा सकती', पुस्तकालय के महत्त्व और आवश्यकता के संदर्भ में इस कथन की समीक्षा करें ।
2. 'पुस्तकालय के सदुपयोग में भाषा अध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका है', इस कथन की समीक्षा करते हुए बताएँ कि बच्चों में पुस्तकालय के प्रति किस प्रकार रुचि जाग्रत की जा सकती है ?
3. पुस्तकालय में पुस्तक चयन का क्या आधार होना चाहिए ? एक अच्छे पुस्तकालय में आप किस प्रकार की पुस्तकें सम्मिलित करना चाहेंगे ?
4. पुस्तकालय में पुस्तकों के अतिरिक्त किस प्रकार की सामग्री या उपस्कर होने चाहिए ? संक्षेप में लिखें ।
5. टिप्पणी लिखें—
 1. पुस्तकालय की पत्र-पत्रिकाएँ ।
 2. पुस्तकालय अध्यक्ष के गुण ।
 3. भाषा कक्ष ।
 4. पुस्तकालय में विद्यार्थियों द्वारा सम्पन्न समाज-उपयोगी उत्पादक-कार्य ।
 5. शैशव अवस्था की पठन रुचि के क्षेत्र ।

अध्याय 24

जनसंचार माध्यम तथा श्रव्य-दृश्य सामग्री

I. जनसंचार माध्यम

1. आवश्यकता तथा महत्व

जिस प्रकार बीज से नवोदित अंकुर मृदा का भेदन करके मौसम के सभी आघातों का सामना करता हुआ अपना सुकोमल मुख समुन्नत कान्ता हुआ विशाल वट वृक्ष का रूप धारण कर लेता है उसी प्रकार नवोदित समाज आवश्यकतानुसार अपना मार्ग प्रशस्त करता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लेकर इक्कीसवीं सदी के प्रवेश की तैयारी तक देश ने समाज की शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिए बहुमुखी कदम उठाए हैं। विशाल जनसंख्या के देश भारत में सभी के लिए न्यूनतम शिक्षा की व्यवस्था बिना जनसंचार माध्यमों के उपयोग के असम्भव है। अनौपचारिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए इन माध्यमों का महत्व सहस्रगुणित बढ़ गया है।

अणु, स्पुतनिक, कम्प्यूटर तथा अंतरग्रह यात्रा-युग में जो राष्ट्र जनसंचार के माध्यमों का विकास और सदुपयोग नहीं करेगा वह पिछड़ जाएगा। इसी अभाव पूर्ति के लिए भारत ने अमरीका और रूस के सहयोग से अन्तरिक्ष में आर्यभट्ट, रोहिणी, इनसेट आदि बनावटी उपग्रह स्थापित करने के लिए सहयोग माँगा। स्वयं थुंबा में प्रक्षेपणास्त्रों के लिए केन्द्र स्थापित किया और उन रीति-प्रगतिशील योजनाएँ बनाईं। औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय अभिकरणों से उपग्रहों को किनाए पर लिया। ये सभी सद्प्रयास उन्नति के लिए दृढ़ संकल्प राष्ट्र की अंतर्भावना के चेतक हैं।

आर्थिक और औद्योगिक उन्नति के लिए शिक्षा में प्रौद्योगिकी का बहुत महत्व है। इसकी उपेक्षा आत्मघाती सिद्ध हो सकती है। भारत की नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अधीन निर्मित पाठ्यचर्या की प्रस्तावना में जनसंचार के उपयोग के महत्व को दर्शाते हुए ठीक ही कहा गया है कि जनचेतना, शिक्षा के गुणात्मक विकास, संस्कृति, सृजनात्मक शक्ति के विकास, समाज तथा पर्या-

वरणों के प्रति जागरूकता, राष्ट्रीय विकास तथा शिक्षा और छात्रों की सतत शिक्षा के लिए आकाशवाणी, दूरदर्शन, वीडियो तथा कम्प्यूटर का प्रयोग विशाल स्तर पर करने की आवश्यकता है। यही कारण है कि नई शिक्षा नीति के सफल कार्यान्वयन के लिए जनसंचार माध्यमों का उपयोग बड़े स्तर पर अपनाने का निश्चय किया गया है।*

विद्यालयों में संचार साधनों की उपलब्धि मात्र शोभा और सम्मान का प्रश्न नहीं है। ये साधन बालक-बालिकाओं के ज्ञानवर्धन के साथ-साथ उनके संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास के लिए भी उपयोगी सिद्ध होते हैं। सामान्य से कम बुद्धि वाले बच्चों का ध्यान निरंतर केन्द्रित करने और उनके ज्ञान को स्थायी बनाने के लिए जन संचार के साधन सोने पर सुहागे का काम करते हैं।

संचार के साधनों के उपयोग से समय और शक्ति की बचत होती है। शोध पर आधारित आँकड़ों से पता चला है कि जनसंचार के साधनों द्वारा शिक्षा दिए जाने से 33 % समय तक की बचत होती है। विज्ञान के युग में समय का बहुत महत्व है अतः शिक्षा में इन माध्यमों को अपनाया जा रहा है।

शिक्षा में जनसंचार के साधनों का प्रयोग शिक्षा के लिए बहुत सहायक सिद्ध होगा। इन साधनों के प्रयोग से उनमें ज्ञान, कौशल, उपाय, कुशलता, कल्पना-शक्ति का विकास होगा और शिक्षण विधि में सुधार से वे अधिक सफल अध्यापक बन सकेंगे।

संचार के माध्यमों का महत्व देखते हुए सरकार ने समाज सेवा और व्यापारिक संस्थाओं को शैक्षिक कार्यक्रमों के निर्माण के लिए आमंत्रित किया है और दूरदर्शन तथा आकाशवाणी पर इनके द्वारा प्रवर्तित कार्यक्रमों को नागरिक शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिए उपयोग में लाया जा रहा है। ये कार्यक्रम स्कूल की दीवारें लाँघ कर इन साधनों की सामाजिक उपादेयता सिद्ध कर रहे हैं।

*Using educational massmedia and educational technology, including radio, T.V., Video and computers in a massive way for creating general awareness of the quality of education and its relevance to culture, creativity, societal and environmental concerns, national development and for the continuing education of teachers and students and a tool for evolving new participative and interactive modes of teaching and learning —

National Curriculum for Primary and Secondary Education—A Framework,—Preface, NCERT (Jan, 86);

2. शिक्षा में जनसंचार साधनों की व्यवस्था

क. विकासोन्मुखी कार्यक्रम

शिक्षा शास्त्रियों ने देश के नेताओं और प्रशासकों को बहुत पहले अपनी इस मान्यता को स्वीकार करा लिया था कि वे जनसंचार के माध्यम से बहुत आसानी से विशाल जनसंख्या तक पहुँच सकते हैं। आकाशवाणी का शिक्षा में प्रयोग आधी शताब्दी से अधिक समय से हो रहा है। दिल्ली में शिक्षा के लिए दूरदर्शन का प्रयोग सन् 1961 से आरंभ हो गया था।

सन् 1974 में उपग्रह की सहायता से शैक्षिक दूरदर्शन की व्यवस्था आरंभ की गई। इस योजना के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों तक शिक्षा का प्रचार करने का सफल प्रयास किया गया। अब भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह के माध्यम से शैक्षणिक प्रसारण हो रहा है। आज आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा तथा उत्तर प्रदेश में शैक्षिक दूरदर्शन की व्यवस्था है।

आजकल भारत में लगभग दो सौ दूरदर्शन केन्द्रों द्वारा देश की जनसंख्या के 78% भाग के लिए दूरदर्शन कार्यक्रम उपलब्ध हैं। सातवीं पंच-वर्षीय योजना में इसके विस्तार की विपुल संभावनाएँ हैं।

ख. शैक्षिक सामग्री का निर्माण

आकाशवाणी और दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों का उत्पादन या निर्माण कई स्तर पर हो रहा है। एन. सी. ई. आर. टी. का केन्द्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान (सी. आई. ई. टी.) इस विषय में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यहाँ तैयार किए गए कार्यक्रमों को विभिन्न भारतीय भाषाओं में “डब” या अनूदित किया जाता है।

कुछ राज्यों के अपने राज्य शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान (एस. आई. ई. टी.) हैं। ये संस्थान भी शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रम तैयार करते हैं।

आकाशवाणी के लगभग 50 केन्द्र शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण करते हैं। ये कार्यक्रम विषय विशेषज्ञों की सहायता से तैयार किए जाते हैं। इन सभी कार्यक्रमों का निरंतर मूल्यांकन भी किया जाता है।

अनौपचारिक शिक्षा या नान फारमल शिक्षा के प्रसार के लिए दूरसंचार के शैक्षिक कार्यक्रमों का महत्व और भी बढ़ गया है। प्रौढ़ शिक्षा विभाग भी इन कार्यक्रमों से लाभान्वित हो रहा है।

शैक्षिक कार्यक्रमों के प्रसारण की सूचना प्रकाशित कार्यक्रमों द्वारा तथा समाचार पत्रों के माध्यम से अग्रिम प्रचारित कर दी जाती है। दूरसंचार माध्यम भी अपने कार्यक्रमों में इसकी सूचना नियमित रूप से देते रहते हैं।

वास्तव में संचार माध्यम और अध्यापकों के बीच कोई प्रतिस्पर्धा की

भावना नहीं है। संचार साधन अध्यापक का पद कभी नहीं छीन सकते। ये साधन अध्यापक का काम सरल करने के लिए हैं ताकि वह अपना अतिरिक्त समय अन्य रचनात्मक कार्यों के लिए बचा सके।

अध्यापक संचार माध्यम से प्राप्त पाठ से पहले और पाठ के बाद प्रसारित विषय के बारे में आवश्यक जानकारी दें और विद्यार्थियों की उत्सुकता को बनाए रखें। हमें सदा ध्यान रहे कि यह साधन काफ़ी महंगा है और इसी भावना से इसका सदुपयोग होना चाहिए।

3. दूरसंचार साधन और भाषा शिक्षण

दूरदर्शन के विषय में सामान्यतः यह धारणा रही है कि इससे विज्ञान और भूगोल जैसे विषयों को ही पढ़ाया जा सकता है। यदि थोड़ा विस्तार करें तो गणित तथा इतिहास के कुछ विषय दूरदर्शन कार्यक्रमों में सम्मिलित किए जा सकते हैं। आकाशवाणी के माध्यम से इतिहास भी पढ़ाया जा सकता है। अभी भाषा शिक्षा को सामान्यतः इस संचार माध्यम से दूर ही रखा गया है।

संचार प्रौद्योगिकी के विकास के साथ अब यह बात स्पष्ट हो गई है कि भाषा का शिक्षण भी संचार माध्यमों से सफलतापूर्वक किया जा सकता है। भाषा के कुछ ऐसे विषय हैं जो मात्र इन साधनों से ही आदर्श रूप से पढ़ाए जा सकते हैं। नीचे दूरसंचार के माध्यम से पढ़ाए जा सकने वाले भाषा संबंधी क्षेत्रों का संकेत दिया जा रहा है :—

(1) उच्चारण की शिक्षा

राष्ट्र भाषा हिन्दी के मानक उच्चारण का निश्चित स्वरूप है। बोलियों और उपबोलियों के देश भारत में हिन्दी उच्चारण इन बोलियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। दूरदर्शन और आकाशवाणी पर ऐसे विद्वानों को आमंत्रित किया जा सकता है जिनका स्वयं का उच्चारण मानक हो। उच्चारण स्पष्ट करने के लिए दूरदर्शन पर उच्चारण अवयव संबंधी मॉडलों का प्रदर्शन किया जा सकता है। उच्चारण स्थानों को स्पष्ट करने के लिए ध्वनि संबंधी उपकरणों की सहायता ली जा सकती है। संचार माध्यमों से मानक और अमानक उच्चारण की तुलना की जा सकती है।

(2) काव्य पाठ

काव्य पाठ एक कला है। इसका अभ्यास तभी हो सकता है जब बालक स्वयं कवि कंठ से कविताएँ सुनें। दूरदर्शन तथा आकाशवाणी दोनों साधनों का उपयोग इस कार्य के लिए किया जा सकता है।

(3) भाषण कला

किसी भी प्रजातांत्रिक देश में भाषण कला के महत्त्व को कम नहीं किया जा सकता। भाषण कला अनुकरण और अभ्यास द्वारा विकसित होती है। दूरदर्शन और आकाशवाणी दोनों साधन इस कला का अभ्यास देने में सक्षम हैं। दूरदर्शन के माध्यम से बालक अंग संचालन, हावभाव, भावानुकूल भाषा आदि गुणों का अनुसरण कर सकते हैं।

(4) संवाद

संवाद नाटक का महत्वपूर्ण अंग है। दूरदर्शन और आकाशवाणी के माध्यम से इस कौशल के विकास का अभ्यास सफलतापूर्वक कराया जा सकता है। नाटक, एकांकी के संवादों के माध्यम से बच्चों में चारित्रिक गुणों का विकास भी होता है।

(5) साहित्यकारों से परिचय

विद्यार्थी पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित कविताओं, कहानियों, निबन्धों आदि के रचयिता से मुलाकात नहीं कर सकते। यह उनके लिए असंभव भी है। दूरदर्शन तथा आकाशवाणी इन साहित्यकारों को अपने केन्द्रों में आमंत्रित करके इन्हें विद्यार्थियों तक पहुँचा सकते हैं। उनके दर्शन और उनकी वाणी के श्रवण से विद्यार्थियों में उनके प्रति अधिक आस्था उभरेगी और विद्यार्थियों में भी साहित्यिक प्रवृत्तियों का बीजारोपण होगा।

(6) सांस्कृतिक परिचय

भारत के विभिन्न आंचलों में अनेक प्रकार की संस्कृतियाँ पल रही हैं। दूरसंचार के साधन इन संस्कृतियों पर विशेष डाक्यूमेंटरी, फ्रीचर फ़िल्म, फ्रीचर आलेख आदि तैयार करके इनका प्रसारण कर सकते हैं। इससे बच्चे भारत में मिश्रित संस्कृति के महत्त्व की प्रशंसा करना सीख सकते हैं। एक दूसरे की संस्कृति, धर्म आदि के बारे में सहिष्णुता जाग्रत करने का संचार माध्यम बहुत उपयोगी साधन है।

(7) महापुरुषों का जीवन

महापुरुषों के जन्मस्थान की चित्रमय या ध्वनिमय झाँकी, उनके संदेश का प्राकृतिक ध्वनि में प्रसारण, उनके अटन के स्थानों के बारे में जानकारी देना कक्षा अध्यापक की सीमा में नहीं है। दूर संचार के माध्यम से इस अभाव की पूर्ति की जा सकती है।

(8) जीवन मूल्यों का निर्माण

आज जीवन मूल्यों के विकास की बहुत आवश्यकता है। दूरसंचार के माध्यम से विशेष घटनाओं, कहानियों, धर्म-ग्रंथों की कथा-कहानियों द्वारा वांछित जीवन मूल्यों का विकास कराया जा सकता है। हमारा पुराना साहित्य जीवन मूल्य की कथा और कहानियों से परिपूर्ण है। उस काल में वेदव्यास जैसे ज्ञागरूक लेखकों ने जीवन के हर पहलू का आदर्श रूप प्रस्तुत किया था।

(9) अर्थ स्पष्टीकरण

शब्द भंडार का क्रमिक विकास भाषा शिक्षण का एक महत्वपूर्ण पहलू है। अनेक शब्दों का संबंध ऐसी वस्तुओं, ध्वनियों या क्रियाओं से है जो पाठक या श्रोता की अनुभव परिधि से बहुत दूर होते हैं। वह जीवन भर उन वस्तुओं, क्रियाओं या घटनाओं को देख भी नहीं सकता। इन शब्दों का अर्थ शब्दों द्वारा भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में दूरदर्शन तथा आकाशवाणी हमारे सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

उदाहरण के लिए कुछ संज्ञा शब्दों को लें। केकड़ा, त्वेल, अनेक वर्ग की मछलियाँ तथा अन्य ऐसे जलजीव हैं जिनको समुद्रतल से बहुत दूर रहने वाले कभी भी नहीं देख सकते। इनकी संकल्पना को शब्दों द्वारा कितना भी स्पष्ट करें वे सभी अधूरी रह जाएँगी। दूसरी ओर दूरदर्शन पर इन जंतुओं को जीवंत अवस्था में अटछेलियाँ करते दिखाया जा सकता है।

शेर का दहाड़ना, हाथी का चिंवाड़ना, गीदड़ का हुकहुकाना तथा जंगल के अन्य जीवों की बोलियाँ सुनने का अवसर कितने व्यक्तियों को मिल पाता है? दूरदर्शन और आकाशवाणी जैसे दूर संचार के साधन हमें इसका अवसर प्रदान कर सकते हैं।

समुद्रों, पहाड़ों, रेगिस्तान तथा मैदानी क्षेत्रों में नित्य ऐसी क्रियाएँ होती रहती हैं जिन्हें दूर दराज के क्षेत्र वाले व्यक्ति नहीं देख पाते। ज्वार, भाटा, हिमपात, तुषारपात, धुंध, पाला, चक्रवात जैसी प्राकृतिक घटनाएँ हर स्थान पर घटित नहीं होती। इन घटनाओं को दूरदर्शन पर दिखा कर इन शब्दों की मूल संकल्पना को स्पष्ट किया जा सकता है।

चरसे, ढेंकली, रहट आदि जल सिंचाई के साधन हर क्षेत्र में नहीं हैं। इनकी क्रियाओं को दूरदर्शन पर सुगमता से दिखाया जा सकता है। इस प्रकार एक चित्र सैकड़ों शब्दों का काम दे सकता है।

(10) अन्य भाषायी कौशल

दूरदर्शन या आकाशवाणी पर प्रस्तुत किया जाने वाला पाठ एक व्यक्ति-विशेष का पाठ नहीं होता। यह एक दल शिक्षण या टीम टीचिंग विधि है जिसमें एक व्यक्ति प्रकट रूप से रहता है और शेष प्रच्छन्न या गुप्त रूप से अपना कार्य सम्पन्न कर चुके होते हैं। परिणामतः ये विषय विशेषज्ञ भाषा के किसी भी कौशल पर रोचक पाठ का निर्माण कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए लेखन कौशल को ही लें। आदर्श लिपि तथा आलंकारिक लिपि के नमूने नामपटों की सहायता से दिखाए जा सकते हैं। वर्तनी की अशुद्धियों को वर्गीकृत करके एक-एक अशुद्धि पर ऐनीमेशन क्रिया द्वारा रोचक पाठों का निर्माण हो सकता है।

मौलिक लेखन के विकास के लिए ऐसे दृश्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं जो विद्यार्थी ने कभी देखे सुने नहीं हैं। बच्चों को इन दृश्यों के विषय में मौलिक रचना लिखने को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

पठन संबंधी पाठ तो अविस्मरणीय विधि से प्रस्तुत किए जा सकते हैं। वर्णमाला, मात्रा ज्ञान, शब्द निर्माण के सरल क्षेत्रों से लेकर उचित गति, उचित आरोह-अवरोह, अनुतान, भावानुकूल पठन आदि तक के पठन के उच्च-कौशल दूरदर्शन और आकाशवाणी पर प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

किं वदुना दूरसंचार के माध्यमों से शिक्षा भारत के लिए नया क्षेत्र है। कल्पना प्रणव अध्यापकों की सहायता से इस क्षेत्र में असाधारण कार्य किया जा सकता है।

4. दूरसंचार साधन और अध्यापक प्रशिक्षण

दूरसंचार शिक्षण विधि के विकासात्मक कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों के दलों की आवश्यकता पड़ेगी। इसके लिए अध्यापक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रमों में तुरंत व्यावहारिक परिवर्तन करने पड़ेंगे। आज विदेशों की घिसी पिटी प्रणालियाँ पाठ्यक्रम का मुख्य विषय बनी हुई हैं। प्रशिक्षण के व्यावहारिक पक्ष आज भी उपेक्षित हैं। आज केवल अध्यापन प्रशिक्षण के कुछ पाठ देकर प्रशिक्षण कार्य की इतिश्री समझ ली जाती है।

दूर संचार के माध्यम से अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए दो चरणों की योजना बनानी होगी—अवलंब और दूरगामी। अवलंब योजना के अनुसार सेवारत अध्यापकों को प्रशिक्षित करना होगा और दूरगामी योजना के अनुसार विद्यालयी पाठ्यक्रम में आवश्यक सुधार करने पड़ेंगे।

अवलंब कार्यक्रम को भी दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग में अध्यापकों को इन कार्यक्रमों के लिए आलेख लिखने का अभ्यास देना

होगा और दूसरे भाग में इन जनसंचार के साधनों के उचित रखरखाव संबंधी क्रियात्मक जानकारी देनी होगी ताकि वे तकनीकी विशेषज्ञ की प्रतीक्षा किए बिना छुटपुट कार्य स्वयं कर सकें।

दूरगामी योजना के अनुसार दसवीं या बारहवीं कक्षा के पाठ्यक्रम में दूर-संचार की मशीनों के रख रखाव की विधि को स्थान देना होगा। जिस प्रकार अर्थशास्त्र, भूगोल आदि विषय पढ़ाए जाते हैं, उसी प्रकार शिक्षा नामक विषय को लोकप्रिय बनाना होगा। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की अवधि बढ़ानी होगी और दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के लिए पाठ लिखने का व्यापक अभ्यास कराना होगा।

यह प्रसन्नता का विषय है कि एन. सी. ई. आर. टी. का केन्द्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान इस प्रकार के पाठ्यक्रमों का आयोजन ग्रीष्मकालीन संस्थान आदि के रूप में सम्पन्न कर रहा है। पूर्व प्रशिक्षित और सेवारत अध्यापक इसका लाभ उठा सकते हैं। इसी प्रकार के पाठ्यक्रमों का प्रशिक्षण प्रादेशिक स्तर पर अन्य भारतीय भाषाओं में भी दिए जाने की व्यवस्था होनी चाहिए तभी हम इक्कीसवीं सदी के कम्प्यूटर युग में सफलतापूर्वक प्रवेश कर सकते हैं।

दूरसंचार साधनों की शिक्षा में उपयोगिता सिद्ध करने के बाद आइए श्रव्य-दृश्य साधनों के उपयोग के बारे में कुछ और विस्तार से चर्चा करें।

II. श्रव्य-दृश्य साधन

1. सामान्य परिचय

अति प्राचीन काल में जिन दिनों शिक्षा मौखिक थी तथा प्रौद्योगिकी का विकास नहीं हो पाया था उस समय भी जन सामान्य को दी जाने वाली शिक्षा में श्रव्य और दृश्य साधनों का प्रयोग किया जाता था। नाटक रंगमंच की स्वस्थ परंपरा अति प्राचीन है। रंगमंच का आकार, यवतिका या पर्दों की व्यवस्था, सूत्रधार तथा अन्य पात्रों की वेशभूषा से लेकर सूक्ष्म विधानों तक का वर्णन संस्कृत वाङ्मय में सविस्तार मिलता है। कालिदास से नाटककारों की अमर कृतियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि शिक्षा में श्रव्य और दृश्य साधनों का प्रयोग कितना प्राचीन है।

कुछ अनुदार यवन शासकों की संगीत नाटक के प्रति उदासीनता तथा बाद में आंग्ल शिक्षा के बढ़ते वर्चस्व से हमारी श्रव्य-दृश्य शिक्षा के महत्त्व की उपेक्षा होती चली गई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमने इस के महत्त्व को समझा और शिक्षा के क्षेत्र में इसकी पुनर्स्थापना होने लगी। भारत के हर राज्य में दृश्य-श्रव्य मंडल

की स्थापना की गई। राज्य में एक विशिष्ट अधिकारी की नियुक्ति तथा प्रशिक्षण संस्थानों में दृश्य-श्रव्य सामग्री के संग्रहालय की स्थापना जैसे महत्त्वपूर्ण सुझाव सामने आए।

दिल्ली में इंस्टीट्यूट आफ ऑडियो विजुअल एजुकेशन की स्थापना की गई। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य श्रव्य-दृश्य सामग्री का निर्माण तथा अध्यापकों को उचित प्रशिक्षण देना है।

बहुत से विद्यालयों को प्रोजेक्टर और केन्द्रीय फ़िल्म डिवीजन से चलचित्र उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई। आज हमारे विद्यालयों में दूरदर्शन तथा आकाशवाणी जैसे संचार साधनों की व्यवस्था है। एन. सी. ई. आर. टी. का केन्द्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान है तथा अन्य राज्यों में प्रौद्योगिकी केन्द्रों के अतिरिक्त दृश्य-श्रव्य सामग्री निर्माण के केन्द्र, कठपुतली आदि के निर्माण और उनके प्रयोग के प्रशिक्षण की व्यवस्था है। हमारे विद्यालयों की शिक्षा को रोचक बनाने के लिए नर्सरी विद्यालय से लेकर उच्चतम विद्यालय तथा विश्वविद्यालय की शिक्षा तक श्रव्य-दृश्य साधनों का प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। वर्तमान समय में विद्यालय में कम्प्यूटर का प्रवेश हो चुका है। इन साधनों के माध्यम से हम आकाश से पाताल तक की जानजारी बच्चों को दे रहे हैं। ओपन विश्वविद्यालय तथा दूरस्थ शिक्षा दूरसंचार के साधनों के प्रयोग से ही सफल हो सकते हैं।

2. श्रव्य-दृश्य सामग्री की आवश्यकता तथा महत्त्व

हम अपना ज्ञान ज्ञानेंद्रियों द्वारा ग्रहण करते हैं। त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होता है। कौन वस्तु कोमल या कठोर है, ठंडी या गरम है, गीली या सूखी है इसका ज्ञान स्पर्श से होता है। सुगंध-दुर्गंध आदि का ज्ञान नासिका से होता है। जिह्वा खट्टे-मीठे, चरपरे, नमकीन आदि का ज्ञान कराती है। कानों से हम सुनते हैं। श्रवण के माध्यम से हमें विपुल ज्ञान राशि उपलब्ध होती है। नेत्रों से हम देखते हैं और हमें अधिकांश ज्ञान देखने से ही प्राप्त होता है। बिना नेत्रों के सारा संसार अंधकारमय है।

हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ जहाँ ज्ञान संचय का प्रमुख साधन रही हैं वहाँ इन्हें नरक का द्वार भी माना गया है। एक श्लोक* में कहा गया है कि मृग की कर्णेन्द्रिय (संगीत प्रियता), हाथी की स्पर्शेन्द्रिय (कामान्धता), पतंग की नेत्रेन्द्रिय (प्रकाश की ओर आकर्षण), भ्रमर की घ्राणेन्द्रिय (कमल गंध के लोभ में

कुरंग मातंग पतंग भृंग-मीनाः हताभिः पंचभिरेव पंचः।

एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पंचभिरेव पंचः॥

फँसना) तथा मीन की रसनेन्द्रिय (शिकारी का काँटा निगलना) उनके विनाश का कारण बनती है, फिर मनुष्य की तो पाँचों इन्द्रियाँ ही प्रबल हैं, वह क्यों नहीं विनाश को प्राप्त होगा।

आधुनिक युग में हमारे शिक्षा शास्त्रियों ने ज्ञानेन्द्रियों को कोसने की बजाय उनके सबल पक्ष का लाभ शिक्षा की उपयोगिता के लिए उठाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने ऐसे श्रव्य-दृश्य साधनों का विकास किया है जिससे शिक्षा रुचिपूर्ण ढंग से ग्रहण की जा सके।

वास्तव में श्रव्य-दृश्य शिक्षा का तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है जिसके द्वारा दृश्य एवं श्रव्य अथवा दोनों प्रकार की सहायक सामग्री का प्रयोग करके शिक्षा को अधिक रोचक, स्पष्ट, स्थायी और प्रभावकारी बनाया जा सके। इसमें वास्तविक वस्तु, मॉडल, नमूने, चित्र, छायाचित्र, चलचित्र, लिग्नाफोन, ग्रामोफोन, टेपरिकार्डर आदि उपकरणों का प्रयोग किया जाता है ताकि पाठ्यवस्तु की व्याख्या के प्रति न्याय किया जा सके।

व्यापक अर्थ में हर दृश्यमान वस्तु दृश्य सामग्री है। जैसे कक्षा में पढ़ाते समय दरवाज़े, खिड़की, पंखे, डेस्क या स्वयं छोटे-बड़े विद्यार्थियों की ओर संकेत करना और उनके अर्थ को समझाना। शिक्षा में इन उपकरणों से अभिप्राय उन साधनों के उपयोग से है जिनसे बच्चा अपनी ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग करते हुए प्राकृतिक विधि से स्थायी अनुभव प्राप्त करता है। वह किसी तथ्य को रटता नहीं है अपितु उसका उन उपकरणों की सहायता से अनुभव करता है। ज्ञानेन्द्रियों से अनुभव करना ही शिक्षा है। इस अनुभव से ही उसके व्यवहार में परिवर्तन आता है।

मंद बुद्धि या सामान्य से कम योग्यता वाले बच्चे अमूर्त संकल्पनाओं को समझने में असफल होते हैं। श्रव्य तथा दृश्य साधन उन संकल्पनाओं को मूर्तरूप देने में सहायक होते हैं। इसी कारण ऐसे बच्चों के लिए इन उपकरणों की उपादेयता बढ़ती जा रही है।

आकाशवाणी तथा दूरदर्शन जैसे संचार के साधन सहयोगी शिक्षक का काम अवश्य करते हैं किन्तु उनका सहयोग निश्चित समय पर ही मिल सकता है। वे अधिक व्यय साध्य हैं और सरकारी प्रश्रय के बिना उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। श्रव्य-दृश्य साधन स्थानीय आवश्यकता के अनुसार हर समय उपलब्ध हो सकते हैं।

3. श्रव्य-दृश्य साधनों के प्रकार

श्रव्य-दृश्य साधनों को मोटे रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

क. श्रव्य ।

ख. दृश्य ।

ग. श्रव्य तथा दृश्य ।

श्रव्य-दृश्य साधन

1	2	3
श्रव्य	दृश्य	श्रव्य तथा दृश्य
1. रेडियो सेट	सामान्य	यांत्रिक
2. ग्रामोफोन	1. श्यामपट्ट	1. चित्र विस्तारक
3. टेप रिकार्डर/ ऑडियो टेप	2. चित्र	(एपीडाइस्कोप)
4. लिंग्वाफोन	3. रेखाचित्र	2. चित्र दर्शक यंत्र
5. डिस्क रिकार्डर	4. मास चित्र	3. फ़िल्म स्ट्रिप
6. भाषा प्रयोगशाला	5. चार्ट	प्रोजेक्टर
	6. भित्ति पत्रिका	4. स्टिरियोस्कोप
	7. पाठ्य पुस्तक	
	8. पत्र-पत्रिकाएँ	
	9. संग्रहालय	
	10. वस्तु प्रतिमा (मॉडल)	

इन तीनों ही प्रकार के साधनों का प्रयोग भाषा शिक्षण में सफलतापूर्वक किया जा सकता है। नीचे इन साधनों का संक्षिप्त वर्णन और उनकी उपादेयता पर प्रकाश डाला जा रहा है।

क. श्रव्य साधन या उपकरण

पहले इस बात का संकेत दिया जा चुका है कि श्रव्य उपकरण वे उपकरण हैं जिनमें ज्ञानार्जन के लिए मुख्यतः श्रवणेंद्रियों का प्रयोग होता है। ये मुख्य उपकरण हैं :—

1. रेडियो 2. ग्रामोफोन 3. टेप रिकार्डर 4. डिस्क रिकार्डर 5. लिंग्वा-फोन 6. फोनोग्राफ ।

1. रेडियो सेट—रेडियो सेट के उपयोग के विषय में जनसंचार के साधनों का वर्णन करते समय विस्तार से चर्चा हो चुकी है। रेडियो के कार्यक्रमों में बच्चे श्रोता और वक्ता दोनों रूपों में भागीदार हो सकते हैं। इसके द्वारा पद्य

और गद्य दोनों प्रकार की औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा दी जा सकती है।

पद्य शिक्षण—आकाशवाणी द्वारा औपचारिक शिक्षा के रूप में पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तक से संबंधित पाठों का प्रसारण किया जा सकता है। अनौपचारिक शिक्षा के लिए कविता पाठ, कविता वाचन, सुभाषित प्रतियोगिता, अन्याक्षरी, समस्यापूर्ति, कवि सम्मेलन, कवि जयंती, कवि गोष्ठी आदि का आयोजन किया जा सकता है।

गद्य शिक्षण—आकाशवाणी से प्रसारित कहानी, निबंध, वार्ताएँ, भाषण, नाटक, वाद विवाद प्रतियोगिता, विचार विमर्श, पुस्तक समालोचना आदि से विद्यार्थियों में भाषा ज्ञान की अभिवृद्धि होती है। पत्र-पत्रिकाओं के समाचार भी विद्यार्थियों को रोचक लगते हैं और इनके सुनने से उनका उच्चारण भी शुद्ध होता है। आकाशवाणी इसके लिए समुचित साधन है।

जन संचार के महत्त्व को देखते हुए स्कूल और विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए नियमित रूप से पाठ प्रसारित होने लगे हैं। आजकल परीक्षा से पहले पुनरावृत्ति पाठ प्रसार से विद्यार्थियों को काफ़ी लाभ हो रहा है। भाषा संबंधी पाठ भी योग्य अध्यापकों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं जिससे ज्ञानवृद्धि के साथ-साथ विद्यार्थी मानक उच्चारण भी सीख रहे हैं।

2. ग्रामोफोन

ग्रामोफोन हर स्थान पर उपलब्ध सरलतम साधन है। राष्ट्रगान, राष्ट्रगीत, सामूहिक प्रार्थना आदि के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। ग्रामोफोन से शुद्ध उच्चारण, संगीत गायन आदि सिखाने में बहुत सहायता मिलती है।

आजकल तुलसी, मीरा, सूरदास तथा अन्य भक्त कवियों की कविताएँ, पद आदि के रिकार्ड सुलभ होने लगे हैं। इन रचनाओं को बार बार सुनने से उन्हें ये कंठस्थ हो जाती हैं और स्थायी ज्ञान का रूप धारण कर लेती हैं।

महापुरुषों के प्रवचन तथा विद्वानों के भाषणों के रिकार्ड भी उपलब्ध होने लगे हैं। विद्यार्थी इस सामग्री के उपयोग से अपने भाषा ज्ञान में वृद्धि कर सकते हैं।

अन्य भाषाएँ सीखने के लिए भाषा के रिकार्डों की पूरी भाषण-मालाएँ भी उपलब्ध हैं। ग्रामोफोन की सहायता से घर बैठे देश-विदेश की भाषाओं का ज्ञान संभव है।

3. टेपरिकार्डर/ऑडियो टेप

टेपरिकार्डर ने ग्रामोफोन को भी मात दे दी है। इसने भाषण, कविता,

चर्चा, वाद-विवाद, अन्त्याक्षरी आदिकारिकार्ड करना और उसकी तुरंत आवृत्ति करना इतना सुगम कर दिया है कि एक जादू सा लगता है। आजकल उच्च और उच्चतम कक्षाओं के विद्यार्थी स्वयं टेपरिकार्डिंग की मशीन के पुरजों को जोड़ कर इसका निर्माण करने लगे हैं। समाज उपयोगी उत्पादक कार्य (सूरा) इस क्षेत्र में काफ़ी सहायक सिद्ध हुआ है। विद्यालय में इस यंत्र के निर्माण का उचित प्रबंध होने पर शिक्षा में एक नई क्रान्ति आएगी। अब विद्यार्थी अपने गुरुजनों के भाषण सुनने के साथ साथ उनकी रिकार्डिंग भी कर सकेंगे और अवकाश के समय घर बैठे इनका लाभ उठा सकेंगे।

विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राएँ राष्ट्रीय सेवा योजना के अधीन नेत्र-होन विद्यार्थियों के लिए पुस्तक की पुस्तक रिकार्ड करते हैं। इससे एक तो स्वयं मेवी विद्यार्थी के अपने पठन में असाधारण सुधार होता है और दूसरे नेत्रहोनों को बोलती पुस्तकें उपलब्ध हो जाती हैं।

टेपरिकार्ड यंत्र की सहायता से भाषा-प्रयोगशालाओं की स्थापना में सुगमता होने लगी है। अब विद्यार्थी अपने अध्यापक के भाषण बार-बार सुन सकते हैं। वे अपनी उच्चरित वाणी का रिकार्ड भर सकते हैं। अपने स्वयं के उच्चारण की तुलना अध्यापक के उच्चारण से कर सकते हैं। भाषा प्रयोगशाला कुछ ही वर्षों में एक खर्चीला संस्थान न रह कर सर्व सामान्य के लिए भी उपलब्ध होने लगेगी। इतना ही नहीं ऑडियो टेप की सहायता से आकाशवाणी विभिन्न केन्द्रों से प्रादेशिक भाषाएँ सिखाने के पाठ प्रसारित कर रही है।

4. लिग्वाफोन

लिग्वाफोन, ग्रामोफोन और टेपरिकार्डर की कोटि का ही एक यंत्र है। शिक्षा में इसका प्रयोग उच्चारण शुद्ध कराने के लिए किया जाता है। कोई भी भाषा द्वितीय भाषा के रूप में सीखते समय उसके मानक उच्चारण को सीखने में बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। एक ही शब्द या ध्वनि का बार-बार उच्चारण-अभ्यास करना पड़ता है। लिग्वाफोन ऐसा ही यंत्र है जिसमें विशेष प्रकार से तैयार किया गया पाठ रिकार्ड किया जाता है और विद्यार्थी उसको बार-बार सुनता है तथा निरंतर अभ्यास करता है। उच्चारण शिक्षण में यह यंत्र बरदान सिद्ध होता है।

5. डिस्क रिकार्डर

डिस्क रिकार्डर एक महँगा यंत्र है जिसका प्रयोग अभी हर संस्था की पहुँच से बाहर है। इस यंत्र का प्रयोग उच्चारण शुद्ध करने तथा पठन की गति में सुधार करने जैसे कौशलों में किया जाता है।

6. भाषा प्रयोगशाला

भाषा शिक्षण में भाषा प्रयोगशाला अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाती जा रही है। भाषा प्रयोगशाला एक विशेष प्रकार का कक्ष है जिसमें अध्यापक और विद्यार्थियों के लिए अलग-अलग स्थान या बूथ बने होते हैं। अध्यापक अपने कक्ष में बैठता है। उसका सीधा संपर्क सीखने वाले विद्यार्थी से यंत्र द्वारा जुड़ा होता है। अध्यापक अपने विद्यार्थी का उच्चारण सुन सकता है। विद्यार्थी आवश्यकता अनुसार अध्यापक से यंत्र की सहायता से प्रश्न पूछ सकता है और अध्यापक तत्काल उसका उत्तर दे सकता है।

विद्यार्थी विशेष आधार पर तैयार किए गए पाठ सुनता है। वह उस उच्चारण का अनुकरण-अभ्यास करता है और स्वयं अपने उच्चारण को आदर्श उच्चारण से मिलाता है अर्थात् वह अपने उच्चारण का भूल्यांकन स्वयं भी कर सकता है।

इस प्रयोगशाला में भाषा का पूरा पाठ्यक्रम उपलब्ध होता है। अधिकांशतः इसका प्रयोग द्वितीय भाषा सीखने के लिए किया जाता है। इसके उपकरण काफ़ी महँगे होते हैं जिन्हें सामान्यतः वातानुकूलित कमरे में सुरक्षित रखा जाता है। इस प्रकार की प्रयोगशालाएँ एन०सी०ई०आर०टी०, आगरा, मैसूर, हैदराबाद आदि भाषा शिक्षण संबंधी संस्थाओं में उपलब्ध हैं।

ख. दृश्य साधन या उपकरण

दृश्य साधन या उपकरण वे साधन हैं जिनमें दृश्येन्द्रियों या नेत्रेन्द्रियों के माध्यम से ज्ञान को सरल और सुलभ विधि से प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार की सामग्री मस्तिष्क पर सीधा प्रभाव डालती है। जो बातें अनेक शब्दों के माध्यम से स्पष्ट नहीं होतीं उन्हें एक ही चित्र तुरंत स्पष्ट कर देता है। व्यक्ति सुनी हुई वस्तु को भूल सकता है लेकिन देखी हुई वस्तु स्मृति में स्थायी बन जाती है। यही कारण है कि 'तोता रंटत' विद्या से बचाने के लिए शिक्षण में दृश्य-सामग्री का उपयोग किया जाता है। नीचे भाषा शिक्षण में प्रयुक्त कुछ इसी प्रकार के उपकरणों का वर्णन किया जाता है। इन उपकरणों को दो भागों में बाँटा जा सकता है:—1. सामान्य 2. यांत्रिक।

(1) सामान्य उपकरण

1. श्यामपट्ट

श्यामपट्ट प्राचीनतम दृश्य साधनों में से एक है। यह सरल और सुलभ है तथा इस पर व्यय भी कम होता है। सामान्य पुताई के बाद यह वर्षों काम

देता है। यह लकड़ी के अतिरिक्त सीमेंट, रेक्सिन, शीशे आदि का भी बनाया जाता है। यह चल तथा अचल दोनों रूपों में उपलब्ध है। कुछ पट्ट हरे रंग के भी बनाए जाते हैं। लपेट-पट्ट के अतिरिक्त यह और भी कई रूपों में उपलब्ध है।

श्यामपट्ट पर सामान्यतः सफेद रंग के चाक से लिखा जाता है। आजकल रंग बिरंगे चाक भी उपलब्ध हैं। आवश्यकता के अनुसार इनका प्रयोग भी किया जाना चाहिए। किंतु खेद का विषय तो यह है कि इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करते-करते हम अनेक स्कूलों में सामान्य श्यामपट्ट भी उपलब्ध नहीं करा पाए हैं और अभी ऑपरेशनल ब्लैक बोर्ड की व्यवस्था की बात सोच रहे हैं। अस्तु।

भाषा शिक्षण में श्यामपट्ट के प्रयोग का बहुत महत्त्व है। छोटी कक्षाओं में अक्षर-ज्ञान से लेकर बड़ी कक्षाओं में सार लेखन तक में इसका प्रयोग होता है। अध्यापक द्वारा लिखा गया एक शब्द या खींची गई रेखा गूढ़ संकल्पनाओं को भी स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध होते हैं। भाषा शिक्षक श्यामपट्ट का प्रयोग निम्नलिखित कार्य के लिए कर सकता है :—

1. वर्णमाला के ज्ञान के लिए।
2. पठन सिखाने के लिए।
3. सुलेख सिखाने के लिए।
4. शुद्ध वर्तनी का ज्ञान देने के लिए।
5. कठिन शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए।
6. शब्दों का मूलरूप, शब्द रूपांतर, संधि-समास आदि समझाने के लिए।
7. बहुवचन, लिंग परिवर्तन आदि के सिद्धान्त सिखाने के लिए।
8. आगमन-निगमन विधि से किसी सूत्र को समझाने के लिए।
9. चित्र, रेखा चित्र आदि बनाकर भाव को स्पष्ट करने के लिए।
10. शब्द, मुहावरा तथा लोकोक्ति का वाक्य में प्रयोग सिखाने के लिए।
11. रचना की शिक्षा में पत्र, प्रस्ताव, निबंध आदि के ज्ञान के लिए।
12. सारांश लेखन, टिप्पण लेखन आदि समझाने के लिए।
13. दिए गए वाक्य खंडों के आधार पर कहानी पूर्ति के लिए।
14. प्रश्नों के उत्तर पूछने के लिए।
15. प्रश्न पत्र लिखने के लिए।
16. विद्यार्थियों को श्यामपट्ट पर लिखने के अभ्यास का अवसर देने के लिए आदि आदि।

श्यामपट्ट का उपयोग करते समय इन बातों का ध्यान रखा जाए :—

1. लेख सुन्दर हो।
2. वर्तनी की अशुद्धियाँ न हों।

3. उचित गति से लिखा जाए।
4. लिखते समय शब्दों का उच्चारण किया जाए।
5. बीच-बीच में विद्यार्थियों की तरफ देखते रहें ताकि अनुशासन ठीक रहे।
6. लिखते समय विद्यार्थियों की ओर पीठ न हो।
7. लेख के अक्षर न बहुत बड़े हों न छोटे।
8. श्यामपट्ट पर चमक न पड़े।
9. कमजोर दृष्टि वाले बच्चे आगे बैठाए जाएँ।
10. प्रयोग के बाद श्यामपट्ट को साफ़ कर दिया जाए आदि।

2 चित्र

भाषा शिक्षण के समय चित्रों का प्रयोग पाठ में एक नया प्राण फूँक देता है। चित्रों का प्रयोग छोटी कक्षाओं से लेकर ऊँची कक्षाओं तक किया जा सकता है। चित्र के माध्यम से अमूर्त वस्तु या संकल्पना मूर्तिमान हो उठती है। भाषा शिक्षण में चित्रों का प्रयोग निम्नलिखित कार्य के लिए किया जा सकता है :—

1. अक्षर ज्ञान के लिए।
2. कठिन शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए—यथा पैगोडा, पिरामिड, टैलीप्रिंटर आदि को दृश्यमान करने के लिए।
3. प्राकृतिक दृश्य उपस्थित करने के लिए।
4. कल्पना शक्ति के विकास के लिए।
5. चित्र दिखाकर मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के लिए।
6. चित्र के आधार पर लिखने का अभ्यास कराने के लिए।
7. कहानी शिक्षण के लिए।
8. पाठ की प्रस्तावना के लिए।
9. साहित्यकारों के चित्र या उनके जीवन का परिचय देने के लिए।
10. पुस्तक को रोचक, आकर्षक तथा मनोरंजक बनाने के लिए आदि-आदि।

छोटी कक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों के चित्र रंगीन होते हैं। वहाँ पाठ्य पुस्तक का 60 से 80 प्रतिशत भाग चित्रमय होता है। ज्यों-ज्यों कक्षा बड़ी होती जाती है चित्रों की संख्या कम कर दी जाती है। चित्रों का आकार पोस्ट कार्ड साइज से घट कर स्टैम्प साइज तक रह जाता है।

भाषा अध्यापक को चाहिए कि पुस्तक में दिए गए चित्र के बारे में विद्यार्थियों से चर्चा करे। चित्र के विभिन्न अवयवों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करे। इससे बच्चों की प्रेक्षण शक्ति बढ़ेगी तथा पाठ के कठिन अंश भी स्पष्ट होंगे।

अध्यापक द्वारा स्वतन्त्र रूप से निर्मित चित्रों का आकार बड़ा हो। उनको उतने समय के लिए दिखाया जाए जितनी देर उनकी आवश्यकता है अन्यथा बच्चों का ध्यान बँटता है।

चित्र को उचित स्थान पर लटकाया जाए। उसका प्रदर्शन हाथ में लेकर न किया जाए। फ़्लेन बोर्ड, खादी बोर्ड पर उसे लटकाया जाए तो और भी अच्छा है।

3 रेखाचित्र

हर वस्तु का चित्र बनाना कठिन भी है और खर्चीला भी। अध्यापक शिक्षण के समय सामान्य रेखाएँ खींच कर भी कुछ भावों को मूर्त रूप दे सकता है। उदाहरण के लिए जयशंकर प्रसाद की कविता “अरुण यह मधुमय देश हमारा” को लें। वहाँ कवि ने अनेक बिंब उपस्थित किए हैं। कविता में उषा की देवी का सुन्दर वर्णन है। आकाश में उड़ते रंग विरंग पंखों के पक्षियों को मुरधनु कहा है। तानरस पर विभा छिटकने की बात कही है। इन सभी भावों को स्पष्ट करने के लिए भापा अध्यापक चाक की सहायता से रेखाचित्र खींचकर इन बिंबों को उभार सकता है।

4. मानचित्र

सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक और धार्मिक महत्व के स्थानों की स्थिति स्पष्ट करने लिए मानचित्र का प्रयोग करना पड़ता है। उदाहरण के लिए श्री रामजी का वनवास मार्ग, बलिंग युद्ध का स्थान, नालंदा, तक्षशिला आदि के शिक्षाकेन्द्र, स्वामी शंकराचार्य के मठ, द्वादशज्योतिर्लिंग आदि स्थानों की स्थिति स्पष्ट करने के लिए मानचित्र का प्रयोग करना चाहिए। यदि मानचित्र उपलब्ध नहीं हैं तो स्वयं इसका निर्माण करना चाहिए।

5. चार्ट

भाषा शिक्षण में चार्ट ऐसी सुलभ दृश्य सामग्री है जिसका निर्माण अध्यापक और छात्र दोनों ही कक्षा में कर सकते हैं। चार्ट वार्षिक निरीक्षण के समय मात्र कमरे की शोभा बढ़ाकर निरीक्षक को प्रसन्न करने के लिए नहीं हैं। इनका उपयोग दैनिक शिक्षण में उन संकल्पनाओं को स्पष्ट करने के लिए होना चाहिए जिनकी अवधारणाएँ जटिल होती हैं। पाठ्य पुस्तक के हर पाठ में कुछ ऐसे पहलू होते हैं जिन पर चार्ट बनाने की आवश्यकता है। आवश्यकता अनुसार व्याकरण संबंधी चार्ट भी बनाए जा सकते हैं।

कुछ चार्ट तो पुस्तक में दिए गए चित्र का ही बड़ा रूप हो सकते हैं और कुछ

का निर्माण किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जा सकता है। उदाहरण के लिए भाषा शिक्षण में निम्नलिखित प्रकार के चार्ट बनाए जा सकते हैं :—

1. कठिन शब्दों के अर्थ वाले चार्ट ।
2. अनेकार्थी शब्दों के चार्ट ।
3. बहुधा अणुद्ध लिखे जाने वाले शब्दों के चार्ट ।
4. शब्द निर्माण के चार्ट—वचन, लिंग, काल, क्रिया के आधार पर रूपांतरित शब्द ।
5. शब्दों की मूल व्युत्पत्तिपरक चार्ट ।
6. पर्यायवाची, विलोम आदि शब्दों के चार्ट ।
7. पत्र आदि लिखने के नमूनों के चार्ट (पत्र के हर अंग के नमूनों के चार्ट अलग-अलग बनाए जा सकते हैं) ।
8. कहानी निर्माण संबंधी चार्ट ।
9. मुहावरे, लोकोक्ति, सूक्ति संबंधी चार्ट ।
10. कवियों, लेखकों आदि की जीवनी संबंधी चार्ट ।
11. व्याकरण के नियमों, सूत्रों आदि संबंधी चार्ट ।
12. विराम चिह्नों के चार्ट ।
13. हिन्दी साहित्य के काल विभाजन संबंधी चार्ट ।
14. हिन्दी पाठ्यक्रम विभाजन, सप्ताह में पठन-लेखन आदि व्यौरे संबंधी टाइम टेबल के चार्ट । आदि ।

चार्ट निर्माण करते समय उनके आकार, लेख आदि पर विशेष ध्यान दिया जाए। चार्ट प्रदर्शन मात्र के लिए न हो कर उपयोग के लिए हों। उसकी ऊँचाई इतनी न हो कि विद्यार्थी उसे पढ़ भी नहीं सकें। कुछ चार्ट स्थायी रूप से प्रदर्शित किए जाएँ तथा कुछ में शिक्षण के अनुसार परिवर्तन होते रहना चाहिए। छोटी कक्षाओं के चार्ट बड़ुरंगे होने चाहिए।

6. भित्ति पत्रिका

रचनात्मक लेखन को प्रोत्साहन देने के लिए भित्ति-पत्रिका एक महत्वपूर्ण दृश्यसाधन है। इस पत्रिका में लघु स्तर पर वे सभी तत्त्व होते हैं जो अप्रकाशित पत्रिका की पाण्डुलिपि में होते हैं।

इस पत्रिका का कोई उचित नाम भी होता है। कहानी, निबंध, कविता, चुटकुले, पहेलियों आदि के अतिरिक्त इसमें संपादकीय भी लिखा जाना चाहिए। इसका संस्करण साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक आदि किसी रूप में हो सकता है। दीपावली, होली, वसंत, गणतंत्र दिवस आदि पर भित्ति पत्रिका के विशेष संस्करण भी निकाले जा सकते हैं। आवश्यक समय तक लेखों का प्रदर्शन

करके उनकी अलग-अलग फाइलें बनाई जा सकती हैं।

भित्ति पत्रिका के पृष्ठों की एकरूपता को बनाए रखने के लिए विशेष आकार के पृष्ठ हाशिये सहित प्रकाशित कराए जा सकते हैं। इन पृष्ठों में रेखाएँ डलवाई जा सकती हैं। विशेष अवसरों पर इनका विमोचन किसी अधिकारी से करवाया जा सकता है। ऐसा करने से विद्यार्थियों में आत्म-विश्वास और गौरव की अनुभूति होगी।

भित्ति पत्रिका बुलेटिन बोर्ड नहीं है। बुलेटिन बोर्ड में कुछ सूचनाएँ मात्र होती हैं। यह तो अप्रकाशित पत्रिका है जिसका संस्करण कम लागत से तैयार होता है। इसका संचालन विद्यार्थियों का संपादक-मंडल करता है। अध्यापक तथा प्रधानाध्यापक को चाहिए कि वे संपादक मंडल को उचित प्रोत्साहन दें। भित्ति पत्रिका के अच्छे लेख पुरस्कृत भी किए जाएँ।

7. पाठ्य पुस्तक

पाठ्य पुस्तक न तो शिक्षा का अर्थ है और न इति। यह अध्यापक के पास एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से वह विद्यार्थियों में ज्ञान की वृद्धि करता है। पाठ्य पुस्तक के विषय में विस्तारपूर्वक चर्चा पाठ्य पुस्तक संबंधी अध्याय में की जा चुकी है। पाठक इस संबंध में अतिरिक्त जानकारी के लिए उस अध्याय को पढ़ें।

8. पत्र-पत्रिकाएँ

अतिरिक्त पठन, आवश्यक संदर्भ तथा स्वस्थ मनोरंजन के लिए पत्र-पत्रिकाओं का दृश्य साधन के रूप में शीर्ष स्थान है। ये साधन सामान्यतया हर विद्यालय में उपलब्ध हैं। दैनिक शिक्षण के समय अनुपूरक ज्ञान की खोज के लिए अध्यापक इनका संदर्भ दे सकते हैं। विद्यार्थियों के लिए पत्र-पत्रिकाओं की आवश्यक सामग्री को चिह्नित कर सकते हैं। कुछ विशिष्ट पत्रिकाओं की वार्षिक जिल्दबंदी भी करवाई जा सकती है क्योंकि कुछ रचनाएँ धारावाहिक होने के कारण उनका संबंध आगे पीछे के अंकों से भी जुड़ा होता है।

हर राज्य की ओर से पुस्तकालयों में पत्र-पत्रिकाओं के क्रय के लिए आवश्यक वार्षिक बजट का प्रावधान होता है। कुछ सरकारी तथा अर्ध सरकारी संस्थाएँ अच्छे स्तर की पत्रिकाओं का प्रकाशन कर रही हैं। अध्यापक को राज्य तथा केन्द्र के प्रकाशन विभागों के बारे में जानकारी होनी चाहिए ताकि विद्यार्थियों के लिए स्वस्थ साहित्य उपलब्ध हो सके।

9. संग्रहालय

मानव में संग्रह की प्रवृत्ति जन्म-जात है। छोटे बच्चों के बस्तों में चमकीले

पत्थर और पक्षियों के पंख आसानी से देखे जा सकते हैं। इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने के लिए हर विद्यालय में एक संग्रहालय का निर्माण होना चाहिए। इसमें तरह-तरह की मिट्टी, कंकड़, बीज, टहनियों के पत्ते, कीड़े-मकोड़े, जीव-जन्तु इकट्ठे किए जा सकते हैं। ये सभी वस्तुएँ विशेष क्रम से वर्गीकृत करके व्यवस्थित ढंग से रखी जाएँ तो शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण संदर्भ सामग्री का काम देती हैं।

कुछ स्थानों पर मछली-घर, पक्षी-घर आदि के संग्रहालय हैं। पुरानी रेलें, वायुयान, तथा यातायात के अन्य साधनों के संग्रहालय भी हैं। कई ऐतिहासिक संग्रहालय भी हैं। नई दिल्ली में हमारा राष्ट्रीय संग्रहालय है। इन संग्रहालयों का शैक्षिक दृष्टि से लाभ उठाना चाहिए। इनके अवलोकन से विद्यार्थियों में ज्ञान की वृद्धि होती है। उनका मनोरंजन होता है और उन्हें प्रकृति के अनेक गुप्त भेदों की खुली पुस्तक उपलब्ध हो जाती है।

संग्रहालय की सामग्री के उपयोग की उपादेयता बढ़ाने के लिए हर प्रदर्शित वस्तु के साथ उसके संबंध में आवश्यक जानकारी लिख दी जाती है। आजकल ऐसे भी संग्रहालय हैं जहाँ आप बटन दबाइए और उस वस्तु के विषय में बोलती मशीन से आवश्यक जानकारी प्राप्त कीजिए। हमें आशा है कि इक्कीसवीं सदी की ओर उन्मुख भारत में हमें अनेक विद्यालयों में ऐसे संग्रहालय उपलब्ध हो सकेंगे।

विद्यार्थी संग्रहालय का लाभ तभी उठा सकते हैं जब अध्यापक पहले उसके विषय में पूरी जानकारी रखता हो। संग्रहालय प्रेक्षण के बाद विद्यार्थियों के साथ उन वस्तुओं के विषय में चर्चा करनी चाहिए। बड़ी कक्षाओं के विद्यार्थियों को उन विषयों पर निबंध आदि लिखने को कहा जाए। संग्रहालय यात्रा सुनि-योजित कार्यक्रम होना चाहिए अनियोजित नहीं।

10. वस्तु प्रतिरूप या मॉडल

संग्रहालय में विद्यार्थी अनेक प्रकार की वस्तुओं का वास्तविक रूप देखता है। सभी वस्तुओं का वास्तविक रूप दिखाना असंभव है। कक्षा में हैलीकोप्टर, पैगोडा, बटु उद्देशीय बाँध आदि लाना असंभव है। ऐसी स्थिति में कुछ वस्तुओं की संकल्पना स्पष्ट करने के लिए वस्तु के प्रतिरूप या मॉडल का निर्माण करना होगा। कुछ वस्तुओं के मॉडल बाजार में भी उपलब्ध हैं। अध्यापक तथा छात्र मिलकर भी कुछ मॉडलों का निर्माण कर सकते हैं।

मॉडल का निर्माण उसी स्थिति में करें जब वास्तविक वस्तु कक्षा में नहीं लाई जा सके और उस वस्तु के चित्र से भी उसकी संकल्पना स्पष्ट न हो सके। मॉडल, मात्र शोभा की वस्तु नहीं है। इसका शैक्षिक तथा भाषायी महत्व भी-

है। इन वस्तुओं का प्रेक्षण भली प्रकार कराया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए वाक् यंत्रों को ही लें। इनके मॉडल बाज़ार में उपलब्ध हैं। मॉडल दिखाते समय इन पर विस्तार से चर्चा करें और व्यक्तिगत या समूह में इन्हें देखने का पूर्ण अवसर दें।

(ii) यांत्रिक दृश्य उपकरण

उपयुक्त सामान्य दृश्य साधनों के अतिरिक्त कुछ यांत्रिक दृश्य उपकरण भी उपलब्ध हैं विज्ञान के युग में इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इन यंत्रों पर चर्चा करना भी सर्वथा समीचीन है।

1. चित्र विस्तारक यंत्र (एपीडाइस्कोप)

अध्यापक बहुधा चार्ट, चित्र, आरेख आदि बनाने में कठिनाई अनुभव करते हैं। यदि वे इन्हें बना भी लेते हैं तो स्थानाभाव के कारण ये हर वर्ष बेकार हो जाते हैं। सामान्यतः पुस्तक में दिए हुए चित्र छोटे होते हैं और उन पर विस्तार से प्रकाश नहीं डाला जा सकता। अध्यापक के पास समय का भी अभाव रहता है। वह बार-बार श्यामपट्ट पर लिखने का संकोच करता है। वह अपने कक्षा-नोट तैयार करता है तथा कुछ आरेख, तालिका आदि बनाता है लेकिन कक्षा में उनका वर्णन मात्र करके कार्य की इतिश्री समझ लेता है।

चित्र विस्तारक यंत्र या एपीडाइस्कोप इस क्षेत्र में उसकी बहुत सहायता करता है। यह यंत्र एक प्रकार का चित्रविस्तारक यंत्र है। यदि अध्यापक पुस्तक के चित्र को इस यंत्र के समक्ष रखे तो वह स्वतः विस्तृत होकर पर्दे या स्क्रीन पर आ उपस्थित होता है। विद्यार्थी इस आवर्धित चित्र का लाभ सुगमता से उठा सकते हैं। यदि अध्यापक श्यामपट्ट पर न जाकर अपने सामने रखी नोट बुक पर भी लिखता है तो वह लिखाई पर्दे पर अपने आप बड़े आकार में दृश्यमान हो जाती है।

भाषा शिक्षण में इस यंत्र का उपयोग किया जा सकता है। वर्तनी की अशुद्धियों को समझाने, कविता के मुख्य अंशों की व्याख्या करने, सारांश लिखने, पत्रों के नमूने सिखाने आदि में यह यंत्र बहुत उपयोगी है। अन्य भाषा कौशिलों के समझाने में भी इस यंत्र का प्रयोग किया जा सकता है।

2. चित्र दर्शक यंत्र

चित्र दर्शक यंत्र एक ऐसा सरल यंत्र है जिससे सुगमता के साथ किसी चित्र का विस्तार करके दिखाया जा सकता है। यह यंत्र कम खर्चीला और प्रयोग में सरल है। दिश-विदेश की ऐसी वस्तुएँ जिनका वर्णन शब्दों के द्वारा

कठिन है उनके चित्रों का प्रदर्शन करके उनकी संकल्पना को स्पष्ट किया जा सकता है।

इस यंत्र के माध्यम से मौखिक अभिव्यक्ति का विकास भी किया जा सकता है। चित्र को प्रदर्शित करके विद्यार्थियों से उसका वर्णन करवाया जाए। इसके माध्यम से बच्चों की कल्पना शक्ति का विकास भी होता है।

3. फिल्मस्ट्रिप प्रोजेक्टर

फिल्मस्ट्रिप प्रोजेक्टर यंत्र हलका और प्रयोग में सुगम होता है। इसके द्वारा एक ही घटना से संबंधित अनेक चित्रों का प्रदर्शन करके उसका पूरा विब विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। इसकी सहायता से बच्चे की कल्पना शक्ति का भी विकास होता है।

4. स्टिरियोस्कोप

किसी प्राकृतिक दृश्य या ऐतिहासिक भवन को मूर्त रूप में प्रस्तुत करने के लिए यह बहुत ही उपयोगी यंत्र है। इसमें एक साथ दो चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं। दोनों चित्र एक दूसरे को इस प्रकार आच्छादित करते हैं कि दृश्य की गहराई भी प्रकट होने लगती है। दर्शक पर चित्र की लंबाई, चौड़ाई तथा गहराई का अच्छा प्रभाव पड़ता है। कहानी शिक्षण में इस यंत्र का प्रयोग किया जा सकता है।

ग. श्रव्य तथा दृश्य साधन

1. दूरदर्शन

विज्ञान के बढ़ते चरणों के साथ-साथ नित्य नवीन यंत्रों का आविष्कार हो रहा है। दूरदर्शन भी उन्हीं चमत्कारों में से एक है। आजकल रंगीन दूरदर्शन या टी० वी० ने तो इस क्षेत्र में नए प्राण फूँक दिए हैं।

आज टी० वी० शिक्षा का मात्र साधन की नहीं अपितु जनसंचार का महत्वपूर्ण अंग बन गया है। यही कारण है कि इस विषय की चर्चा श्रव्य-दृश्य सामग्री के रूप में न करके शिक्षा में संचार साधनों का वर्णन करते समय की गई है। पाठक भाषा शिक्षण के विषय में इसकी उपयोगिता से संबंधित आवश्यक जानकारी पीछे उसी स्थान पर देखें।

2. चलचित्र

चलचित्र का प्रभाव बच्चे के मस्तिष्क पर स्थायी रूप से पड़ता है। इसकी उपयोगिता को देखते हुए चिल्ड्रेंस फिल्म सोसाइटी आदि संस्थाओं ने अनेक

उपयोगी बाल फ़िल्मों और डाक्यूमेंटरी फ़िल्मों का निर्माण किया है। देश-विदेश के बारे में जानकारी देने, ऐतिहासिक स्थानों को चित्रित करने, महान विभूतियों के जीवन का दिग्दर्शन कराने आदि के लिए चलचित्र बहुत ही उपयोगी रहते हैं। आजकल कुछ शैक्षिक संस्थाएँ स्कूलों को ऐसे चलचित्रों की फ़िल्में अपने पुस्तकालयों से बहुत ही घटी दरों पर देती हैं। अनेक अच्छे विद्यालयों के पास अपने सभाभवन भी हैं और प्रोजेक्टर यंत्र भी। इन चलचित्रों का प्रयोग मनोरंजन के अतिरिक्त भाषा के अन्य पक्षों के शिक्षण के लिए भी किया जा सकता है।

3. वी० सी० आर०

वी० सी० आर० के आविष्कार ने शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन का बिगुल बजा दिया है। दूरदर्शन के कार्यक्रमों को देखने के लिए समय की पाबंदी थी। वह हर स्तर पर मुखापेक्षी था। श्रोता या दर्शक को विषय के चुनाव की स्वतन्त्रता नहीं थी। अध्यापक की भी मजबूरी थी। वी० सी० आर० के माध्यम से अध्यापक मनमर्जी के कैसेट का चुनाव कर सकता है और अपनी तथा विद्यार्थियों की सुविधा के अनुसार उनका प्रदर्शन कक्षा के कमरे में कर सकता है।

आजकल अनेक संस्थाएँ स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार छोटी-छोटी वालोपयोगी फ़िल्मों का निर्माण करने लगी हैं। शहरों में तो वीडियो लाइब्रेरी गली-मुहल्लों तक में देखी जा सकती हैं। अब वह दिन दूर नहीं जब विद्यालयों के अपने स्टूडियो होंगे और हर पाठ को रोचक विधि से फ़िल्माकर कक्षा में प्रदर्शित किया जा सकेगा। उस समय फ़िल्मों के हीरो या अभिनेता बाहर के व्यक्ति न होकर स्वयं उस विद्यालय के विद्यार्थी होंगे।

भाषा शिक्षण के लिए कौन सी फ़िल्में बनाई जाएँ इसका वर्णन दूरदर्शन के विषय में चर्चा करते समय पहले किया जा चुका है।

अन्त में इस विषय का समाहार यह कह कर किया जाता है कि ये उपकरण सहायक मात्र हैं। ये हमारे स्वामी न बन पाएँ। उपकरण या साधन एकांगी हैं। इनमें एक पक्षीय व्यापार होता है, वह है केवल जानकारी देना। ये साधन बच्चे की सभी जिज्ञासाओं का उत्तर नहीं दे सकते। इसके लिए अध्यापक ही एक ऐसी जीती जागती श्रव्य-दृश्य साधन है जिसका अन्य विकल्प नहीं है। इन श्रव्य-दृश्य साधनों के निर्माण के पीछे जो गुप्त अध्यापक है उसका व्यक्तित्व उतना प्रभावशाली नहीं जो कक्षा के सम्मुख रहने वाले अध्यापक का है। इन यंत्रों की आड़ में उसके व्यक्तित्व की बलि नहीं चढ़ानी चाहिए।

व्यावहारिक कार्य

1. दृश्य-श्रव्य सामग्री के विषय में उपलब्ध पुस्तकालय की सामग्री की सूची बनाना ।
2. विद्यालय में उपलब्ध दृश्य-श्रव्य सामग्री की सूची बनाना ।
3. विद्यालय में उपलब्ध दृश्य-श्रव्य सामग्री की प्रदर्शनी का आयोजन करना ।
4. दृश्य-श्रव्य सामग्री के महत्त्व पर भाषण, चर्चा, वाद-विवाद का आयोजन करना ।
5. दृश्य-श्रव्य सामग्री के संबंध में आयोजित प्रशिक्षण में भाग लेना ।
6. आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से प्रसारित होने वाले शिक्षा संबंधी कार्यक्रम का व्यौरा एकत्र करना और उसका उचित स्थान पर प्रदर्शन करना ।
7. दृश्य-श्रव्य साधन केन्द्रों का भ्रमण करना ।
8. संग्रहालय आदि का भ्रमण करना ।
9. अपने विद्यालय या संस्थान में संग्रहालय का निर्माण करना ।
10. दृश्य-श्रव्य सामग्री के निर्माण में विद्यार्थियों और समाज का योगदान लेना ।
11. निकट के बाल भवन केन्द्र में ग्रीष्म अवकाश के दिनों में विद्यार्थियों को सहायक सामग्री निर्माण का प्रशिक्षण दिलाना ।
12. विद्यालय में नाटक, चलचित्र, कठपुतली आदि के प्रदर्शन का आयोजन करना ।
13. श्रव्य-दृश्य साधनों के बारे में विद्यार्थियों का सर्वेक्षण करना ।
14. श्रव्य-दृश्य सामग्री का बच्चे के व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभाव का मूल्यांकन करना ।
15. श्रव्य-दृश्य सामग्री के उपयोग का शिक्षा कार्यक्रम में महत्त्व जानना ।

संदर्भ

1. National Seminar on Teacher Education—A Report, National Council for Teacher Education, N. I. E., New-Delhi—16 (1984).
2. Use of Education Broadcasting (Radio) for the Inservice Education of Primary School Teachers, N.C.E.R.T. (1986).
3. Language Teaching with the help of Radio, N.C.E.R.T.-

A project for Rajasthan.

4. National Curriculum for Primary and Secondary Education—A frame work, NCERT (1986).
5. The Visual Element in Language Teaching, S. Pit Corder Longmans (1986).
- 6 The Teacher and Educators in Emerging Indian Society NCERT (1986).
7. Encyclopedia of Education Research—Fourth Edition.
8. व्यापक शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम (1986) नई शिक्षा नीति के संदर्भ में, एन० सी० ई० आ० टी०, नई दिल्ली (1986) ।
9. ओपन स्कूल विवरणिका, 39, सामुदायिक केन्द्र, वजीरपुर, दिल्ली-110052.

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. 'शिक्षा का सार्वभौमिकरण तभी संभव है जब हम शिक्षा के क्षेत्र में जन-संचार के माध्यमों का अधिकाधिक प्रयोग करना आरंभ करें', दूरस्थ शिक्षा (डिस्टेंस एड्युकेशन), ओपन विश्वविद्यालय की सफलता के संदर्भ में उपर्युक्त कथन की समीक्षा करें ।
2. संचार के माध्यमों की सहायता से हम भाषा के किन पक्षों तथा कौशलों की शिक्षा सफलतापूर्वक दे सकते हैं ? विस्तार पूर्वक लिखें ।
3. 'आधुनिक युग में शिक्षा शास्त्रियों ने हमारी ज्ञानेंद्रियों को नरक का द्वार न बताकर ज्ञानार्जन का प्रमुख साधन कहा है', श्रव्य और दृश्य साधनों की उपयोगिता बताते हुए इस कथन की पुष्टि कीजिए ।
4. श्रव्य-दृश्य सामग्री की शिक्षा के क्षेत्र में क्या उपादेयता है ? कुछ श्रव्य और दृश्य साधनों के उपयोग पर प्रकाश डालें ।
5. 'शिक्षा में प्रौद्योगिकी ने महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है', इस कथन की समीक्षा करते हुए भाषा शिक्षण में सहायक कुछ यंत्रों का वर्णन करें ।
6. टिप्पणी लिखें—
 1. भाषा प्रयोगशाला
 2. श्यामपट्ट और भाषा शिक्षण
 3. भित्ति पत्रिका
 4. संग्रहालय
 5. वी० सी० आर० ।

भाषा शिक्षण में शोध कार्य

I. सामान्य परिचय

मानव का आज का व्यवहार गत व्यवहार के अनुभव पर आधारित है और उसका कल का व्यवहार आज के व्यवहार पर आधारित होगा। मानव समाज सहस्रों वर्षों से अर्जित अनुभव के आधार पर अपने व्यवहार में परिवर्तन करता आया है। यदि उसने अपने किसी अनुभव को दीर्घजीवी नहीं पाया तो उसे तुरंत बदलने का प्रयास किया। भोजन हो या आवास, वस्त्र हो या आपसी व्यवहार, सभी दैनिक अनुभव के अनुसार परिवर्तित होते रहे हैं और होते रहेंगे।

ठीक यही स्थिति शिक्षा की है। वेदों, शास्त्रों और अन्य प्राचीन ग्रंथों का अर्जित ज्ञान तत्कालीन ऋषि, मुनियों के अनुभूत ज्ञान का ही परिणाम है। दर्शनों की विभिन्नता स्वयं इस बात का द्योतक है कि एक अनुभव सदा सभी को मान्य नहीं होता। हर व्यक्ति को अपना अनुभव करने का अधिकार है। परिणामस्वरूप विभिन्न दर्शनों का आविर्भाव हुआ। जिन अनुभवों का क्षेत्र व्यापक था वे दीर्घ-जीवी रहे और शेष काल कवलित हुए।

वेद-वेदांगों का विभाजन, उनकी बढ़ती हुई शाखाएँ-उपशाखाएँ, पाणिनीय व्याकरण आदि तत्कालीन प्रयोगों, अनुभवों तथा समाज की आवश्यकताओं का ही परिणाम थे।

आज भी शिक्षा में नित्य नवीन प्रयोग हो रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा में क्रांतिकारी प्रयोगों का श्रीगणेश हुआ। अभी इक्कीसवीं सदी से टक्कर लेने के लिए शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन के लिए विचार दोहन हुआ और संसद ने नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) का प्रस्ताव पारित किया। अब शिक्षा नीति को राष्ट्र अपनी कसौटी पर परख रहा है और अनुमान के आधार पर इसमें भी आवश्यक संशोधनों की सम्भावनाएँ हैं।

II. शिक्षा में शोध, अनुसंधान या गवेषणा

शोध, अनुसंधान या गवेषणा अधिकृत प्रामाणिक सामग्री, साहित्य तथा प्रयोगों के मौखिक और प्रत्यक्ष अध्ययन द्वारा किसी विषय के नियमों तथा तथ्यों की वैज्ञानिक विधि से की गई खोज को कहा जाता है। इस प्रक्रिया में

किसी समस्या की विश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक विधि से व्याख्या की जाती है और वास्तविक साक्षी के आधार पर निष्कर्षों या निर्णयों पर पहुँचा जाता है। इसमें किसी नीति-रीति में सतत सुधार का उद्देश्य सम्मुख रहता है।

शिक्षा का दर्शन, शिक्षण सिद्धांत, शिक्षण विधियाँ, पठन सामग्री तथा मूल्यांकन विधियाँ कभी ध्रुव नहीं होतीं। समाज की आवश्यकता के अनुसार इनमें परिवर्तन आता रहता है।

शिक्षा जगत में व्यक्ति तथा संगठन दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है। व्यक्ति में छात्र, शिक्षक, अभिभावक, प्रशासक तथा अन्य कर्मचारी सम्मिलित हैं। संगठन के अन्तर्गत कक्षा, विद्यालय समाज और राज्य, शिक्षक संघ, छात्रों की सामूहिक संस्थाएँ आदि सम्मिलित हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति और संगठन दोनों क्षेत्रों में अनुसंधान की विपुल संभावनाएँ हैं। परिणामतः शिक्षा अनुसंधान का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। भाषा शिक्षण की समस्या के क्षेत्र में अनुसंधान का बहुत महत्व है क्योंकि भाषा स्वयं में एक विषय भी है और शिक्षा का माध्यम भी।

III. क्रियात्मक अनुसंधान

क्रियात्मक अनुसंधान, गत्यात्मक अनुसंधान या एक्शनरिसर्च, अनुसंधान का एक अंग है। आधारभूत अनुसंधान का क्षेत्र व्यापक है। उसकी प्रामाणिकता भी अधिक है। क्रियात्मक अनुसंधान अध्यापकों द्वारा अनुभूत किसी समस्या का सीमित क्षेत्र में तात्कालिक समाधान निकालने के लिए की गई एक व्यावहारिक प्रक्रिया है।

क्रियात्मक अनुसंधान में सामान्य सर्वेक्षण से लेकर किसी भी प्रायोगिक प्रणाली को अपनाया जा सकता है। इस अनुसंधान में समस्या के किसी सीमित पक्ष विशेष को लिया जाता है। इस प्रकार के अनुसंधान का उद्देश्य शिक्षा के किसी पक्ष में सुधार करना होता है। कक्षाध्यापक, निरीक्षक, प्रशासक व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से इस शोध प्रक्रिया को अपना सकते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में वांछित परिवर्तन पुस्तकें पढ़ने मात्र से संभव नहीं। प्रयोग के बाद फिर प्रयोग और निरंतर प्रयोग से ही समस्याओं का समाधान निकल सकता है। क्रियात्मक शोध की आत्मा प्रयोग है और मस्तिष्क वैज्ञानिक दृष्टि। भाषा शिक्षण के सुधार में क्रियात्मक शोध महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

IV. क्रियात्मक अनुसंधान के क्षेत्र

भाषा शिक्षण में क्रियात्मक अनुसंधान की व्याप्ति उन सभी क्षेत्रों में है

जिनमें विद्यार्थी को भाषा सीखने और अध्यापक को भाषा शिक्षण में कठिनाई का अनुभव होता है। साहित्य के क्षेत्र में विश्वविद्यालय स्तर पर हर वर्ष अनेक शोध प्रबंध लिखे जाते हैं किन्तु भाषा शिक्षण की समस्याओं पर अभी अनुसंधानों की रुचि अति सीमित है।

हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा और राज भाषा है। अनेक प्रदेशों की यह मातृ-भाषा है। भारत के राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में से लगभग एक चौथाई प्रदेशों की मातृ भाषा हिंदी है। इन प्रदेशों में भी राजस्थानी, ब्रज, हरियाणवी, अवधी आदि बोलियाँ हैं जो हिंदी अध्ययन-अध्यापन को प्रभावित करती हैं। शेष अहिंदी भाषा भाषियों की हिन्दी सीखने की समस्याएँ किसी से छिपी नहीं हैं।

कहीं हिंदी को प्रथम भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है तो वहीं दूसरी भाषा के रूप में। कहीं यह अनिवार्य विषय है तो कहीं ऐच्छिक। कहीं यह शिक्षा का माध्यम भी है। ऐसी स्थिति में भाषा के विभिन्न क्षेत्रों में आधारभूत तथा क्रियात्मक अनुसंधान की अगणित संभावनाएँ हैं। इन समस्याओं का समाधान कोई विदेशी नहीं करेगा। इनका समाधान भाषा शिक्षकों को ही करना होगा, चाहे वे व्यक्तिगत रूप से करें अथवा अपने संगठनों का निर्माण करके।

नीचे अनुसंधान के कुछ ऐसे क्षेत्र सुझाए जा रहे हैं जिनमें आधारभूत तथा क्रियात्मक अनुसंधान संभव है। अगले पृष्ठ पर इन्हें तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

पठन के क्षेत्र में अनुसंधान

1. पठन शब्दावली तथा आधारभूत अनुसंधान

भाषा की पाठ्यपुस्तक लेखकों तथा अध्यापकों को इस बात का ज्ञान नहीं है कि किस कक्षा में किन-किन नवीन शब्दों को सिखाया जाए? इन शब्दों के सिखाने का आधार क्या है? किस शब्द को कितने प्रतिशत विद्यार्थी किस-किस कक्षा में समझते हैं?

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में पहली कक्षा से आठवीं कक्षा तक की पठन शब्दावली पर सात शोध प्रबंध लिखे गए हैं जो संग्रहीत आधारभूत हिन्दी शब्दावली (कानसोली डेटिड बेसिक हिन्दी वोकाब्युलरी)* शीर्षक से एक ही जिल्द में प्रकाशित हुए हैं। इस पुस्तक में हर शब्द के सामने परीक्षण के बाद यह दर्शाया गया है कि अमुक शब्द किस कक्षा में प्रयुक्त हुआ और उसे किस-किस कक्षा में कितने प्रतिशत विद्यार्थी समझते हैं। भारत में अपने प्रकार का

Consolidated Basic Hindi Vocabulary by Prof, Udai Shanker and Dr. J. N. Kaushik, National Publishing House, 23 Darya-Ganj, New Delhi-110002 (1981).

यह पहला कार्य है।

इस प्रकार का अनुसंधान कार्य अन्य हिन्दी भाषा-भाषी राज्यों में अध्यापकों द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है। कक्षा अध्यापक क्रियात्मक अनुसंधान द्वारा यह ज्ञात कर सकते हैं कि उनकी कक्षा के विद्यार्थी किन-किन शब्दों का अर्थ नहीं समझ पाते। अर्थ न समझने का कारण शब्द की कठिन संकल्पनाएँ

क्रियात्मक अनुसंधान के क्षेत्र

1	2	3	4
पठन	लेखन	मौखिक अभिव्यक्ति	श्रवण
1. पठन शब्दावली	1. लेखन शिक्षण	1. मौखिक अभिव्यक्ति के साधन	1. श्रुत सामग्री
2. पठन गति	प्रणालियाँ	2. मौखिक शब्दावली	2. श्रवण शक्ति विकास के साधन
3. पठन दोष	2. वर्तनी की अशुद्धियाँ	3. उच्चारण दोष	3. श्रुत शब्दावली
4. पठन प्रणाली	3. लेख सुधार के उपाय		4. श्रवण दोष
5. पठन रुचि	4. सृजनात्मक लेखन		5. श्रवण को प्रभावित करने वाले कारक
6. पाठ्य पुस्तक	5. लेखन जाँच प्रणाली		
7. पाठों के अभ्यास			
8. पठन-सूत्रांकन			
9. अन्य क्षेत्र			
क. वार्षिक परीक्षा और पठन का सहसंबंध			
ख. पठन तथा भाषा अंक उपलब्धि			
ग. पठन तथा भाव ग्रहण			
घ. पठन तथा अभिभावक शिक्षा का सह संबंध			
ङ. शहरी और ग्रामीण बच्चों के पठन का तुलनात्मक अध्ययन			
च. बालक और बालिकाओं की पठन गति का तुलनात्मक अध्ययन			

हैं अथवा उसका कठिन वाक्य में प्रयोग। शब्द की संकल्पना को स्पष्ट करने संबंधी चित्र का अभाव या पाठ में उस शब्द की आवृत्ति का अभाव भी इसकी कठिनाई का कारण हो सकते हैं।

शिक्षक को देखना चाहिए कि वह देखे क्या इन कठिन शब्दों की सूची कक्षा में लगाने से उसका अर्थ समझने में विद्यार्थियों को सुविधा हुई? क्या जिस शब्द को बच्चे नहीं समझ पा रहे हैं वह उनकी बोली में कुछ ध्वनि भेद के साथ प्रयुक्त होता है? उदाहरण के लिए विद्यार्थी क्षुधा, तृषा, पिपासा स्थेयस, नंदी आदि का अर्थ नहीं समझ पाते। क्या अध्यापक ने कभी सोचा कि बोली में ये शब्द क्रमशः खुद्ध्या, तिस, पिस, थ्यावस, नटूर आदि हैं? क्या अध्यापक ने ऐसे शब्दों की सूची का प्रदर्शन अपनी कक्षा में किया?

क्या अध्यापक ने कठिन शब्दों का अर्थ समझाने के लिए किसी खेल का आश्रय लिया? क्या शब्दों के साथ उनके अर्थ मिलाकर मनोरंजन विधि से बच्चों में शब्द ब्रह्म के प्रति रुचि जाग्रत की।

उपयुक्त सभी विषय क्रियात्मक अनुसंधान के विषय हो सकते हैं। इन सभी समस्याओं का समाधान सेवारत अध्यापक कक्षा की वास्तविक परिस्थिति में कम लागत से कर सकते हैं। आवश्यकता अनुसार दो या तीन भाषा अध्यापक मिलकर ऐसी परियोजनाओं को चला सकते हैं। विद्यालय निरीक्षक शब्द क्षेत्र की इस समस्या को आस पास के कुछ विद्यालयों में लागू कर सकते हैं। उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। आगे चलकर यही निष्कर्ष आधारभूत अनुसंधान का विषय बन सकते हैं।

2. पठन गति तथा क्रियात्मक अनुसंधान

पठन गति क्रियात्मक अनुसंधान का रुचिकर विषय है। एक लिपिक या आशु लिपिक को सेवा देने से पूर्व इस बात की परीक्षा ली जाती है कि वह प्रति मिनिट कितने शब्द टाइप कर सकता है या लिख सकता है। क्या अध्यापकों ने इस तथ्य को परखने का प्रयत्न किया कि पहली कक्षा से आठवीं कक्षा तक या उससे ऊपर की कक्षाओं के विद्यार्थियों के पठन की गति क्या है? यह क्षेत्र बिल्कुल अछूता है। वर्तमान पंक्तियों के लेखक ने इस विषय पर कुछ अनुसंधान किया जिसके परिणाम बड़े रोचक रहे।

ये ग्यारह वर्ष की आयु के वे विद्यार्थी थे जो पाँचवीं कक्षा पास करके छठी में प्रवेश लेते हैं। अनुसंधान के अनुसार इस आयु वर्ग की एक मिनिट की औसत

Reading Rates of Delhi Children at the Age of 11+ (National Award Winner Paper) Deptt. of Teacher Education, N.C.E.R.T. (1984).

पठन गति 92 शब्द है। इस पठन सामग्री में कहानी, जीवनी, कविता, संवाद, स्वतंत्र शब्द पठन आदि सामग्री सम्मिलित थी। अनुसंधान में मुखर वाचन, स्वर वाचन तथा मौन वाचन तीनों ही सम्मिलित थे।

पठन की गति का विकास आयु और कक्षा की प्रगति के साथ होता रहता है। इस विकास का क्रम क्या है, यह भी अनुसंधान का विषय है। इसे ज्ञात करने के लिए भी इन पंक्तियों के लेखक ने एक अन्य अनुसंधान कार्य* किया। यह अनुसंधान 9 वर्ष के आयु वर्ग पर किया गया। ये वे छात्र-छात्राएँ थे जिन्होंने तीसरी कक्षा पास की थी। अनुसंधान की विधि वही थी जिसका संकेत ग्यारह वर्ष के आयु वर्ग के लिए दिया गया है।

अनुसंधाता ने पाया कि इस वय-वर्ग की पठन गति 43 शब्द प्रति मिनट है अर्थात् यही गति पाँचवीं कक्षा के अन्त तक 92 शब्द प्रति मिनट पहुँच गई।

जैसा कि क्रियात्मक अनुसंधान की प्रकृति का वर्णन करते समय कहा गया है कि इस प्रकार की अनुसंधान के निष्कर्ष सीमित क्षेत्र पर लागू होते हैं। अन्य अध्यापक अपनी कक्षाओं की पठन गति इसी आधार पर ज्ञात कर सकते हैं। क्रियात्मक स्तर पर किया गया यही अनुसंधान आधारभूत अनुसंधान का विषय बन सकता है। इसी आधार पर पठन की मानक गति निकाली जा सकती है। यह क्षेत्र अभी भी अपेक्षित है। जिस प्रकार एन. सी. ई. आर. टी. ने प्राथमिक शिक्षा स्तर पर अपेक्षित न्यूनतम योग्यता (एम. एल. सी) का निर्माण किया है उसी प्रकार पठन गति की बृहत् योजना सम्पन्न हो सकती है।

3. पठन या वाचन दोष तथा क्रियात्मक अनुसंधान

वाचन की अशुद्धियों का विश्लेषण क्रियात्मक शोध के लिए अच्छा विषय है। हिन्दी भाषा पढ़ने वालों का क्षेत्र सारा भारत है। सभी पाठक किसी न किसी बोली या प्रान्तीय भाषा से जुड़े हैं। स्वभावतः हिन्दी का वाचन मानक नहीं हो पाता। विद्यार्थियों को इसे परिश्रमपूर्वक सिखाने पर भी उनके उच्चारण संबंधी दोष रह जाते हैं।

वर्ण लोप, वर्ण आगम, वर्ण भ्रम, द्विरुक्ति, वर्ण विपर्यय, न-ण, श-ष आदि ध्वनियों में भ्रम अकारण नहीं है। हिन्दी को दूसरी भाषा के रूप में पढ़ने वालों की लिपि और उच्चारण संबंधी अशुद्धियाँ प्रथम भाषा के रूप में

* A study in Reading Rates, Dr. J. N. Kaushik,—Seminar Reading Research Paper, (submitted in 1986) NCERT. New Delhi.

हिन्दी पढ़ने वालों से किसी सीमा तक भिन्न हैं तथा इसके कारण भी भिन्न हैं।

इस दिशा में भारत के हर क्षेत्र के अध्यापकों को दिशा निर्देश की आवश्यकता है। इन पंक्तियों के लेखक ने दिल्ली क्षेत्र के विद्यार्थियों के वाचन संबंधी दोषों का विश्लेषण* किया और इसके विवरण के लिए कुछ शोध पत्र** भी लिखे। इन शोध पत्रों के माध्यम से निदानात्मक और उपचारात्मक अभ्यासों का निर्माण भी किया। लेखक ने यह पाया कि इन अभ्यासों से शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों को काफी लाभ हुआ।

भारत बोलियों का देश है। यहाँ 600 से भी अधिक बोलियाँ बोली जाती हैं। वाचन पर बोलियों के प्रभाव को निरस्त करने के लिए अभ्यासों के निर्माण की आवश्यकता है। केन्द्रीय अभिमुख शिक्षण प्रणाली में स्थानीय अध्यापक ही क्रियात्मक शोध द्वारा इस समस्या का निदान ढूँढ सकते हैं।

4. पठन या वाचन प्रणाली तथा क्रियात्मक अनुसंधान

वाचन प्रणाली का निर्माण उसकी लिपि की प्रकृति द्वारा शासित होना चाहिए। रोमन लिपि में स्वर मात्रा, संयुक्त अक्षर तथा अक्षर नहीं हैं। देवनागरी लिपि में स्वर मात्राएँ हैं, संयुक्त अक्षर हैं और अर्ध अक्षरों का विचित्र संयोग है। क्या ऐसी स्थिति में पठन सिखाते समय हमें अंग्रेजी की शब्द प्रणाली का अंधानुकरण करना चाहिए या वर्ण प्रणाली को वैज्ञानिक विधि से पढ़ाना चाहिए।

कक्षा अध्यापक क्रियात्मक अनुसंधान द्वारा इस बात का पता लगाएँ कि वाचन सीखने वाले के लिए वर्ण प्रणाली अधिक श्रेयस्कर है या शब्द प्रणाली। हमारा भाषा अध्यापक 25-30 वर्ष पढ़ाने के बाद भी पठन प्रणाली के विषय में वास्तविक तथ्यों पर आधारित कोई निष्कर्ष नहीं निकाल पाता। इसका कारण हमारी क्रियात्मक अनुसंधान के प्रति उपेक्षा का भाव ही तो है। क्रियात्मक अनुसंधान का आन्दोलन बीसवीं सदी के उत्तरार्ध से आरंभ हो गया था। इतने वर्ष बीतने पर भी हमारा भाषा अध्यापक इसके प्रति उदासीनता का

*Sound Discrimination Lessons—Dr J. N. Kaushik, National Award Winner paper, N.C.E.R.T (1980).

**Techniques of Material Development for Language Labs.—Dr J. N. Kaushik, National Award Winner paper NCERT. (1979).

भाव अपनाए हुए है। इसकीसवीं शताब्दी का भाषा अध्यापक हमारे इस पिछड़ेपन पर अवश्य तरस खाएगा।

5. पठन रुचि के क्षेत्र तथा क्रियात्मक अनुसंधान

प्राथमिकता के आधार पर बच्चों की पठन की रुचि के क्षेत्र कौन से हैं, यह भी क्रियात्मक अनुसंधान का उर्वर क्षेत्र है। बच्चों की पाठ्य पुस्तक के लेखक प्रायः प्रौढ़ होते हैं और वे अपनी रुचि के विषयों पर पाठ लिखते हैं। परिणामतः पाठ्य पुस्तकें अरुचिकर होती हैं। अधिकतर बच्चे उन्हें पढ़ना पसंद नहीं करते।

पठन रुचि के विश्लेषण के लिए बच्चों को विभिन्न वय-वर्गों में विभक्त किया जाए तथा उनके सामने विभिन्न प्रकार की पुस्तकें डाल दी जाएँ। प्रेक्षण के आधार पर देखा जाए कि बच्चे किन पुस्तकों को अधिक पसंद करते हैं। वे किस पुस्तक को बारबार पढ़ना चाहते हैं। वे किस पुस्तक को अपने मित्रों को पढ़ने की सलाह देते हैं। प्रेक्षण के अतिरिक्त स्नेहमय वातावरण में बच्चों से बातचीत करके पूछा जा सकता है कि उनकी पठन पसंद क्या है? वे उस सामग्री को पढ़ना क्यों पसंद करते हैं?

बहुत से अनुसंधान पाश्चात्य लेखकों द्वारा लिखी गई पुस्तकों पर आधारित होते हैं। स्वयं प्रयोग किए बिना निष्कर्ष निकालना दोषपूर्ण है। हमारे देश के बच्चों की आर्थिक, सामाजिक शैक्षिक, राजनीतिक परिस्थिति, दर्शन, धार्मिक आस्थाएँ उन देशों से काफी भिन्न हो सकती हैं। बाल स्वभाव समान होते हुए भी हमारे बच्चे यहाँ के वातावरण से सुवासित हैं।

विद्यालय के पुस्तकालयों तथा सार्वजनिक वाचनालयों के माध्यम से पठन रुचि के क्षेत्र में क्रियात्मक शोध की आवश्यकता है। केवल अध्यापक ही नहीं माता-पिता भी इस क्षेत्र में भारी योगदान दे सकते हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं का भी इस कार्य में सहयोग लिया जा सकता है।

6. पाठ्य पुस्तक तथा क्रियात्मक अनुसंधान

पाठ्य पुस्तक का क्षेत्र मुख्यतः आधारभूत अनुसंधान का विषय है फिर भी अध्यापक इसमें क्रियात्मक अनुसंधान के माध्यम से अनेक पहलुओं को उजागर कर सकते हैं। यथा :—

- (1) क्या पाठ्य पुस्तक की शब्दावली की बोधगम्यता का स्तर कक्षा के अनुकूल है।
- (2) क्या पाठ्य पुस्तक में प्रयुक्त भावों, विचारों अथवा संकल्पनाओं की बोधगम्यता का स्तर कक्षा के अनुकूल है?

- (3) क्या पाठ्य पुस्तक में प्रयुक्त वाक्य संरचना कक्षा के स्तर के अनु-
कूल है ?
- (4) क्या पाठ्य पुस्तक की सामग्री का बच्चों के जीवन के साथ संबंध
है ?
- (5) क्या पाठ्य पुस्तक में रुचि के सिद्धान्त का प्रयोग किया गया है ?
- (6) क्या पाठ्य पुस्तक के चित्रों की उपयोगिता है ?
- (7) क्या पाठ्य पुस्तक के अभ्यासों का पाठ्यक्रम से संबंध है ?
- (8) क्या पाठ्य पुस्तक का भाषा शिक्षण के उद्देश्यों से संबंध है ?
- (9) क्या पाठ्यपुस्तक को निर्धारित समय में समाप्त किया जा सकता
है ?
- (10) क्या पाठ्य पुस्तक का टाइप, पंक्ति की लंबाई, अनुच्छेद विभाजन,
आकार, छपाई के रंग आदि विद्यार्थियों के स्तर के अनुकूल हैं ?

7. पाठ-अभ्यास तथा क्रियात्मक अनुसंधान

वाचन के दोषों का विश्लेषण करने के बाद उनपर उपचारात्मक अभ्यासों का निर्माण अभी तक लगभग अछूता क्षेत्र है। एक ही प्रकार की अशुद्धि को लेकर बहुआयामी अभ्यासों का निर्माण अध्यापक क्रियात्मक अनुसंधान के माध्यम से कर सकते हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने इस प्रकार के अभ्यासों* का निर्माण किया है। भारतीय पठन संगठन, नई दिल्ली; नई दिल्ली नगर निगम के शिक्षा विभाग के सेवाकालीन अध्यापक प्रशिक्षण संस्थान के सहयोग से इस प्रकार के पठन अभ्यासों का निर्माण** किया है। इन अभ्यासों के निर्माण में अध्यापकों का सक्रिय योगदान रहा।

पठन अभ्यास के कुछ नमूने नीचे दिए जा रहे हैं :—

स्वर तथा मात्रा पठन अभ्यास—

निर्देश—नीचे दिए गए शब्दों को इस प्रकार पढ़ें कि स्वर तथा उस स्वर की मात्रा का उच्चारण स्पष्ट और शुद्ध हो—

क. ईश-इस। दिन-दीन। सुखी-सूखी। मैं-में। बौना-बोना।

*Remedial Reading—A Research Paper submitted for Seminar Readings Programmes for Teacher Educators, N.C.E.R.T (1985).

**पठन योग्यता का विकास—दिल्ली नगर निगम शिक्षा विभाग, अनुसंधान एवं विस्तार अनुभाग (1983)।

ख. व्यंजन पठन अभ्यास

निर्देश—इन शब्दों का मुखर वाचन करो। वाचन के समय व्यंजन और संयुक्त व्यंजन का उच्चारण स्पष्ट और शुद्ध हो —

(1) दुग्ध । विघ्न । प्रश्न । भ्रम । धर्म । चिह्न ।

व्यंजनों में सूक्ष्म ध्वनि भेद अभ्यास

निर्देश—इन शब्द-युग्मों का स्पष्ट और शुद्ध उच्चारण करो —

(2) गोल-घोल । डोल-ढोल । बूरा-भूरा । बाड़-भाड़ । शाल-साल । शादी-सादी ।

8. पठन मूल्यांकन तथा क्रियात्मक अनुसंधान

पठन का मूल्यांकन क्रियात्मक अनुसंधान का महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इसमें अक्षरों की पहचान से लेकर उनसे शब्द निर्माण, मात्रा का योग, शब्दों, लोकोक्ति-मुहावरों का अर्थ, मुख्य भाव, विचार का अर्थ ग्रहण, उच्चारण, गति आदि सभी विषय सम्मिलित किए जा सकते हैं।

9. पठन से संबंधित अन्य तत्व तथा क्रियात्मक अनुसंधान

पठन पाठक तक सीमित इकाई मात्र नहीं है। इसको प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं। ये सभी कारक क्रियात्मक अनुसंधान का विषय बन सकते हैं। वर्तमान पंक्तियों के लेखक ने अपने पूर्व संदर्भित शोध लेख (Reading Rates of Delhi Children at the Age of 11 +) में पठन का संबंध निम्नलिखित कारकों के संदर्भ में जानने का प्रयत्न किया और रोचक परिणाम प्राप्त हुए। जैसे :—

1. वार्षिक परीक्षा और पठन का सहसंबंध

पठन की गति तथा वार्षिक परीक्षा का कोटि सहसंबंध (Rank Correlation) निकालने पर ज्ञात हुआ कि इनका सहसंबंध 00.62 है जो कि काफी ऊँचा माना जा सकता है। कुशल पाठक के परीक्षा में अधिक अंक आते हैं।

2. पठन तथा भाषा अंक उपलब्धि

लेखक को प्राप्त आँकड़ों के आधार पर ज्ञात हुआ कि जो बच्चे पठन में अच्छे हैं उनकी भाषा की परीक्षा में अंकों की उपलब्धि भी श्रेष्ठ है। पठन की गति तथा भाषा के अंकों का सह संबंध 00.74 पाया गया।

3 पठन तथा भाव ग्रहण

पठन की गति का भाव ग्रहण से अनिष्ट संबंध है। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार यह सहसंबंध 00.53 था। धीमी गति से पढ़ने वाला पाठक वर्ण पहचान के जाल में उलझ कर रह जाता है। वह शब्दों के भाव तक पहुँच ही नहीं पाता।

4. पठन तथा अभिभावकों की शिक्षा का सहसंबंध

अभिभावकों की शिक्षा किसी सीमा तक बच्चों के पठन को प्रभावित करती है। प्राप्त निष्कर्षों के अनुसार इन दोनों तत्वों का सहसंबंध 00.54 था।

5. शहरी और ग्रामीण बच्चों की पठन गति का सहसंबंध

शहरों में शिक्षा की जो सुविधाएँ हैं वे अभी ग्रामीण क्षेत्र में उतनी मात्रा में नहीं हैं। ग्रामीण बच्चों की प्रति मिनट पठन गति 84 शब्द थी तथा शहरी क्षेत्र के बच्चों की 121 शब्द पाई गई। यह अंतर काफ़ी है। आशा है केन्द्र सरकार की नई नीति के अधीन खोले जा रहे नवोदय विद्यालय ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों को पठन में समान अवसर प्रदान करके इस अभाव की पूर्ति करेंगे।

6. बालक तथा बालिकाओं की पठन गति का सहसंबंध

बालिकाओं की प्रति मिनट पठन गति 104 शब्द थी तथा बालकों की 88 शब्द।

ऊपर कहा जा चुका है कि क्रियात्मक अनुसंधान के आँकड़े सीमित क्षेत्र में लागू होते हैं। वे समस्त जनसंख्या का मानक अंक नहीं होते। अध्यापक अपने-अपने क्षेत्रों में इस प्रकार का क्रियात्मक अनुसंधान कर सकते हैं और इन परिणामों से अपने आँकड़ों की तुलना कर सकते हैं।

पठन से संबंधित क्रियात्मक अनुसंधान की संभावनाओं का पता लगाने के लिए पठन या वाचन की शिक्षा संबंधी अध्याय पढ़ें।

2. लेखन के क्षेत्र में क्रियात्मक अनुसंधान

लिपि की शिक्षा तथा लेखन भाषा शिक्षण का महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इस क्षेत्र में भी क्रियात्मक अनुसंधान की विपुल संभावनाएँ हैं। क्रियात्मक अनुसंधान के रूप में निम्न लिखित विषयों पर कार्य किया जा सकता है :—

1. लेखन शिक्षण की प्रणालियाँ और क्रियात्मक अनुसंधान

लेखन शिक्षण की कई प्रणालियाँ प्रचलित हैं। यथा—रेखानुसरण प्रणाली,

खंडशः लेखन प्रणाली, अनुलिपि प्रणाली, शब्द प्रणाली, मांतेसरी प्रणाली आदि । विद्यार्थियों के लिए कौनसी प्रणाली सुलभ और बोधगम्य है यह तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा ज्ञात की जा सकती है । यह कार्य एक शिक्षक नहीं कर सकता । तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक से अधिक अध्यापक इस क्षेत्र में कई वर्ष के निरंतर अनुसंधान के बाद प्रामाणिक निष्कर्ष निकाल सकते हैं ।

2. वर्तनी की अशुद्धियाँ और क्रियात्मक अनुसंधान

वर्तनी की अशुद्धियाँ छोटी कक्षा से लेकर ऊँची कक्षाओं तक होती हैं । इन अशुद्धियों के क्या-क्या कारण हैं—अभ्यास की कमी, बोली का प्रभाव, समय का अभाव, विद्यार्थी के शारीरिक दोष, लेखन शिक्षण प्रणाली, अध्यापक, शैक्षिक वातावरण या मूल्यांकन पद्धति आदि ? एक एक बिन्दु को लेकर क्रियात्मक अनुसंधान की परियोजना बनाई जा सकती है ।

वर्तनी की अशुद्धि को सुधारने के उपायों पर छोटी-छोटी परियोजनाएँ बन सकती हैं । पहले अशुद्धियों के प्रकार का विश्लेषण किया जाए, फिर उस अशुद्धि के प्रकार का नाम दिया जाए । यथा—स्वर संबंधी, स्वर मात्रा योग संबंधी, उच्चारण संबंधी, संयुक्त व्यंजन संबंधी, ध्वनि साम्यता संबंधी, संधि संबंधी, समास संबंधी आदि ।

शब्द के जिस खंड पर अशुद्धि हुई है उसे खंडित किया जाए और विद्यार्थी का ध्यान उस ओर दिलाया जाए । जैसे विद्यार्थी मस्जिद शब्द को “मस्जिद” लिखता है । ऐसी स्थिति में शब्द के अशुद्धि स्थल को इस प्रकार खंडित किया जाए—मस्-ज-द । यहाँ ‘स्’ के बाद छोटी रेखा डाली गई है और बाद में “ज” के बाद । इसका अभिप्राय है बच्चे का ध्यान इस अशुद्धि स्थल की ओर दिलाया जाए ।

अशुद्धि ठीक कराने के लिए केवल शब्द को पुनः लिखवाना ही काफी नहीं है । इसका वाक्य में प्रयोग करवाया जाए ।

इन पंक्तियों के लेखक ने पहली कक्षा से बारहवीं कक्षा के विद्यार्थियों की अभ्यास पुस्तिकाओं से वे शब्द एकत्रित किए जिन्हें वे बहुधा अशुद्ध लिखते हैं और उपर्युक्त विधि से ‘शुद्ध हिन्दी लेखन’* नाम की पुस्तक का सृजन किया । इस पुस्तक के अंत में कोश-क्रम से वे 2100 आधारभूत शब्द अंकित किए जिन्हें अधिकांशतः अशुद्ध लिखा जाता है । यह पुस्तक अभ्यास के रूप में विद्यार्थियों को दी गई । लेखक ने पाया कि विद्यार्थियों की वर्तनी में असाधारण सुधार हुआ ।

*शुद्ध हिन्दी लेखन—डा० जय नारायण कौशिक, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, दिल्ली-110007 (1986) ।

3. लेख सुधार के उपाय

लेख सुधारने के लिए क्रियात्मक अनुसंधान का प्रयोग किया जा सकता है। प्रश्न है विद्यार्थी गंदा लेख क्यों लिखते हैं? क्या गंदे लेख का कारण लेखन सामग्री है—यथा कलम के स्थान पर बाल पेन या पेंसिल से लिखना और तख्ती की बजाय सीधा कागज पर लिखना? क्या गंदे लेख का कारण लिपि की शिक्षा प्रणाली का गलत चुनाव है? क्या गंदे लेख का कारण बच्चे की मांस-पेशियों के अभ्यास की कमी है? क्या गंदे लेख का कारण बच्चे की मानसिक स्थिति है? क्या बच्चे के गंदे लेख का कारण उसका वातावरण है? क्या गंदे लेख का कारण बच्चे पर अधिक काम का दबाव है? क्या गंदे लेख का कारण स्वयं अध्यापक है जिसका अपना लेख ठीक नहीं है? इन कारणों में भी कौन सा कारण प्रमुख है?

लेख से संबंधित ये बहुत से प्रश्न हैं। इनका उत्तर क्रियात्मक अनुसंधान से खोजा जा सकता है। यदि उपर्युक्त कारणों में सभी कारण आंशिक रूप से उत्तरदायी हैं तो कौन सा कारण अधिक प्रभावशाली है और शेष किस अनुपात से भागीदार हैं? कक्षा अध्यापकों को इन क्षेत्रों में क्रियात्मक अनुसंधान करना चाहिए।

केंद्रीय शिक्षा संस्थान (शिक्षा विभाग, दिल्ली, विश्वविद्यालय) में एम० एड० स्तर पर श्री महावीर प्रसाद भारद्वाज ने लेख सुधारने के उपायों पर उच्च-कोटि की शोध आध्यायिका प्रस्तुत की है। शोधकर्ता ने अच्छे लेख को मापने के लिए मापक दंड भी स्थिर किए हैं।

विद्यालय निरीक्षक खंड स्तर पर सुलेख प्रतियोगिताओं का आयोजन करके लेख में होने वाले सुधारों की रिपोर्टें तैयार कर सकते हैं।

4. सृजनात्मक लेखन

परीक्षा में उच्च अंक पाने की प्रतिस्पर्धा, समय का अभाव, विषयों की अधिकता और विद्यार्थियों पर अतिशय दयाभाव तथा कृपालुता के कारण बहुत से अध्यापक कहानी, निबंध और पाठ्य पुस्तक के अभ्यासों को अक्षरशः श्यामपट्ट पर लिख देते हैं। विद्यार्थी इस मधुर विष को मीठी गोलियाँ समझ कर बड़े आनंद से चूसते हैं और दाता की सराहना करते हैं।

वास्तव में श्यामपट्ट पर इस प्रकार का लेखन शिक्षा के उद्देश्यों और विद्यार्थियों के प्रति विश्वासघात है। ऐसा करना उनके चिंतन-मनन और कल्पना-शक्ति को कुंठित करना है। ऐसा करके उनके विकास को उसी प्रकार अवरुद्ध करना है जैसे पौधे के पत्तों को चिकने और मीठे पानी से सींचकर उनकी श्वसन-प्रक्रिया को बंद करना तथा दीमक तथा अन्य हानिकारक कीटों की दावत

कराना।

प्राथमिक कक्षाओं में लिपि की शिक्षा पर बल अवश्य है किन्तु लिपि का ज्ञान होते ही इस प्रकार के क्रियात्मक अनुसंधान की आवश्यकता है जिससे बच्चों में सृजनात्मक या मौलिक लेखन का विकास हो सके।

राज्य शिक्षा संस्थान दिल्ली के हिन्दी व्याख्याता श्री हरीदत्त जोशी ने सृजन लेखन में एक बहुत उपयोगी क्रियात्मक अनुसंधान कार्य किया। श्री जोशी को जिस विषय पर निबंध लिखवाना होता उस पर पहले अपनी ओर से विस्तृत जानकारी विद्यार्थियों को देते। विद्यार्थियों से भी उस विषय पर चर्चा करते। चार-पाँच विषयों पर चर्चा करने के बाद किसी एक विषय पर बच्चों को निबंध लिखने को कहते। इस प्रकार के निबंधों का मूल्यांकन तीन परीक्षकों से कराते। उनके इस अनुसंधान के बड़े उपयोगी परिणाम निकले। विद्यार्थियों में मौलिक चिंतन का विकास हुआ और उन्होंने अपनी कल्पना शक्ति से ऐसे निबंध लिखे जो अध्यापक की कल्पना से परे थे।

मूल्यांकन के समय सामान्य विधि से लिखवाए गए निबंधों की तुलना परीक्षण समुदाय से की गई। दोनों स्थितियों में काफी अंतर पाया गया।

कक्षा अध्यापक कहानी, पत्र, प्रस्ताव अनुच्छेद लेखन, कविता लेखन आदि के शिक्षण के लिए अपने स्तर पर क्रियात्मक अनुसंधान की परियोजनाओं का निर्माण कर सकते हैं।

5. लेखन जाँच प्रणाली

विद्यार्थी जो लिखें उनके अधिकांश लेखन की जाँच अवश्य होनी चाहिए। अध्यापक के सामने समय का अभाव और विद्यार्थियों की बड़ी संख्या सदा एक चुनौती उपस्थित करते रहते हैं। क्रियात्मक अनुसंधान के द्वारा उसे अपना मार्ग खोज निकालना होगा कि कौन सी प्रणाली जाँच के लिए अधिक उपयोगी है।

उदाहरण के लिए विषय सामग्री के कठिन शब्दों का श्यामपट्ट पर लिखना, तीन चार अच्छे विद्यार्थियों की अभ्यास पुस्तिकाएँ उनकी उपस्थिति में जाँचना, शेष विद्यार्थियों की अभ्यास पुस्तिकाओं की जाँच में उनका सहयोग लेना, एक दूसरे की अभ्यास पुस्तिकाओं की जाँच कराना या सारा भार स्वयं अपने ऊपर लेना। सभी विधियों के अपने-अपने लाभ-हानियाँ हैं। क्रियात्मक अनुसंधान द्वारा श्रेष्ठ जाँच प्रणाली स्थापित की जा सकती है।

लेखन के क्षेत्र में क्रियात्मक अनुसंधान की संभावनाओं का पता लगाने के लिए पाठक लिपि की शिक्षा, निबंध लेखन, मौलिक लेखन आदि अध्यायों को पढ़ें।

3. मौखिक अभिव्यक्ति का विकास और क्रियात्मक अनुसंधान

गत अध्यायों में मौखिक अभिव्यक्ति के विकास पर चर्चा की जा चुकी है। मौखिक अभिव्यक्ति का उद्देश्य बच्चों की उच्चरित भाषा का विकास करना है। इसमें निडर होकर अपने भाव शिष्ट भाषा में उचित गति और हाव-भाव के साथ प्रकट करने पर विशेष बल दिया जाता है।

अध्यापक को क्रियात्मक अनुसंधान द्वारा इस बात का आभास होना चाहिए कि इन उद्देश्यों की पूर्ति किन साधनों से प्रभावकारी ढंग से संभव हो सकती है। भाषण, वार्ता, संवाद, वाद-विवाद, कहानी कथन, नाटक-अभिनय, तथा इसी प्रकार की अन्य प्रतियोगिताओं में कौन-सी विधि इन कौशलों के विकास में अधिक लाभकारी सिद्ध होगी? इसकी जाँच के लिए अलग-अलग कक्षाओं के अनुसार परियोजना बनाने की आवश्यकता है।

अभी तक विभिन्न स्तरों पर बच्चों की बोलचाल में प्रयुक्त शब्दावली का वैज्ञानिक आधार पर तैयार व्यौरा उपलब्ध नहीं है। बोलचाल की शब्दावली या speaking vocabulary के लिए हमें उनका औपचारिक तथा अनौपचारिक परिस्थितियों में प्रेक्षण करना होगा। साक्षात्कार के समय विभिन्न पहलुओं पर बातचीत करके बोलचाल की शब्दावली एकत्रित की जा सकती है।

नेतृत्व की शक्ति का महत्वपूर्ण अंग है भाषण कला। बालसभा आदि के माध्यम से उन भावी नेताओं की खोज करनी चाहिए जिनमें वक्तृत्व कला की संभावनाएँ दृष्टिगत हों।

मौखिक अभिव्यक्ति के समय विद्यार्थी उच्चारण दोष से ग्रस्त होते हैं। ये उच्चारण दोष किस प्रकार के हैं तथा इनका क्या कारण है? क्रियात्मक अनुसंधान का यह भी अच्छा क्षेत्र है। इन पंक्तियों के लेखक ने उच्चारण में स्वर-आगम दोष* पर एक शोध कार्य किया और दोषों के निवारण के लिए अभ्यासों का भी निर्माण किया जिसमें उसे काफी सफलता मिली। मौखिक अभिव्यक्ति तथा उच्चारण के क्षेत्र में किए जाने वाले अनुसंधानों के लिए पाठक तत्संबंधी अध्याय भी पढ़ें।

4. श्रवण शक्ति का विकास तथा क्रियात्मक शोध

श्रवण भाषा का निष्क्रिय कौशल है। एक अच्छे सभासद का उत्तम लक्षण किसी की बात को ध्यान से सुनना है। बालसभा, पास पड़ोस में होने वाले प्रवचन के अतिरिक्त आकाशवाणी के कार्यक्रमों को मनोयोगपूर्वक सुनना ज्ञानवर्धन का

*Vowel Insertion in Speech—A National Award Winner Paper by Dr. J. N. Kaushik—NCERT (1982).

साधन है। अध्यापक को क्रियात्मक अनुसंधान द्वारा उन विषयों का पता लगाना चाहिए जिनमें बच्चों का मन अधिक लगता है। श्रवण के विकास की जाँच के लिए प्रेक्षण विधि उत्तम है। पाठक श्रवण संबंधी व्यावहारिक कार्य तथा क्रियात्मक अनुसंधान के लिए तत्संबंधी अध्याय पढ़ें।

V. निदानात्मक परीक्षण तथा क्रियात्मक शोध

1. निदानात्मक परीक्षण का महत्त्व

क्रियात्मक शोध में निदानात्मक परीक्षण का महत्त्व है। यह परीक्षण इस शोध की पहली सीढ़ी है। हर अनुसंधाता को इसके बारे में पूरी जानकारी होनी चाहिए।

2. निदानात्मक परीक्षण—अर्थ तथा स्वरूप

निदानात्मक परीक्षण या Diagnostic Test की महत्ता शिक्षा के क्षेत्र में उत्तरोत्तर बढ़ रही है। निदान शब्द का अर्थ है कारण, आदि कारण, रोग लक्षण या शुद्धि। चिकित्सा क्षेत्र के इस शब्द का शिक्षा क्षेत्र में अर्थ है बालक की शिक्षा संबंधी कठिनाई का मूल कारण जानना। इस मूल कारण को जानने के लिए बच्चे का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, शैक्षिक आदि परीक्षण किया जाता है। बौद्धिक और शैक्षिक परीक्षण के लिए मानक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है।

निदानात्मक परीक्षण में बच्चे की शैक्षिक कठिनाई पर एक-एक करके विचार किया जाता है। इस कठिनाई के विभिन्न पक्षों को परखा जाता है। इस छानबीन में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी जाती। उदाहरण के लिए बालक के उच्चारण दोष को ही लें। इस परीक्षण में ह्रस्व और दीर्घ मात्रा का उच्चारण भेद (सो—सौ, जो—जौ) तथा क—क, क—ख, ग—घ आदि ध्वनियों का उच्चारण भेद कर सकने की क्षमता को परखा जाता है। उच्चारण में स्वरलोप (अंगूठी—गूँठी, कलियुग—कलयुग, गोकुल—गोकल), व्यंजन दोष (गमला—घमला, लक्ष्मण—लछमण) आदि की जाँच की जाती है। इन दोषों के कारणों पर भी विचार किया जाता है।

इस क्रियात्मक शोध के लिए निदानात्मक परीक्षण का आश्रय लेना पड़ेगा। नीचे निदानात्मक परीक्षण बनाने की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है।

3. निदानात्मक परीक्षण बनाने की प्रक्रिया

निदानात्मक परीक्षण बनाने की प्रक्रिया अपने आप में एक कौशल है। इसके निर्माण में बड़े धैर्य और कुशाग्र बुद्धि की आवश्यकता है। निदानात्मक परीक्षण मौखिक तथा लिखित दोनों प्रकार के हो सकते हैं। इसमें सामूहिक परीक्षण के

स्थान पर व्यक्तिगत परीक्षण को प्राथमिकता दी जाती है। परीक्षण के अतिरिक्त बच्चे के व्यवहार के प्रेक्षण पर भी बल दिया जाता है। प्रेक्षण औपचारिक और अनौपचारिक दोनों ही परिस्थितियों में किया जाता है।

नीचे वर्तनी की अशुद्धियों की जाँच के लिए निदानात्मक परीक्षण के कुछ उदाहरण दिए गए हैं :—

प्रश्न 1—नीचे शब्दों के कुछ जोड़े दिए गए हैं। अशुद्ध वर्तनी वाले शब्द पर काटे का चिह्न (×) लगाएँ :—

×

उदाहरण—कृपया—कृप्या।

(क) कहानी—काहनी।

बरात—बारात।

आपना—अपना।

अहत्या—अहित्या।

(ख) समाजिक—सामाजिक।

सोचना—सोंचना।

(ग) अभारी—आभारी।

पती—पति।

श्रीमती—श्रीमति।

हथियार—हथियार।

(घ) मुस्लिम—मुस्लिम।

राजनीतिक—राजनैतिक।

(ङ) आयु—आयू।

साधु—साधू। ऊँचाई—उँचाई।

प्रश्न 2.—नीचे हर शब्द में कोई अशुद्धि है। उस अशुद्ध शब्द को शुद्ध करके लिखो।

चिन्ह। सूष्टी। न्रम। क्रपा। स्थाई। अतैब। सैय्यद।

प्रश्न 3.—नीचे कुछ वाक्य दिए गए हैं। मोटे टाइप के शब्द में वर्तनी की अशुद्धि है। उस अशुद्ध शब्द को सामने के खाली स्थान पर शुद्ध करके लिखें :—

1. कुली ने समान सिर पर रखा

2. विद्वानों के सानिद्ध का लाभ होता है

3. नेता ने कहा—बहनों, अंध विश्वास छोड़ो

4. इन शब्दों के पुलिग शब्द लिखो

ऊपर वर्तनी की जाँच के लिए निदानात्मक परीक्षण के प्रश्नों के कुछ नमूने दिए गए। इसी प्रकार से अन्य प्रश्नों का निर्माण किया जा सकता है।

VI. उपचारात्मक शिक्षण—अर्थ तथा स्वरूप

उपचारात्मक शिक्षण या उपचारी शिक्षण वह शिक्षण है जो किसी विषय की कमजोरी को जाँचने के बाद उसे आंशिक या पूर्णरूप से दूर करने के लिए सुनियोजित विधि से सम्पन्न किया जाता है। उपचारात्मक शिक्षण या Remedial Teaching निदानात्मक परीक्षण का अनुगामी है।

अनेक छात्र ऐसे हैं जिनमें सामान्य योग्यता की कमी नहीं होती। वे किसी कारण से किसी विषय में या विषय के किसी अंग में पिछड़ जाते हैं। ऐसे विद्या-

थियों की कमजोरी का निदान किया जाता है और उनके अनुकूल उपचारात्मक शिक्षण का नियोजन किया जाता है।

क्रियात्मक शोध में उपचारात्मक शिक्षण का बहुत महत्त्व है। क्रियात्मक शिक्षण का उद्देश्य शिक्षा की किसी स्थिति विशेष में सुधार लाना होता है और उपचारात्मक शिक्षण इस लक्ष्य की पूर्ति करता है।

उपचारात्मक शिक्षण की प्रक्रिया

ऊपर संकेत दिया जा चुका है कि उपचारात्मक शिक्षण निदानात्मक परीक्षण का अनुगामी है। उपचारात्मक शिक्षण की प्रक्रिया निदानात्मक परीक्षण के समय से आरंभ हो जाती है। निदान की जानकारी के बाद उपचारात्मक शिक्षण की योजना बनाई जाती है।

उदाहरण के लिए एक विद्यार्थी ह्रस्व और दीर्घ स्वर मात्राओं में भेद नहीं कर पाता। इसका कारण है अध्यापक ने उसे इनमें भेद करना नहीं सिखाया। उसके क्षेत्र में अनेक ह्रस्व मात्राएँ दीर्घ उच्चरित होती हैं। उसे आभास ही नहीं है कि वह ह्रस्व मात्रा को दीर्घ उच्चरित कर रहा है और दीर्घ ही लिख रहा है। ऐसी स्थिति में उपचारात्मक शिक्षण के द्वारा इस अशुद्धि को ठीक कराया जा सकता है। नीचे इस प्रकार के उपचारात्मक अभ्यासों के नमूने दिए जा रहे हैं :—

प्रश्न—निम्नलिखित शब्दों के जोड़ों को ध्वनि भेद और अर्थ भेद करते हुए दो-दो बार पढ़ें तथा पढ़ने के बाद उन्हें लिखें—

(क) अ—आ ध्वनि भेद अभ्यास—

कम—काम । जल—जाल । तन—तान । बाहर—बहार । समान—सामान ।

(ख) इ—ई ध्वनि भेद अभ्यास—

अवधि—अवधी । आदि—आदी । उपाधि—उपाधी । गिला—गीला । जितना—जीतना । दिया—दीया । पिसा—पीसा । शिला—शीला । हरि—हरी ।

(ग) उ—ऊ ध्वनि भेद अभ्यास—

उन—ऊन । कुल—कूल । घुसा—घूसा । भुला—भूला । सुखा—सूखा । सुखी—सूखी । सुर—सूर ।

(घ) ए—ऐ ध्वनि भेद अभ्यास—

में—मैं । बेरी—बैरी । बेल—बैल । सेर—सैर ।

(ङ) ओ—औ ध्वनि भेद अभ्यास—

ओटना—औटना । ओर—और । कोड़ी—कौड़ी । गोरी—गौरी । जो—जौ । बोना—बौना । लो—लौ । सो—सौ ।

VII. क्रियात्मक अनुसंधान आख्या का स्वरूप

बी० एड० स्तर तक शिक्षण प्रशिक्षण संस्थाओं में अनेकशः सुधारों की आवश्यकता है। इक्कीसवीं शती के भारत में शिक्षक से शिक्षा क्षेत्र में सुधार की बहुत आशाएँ हैं। वह सदा परमुखापेक्षी रहा है। वह शिक्षा नाल के प्राप्ति छोर पर रहा है। वह स्वयं अपने अनुभव से कम दे पाया है। वर्तमान परिस्थितियों में उसे अपने स्वरूप को समझना होगा। इसके लिए आवश्यक है कि बी० एड० स्तर पर उसे शोध कार्य की विद्वत्-मंडली में सम्मिलित किया जाए। उसे शोध की प्रक्रिया से अवगत कराया जाए। वर्तमान पाठ्यक्रम के अनुसार एम० एड० के स्तर पर शोध कार्य का प्रशिक्षण दिया जाता है। बी० एड० के पाठ्यक्रम में भी अनुसंधान प्रक्रिया को सम्मिलित किया जाए। प्रशिक्षणार्थियों और शिक्षकों को अनुसंधान आख्या के स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए ताकि वे क्रियात्मक शोध सम्पन्न करा सकें।

अनुसंधान कार्य पाठ्य पुस्तकें पढ़ने या पुस्तकालय में समय बिताने मात्र से नहीं हो सकता। अधुसंधान व्यवहार का विषय है। यह अनुभूत कठिनाइयों का समाधान निकालने का विषय है। किसी समस्या के समाधान के लिए उसका नियोजित विधि से हल करना आवश्यक है। अनुसंधान की आख्या या रिपोर्ट लिखने के निम्नलिखित चरण हैं:—

अनुसंधान आख्या का स्वरूप

1. अनुसंधान का महत्व और आवश्यकता
2. अनुसंधान का लक्ष्य और उद्देश्य
3. अनुसंधान का परिसीमन
4. प्राक्कल्पना या हाइपोथीसिस
5. पारिभाषिक शब्दावली
6. संबंधित कार्य का सर्वेक्षण
7. अनुसंधान की प्रक्रिया
8. परिणामों का प्रस्तुतीकरण
9. संस्तुति
10. आगामी अनुसंधान के लिए संकेत
11. संदर्भ
12. परिशिष्ट

1. अनुसंधान का महत्व और आवश्यकता

बिना आवश्यकता के कोई काम करना निरर्थक है। आख्या के इस भाग

में क्रियात्मक शोध और उसका महत्त्व तथा आवश्यकता स्थापित करनी चाहिए। आख्या का यह भाग 8-10 अनुच्छेद से अधिक नहीं हो।

2. अनुसंधान का लक्ष्य और उद्देश्य

अनुसंधाता के समक्ष अनुसंधान के लक्ष्य और उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिए। उद्देश्य जितने स्पष्ट होंगे कार्य करने में उतनी सरलता रहेगी और उत्साह भी बना रहेगा।

क्रियात्मक अनुसंधान के लक्ष्य बहुत विस्तृत नहीं होते। इसमें समस्या के किसी एक पहलू को लक्ष्य बनाया जा सकता है। अनुसंधान के उद्देश्य ऐसे हों जो अनुसंधाता की सीमा में हों। वे व्यावहारिक हों तथा उनकी पूर्ति के लिए आवश्यक साधन भी उपलब्ध हों। अनुसंधाता में उन उद्देश्यों तक पहुँचने के लिए पात्रता भी हो। इन उद्देश्यों को महत्त्व की दृष्टि से उत्तरोत्तर क्रम से लिखना चाहिए।

3. अनुसंधान का परिसीमन

क्रियात्मक अनुसंधान का परिसीमन बहुत आवश्यक है। ऊपर बार-बार दोहराया गया है कि यह अनुसंधान समस्या के किसी अंग का समाधान निकालता है। सीमित साधनों और समय के अनुसार शोध का व्यापार अधिक नहीं हो। वह ऐसा हो जो सीमित समय में सम्पन्न हो सके और उसके तुरंत लाभ मिल सकें।

4. प्राक्कल्पना या हाइपोथीसिस

कोई भी अनुसंधान करने से पूर्व उसके विषय में कोई न कोई धारणा अवश्य होती है। जैसे—यथा राजा तथा प्रजा, यथा पिता तथा पुत्र, जैसा गुरु वैसा चेला, तुरन्त दान महा कल्याण आदि। किन्तु आवश्यक नहीं कि ये पूर्वधारणाएँ शाश्वत हों। इनकी समय-समय पर परख करने की संभावना बनी रहती है। किसी भी अनुसंधान को आरम्भ करने से पहले उसके विषय में जो धारणा है उसे सूत्र रूप में लिखना ही प्राक्कथन या प्राक्कल्पना कहलाता है। प्राक्कल्पना परिणामों के आधार पर सत्य भी सिद्ध हो सकती है और असत्य भी। यह आंशिक रूप से सिद्ध हो सकती है और इसमें सुधार भी किया जा सकता है।

5. विशिष्ट शब्दों की परिभाषाएँ

क्रियात्मक अनुसंधान में कुछ शब्द विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। उन विशिष्ट शब्दों की व्याख्या हाने से आख्या के पाठक को असुविधा नहीं होगी।

वह उन शब्दों का वही अर्थ ग्रहण करेगा जो अनुसंधाता का था। उदाहरण के लिए सातवीं कक्षा के विद्यार्थियों की पठन की गति को लें। यहाँ सातवीं कक्षा का अभिप्राय हो सकता है—वे विद्यार्थी जिन्होंने सातवीं कक्षा पास की है, सातवीं कक्षा में पढ़ने वाले नहीं। पठन गति का अर्थ है केवल वे शब्द जो एक मिनट में विद्यार्थी ने शुद्ध पढ़े हैं।

6. संबंधित कार्य या साहित्य का सर्वेक्षण

किसी कार्य को करने से पहले यह जान लेना चाहिए कि क्या इस क्षेत्र में पहले भी कोई कार्य हुआ है? क्या इस कार्य से संबंधित कोई साहित्य उपलब्ध है? इस कार्य से संबंधित कौन अधिकारी व्यक्ति है जिसको क्षेत्र का पूर्व अनुभव है? ऐसा करने से किसी अनुसंधान की पुनरावृत्ति नहीं होती और कार्य को उस स्तर से अगले चरण में आरम्भ किया जा सकता है। इससे पहले अनुसंधान की भूलों से बचा जा सकता है और श्रेष्ठ अनुभवों का लाभ उठाया जा सकता है।

7. अनुसंधान की प्रक्रिया

अनुसंधान की प्रक्रिया निश्चित करने से उद्देश्य तक पहुँचने में सरलता रहती है। कब काम करना है, कैसे करना है, किसने करना है, कहाँ करना है, जानकारी का कैसे विश्लेषण करना है, प्राप्त विश्लेषण को किस विधि से प्रस्तुत करना है आदि बिंदुओं को स्पष्ट कर लेना आवश्यक है। इन्हीं बिंदुओं का स्पष्टीकरण अनुसंधान प्रक्रिया है।

8. परिणामों का प्रस्तुतीकरण

प्राप्त जानकारी का विश्लेषण करके जो निष्कर्ष निकलते हैं वही अनुसंधान का परिणाम है। परिणाम स्पष्ट भाषा में लिखे जाएँ। यदि कहीं अनुसंधान की सीमाएँ और असफलताएँ रही हैं तो उन्हें स्वीकार करना चाहिए। परिणाम प्रस्तुत करने में कोई पूर्वाग्रह रखना विषय के प्रति अन्याय होगा। परिणाम प्रस्तुत करने में पूर्ण वस्तुनिष्ठता और तटस्थता बरती जानी चाहिए।

9. संस्तुति

प्राप्त परिणाम के आधार पर संस्तुति या Recommendation की जाती है। संस्तुति क्रियात्मक अनुसंधान का अंतिम महत्वपूर्ण चरण है। इसी के आधार पर पाठक अनुसंधान के परिणाम का लाभ अपने क्षेत्र में उठाना चाहेंगे। संस्तुति भी सरल और स्पष्ट भाषा में होनी चाहिए।

10. आगामी अनुसंधान के लिए संकेत

कोई अनुसंधान अपने आप में परिपूर्ण नहीं होता। क्रियात्मक अनुसंधान में किसी समस्या का कोई अंश मात्र ही लिया जाता है। कितनी बातें अनकही रह जाती हैं। ऐसी स्थिति में अनुसंधान के अनुभवों के आधार पर आगामी अनुसंधान के संकेत देने चाहिए। उदाहरण के लिए एक अनुसंधाता ने सातवीं के विद्यार्थियों की प्रति मिनट पठन गति ज्ञात की है। वह यह मुझाव दे सकता है कि इस प्रक्रिया के आधार पर पहली कक्षा से छठी कक्षा के विद्यार्थियों की पठन गति ज्ञात की जा सकती है ताकि वर्तमान कक्षा से उन आँकड़ों की तुलना की जा सके।

11. संदर्भ

क्रियात्मक अनुसंधान के जिन-जिन स्रोतों से आँकड़े प्रस्तुत किए गए हैं या सामग्री पढ़ी है उसका संदर्भ देना आवश्यक है। इससे दूसरे अनुसंधाता लाभान्वित हो सकते हैं। ऐसा करने से अनुसंधान की निष्ठा का भी आभास मिलता है। संदर्भ देते समय पुस्तक का शीर्षक, लेखक, प्रकाशन वर्ष, प्रकाशक का पूरा पता आदि भी देना चाहिए।

12. परिशिष्ट

परिशिष्ट में आँकड़े प्राप्त करने की अनुसूचियों, कच्ची सामग्री के नमूनों आदि का व्यौरा देना चाहिए। ऐसा करने से अनुसंधान की प्रामाणिकता बढ़ती है।

अनुसंधान से प्राप्त आँकड़ों का विधिवत् प्रस्तुतीकरण और परिणाम को एक नज़र में प्रस्तुत करने के लिए तालिका, आरेख, चित्र आदि की आवश्यकता पड़ती है। जिस पृष्ठ पर आँकड़ों का विश्लेषण किया जाए उसके साथ ही चित्र आदि प्रस्तुत किए जाएँ ताकि जाँच में सुविधा हो।

आख्या का शीर्षक भले ही कुछ बड़ा हो लेकिन अनुसंधान का मूल भाव उसमें सम्मिलित होना चाहिए। अनुसंधान के मूल शीर्षक में प्राप्त परिणामों के आधार पर कुछ परिवर्तन किया जा सकता है।

अनुसंधान आख्या साफ़-साफ़ लिखी जाए। यदि यह टाईप हो सके तो और भी अच्छा है। प्राप्त परिणामों पर सम्बंधित विषय विशेषज्ञों से चर्चा करनी चाहिए। चर्चा के निष्कर्ष के बाद अगले अनुसंधान को प्राप्त ज्ञान के अनुसार ढाला जाए। क्रियात्मक अनुसंधान निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है अतः इसके लिए सदा उत्साह बनाए रखा जाए।

व्यावहारिक कार्य

1. भाषा शिक्षण में अनुसंधान विषय पर सामग्री का अध्ययन करना ।
2. अनुसंधान आध्या की प्रक्रिया से अवगत होना ।
3. विद्यार्थियों से भाषा शिक्षण में होने वाली कठिनाइयों पर चर्चा करना ।
4. भाषा अध्यापकों से मिलकर भाषा शिक्षण में अनुभूत कठिनाइयों को सूचीबद्ध करना ।
5. भाषा विशेषज्ञों से भाषा शिक्षण की कठिनाइयों पर चर्चा करना ।
6. भाषा शिक्षण की कोई कठिनाई चुनना और उस पर क्रियात्मक अनुसंधान की योजना बनाना ।
7. क्रियात्मक शोध के परिणामों की विद्यालय के अध्यापकों तथा प्रधानाध्यापक से चर्चा करना ।
8. अनुसंधान के विशेषज्ञों को आमंत्रित करना ।

संदर्भ

1. Reading Rates of Delhi Children at the age of 11 +- (National Award Winner Research Paper) by Dr. J. N. Kaushik) Deptt. of Teacher Education, NCERT. (1984).
2. A Study in Reading Rates (Seminar Reading Research Paper submitted to NCERT. (1986).
3. Sound Discrimination Lesson (National Award Winner Research Paper by Dr. J.N. Kaushik, NCERT. (1980).
4. Techniques of Material Development for Language Labs. (National Award Winner Research Paper) by Dr. J.N. Kaushik NCERT.) (1979).
5. Remedial Reading (A Research Paper submitted to NCERT in Seminar Reading Programme) by Dr. J. N. Kaushik NCERT. (1985).
6. Vowel Insertion in Speech (A National Award Winner Research Paper) by Dr. J. N. Kushik, NCERT. (1982).
7. A Study of Marks obtained in External Exam. and Internal Assessment by Teacher Trainees in T.T.1. Daryaganj, N. Delhi (A National Award Winner Research Paper)

by Dr. J. N. Kaushik, N C E R T (1978).

8. A Comparative Study of Achievement of T.T.I. Students in Relation to Professional Training and Higher Secondary Examination (A National Award Winner Paper) by Dr. J. N. Kaushik, NCERT. (1976-77).

अनुप्रयुक्त प्रश्न

1. 'मानव का आज का व्यवहार गत व्यवहार के अनुभव पर आधारित है', इस कथन की समीक्षा शिक्षा के क्षेत्र में किए जा रहे अनुसंधानों के संदर्भ में कीजिए ।
2. क्रियात्मक या गत्यात्मक शोध (एक्शन रिसर्च) क्या है ? भाषा शिक्षण में इस शोध कार्य को किन-किन क्षेत्रों में सम्पन्न किया जा सकता है ?
3. शोध आख्या के कौन-कौन से अंग हैं ? भाषा शिक्षण की किसी समस्या को आधार बनाकर संक्षिप्त आख्या का निर्माण करें ।
4. निदानात्मक और उपचारात्मक परीक्षण क्या हैं ? इन परीक्षणों के पाँच-पाँच नमूने के प्रश्नों का निर्माण करें ।
5. टिप्पणी लिखें---
 1. आधारभूत अनुसंधान और क्रियात्मक अनुसंधान में अन्तर
 2. पाठ्य पुस्तक के क्रियात्मक अनुसंधान के विषय
 3. पठन गति और क्रियात्मक अनुसंधान
 4. आख्या में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दावली की व्याख्या
 5. संदर्भ सामग्री का महत्त्व ।

हिन्दी शिक्षण

लेखक

डा० जय नारायण कौशिक

पुनरीक्षण

डा० रघुनाथ सफ़ाया



हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़